सेपियन्स के बेस्टसेलिंग लेखक की ओर से

युवाल नोआ हरारी

होमो डेयस

आने वाले कल का संक्षिप्त इतिहास

अनुवाद : मदन सोनी

'हरारी मौजूदा दौर के श्रेष्ठ लेखकों में हैं जो दुनिया के कई देशों में बेहद लोकप्रिय हैं। इस पुस्तक में उन्होंने भविष्य को विषय बनाया है।'

दैनिक जागरण

सेपियन्स के बेस्टसेलिंग लेखक की ओर से

युवाल नोआ हरारी

होमो डेयस

आने वाले कल का संक्षिप्त इतिहास

अनुवाद : मदन सोनी

'हरारी मौजूदा दौर के श्रेष्ठ लेखकों में हैं जो दुनिया के कई देशों में बेहद लोकप्रिय हैं। इस पुस्तक में उन्होंने भविष्य को विषय बनाया है।'

दैनिक जागरण

युवाल नोआ हरारी
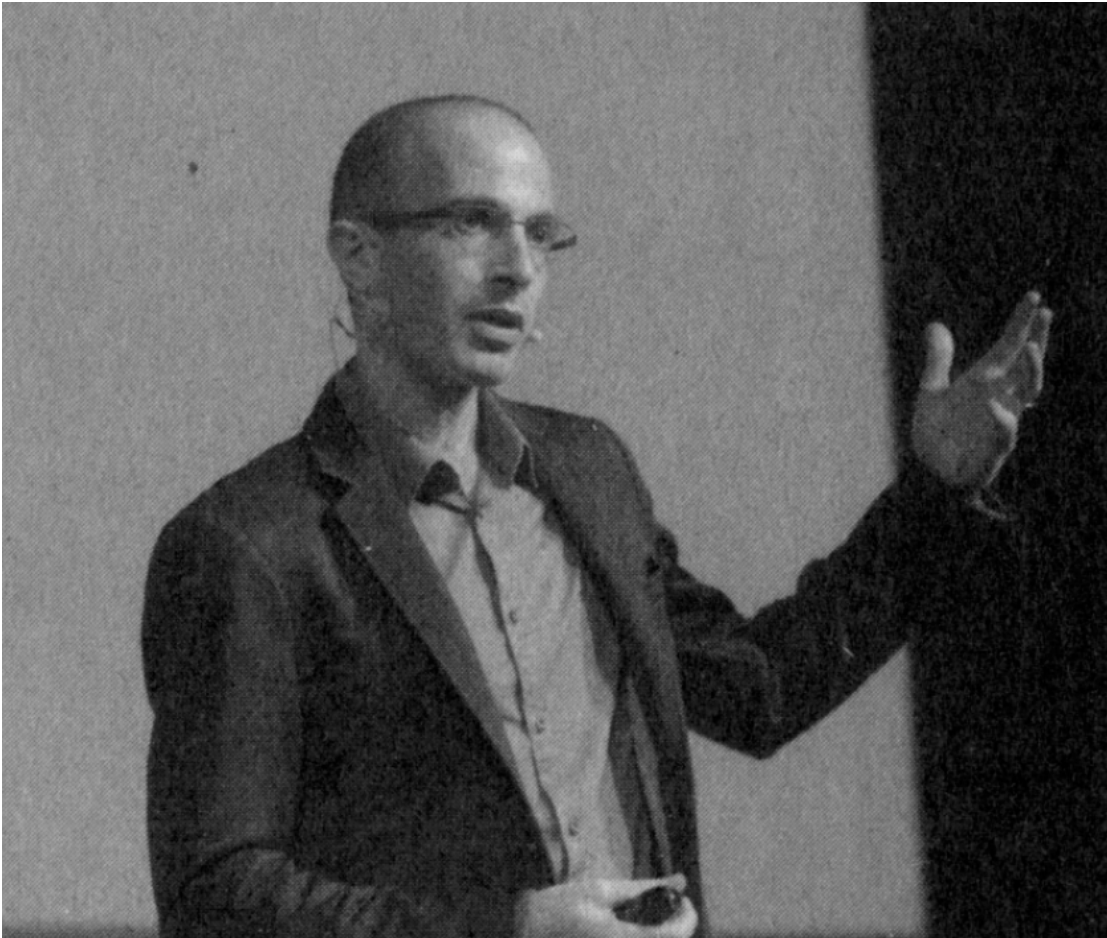
‘हमारे विश्वास चाहे जो भी हों, लेकिन मैं हम सभी को हमारी दुनिया के बुनियादी आख्यानों पर सवाल उठाने के लिए, अतीत की घटनाओं को वर्तमान के सरोकारों से जोड़कर देखने के लिए और विवादास्पद मुद्दों से न डरने के लिए प्रोत्साहित करता हूँ’।

डॉ. युवाल नोआ हरारी ने ऑक्सफ़ोर्ड विश्वविद्यालय से इतिहास में पीएचडी की उपाधि प्राप्त की है और विश्व इतिहास में विशेषज्ञता हासिल करने के बाद अब वे हिब्रू

विश्वविद्यालय, यरुशलम में अध्यापन कर रहे हैं। उनकी पुस्तकें *सेपियन्स* और *होमो डेयस* अंतरराष्ट्रीय स्तर पर चर्चित हो चुकी हैं।

मंजुल पब्लिशिंग हाउस द्वारा प्रकाशित युवाल नोआ हरारी की अन्य पुस्तक

सेपियन्स: मानव-जाति का संक्षिप्त इतिहास

युवाल नोआ हरारी

होमो डेयस

आने वाले कल का संक्षिप्त इतिहास

अनुवाद: मदन सोनी

MANJUL

मंजुल पब्लिशिंग हाउस

MANJUL

मंजुल पब्लिशिंग हाउस
कॉरपोरेट एवं संपादकीय कार्यालय
• द्वितीय तल, उषा प्रीत कॉम्प्लेक्स, 42 मालवीय नगर, भोपाल-462 003
विक्रय एवं विपणन कार्यालय
• 7/ 32, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110 002
वेबसाइट: www.manjulindia.com
वितरण केन्द्र
अहमदाबाद, बेंगलुरू, भोपाल, कोलकाता, चेन्नई, हैदराबाद, मुम्बई, नई दिल्ली, पुणे

मूल अंग्रेजी संस्करण पहली बार 2016 में हार्विल सेकर द्वारा प्रकाशित संशोधित संस्करण पहली बार 2015 में *द हिस्ट्री ऑफ़ टुमॉरो* शीर्षक से किनेरेट ज़्मोरा-बिटन विर द्वारा इज़राइल में हिब्रू में प्रकाशित

युवाल नोआ हरारी द्वारा लिखित मूल अंग्रेजी पुस्तक होमो डेयस - *अ ब्रीफ़ हिस्ट्री ऑफ़ टुमॉरो* का हिन्दी अनुवाद

यह हिन्दी संस्करण 2019 में पहली बार प्रकाशित

ISBN 978-93-89143-13-3

हिन्दी अनुवाद: मदन सोनी

चित्रांकन © स्टुअर्ट डेली; डिज़ाइन © सुज़ेन डीन

अपने गुरु एस.एन. गोयनका (1924-2013) के प्रति,
जिन्होंने मुझे बहुत स्नेहपूर्वक महत्त्वपूर्ण चीज़ों की शिक्षा दी।

अनुक्रम
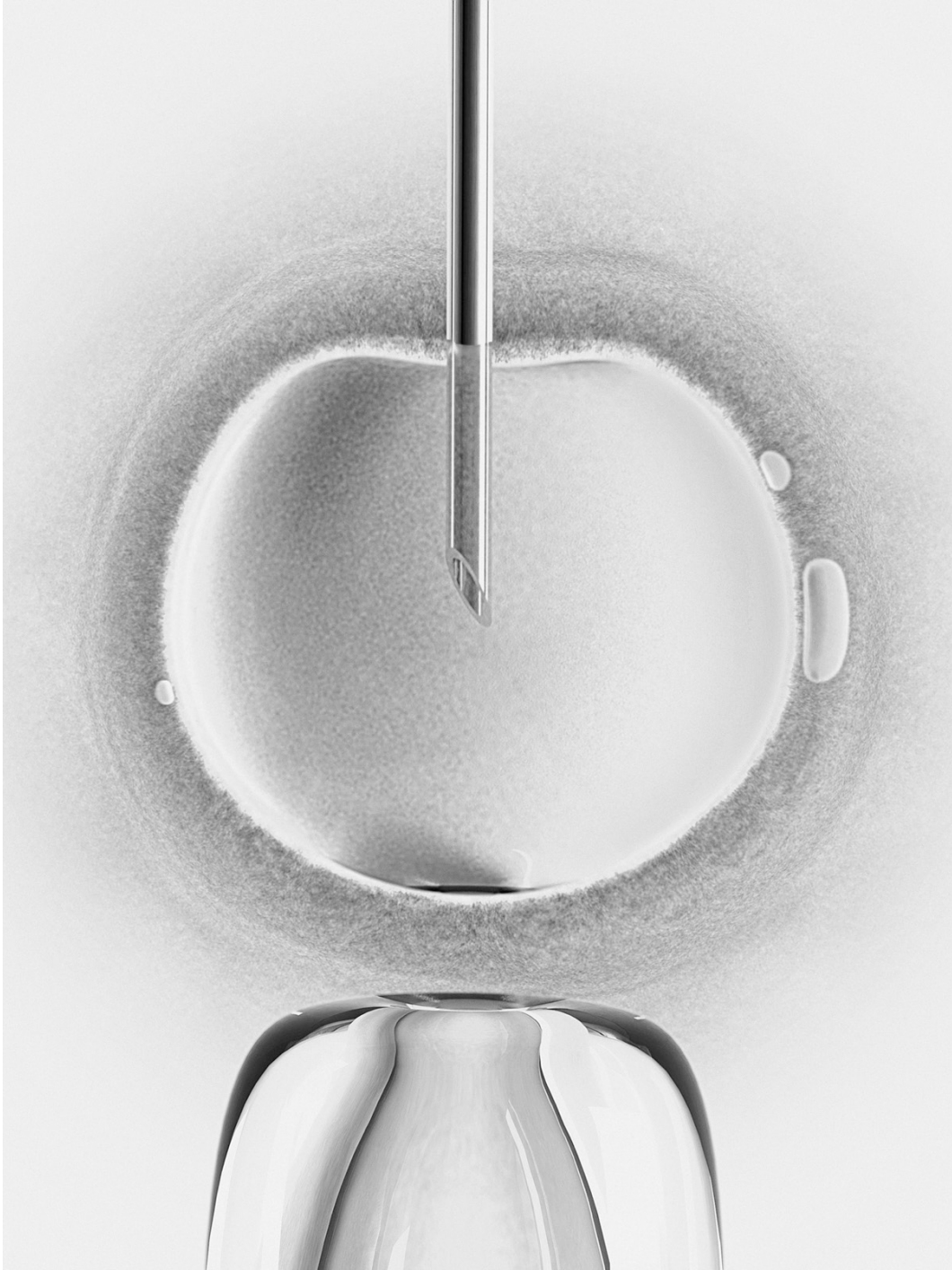
1. कृत्रिम गर्भधारण: सृष्टि का वशीकरण

1
मनुष्य की नई कार्यसूची

तीसरी सहस्राब्दी के उषाकाल में मनुष्यता अँगड़ाई लेती हुई और अपनी आँखें मलती हुई जाग उठी है। कुछ डरावने दुःस्वप्नों के अवशेष अभी भी उसके दिमाग़ में मँडरा रहे हैं। 'कँटीले तार जैसी कोई चीज़ थी, और विशाल कुकुरमुत्तेनुमा बादल थे। आह, अच्छा है कि वह महज़ एक बुरा सपना था'। गुसलख़ाने में जाकर मनुष्यता अपना चेहरा धोती है, आईने में अपनी झुर्रियों को जाँचती है, एक कप कॉफ़ी तैयार करती है और डायरी खोलती है। 'देखते हैं, आज क्या करना है'।

इस सवाल का जवाब हज़ारों सालों से जस का तस बना रहा है। वही तीन समस्याएँ बीसवीं सदी के चीन, मध्ययुग के हिन्दुस्तान और प्राचीन मिस्र को सताती रही हैं। अकाल, महामारी और युद्ध फ़ेहरिस्त में हमेशा सबसे ऊपर हुआ करते थे। मनुष्यों ने पीढ़ी-दर-पीढ़ी हर देवता, देवदूत और सन्त से प्रार्थना की है, और अन्तहीन औज़ारों, संस्थाओं और सामाजिक व्यवस्थाओं का आविष्कार किया है, लेकिन भूख, महामारियों और हिंसा से लाखों की संख्या में उनका मरना जारी रहा है। अनेक विचारकों और भविष्यवक्ताओं ने यह निष्कर्ष निकाला कि अकाल, महामारी, और युद्ध निश्चय ही या तो ईश्वर की ब्रह्माण्डीय योजना का अभिन्न अंग हैं या हमारी अपूर्ण प्रकृति का अंग हैं, और समय का अन्त ही हमें इनसे मुक्त कर सकेगा।

तब भी तीसरी सहस्राब्दी की भोर में मनुष्यता एक विस्मयकारी बोध के साथ जाग रही है। ज़्यादातर लोग इसके बारे में शायद ही कभी सोचते हैं, लेकिन पिछले कुछ दशकों में हम अकाल, महामारी और युद्ध पर लगाम कसने में कामयाब रहे हैं। निश्चय ही ये समस्याएँ पूरी तरह से हल नहीं हुई हैं, लेकिन उनको प्रकृति की अबूझ और बेक़ाबू

शक्तियों से ऐसी चुनौतियों में तो बदल ही लिया गया है, जिनका सामना किया जा सकता है। हमें उनसे मुक्ति पाने के लिए किसी देवता या सन्त से प्रार्थना करने की ज़रूरत नहीं रह गई है। हम अच्छी तरह से जानते हैं कि अकाल, महामारी और युद्ध को रोकने के लिए हमें क्या करना चाहिए और हम आमतौर से यह करने में कामयाब होते हैं।

सही है कि अभी भी उल्लेखनीय नाकामयाबियाँ बरक़रार हैं, लेकिन इस तरह की नाकामयाबियों का मुक़ाबला करते हुए हम अब अपने कन्धे झटककर यह नहीं कहते कि 'हमारी अधूरी दुनिया में ऐसा ही होता है' या 'ईश्वर जो चाहता है, वह तो होकर ही रहेगा'। इसकी बजाय जब अकाल, महामारी या युद्ध हमारे नियन्त्रण से बाहर हो जाते हैं, तो हमें लगता है कि निश्चय ही किसी न किसी ने कोई गड़बड़ की होगी, हम जाँच आयोग बैठाते हैं, और ख़ुद से वादा करते हैं कि अगली बार हम बेहतर कुछ करेंगे। और यह वाक़ई कारगर होता है। इस तरह की विपत्तियाँ वाक़ई कम से कम होती जाती हैं। यह इतिहास में पहली बार है, जब आज लोग बहुत कम खाने से मरने की बजाय बहुत ज़्यादा खाने से मरते हैं, लोग संक्रामक बीमारियों से मरने की बजाय बूढ़े हो जाने की वजह से ज़्यादा मरते हैं, कुल मिलाकर सैनिकों, आतंकवादियों और अपराधियों के हाथों जितने लोग मारे जाते हैं, उससे ज़्यादा लोग आत्महत्या करते हैं। इक्कीसवीं सदी के शुरुआती दौर में औसत इंसान के मरने की आशंका अकाल, इबोला या अल-क़ायदा के किसी हमले से उतनी नहीं है, जितनी ज़्यादा मैकडोनाल्ड में जाकर ठूँस-ठूँस कर खाने से है।

इसलिए यद्यपि राष्ट्रपतियों, मुख्य कार्यकारी अधिकारियों (सीईओ) और जनरलों के दैनिक कार्यक्रम अभी भी आर्थिक संकटों और सैन्य तकरारों से भरे होते हैं, लेकिन इसके बावजूद इतिहास के ब्रह्माण्डीय स्तर पर मानवता अपनी नज़रें ऊपर उठा सकती है और नए क्षितिजों की ओर देखना शुरू कर सकती है। अगर हम सचमुच ही अकाल, महामारी और युद्ध को क़ाबू में ला पा रहे हैं, तो मनुष्य की कार्यसूची के शीर्ष पर इनकी जगह क्या होगा? एक आग-रहित दुनिया में अग्निशामकों की ही तरह इक्कीसवीं सदी में मानवता को ख़ुद से यह अपूर्व सवाल पूछने की ज़रूरत है: 'हम अपना क्या उपयोग करने जा रहे हैं? एक स्वस्थ, समृद्ध और सामंजस्यपूर्ण दुनिया में वह क्या चीज़ है, जो हमारी एकाग्रता और चतुराई की माँग करेगी? जैवप्रौद्योगिकी (बायोप्रौद्योगिकी) और सूचना-प्रौद्योगिकी हमारे लिए जो अपरिमित नई शक्तियाँ मुहैया करा रही हैं, उनको देखते हुए यह सवाल दोहरे स्तर पर ज़रूरी हो उठा है। इस सारी ताक़त का हम क्या इस्तेमाल करेंगे?

इस सवाल का जवाब देने से पहले, हमें अकाल, महामारी और युद्ध के बारे में कुछ और शब्द कहने की ज़रूरत है। यह दावा कि हम इन चीज़ों को क़ाबू में ला रहे हैं, बहुत-से लोगों को अपमानजनक, बेहद बचकाना, या शायद निर्दयतापूर्ण लग सकता है। उन करोड़ों लोगों के बारे में क्या कहा जाए, जो एक दिन में 2 डॉलर से से भी कम की रोज़ी

जुटा पा रहे हैं? अफ़्रीका में एड्स का जो संकट जारी है, या सीरिया और इराक़ में जो युद्ध जारी हैं, उनके बारे में क्या कहा जाए? इन सरोकारों से मुखातिब होने के लिए बेहतर होगा कि हम आने वाले दशकों की इंसानी कार्यसूची को परखने से पहले इक्कीसवीं सदी की आरम्भिक दुनिया को क़रीब से देखें।

जैविक ग़रीबी रेखा

हम बात की शुरुआत अकाल से करते हैं, जो हज़ारों सालों से मानवता का सबसे बुरा दुश्मन रहा है। अभी हाल ही के वक़्त तक मनुष्य उस जैविक ग़रीबी रेखा के एकदम कगार पर रहा करते थे, जिसके नीचे लोग कुपोषण और भूख के शिकार होकर मर जाते हैं। एक मामूली-सी चूक या छोटी-सी बदक़िस्मती समूचे परिवार या गाँव के लिए बहुत आसानी से मौत का पैग़ाम बन सकती थी। अगर भारी बारिश आपकी गेहूँ की फ़सल को बर्बाद कर देती, या चोर आपकी बकरियों को भगा ले जाते, तो आप और आपके प्रियजन भूख से मर सकते थे। बदक़िस्मती या सामूहिक स्तर की बेवकूफ़ी सामूहिक अकालों का कारण बन जाती थी। जब प्राचीन मिस्र या मध्ययुगीन हिन्दुस्तान में ज़बरदस्त सूखा पड़ता था, तो 5 या 10 प्रतिशत आबादी का तबाह हो जाना असामान्य बात नहीं हुआ करती थी। रसद सामग्री दुर्लभ होती थी, पर्याप्त भोजन का आयात करने के लिहाज़ से यातायात बहुत धीमा और ख़र्चीला होता था, और सरकारें इन नाकामयाबियों से निपटने के लिहाज़ से बहुत कमज़ोर होती थीं।

इतिहास की कोई भी पुस्तक खोलिए और पूरी सम्भावना है कि उसमें आपको भुखमरी की शिकार, भूख से पगलाई हुई आबादियों के भयानक क़िस्से पढ़ने को मिलें। अप्रैल 1694 में बूवे नगर के एक फ़्रांसीसी अधिकारी ने अकाल और उससे भोजन की बढ़ी हुई क़ीमतों के असर का वर्णन करते हुए कहा था कि उसका समूचा ज़िला 'ग़रीबों से भरा था, जो भूख और बदहाली से कमज़ोर हो गए थे तथा अभावों का शिकार होकर दम तोड़ रहे थे, 'क्योंकि किसी तरह के काम या रोज़गार के अभाव में उनके पास ब्रेड ख़रीदने के लिए पैसे नहीं थे। अपने जीवन को थोड़ा और लम्बा खींचने और किसी तरह अपनी भूख को शान्त करने के लिए ये ग़रीब लोग बिल्लियाँ और चमड़ी उतारकर लीद के ढेर पर फेंके गए घोड़े के मांस जैसी गन्दी चीज़ें खाया करते थे। दूसरे लोग, गायों और बैलों के काटे जाने से बहने वाले ख़ून से, और रसोइयों द्वारा गलियों में फेंके गए कचरे से अपना पेट भरते थे। दूसरे अभागे लोग बिच्छू और जंगली घास खाया करते थे, या जड़ें और जड़ीबूटियाँ खाते थे, जिनको वे पानी में उबाल लिया करते थे'।

यही दृश्य समूचे फ़्रांस में देखने को मिलते थे। बुरे मौसम ने उसके पिछले दो सालों में समूचे राज्य की फ़सलों को इस क़दर तबाह कर दिया था कि 1694 के वसन्त के आते-

आते अन्न के भण्डार पूरी तरह ख़ाली हो चुके थे। धनी लोग जैसे-तैसे जो भी खाद्यान्न जमा करके रख पाए थे, उसके लिए वे हद से ज़्यादा क़ीमतें वसूलते थे, और ग़रीब लोग झुण्ड-के-झुण्ड मरते थे। 1692 और 1694 के बीच लगभग 28 लाख फ़्रांसीसी यानी आबादी का 15 प्रतिशत भूख का शिकार होकर मरे थे, जबकि सन किंग, लुई XVI वर्साइल में अपनी रखैलों के साथ रंगरेलियाँ मना रहा था। अगले साल, 1695 में अकाल ने एस्टोनिया पर हमला कर आबादी के पाँचवें हिस्से को ख़त्म कर दिया था। 1696 में फ़िनलैंड की बारी आई, जहाँ एक चौथाई से एक तिहाई के बीच लोग मारे गए। स्कॉटलैंड को 1695 और 1698 के बीच प्रचण्ड अकाल का सामना करना पड़ा, जिस दौरान वहाँ के कुछ जनपदों को अपनी आबादी के 20 प्रतिशत तक लोगों से हाथ धोने पड़े।

ज़्यादातर पाठक शायद जानते होंगे कि जब आप किसी दिन दोपहर का भोजन नहीं कर पाते हैं, किसी त्यौहार पर उपवास रखते हैं, या किसी नए करामाती आहार के तहत कुछ दिनों सब्ज़ियों के शेक पर गुज़ारा करते हैं, तो आपको कैसा महसूस होता है, लेकिन तब कैसा लगता है, जब आपने कई दिनों से खाया ही न हो और आपको ज़रा भी अंदाज़ा न हो कि भोजन का अगला निवाला आपको कहाँ से हासिल हो सकेगा? आज ज़्यादातर लोगों ने इस यातना को अनुभव नहीं किया है। आह, हमारे पूर्वज इसे भली-भाँति जानते थे। जब वे ईश्वर से गुहार लगाते थे कि 'हमें अकाल से बचाइए!' तो उनके दिमाग़ में यही बात होती थी।

पिछले सौ साल के दौरान टेक्नॉलॉजिकल, आर्थिक और राजनैतिक घटनाक्रमों ने मानवता को इस जैविक ग़रीबी रेखा से पृथक रखने के लिए एक ज़बरदस्त सुरक्षा तन्त्र खड़ा किया है। अकाल आज भी समय-समय पर कुछ इलाक़ों पर बड़े पैमाने पर हमले करते रहते हैं, लेकिन वे अपवाद हैं, और वे लगभग हमेशा ही प्राकृतिक विपदाओं की बजाय इंसानी राजनीति के नतीजे होते हैं। अब क़ुदरती अकाल दुनिया में नहीं रहे, सिर्फ़ राजनैतिक अकाल ही हैं। अगर सीरिया, सूडान या सोमालिया में लोग भूख से मरते हैं, तो इसलिए कि कुछ राजनेता उनको इस तरह मरने देना चाहते हैं।

पृथ्वी के ज़्यादातर हिस्सों में अगर कोई व्यक्ति बेरोज़गार हो गया है और वह अपनी सारी सम्पत्ति से वंचित हो गया है, तो भी उसके भूख से मरने की कोई सम्भावना नहीं है। निजी बीमा योजनाएँ, सरकारी एजेंसियाँ और अन्तरराष्ट्रीय ग़ैरसरकारी संगठन भले ही ग़रीबी से उसका उद्धार न कर सकें, लेकिन वे उसको जीवित रहने योग्य पर्याप्त दैनिक कैलोरी मुहैया कराएँगे। सामूहिक स्तर पर भूमण्डलीय व्यापारिक तन्त्र सूखों और बाढ़ों को व्यावसायिक अवसरों में बदल देते हैं, और बहुत तेज़ी से और सस्ते में भोजन की कमी पर विजय पाना सम्भव बना देते हैं। यहाँ तक कि जब युद्ध, भूकम्प या सुनामी पूरे के पूरे मुल्कों को तबाह कर देते हैं, तब भी अन्तरराष्ट्रीय कोशिशें आमतौर से अकाल को रोकने में

कामयाब होती हैं। हालाँकि, सैकड़ों लाख लोग आज भी लगभग हर दिन भूखे रहते हैं, लेकिन ज़्यादातर देशों में बहुत कम लोग हैं, जो वास्तव में भूख से मरते हों।

ग़रीबी निश्चय ही बहुत सारी दूसरी स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याएँ पैदा करती है, और कुपोषण पृथ्वी के समृद्धतम देशों में भी आयु को कम कर देता है। उदाहरण के लिए फ़्रांस में 60 लाख लोग (यानी आबादी का लगभग दस प्रतिशत हिस्सा) पोषण सम्बन्धी असुरक्षा के शिकार हैं। जब वे सुबह सो कर उठते हैं, तो उनको पता नहीं होता कि उनको लंच में कुछ खाने को मिलेगा या नहीं। वे अक्सर भूखे सो जाते हैं, और जो पोषण वे प्राप्त करते हैं, वह असन्तुलित और अस्वास्थ्यकर होता है - ढेर सारा माड़ (स्टार्च), शक्कर और नमक, और अपर्याप्त मात्रा में प्रोटीन और विटामिन। तब भी पोषण सम्बन्धी असुरक्षा अकाल नहीं है, और आरम्भिक इक्कीसवीं सदी का फ़्रांस 1694 का फ़्रांस नहीं है। यहाँ तक कि बूवे या पेरिस के आस-पास की बदतर झुग्गियों में रहने वाले लोग भी इसलिए नहीं मरते कि उन्होंने हफ़्तों से कुछ खाया नहीं होता।

ऐसा ही रूपान्तरण अनेक दूसरे देशों में घटित हुआ है, जिनमें सबसे ज़्यादा उल्लेखनीय देश है चीन। हज़ारों सालों तक अकाल पीत सम्राट (येलो एम्परर) से लेकर लाल साम्यवादियों तक चीन के हर शासन-काल का पीछा करता रहा। कुछ दशकों पहले तक चीन भोजन की कमी का पर्याय हुआ करता था। विनाशकारी ग्रेट लीप फ़ारवर्ड के दौरान लाखों चीनी भूख से मरे थे, और विशेषज्ञ सामान्यतः पूर्वानुमान लगाया करते थे कि यह समस्या और भी बदतर होती जाएगी। 1974 में रोम में पहली वर्ल्ड फूड कॉन्फ्रेंस का आयोजन हुआ था और इसमें शामिल प्रतिनिधियों के सामने विनाशकारी परिदृश्य पेश किए गए थे। उनसे कहा गया था कि चीन के समक्ष अपने एक अरब लोगों का पेट भरने का कोई उपाय नहीं बचा है, और दुनिया में सबसे ज़्यादा आबादी वाला यह देश तबाही की ओर बढ़ रहा है। सच तो यह था कि वह इतिहास के महानतम आर्थिक चमत्कार की ओर बढ़ रहा था। 1974 के बाद से करोड़ों की तादाद में चीनियों को ग़रीबी से बाहर लाया जा चुका है, हालाँकि करोड़ों और भी लोग हैं, जो अभाव और कुपोषण के शिकार बने हुए हैं, लेकिन चीन के लिखित इतिहास में यह पहली बार है कि वह अकाल से मुक्त है।

वास्तव में, आज ज़्यादातर देशों में अकाल से ज़्यादा बदतर समस्या अति भोजन करना बन चुकी है। बताया जाता है कि अठारहवीं सदी में मैरी अन्तोनेत ने भूखों मरती जनता को सलाह दी थी कि अगर उनकी ब्रेड समाप्त हो जाए, तो उनको उसकी जगह केक खा लेना चाहिए। आज ग़रीब लोग इस सलाह का शब्दश: पालन कर रहे हैं। जहाँ बेवरली हिल्स के रईस लोग लेट्यूस सलाद और क़्विनोआ के साथ स्टीम्ड टोफ़ू खाते हैं, वहीं झुग्गी झोपड़ियों और अलग बस्तियों में रहने वाले ग़रीब लोग ट्विंकी केक, चीतू, हैम्बर्गर और पिज़्ज़ा ठूँस-ठूँस कर खाते हैं। 2014 में 2.1 अरब लोगों का वज़न बहुत

ज़्यादा था, इसके मुक़ाबले 8500 लाख लोग कुपोषण का शिकार थे। अनुमान है कि 2030 तक आते-आते आधी मानव-जाति अधिक वज़न का शिकार होगी। 2010 में अकाल और कुपोषण ने मिलकर 10 लाख लोगों की जान ली थी, जबकि मोटापे ने 30 लाख लोगों की जान ली थी।

अदृश्य जहाज़ी बेड़े

अकाल के बाद मनुष्यता की दूसरी सबसे बड़ी दुश्मन थी महामारी और संक्रामक बीमारियाँ। सौदागरों, सरकारी कर्मचारियों और तीर्थयात्रियों के अन्तहीन ताँते से जुड़े हलचल भरे नगर एक साथ मानव सभ्यता की आधारशिला और रोगाणुओं का घर हुआ करते थे। नतीजतन, प्राचीन एथेंस या मध्ययुगीन फ़्लोरेंस में लोग इस अहसास के साथ अपना जीवन जिया करते थे कि वे बीमार पड़कर अगले हफ़्ते मर सकते हैं, या अचानक कोई महामारी फैलकर एक झटके में उनके पूरे परिवार को ख़त्म कर सकती है।

2. मध्य युग के लोग काली मौत (ब्लैक डैथ) को मनुष्य के नियन्त्रण और समझ से परे एक भयावह दानवीय शक्ति के रूप में देखते थे।

इस तरह के सबसे प्रसिद्ध प्रकोप को काली मौत (ब्लैक डैथ) के नाम से जाना जाता था। इसकी शुरुआत पूर्वी या मध्य एशिया में किसी जगह पर 1330 के दशक में हुई थी, जब पिस्सुओं में रहने वाले *यर्सीनिया पेस्टिस* नामक जीवाणु ने पिस्सुओं द्वारा काटे गए लोगों को संक्रमित करना शुरू कर दिया था। वहाँ से चूहों और पिस्सुओं की सेना पर सवार होकर यह महामारी तेज़ी के साथ समूचे एशिया, यूरोप और उत्तरी अफ़्रीका में फैल गई, और बीस साल से कम समय में अटलांटिक महासागर के तटों तक पहुँच गई। 7.5 करोड़ से 20 करोड़ के बीच लोग मारे गए, जो यूरेशिया की कुल आबादी का एक चौथाई से ज़्यादा हिस्सा था। इंग्लैंड में दस में से चार लोग मरे, और आबादी महामारी-पूर्व की 37 लाख की संख्या से घटकर, महामारी के बाद 22 लाख रह गई। फ़्लोरेंस नगर ने अपने 100,000 निवासियों में से 50,000 निवासियों को खो दिया।

सरकारी अधिकारी इस विपत्ति के सामने पूरी तरह से असहाय थे। सामूहिक प्रार्थनाओं और जुलूसों का आयोजन करने के अलावा इस महामारी को फैलने से रोकने का कोई उपाय उनको नहीं सूझता था, इसका इलाज कराना तो दूर की बात थी। आधुनिक युग के आने के पहले तक मनुष्य बीमारियों के लिए बुरी हवा, दुष्ट दैत्यों और क्रुद्ध देवताओं को ज़िम्मेदार ठहराया करते थे, और रोगाणुओं तथा विषाणुओं के वजूद को लेकर उनके मन में कोई सन्देह तक पैदा नहीं होता था। लोग देवदूतों और अप्सराओं में तो सहज ही विश्वास कर लेते थे, लेकिन वे यह कल्पना भी नहीं कर पाते थे कि एक छोटे-से पिस्सू या पानी की एक बूँद में परभक्षियों के समूचे जहाज़ी बेड़े समाए हो सकते हैं।
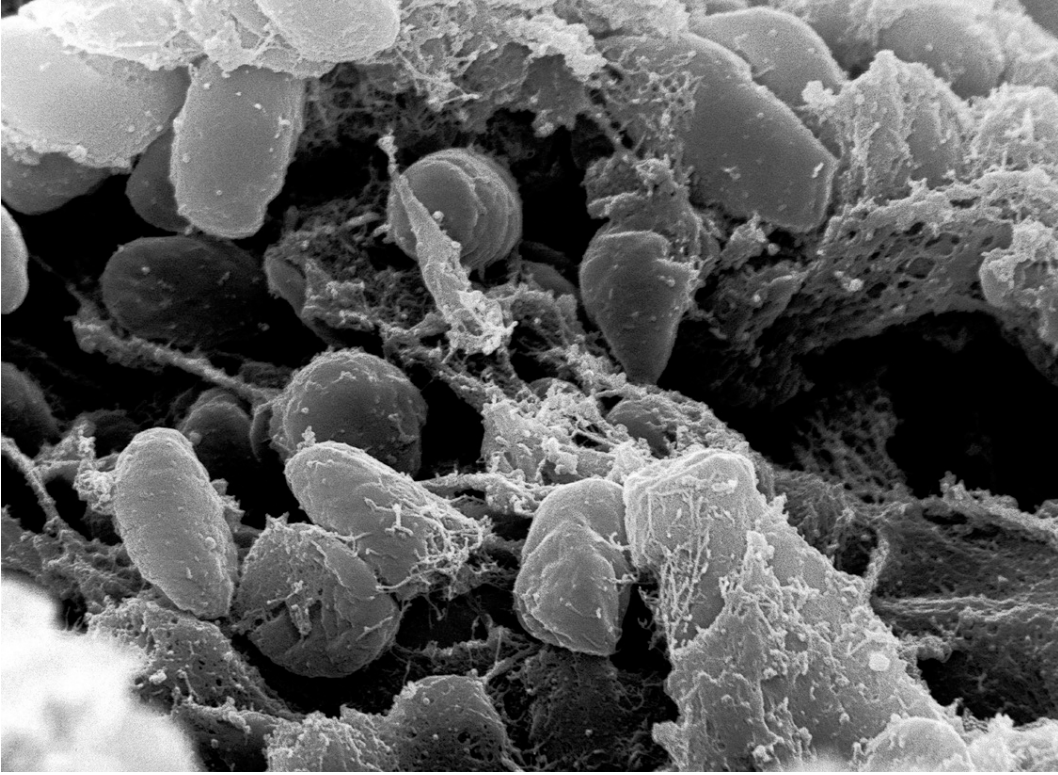
3. *यर्सीनिया पेस्टिस* नामक सूक्ष्म जीवाणु असली गुनहगार था।

काली मौत अकेली घटना नहीं थी, न ही वह इतिहास की सबसे ख़राब महामारी थी। सबसे ज़्यादा विनाशकारी महामारियों ने अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया और प्रशान्त महासागर के द्वीपों पर प्रथम यूरोपियनों के आगमन के बाद हमला किया था। ये खोजी और उपनिवेशी अनजाने ही अपने साथ ऐसी नई संक्रामक बीमारियाँ लेकर आए, जिनके ख़िलाफ़ स्थानीय निवासियों में कोई प्रतिरोधक क्षमता नहीं थी। नतीजे में 90 प्रतिशत तक स्थानीय आबादियाँ मौत का शिकार हुईं।

5 मार्च 1520 को जहाज़ों का एक छोटा-सा बेड़ा क्यूबा के द्वीप से मैक्सिको की ओर रवाना हुआ। इन जहाज़ों में घोड़ों के साथ 900 स्पेनी सैनिक, तोपें और कुछ अफ़्रीकी गुलाम सवार थे। इनमें से एक ग़ुलाम, फ़्रांसिस्को दि एगिया अपनी देह पर इस सबसे कहीं ज़्यादा घातक माल लादे हुए था। फ़्रांसिस्को को इसकी जानकारी नहीं थी, लेकिन उसकी खरबों कोशिकाओं के बीच कहीं एक जैविक टाइम बम टिकटिक कर रहा था: चेचक का विषाणु। फ़्रांसिस्को के मैक्सिको में उतरने के बाद इस विषाणु ने उसके शरीर में तेज़ी के साथ बढ़ना शुरू कर दिया, और अन्ततः उसकी त्वचा पर भयावह फुंसियों के रूप में फूट पड़ा। बुखार में डूबे हुए फ़्रांसिस्को को केम्पोआलान नगर स्थित एक स्थानीय अमेरिकी परिवार के घर पर बिस्तर पर ले जाया गया। उसने उस परिवार के सदस्यों को संक्रमित कर दिया, जिन्होंने पड़ोसियों को संक्रमित कर दिया। दस दिन के भीतर केम्पोआलान एक

क़ब्रगाह में बदल गया। शरणार्थियों ने इस बीमारी को आस-पास के नगरों तक फैला दिया। जैसे-जैसे एक के बाद एक शहर इस महामारी के शिकार होते गए, वैसे-वैसे भयभीत शरणार्थियों की एक नई लहर इस बीमारी को समूचे मैक्सिको और उसके परे ले गई।

युकाटन प्रायद्वीप के मायाओं का विश्वास था कि तीन दुष्ट देवता - एक्पेट्ज़, उज़ान्नकक और सोजाकक - रात के समय एक गाँव से दूसरे गाँव में उड़कर लोगों में यह बीमारी फैला रहे हैं। अज़्टेक इसका दोष टेज़्काट्लिपोका और ज़िपीटोटेक देवताओं के मत्थे मढ़ते थे, या गोरों के काले जादू को दोषी ठहराते थे। पुरोहितों और वैद्यों से परामर्श किया गया। उन्होंने प्रार्थनाएँ करने, शीतल स्नान करने, शरीर पर बिटूमन मलने और भौंरों को मसल कर उनको घावों पर चुपड़ने की सलाह दी। किसी चीज़ से कोई फ़ायदा नहीं हुआ। हज़ारों की संख्या में शव सड़कों पर सड़ते हुए पड़े थे, और किसी में साहस नहीं था कि वह उनके पास जाकर शवों को दफ़नाता। कुछ ही दिनों के भीतर पूरे के पूरे परिवार तबाह हो गए, और अधिकारियों ने आदेश दे दिया कि मकानों को शवों पर गिरा दिया जाए। कुछ बस्तियों की आधी आबादी मौत के मुँह में समा गई।

सितम्बर 1520 में महामारी मैक्सिको की घाटी में पहुँच चुकी थी, और अक्टूबर में यह अज़्टेक राजधानी - 250,000 लोगों की आबादी वाले भव्य महानगर तेनोचतित्लान के द्वारों में प्रवेश कर गई। दो महीनों के भीतर अज़्टेक सम्राट क्विटलावक समेत कम-से-कम एक तिहाई आबादी ख़त्म हो गई। जो मैक्सिको मार्च 1520 में स्पेनी जहाज़ी बेड़े के पहुँचने के समय 220 लाख लोगों का घर हुआ करता था, दिसम्बर तक वहाँ मात्र 140 लाख लोग ही अब जीवित थे। चेचक महज़ पहला आघात था। जहाँ नए स्पेनी मालिक ख़ुद को समृद्ध करने और स्थानीय लोगों का शोषण करने में व्यस्त रहे, वहीं फ़्लू, ख़सरा और दूसरी संक्रामक बीमारियाँ एक के बाद एक मैक्सिको पर तब तक हमला करती रहीं, जब तक कि 1580 में उसकी आबादी घटकर 20 लाख से कम रह गई।

दो सदियों के बाद, 18 जनवरी 1778 को ब्रितानी खोजी कैप्टन जेम्स कुक हवाई पहुँचा। हवाई के द्वीपों पर 5 लाख लोगों की घनी बसावट थी, जो यूरोप और अमेरिका से पूरी तरह अलग होकर रहते आए थे, और नतीजतन कभी भी यूरोपीय और अमेरिकी बीमारियों के सम्पर्क में नहीं आए थे। कैप्टन कुक और उसके आदमियों ने प्रथम फ़्लू, तपेदिक और सिफलिस के रोगाणुओं से हवाई का परिचय कराया। बाद के यूरोपीय आगन्तुकों ने मोतीझरा और चेचक को भी इसमें जोड़ दिया। 1853 तक हवाई में मात्र 70,000 लोग रोगों से जीवित बचे रह पाए थे।

महामारियों ने बीसवीं सदी में करोड़ों लोगों को मारना जारी रखा। जनवरी 1918 में उत्तरी फ़्रांस की खन्दकों में एक ख़ास तरह के विषाक्त रोग से सैनिकों का मरना शुरू हुआ, इसे 'स्पेनिश फ़्लू' का नाम दिया गया। युद्ध का वह मोर्चा दुनिया के उस समय के

सर्वाधिक कारगर वैश्विक आपूर्ति नेटवर्क का अन्तिम सिरा था। ब्रिटेन, संयुक्त राज्य अमेरिका, हिन्दुस्तान और ऑस्ट्रेलिया से लगातार आदमियों और युद्ध की सामग्री की आपूर्ति जारी थी। मध्य-पूर्व से तेल, अर्जेंटीना से अनाज और गोमांस, मलाया से रबर और कांगो से ताँबा भेजा जा रहा था। बदले में उन सबको 'स्पेनिश फ़्लू' मिला। कुछ ही महीनों के भीतर आधा अरब लोग यानी दुनिया की कुल आबादी के एक तिहाई लोग इस विषाणु की चपेट में आ गए। हिन्दुस्तान में इसने 5 प्रतिशत आबादी (150 लाख लोगों) को मार डाला। ताहिती के द्वीप पर 14 प्रतिशत लोग मारे गए। सामोआ में 20 प्रतिशत। कांगो की ताँबे की खदानों में हर पाँच में से एक मज़दूर मर गया। कुल मिलाकर इस महामारी ने एक साल से भी कम के समय में 5 करोड़ से 10 करोड़ के बीच लोगों की जान ले ली। प्रथम विश्वयुद्ध में 1914 से 1918 के बीच 4 करोड़ लोगों की जान चली गई थी।

हर कुछ दशकों के अन्तराल से मानव जाति पर हमला करती रहीं महामारी की इन सुनामियों के साथ-साथ लोग संक्रामक बीमारियों की छोटी, किन्तु कहीं ज़्यादा नियमित लहरों का सामना भी करते रहे, जो हर साल लाखों लोगों की जान लेती रहीं। जिन बच्चों में प्रतिरोधक क्षमता का अभाव होता था, उनके इन बीमारियों का शिकार होने की सबसे ज़्यादा आशंका होती थी, इसलिए उन्हें अक्सर 'बचपन की बीमारियों' के नाम से जाना जाता था। बीसवीं सदी के शुरुआती दौर तक एक तिहाई बच्चे वयस्क होने के पहले ही कुपोषण और बीमारियों की मिलीजुली वजहों से मारे जाते थे।

पिछली सदी के दौरान मानव जाति बढ़ती हुई आबादियों और बेहतर परिवहन की मिलीजुली वजहों से महामारियों के प्रति और भी ज़्यादा कमज़ोर हुई है। टोक्यो या किन्शासा जैसे आधुनिक महानगर रोगाणुओं के लिए मध्ययुगीन फ़्लोरेंस या 1520 के तेनोचतित्लान के मुक़ाबले कहीं ज़्यादा उर्वर सम्भावनाएँ पेश करते हैं, और आज का वैश्विक परिवहन तन्त्र 1918 के मुक़ाबले कहीं ज़्यादा सक्षम है। एक स्पेनी वाइरस चौबीस घण्टे से भी कम समय में कांगो या ताहिती तक पहुँच सकता है। ऐसे में हमें एक के बाद एक घातक महामारी के साथ महामारीय नर्क में रहने की अपेक्षा करनी चाहिए थी।

लेकिन पिछले कुछ दशकों में महामारी की घटनाएँ और उनके प्रभाव दोनों ही ज़बरदस्त तरीक़े से निचले स्तर पर आ गए हैं। ख़ासतौर से, वैश्विक बाल मृत्यु दर आज किसी भी समय के मुक़ाबले कम हुई है। वयस्क होने से पहले मरने वाले बच्चों की संख्या 5 प्रतिशत से भी कम है। विकसित दुनिया में यह दर 1 प्रतिशत से कम है। यह चमत्कार बीसवीं सदी में चिकित्सा के क्षेत्र की अपूर्व उपलब्धियों का नतीजा है, जिसने हमें टीकाकरण, एंटीबॉयोटिक्स, उन्नत हाइजीन और चिकित्सा का कहीं ज़्यादा बेहतर आधारभूत ढाँचा सुलभ कराया है।

उदाहरण के लिए, चेचक के टीकाकरण का वैश्विक अभियान इस क़दर कामयाब रहा कि 1979 में विश्व स्वास्थ्य संगठन ने घोषणा कर दी कि मानवता की जीत हुई है, और चेचक का पूरी तरह से उन्मूलन कर दिया गया है। यह पहली ऐसी महामारी थी, जिसे पृथ्वी से पूरी तरह मिटा देने में मनुष्य कामयाब रहा। 1967 में चेचक ने 1.5 करोड़ लोगों को गिरफ़्त में लिया हुआ था और उनमें से 20 लाख लोगों की जान चली गई थी, लेकिन 2014 में एक भी व्यक्ति को न तो चेचक का संक्रमण हुआ और न ही उससे कोई जान गई। यह जीत इस क़दर सम्पूर्ण रही कि विश्व स्वास्थ्य संगठन ने मनुष्यों को चेचक के टीके लगाना ही बन्द कर दिया।

हर कुछ सालों के दौरान हम कुछ नई सम्भावित महामारियों के प्रकोप से शंकित होते रहे हैं, जैसे 2002-03 में SARS, 2005 में फ़्लू, 2009-10 में स्वाइन फ़्लू और 2014 में इबोला। तब भी सक्षम प्रतिरोधक सावधानियों के चलते तुलनात्मक रूप से बहुत कम लोग इन घटनाओं के शिकार हुए हैं। उदाहरण के लिए, SARS ने शुरुआत में एक नई काली मौत का ख़ौफ़ पैदा किया था, लेकिन इससे अन्ततः वैश्विक पैमाने पर 1,000 से भी कम लोगों की मौत हुई। पश्चिम अफ़्रीका में इबोला का प्रकोप शुरुआत में नियन्त्रण से बाहर जाता हुआ लगा था, और 26 सितम्बर 2014 को विश्व स्वास्थ्य संगठन ने इसे 'आधुनिक युग के सबसे गम्भीर सार्वजनिक स्वास्थ्य संकट' की संज्ञा दी थी। तब भी 2015 के शुरू होने तक इस महामारी को क़ाबू में कर लिया गया, और जनवरी 2016 में विश्व स्वास्थ्य संगठन ने इसे समाप्त घोषित कर दिया। इसने 30,000 लोगों को अपनी गिरफ़्त में ले लिया (जिनमें से 11,000 लोग मारे गए), समूचे पश्चिम अफ़्रीका को भीषण आर्थिक क्षति पहुँचाई, और समूची दुनिया को बेचैनी से भर दिया, लेकिन यह पश्चिम अफ़्रीका से बाहर नहीं फैल पाई, और इससे हुई मौतों का पैमाना 'स्पेनी फ़्लू' या मैक्सिको के चेचक से हुई मौतों के सामने कुछ भी नहीं था।

यहाँ तक कि एड्स की त्रासदी को भी, जो पिछले कुछ दशकों की सबसे बड़ी चिकित्सकीय नाकामयाबी प्रतीत होती है, प्रगति के एक संकेत के रूप में देखा जा सकता है। 1980 के दशक के शुरुआती दौर में हुए एड्स के पहले बड़े प्रकोप के बाद से 3 करोड़ से ज़्यादा लोग इस बीमारी से मारे जा चुके हैं, तथा करोड़ों और भी लोग दुर्बल कर देने वाली शारीरिक और मनोवैज्ञानिक क्षति के शिकार हो चुके हैं। इस नई महामारी को समझना और उसका इलाज करना मुश्किल था, क्योंकि एड्स विलक्षण ढंग से छलपूर्ण बीमारी है। जहाँ चेचक के वाइरस के संक्रमण का शिकार इंसान कुछ ही दिनों के भीतर मर जाता है, वहीं एचआईवी-पॉज़िटिव मरीज़ हफ़्तों और महीनों तक पूरी तरह से तन्दुरुस्त लग सकता है, और तब भी वह अनजाने ही दूसरे लोगों में इस बीमारी को संक्रमित करता रह सकता है। इसके अलावा, एचआईवी वाइरस ख़ुद नहीं मारता। इसकी बजाय वह

प्रतिरोधक तन्त्र को नष्ट कर देता है, इस तरह वह मरीज़ को दूसरी अनेक बीमारियों का शिकार बना देता है। ये दरअसल वे दूसरी बीमारियाँ होती हैं, जो एड्स के मरीज़ को मार देती हैं। परिणामतः जब एड्स का फैलना शुरू हुआ, तो ख़ासतौर से इस बात को समझना मुश्किल हो गया था कि हो क्या रहा था। जब 1981 में दो मरीज़ न्यू यॉर्क के अस्पताल में भर्ती हुए, जिनमें से एक प्रकट तौर पर निमोनिया से दम तोड़ रहा था और दूसरा कैंसर से। यह बात क़तई स्पष्ट नहीं थी कि दोनों दरअसल एचआईवी वाइरस के शिकार थे, जिसका संक्रमण महीनों या सालों पहले हुआ हो सकता था।

लेकिन इन कठिनाइयों के बावजूद जब चिकित्सकों का समुदाय इस नई रहस्यमय महामारी के प्रति जागरूक हुआ, तो फिर वैज्ञानिकों को इसको पहचानने में, यह समझने में कि यह कैसे फैलती है और इस महामारी की गति को धीमा करने के कारगर उपाय सुझाने में मात्र दो साल लगे। दस साल के भीतर नई दवाओं ने एड्स को मौत के पैग़ाम से एक दीर्घकालीन परिस्थिति में बदल दिया (कम से कम उन पर्याप्त रईस लोगों के लिए, जो इसके इलाज़ के ख़र्च का बोझ सह सकते हैं)। ज़रा कल्पना कीजिए अगर एड्स का विस्फोट 1981 की बजाय 1581 में हुआ होता, तो क्या होता। पूरी सम्भावना है कि तब के समय का कोई व्यक्ति यह पता न लगा होता कि इस महामारी का कारण क्या था, किस तरह यह एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक गई, या इसे आगे बढ़ने से कैसे रोका जा सकता था (उसका इलाज़ तो दूर की बात थी)। इस तरह की परिस्थितियों के अधीन एड्स ने काली मौत की बराबरी करते हुए और शायद उसको मात देते हुए मानव जाति के कहीं ज़्यादा बड़े हिस्से को ख़त्म कर दिया होता।

एड्स द्वारा किए गए भयानक विनाश के बावजूद, और हर साल मलेरिया जैसी लम्बे अरसे से मान्य संक्रामक बीमारियों से लाखों लोगों के मारे जाने के बावजूद, महामारियाँ मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए पिछली सहस्राब्दी के मुक़ाबले में बहुत छोटा ख़तरा रह गई हैं। आज अधिसंख्य लोग कैंसर और हृदय रोग जैसी ग़ैर-संक्रामक बीमारियों या महज़ बुढ़ापा आ जाने की वजह से मरते हैं। (प्रसंगवश कैंसर और हृदय रोग बेशक नई बीमारियाँ नहीं हैं। ये प्राचीन काल से चली आ रही हैं, हालाँकि पिछले युगों में अपेक्षाकृत थोड़े-से लोग ही इतना लम्बा जीवन जी पाते थे कि वे इन रोगों से मर पाते।)

बहुतों के मन में आशंका है कि यह महज़ तात्कालिक विजय है, और काली मौत की कोई अज्ञात चचेरी बहन आस-पास ही कहीं हमारे इन्तज़ार में बैठी हुई है। इस बात की गारंटी कोई नहीं ले सकता कि महामारियाँ वापस नहीं लौटेंगी, लेकिन यह सोचने की पर्याप्त वजह मौजूद है कि डॉक्टरों और रोगाणुओं के बीच की हथियारों की दौड़ में डॉक्टर ज़्यादा तेज़ दौड़ने वाले हैं। नई संक्रामक बीमारियाँ मुख्यतः रोगाणुओं के जीन-समूह में होने वाले संयोगजन्य उत्परिवर्तनों (चांस म्यूटेशन्स) के नतीजे में प्रकट होती हैं। ये

उत्परिवर्तन रोगाणुओं को पशुओं से मनुष्यों में छलांग लगाने, मनुष्य के प्रतिरोधक तन्त्र पर विजय पाने, या एंटीबायोटिक्स जैसी दवाओं को प्रतिरोध देने की गुंजाइश देते हैं। आज वातावरण पर मनुष्य के प्रभाव की वजह से इस तरह के उत्परिवर्तन शायद अतीत की तुलना में ज़्यादा तेज़ी से घटित होते और फैलते हैं। तब भी रोगाणु चिकित्सा विज्ञान के ख़िलाफ़ अपनी दौड़ में अन्ततः भाग्य की तर्कहीनता के अधीन होते हैं।

इसके विपरीत, डॉक्टर निरे भाग्य के भरोसे नहीं बैठते, हालाँकि विज्ञान आकस्मिक उपलब्धियों का बहुत ज़्यादा ऋणी है, तब भी डॉक्टर इस उम्मीद में टेस्ट ट्यूब्स में विभिन्न तरह के रसायनों को नहीं झोंकते रहते कि इससे उनको संयोग से कोई नई दवा हाथ लग जाएगी। हर बीतते हुए वर्ष के साथ डॉक्टर और ज़्यादा और बेहतर ज्ञान संचित करते जाते हैं, जिसका इस्तेमाल वे अधिक कारगर दवाओं और चिकित्साओं को गढ़ने में करते हैं। नतीजतन, हालाँकि 2050 में हम बेशक कहीं ज़्यादा लचीले रोगाणुओं का सामना कर रहे होंगे, लेकिन पूरी उम्मीद है कि 2050 में चिकित्सा-विज्ञान इन रोगाणुओं से आज के मुक़ाबले कहीं ज़्यादा कारगर ढंग से निपटने में सक्षम होगा।

2015 में डॉक्टरों ने एक पूरी तरह से नए क़िस्म के एंटीबायोटिक्स टेक्सोबैक्टिन को खोज लेने की घोषणा की थी, जिसके विरुद्ध अभी तक बैक्टीरिया में कोई प्रतिरोधक शक्ति नहीं है। कुछ अध्येताओं का ऐसा विश्वास है कि टेक्सोबैक्टिन अतिशय प्रतिरोधी रोगाणुओं के ख़िलाफ़ लड़ाई में हमेशा के लिए निर्णायक साबित हो सकता है। वैज्ञानिक ऐसी नई क्रान्तिकारी चिकित्साएँ भी विकसित कर रहे हैं, जो पहले की किसी भी चिकित्सा-पद्धति से बुनियादी ढंग से बिल्कुल भिन्न तरीक़े से काम करेंगी। उदाहरण के लिए, कुछ अनुसन्धान प्रयोगशालाएँ पहले ही ऐसे नैनो-रोबोट्स का घर बन चुकी हैं, जो एक दिन हमारे रक्त-प्रवाह के भीतर तैर सकेंगे, बीमारी की पहचान कर सकेंगे और रोगाणुओं तथा कैंसर कोशिकाओं को मार सकेंगे। सूक्ष्मजीवों को जैविक शत्रुओं से लड़ने का 4 अरब वर्षों का संचित अनुभव हो सकता है, लेकिन बायोनिक इलेक्ट्रॉनिक काया वाले परभक्षियों से लड़ने का उनका अनुभव एकदम शून्य है, और ऐसे में उनके लिए प्रभावशाली प्रतिरक्षा को विकसित करना असामान्य रूप से मुश्किल काम होगा।

इसलिए जहाँ हम इस बारे में निश्चित नहीं हो सकते कि किसी नए इबोला का उभार या कोई अज्ञात फ़्लू दुनियाभर में फैलकर लाखों लोगों को नहीं मार डालेगा, वहीं हम इसे एक अपरिहार्य प्राकृतिक आपदा की तरह नहीं देखेंगे। इसकी बजाय, इसे हम एक अक्षम्य मानवीय नाकामयाबी की तरह देखेंगे और इसके लिए ज़िम्मेदार लोगों के ख़िलाफ़ कार्रवाई की माँग करेंगे। जब 2014 की गर्मियों के बाद के दिनों में कुछ भयावह हफ़्तों तक ऐसा लगा था कि इबोला दुनिया की चिकित्सा-शक्तियों पर भारी साबित हो रहा है, तो फ़ौरन जाँच समितियाँ बैठा दी गई थीं। 18 अक्टूबर 2014 को प्रकाशित एक शुरुआती रिपोर्ट में

इस प्रकोप पर विश्व स्वास्थ्य संगठन की असन्तोषजनक प्रतिक्रिया के लिए उसकी आलोचना करते हुए इस महामारी के लिए विश्व स्वास्थ्य संगठन की अफ़्रीकी शाखा पर भ्रष्टाचार और अक्षमता का आरोप लगाया गया था। बाद की आलोचना में इस समस्या पर तत्काल और पर्याप्त सशक्त ढंग से कार्रवाई न करने के लिए कुल मिलाकर अन्तरराष्ट्रीय समुदाय को दोषी ठहराया गया था। इस तरह की आलोचना में यह मान्यता निहित है कि मानव जाति के पास महामारियों की रोकथाम के लिए ज्ञान और साधन उपलब्ध हैं, और तब भी अगर कोई महामारी बेक़ाबू हो उठती है, तो इसकी वजह कोई दैवीय कोप नहीं, बल्कि मानवीय अक्षमता है। इसी तरह, यह उचित ही है कि इस तथ्य को क्रूर दुर्भाग्य की बजाय इंसानी कमज़ोरी के नतीजे के रूप में देखा गया है कि डॉक्टरों द्वारा एड्स के मैकेनिज़्म को समझ लेने के वर्षों बाद भी यह बीमारी उप-सहारा अफ़्रीका में लाखों लोगों को अपनी गिरफ़्त में लेना और मारना जारी रखे है।

इस तरह एड्स और इबोला जैसी प्राकृतिक आपदाओं के ख़िलाफ़ संघर्ष में परिणाम मानवता के पक्ष में जा रहे हैं, लेकिन स्वयं मनुष्य की प्रकृति में निहित ख़तरों के बारे में क्या कहा जाए? जैवप्रौद्योगिकी हमें बैक्टीरिया और वाइरसों को पराजित करने में सक्षम बनाती है, लेकिन इसी के साथ-साथ वह स्वयं मनुष्यों को अपूर्व ख़तरे में भी बदलती है। जो साधन डॉक्टरों को नई बीमारियों को तत्काल पहचानने और उनका इलाज़ करने में सक्षम बनाते हैं, वही साधन सेनाओं और आतंकवादियों को और भी भयानक बीमारियाँ और क़यामत लाने वाले रोगाणुओं को गढ़ने में भी सक्षम बना सकते हैं। इसलिए इस बात की पूरी सम्भावना है कि बड़ी महामारियाँ मानव जाति को केवल उसी दशा में ख़तरे में डालना जारी रखेंगी, जबकि स्वयं मानव जाति किसी क्रूर विचारधारा की चाकरी की ख़ातिर उनको पैदा करेगी। जिस युग में मानव जाति प्राकृतिक महामारियों के समक्ष असहाय हुआ करती थी, वह युग शायद बीत चुका है, लेकिन मुमकिन है हमें उसकी याद आए।

जंगल का क़ानून तोड़ते हुए

तीसरा शुभ समाचार यह है कि युद्ध भी अब दृश्य से ग़ायब हो रहे हैं। समूचे इतिहास के दौरान ज़्यादातर मनुष्य युद्ध को सहज चीज़ मानकर चलते रहे थे, जबकि शान्ति एक तात्कालिक और अनिश्चित अवस्था हुआ करती थी। अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्धों का नियमन जंगल के क़ानून से होता था, जिसके मुताबिक़ अगर दो हुकूमतें शान्तिपूर्वक रह रही होती थीं, तब भी युद्ध एक विकल्प बना रहता था। उदाहरण के लिए, जर्मनी और फ़्रांस के बीच 1913 में अमन क़ायम था, इसके बावजूद हर कोई जानता था कि 1914 में वे एक-दूसरे का गला काटने को तैयार हो सकते थे। जब कभी भी राजनेता, सेनाध्यक्ष, व्यापारी और

सामान्य नागरिक भविष्य की योजनाएँ बनाते थे, तब वे युद्ध की सम्भावना को हमेशा ध्यान में रखा करते थे। पाषाण युग से लेकर भाप के युग तक, और आर्कटिक से लेकर सहारा तक पृथ्वी पर मौजूद हर व्यक्ति जानता था कि किसी भी क्षण उनका पड़ोसी देश उनके मुल्क पर हमला कर सकता है, उनकी सेना को पराजित कर सकता है, उनकी जनता का क़त्लेआम कर सकता है और उनकी ज़मीन पर क़ब्ज़ा कर सकता है।

बीसवीं सदी के दूसरे आधे हिस्से के दौरान जंगल के इस क़ानून को अगर पूरी तरह ख़त्म नहीं किया जा सका है, तो कम से कम अन्ततः तोड़ तो दिया ही गया है। ज़्यादातर इलाक़ों में युद्ध इतने बिरले हो चुके हैं, जितने वे कभी नहीं थे। जहाँ खेतिहर समाजों में कुल मौतों में से लगभग 15 प्रतिशत मौतें हिंसा की वजह से हुआ करती थीं, वहीं बीसवीं सदी के दौरान हिंसा की वजह से मात्र 5 प्रतिशत मौतें हुईं, और आरम्भिक इक्कीसवीं सदी में यह वैश्विक स्तर पर हुई मौतों के लगभग 1 प्रतिशत के लिए ज़िम्मेदार है। 2012 में सारी दुनिया में लगभग 5 करोड़ 60 लाख लोगों की मृत्यु हुई, इनमें से 620,000 लोग इंसानी हिंसा की वजह से मरे (युद्ध में 120,000 लोग और अपराधों में 500,000 लोग मारे गए)। इसके विपरीत, 800,000 लोगों ने आत्महत्या की, और 15 लाख लोग डायबिटीज़ से मरे। शक्कर अब बारूद से ज़्यादा ख़तरनाक है।

इससे भी ज़्यादा महत्त्वपूर्ण यह है कि मानव जाति का एक लगातार बढ़ता हुआ हिस्सा युद्ध को अब अकल्पनीय मानने लगा है। इतिहास में यह पहली बार है, जब सरकारें, कॉर्पोरेशन और व्यक्ति अपने तात्कालिक भविष्य पर ध्यान देते हैं, तो उनमें से ज़्यादातर युद्ध को एक सम्भावित घटना के रूप में नहीं सोचते। परमाणु हथियारों ने महाशक्तियों के बीच युद्ध को सामूहिक आत्महत्या के एक विक्षिप्त कर्म में बदल दिया है, और इसलिए पृथ्वी के ज़्यादातर शक्तिशाली देशों को विवश कर दिया है कि वे आपसी टकरावों के हल के लिए वैकल्पिक और शान्तिपूर्ण तरीक़े खोजें। इसी के साथ-साथ वैश्विक अर्थव्यवस्था पदार्थ-आधारित अर्थव्यवस्था से ज्ञान-आधारित अर्थव्यवस्था में बदल चुकी है। पहले सम्पत्ति का मुख्य स्रोत सोने की खदानें, गेहूँ के खेत और तेल के कुएँ जैसी भौतिक परिसम्पत्तियाँ हुआ करती थीं। आज सम्पत्ति का मुख्य स्रोत ज्ञान है। और जहाँ आप युद्ध के माध्यम से तेल के क्षेत्रों को जीत सकते हैं, वहीं उस तरीक़े से ज्ञान हासिल नहीं कर सकते। इसलिए ज्ञान के सबसे महत्त्वपूर्ण आर्थिक संसाधन बन जाने के साथ ही युद्ध की सार्थकता घटी और युद्ध उत्तरोत्तर दुनिया के उन हिस्सों, जैसे कि मध्य-पूर्व और मध्य अफ़्रीका तक सीमित होकर रह गए, जहाँ की अर्थव्यवस्थाएँ अभी भी पुराने ढंग की वस्तु-आधारित अर्थव्यवस्थाएँ हैं।

1998 में रवांडा द्वारा पड़ोसी देश कांगो की समृद्ध कोल्टान खदानों को क़ब्ज़े में लेना और लूटना कोई अर्थ रखता था, क्योंकि मोबाइल फ़ोन और लैपटॉप के उत्पादन के लिए

इस अयस्क की भारी माँग हुआ करती थी, और कांगो में दुनिया के कोल्टान भण्डार का 80 प्रतिशत हिस्सा मौजूद था। रवांडा ने इस लूटे गए कोल्टान से सालाना 24 करोड़ डॉलर कमाए थे। ग़रीब रवांडा के लिए यह रक़म बहुत बड़ी थी। इसके विपरीत, अगर चीन कैलिफ़ोर्निया पर हमला कर सिलिकॉन वैली पर क़ब्ज़ा करने की कोशिश करता, तो यह हरक़त कोई मतलब नहीं रखती, क्योंकि अगर चीन किसी तरह युद्ध के मैदान में टिक भी पाता, तो भी सिलिकॉन वैली में लूटने के लिए सिलिकॉन की कोई खदानें नहीं हैं। इसकी बजाय, चीन ने ऐपल और माइक्रोसॉफ़्ट जैसी उच्च-तकनीकी सम्पन्न दिग्गज़ कंपनियों के साथ सहयोग करके, उनके साफ़्टवेयर ख़रीदकर तथा उनके उत्पादों को तैयार करके अरबों डॉलर कमाए हैं। रवांडा ने कांगो के कोल्टान को लूटकर सालभर में जितना पैसा कमाया, चीन ने उतना पैसा शान्तिपूर्ण वाणिज्य के रास्ते एक दिन में कमा लिया।

इसी का नतीजा है कि 'शान्ति' शब्द ने आज एक नया अर्थ हासिल कर लिया है। पुराने ज़माने के लोग शान्ति को युद्ध की तात्कालिक अनुपस्थिति के रूप में देखते थे। आज हम शान्ति को युद्ध की अकल्पनीयता के रूप में देखते हैं। जब 1913 में लोगों ने कहा था कि फ़्रांस और जर्मनी के बीच शान्ति है, तो उनका आशय था कि 'फ़्रांस और जर्मनी के बीच कोई युद्ध नहीं हो रहा है, लेकिन कौन जानता है कि अगले साल क्या होगा'। जब आज हम कहते हैं कि फ़्रांस और जर्मनी के बीच शान्ति है, तो हमारा अभिप्राय होता है कि प्रत्याशित परिस्थितियों के अधीन यह अकल्पनीय है कि उनके बीच कोई युद्ध छिड़ सकता है। इस तरह की शान्ति सिर्फ़ फ़्रांस और जर्मनी के बीच ही नहीं है, बल्कि ज़्यादातर देशों के बीच है (हालाँकि सभी देशों के बीच नहीं)। ऐसा कोई परिदृश्य नहीं है, जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि अगले साल जर्मनी और पोलैंड के बीच, इंडोनेशिया और फिलीपिन्स के बीच, या ब्राज़ील और उरुग्वे के बीच कोई गम्भीर युद्ध छिड़ सकता है।

यह नई शान्ति कोई हिप्पी कल्पना नहीं है। सत्ता की भूखी हुकूमतें और लालची कॉर्पोरेशन भी इस पर भरोसा करते हैं। जब मर्सडीज़ पूर्वी यूरोप में अपनी विक्रय-नीति की योजना बनाती है, तो वह इस सम्भावना को ख़ारिज़ करके चलती है कि जर्मनी पोलैंड को जीत सकता है। फिलीपिन्स से सस्ते मज़दूरों का आयात करने वाला एक कॉर्पोरेशन इस सम्भावना को लेकर परेशान नहीं होता कि अगले साल इंडोनेशिया फिलीपिन्स पर हमला कर सकता है। जब ब्राज़ील की सरकार अगले साल के बजट पर चर्चा का आयोजन करती है, तो यह अकल्पनीय है कि ब्राज़ील का रक्षामन्त्री अपनी कुर्सी से उठकर मेज़ पर मुट्ठी पटकते हुए चिल्लाए कि 'एक मिनट! अगर हम उरुग्वे पर हमला कर उसको जीतना चाहें, तो इसके लिए क्या इन्तज़ाम है? आपने इस ख़र्च को ध्यान में नहीं रखा है। हमें इस जीत के लिए 5 अरब डॉलर अलग रखने होंगे'। बेशक, ऐसी कुछ जगहें अभी भी हैं, जहाँ के

रक्षा मन्त्री इस तरह की बातें करते हैं, और ऐसे इलाक़े हैं, जहाँ यह नई शान्ति जड़ें नहीं जमा पाई है। यह बात मैं अच्छी तरह से जानता हूँ, क्योंकि मैं इन्हीं में से एक इलाक़े में रहता हूँ, लेकिन ये अपवाद हैं।

बेशक, इस बात की कोई गारंटी नहीं है कि यह नई शान्ति अनन्त काल तक बनी रहेगी। जिस तरह परमाणु हथियारों ने पहले इस नई शान्ति को मुमकिन बनाया है, उसी तरह भविष्य के टेक्नॉलॉजिकल घटनाक्रम नए तरह के युद्ध के लिए मंच तैयार कर सकते हैं। ख़ासतौर से, साइबर युद्ध छोटे देशों और ग़ैर सरकारी कर्मियों तक को महाशक्तियों के साथ प्रभावशाली ढंग से लड़ने की सामर्थ्य मुहैया कराते हुए दुनिया को अस्थिर कर सकते हैं। जब 2003 में संयुक्त राज्य अमेरिका ने इराक़ के साथ युद्ध किया था, तो उसने बग़दाद और मोसुल में तबाही मचा दी थी, लेकिन लॉस ऐंजेलस या शिकागो पर एक भी बम नहीं गिरा था, हालाँकि भविष्य में उत्तरी कोरिया या ईरान जैसे देश कैलिफ़ोर्निया की बिजली गुल करने, टेक्सास के तेल शोधक कारख़ानों को उड़ाने और मिशिगन में ट्रेनों को भिड़ाने के लिए लॉजिक बमों का इस्तेमाल कर सकते हैं ('लॉजिक बम' विद्वेषपूर्ण सॉफ़्टवेयर कोड्स हैं, जो शान्तिकाल में रखे जाते हैं और एक दूरी से संचालित किए जाते हैं। इस बात की काफ़ी हद तक सम्भावना है कि संयुक्त राज्य अमेरिका और अन्य देशों की महत्त्वपूर्ण इन्फ़्रास्ट्रक्चर सुविधाओं को नियन्त्रित करने वाले नेटवर्क में पहले ही इस तरह के कोड ठूँसे जा चुके हों।)

लेकिन हमें सक्षमता को उकसावे से भ्रमित नहीं करना चाहिए। साइबर युद्ध, हालाँकि, विनाश के नए साधन पेश कर रहा है, लेकिन ज़रूरी नहीं कि यह उनके इस्तेमाल के नए उकसावों का भी योगदान कर रहा हो। पिछले सत्तर सालों के दौरान मानव जाति ने न सिर्फ़ जंगल के क़ानून को तोड़ा है, बल्कि चेख़व क़ानून को भी तोड़ा है। अन्तोन चेख़व का यह कथन प्रसिद्ध है कि नाटक के पहले भाग में जो बन्दूक़ दिखाई देती है, उसका तीसरे भाग में दागा जाना अवश्यम्भावी है। समूचे इतिहास के दौरान अगर राजाओं और सम्राटों ने कोई नए हथियार हासिल किए होते थे, तो आगे-पीछे उनके इस्तेमाल का लोभ उनके मन में जागता था, लेकिन 1945 के बाद से मानव जाति ने इस लोभ पर क़ाबू पाना सीखा है। शीत युद्ध के पहले भाग में जो बन्दूक़ प्रकट हुई थी, वह कभी नहीं दागी गई। अब तक हम न पटके गए बमों और न छोड़े गए प्रक्षेपास्त्रों से भरी हुई दुनिया में रहने के अभ्यस्त हो चुके हैं, और जंगल का क़ानून तथा चेख़व का क़ानून, दोनों को तोड़ने में माहिर हो चुके हैं। अगर ये क़ानून कभी हमारे गले पड़ भी गए, तो ऐसा हमारी ग़लती से ही होगा। हमारी अनिवार्य नियति की वजह से नहीं।

4. मॉस्को में परमाणु प्रक्षेपास्त्र की परेड। वह तोप, जो हमेशा प्रदर्शित की जाती रही, लेकिन कभी दागी नहीं गई।

तब आतंकवाद के बारे में क्या कहा जाए? भले ही संघीय सरकारों और शक्तिशाली राज्यों ने संयम बरतना सीख लिया है, तब भी यह क़तई मुमकिन है कि आतंकवादियों के मन में नए और विध्वंसकारी हथियारों के इस्तेमाल को लेकर कोई संकोच न हो। यह निश्चय ही एक चिन्ताजनक सम्भावना है, लेकिन आतंकवाद कमज़ोरी की एक रणनीति है, जो उन लोगों द्वारा अपनाई जाती है, जिनकी पहुँच असली सत्ता तक नहीं होती। कम से कम अतीत में, आतंकवाद कोई उल्लेखनीय भौतिक क्षति पैदा करने की बजाय दहशत फैलाने में ही कारगर रहा है। आतंकवादियों के पास आमतौर से किसी सेना को पराजित करने, किसी मुल्क पर क़ब्ज़ा करने या पूरे के पूरे नगरों को नष्ट कर देने की क्षमता नहीं होती। जहाँ 2010 में मोटापे और उससे जुड़ी बीमारियों ने 30 लाख लोगों की जान ली, वहीं आतंकवाद ने पूरी दुनिया में 7,697 लोगों को मारा, जिनमें से ज़्यादातर लोग विकासशील देशों के थे। एक औसत अमेरिकी या यूरोपीय व्यक्ति के समक्ष अल-क़ायदा से कहीं ज़्यादा बड़ा ख़तरा कोका-कोला पेश करता है।

तब फिर आतंकवादी सुर्ख़ियों पर छा जाने और समूची दुनिया में राजनैतिक स्थिति को बदलने में कैसे कामयाब होते हैं? वे कामयाब होते हैं अपने शत्रुओं को ज़रूरत से ज़्यादा प्रतिक्रिया के लिए भड़काकर। सारतः, आतंकवाद एक प्रदर्शन है। आतंकवादी हिंसा का एक ऐसा भयावह नज़ारा पेश करते हैं, जो हमारी कल्पना को जकड़ लेता है और हमें ऐसा महसूस करने को विवश कर देता है कि हम वापस मध्ययुगीन अराजकता में फिसल रहे हैं। नतीजतन, राज्य समूची आबादी पर अत्याचार करने या, विदेशी मुल्क पर हमला करने जैसे भीषण शक्ति-प्रदर्शन की योजना बनाते हुए सुरक्षा का प्रदर्शन करके

आतंकवाद के इस मंच पर प्रतिक्रिया करने को विवश महसूस करते हैं। ज़्यादातर मामलों में, आतंकवाद को लेकर यह अति-प्रतिक्रिया हमारी सुरक्षा के सामने उससे कहीं ज़्यादा बड़ा ख़तरा पेश करती है,जितना स्वयं आतंकवादी पेश करते हैं।

आतंकवादी चीनी मिट्टी के बर्तनों की किसी दुकान को नष्ट करने की कोशिश करती मक्खी की तरह हैं। यह मक्खी इतनी कमज़ोर है कि वह चाय के एक कप तक को नहीं हिला सकती। इसलिए वह एक बैल को पकड़ती है, उसके कान के अन्दर घुस जाती है और भनभनाना शुरू कर देती है। वह बैल ख़ौफ़ और ग़ुस्से से पागल हो जाता है, और चीनी मिट्टी की उस दुकान को तहस-नहस कर देता है। मध्य पूर्व में पिछले दशक में यही हुआ है। इस्लामी कट्टरपन्थी ख़ुद सद्दाम हुसैन को कभी नहीं लुढ़का पाते। इसकी बजाय उन्होंने 9/11 के हमले से संयुक्त राज्य अमेरिका को ग़ुस्सा दिलाया, और संयुक्त राज्य अमेरिका ने उनके लिए मध्य पूर्वी चीनी मिट्टी की दुकान को ध्वस्त कर दिया। अब वे उस मलबे में फलफूल रहे हैं। आतंकवादी अपने आप में इतने कमज़ोर हैं कि वे हमें मध्य युग में घसीट ले जाने और जंगल के क़ानून को फिर स्थापित करने में सक्षम नहीं हैं। वे हमें भड़का सकते हैं, लेकिन अन्त में सब कुछ हमारी प्रतिक्रिया पर निर्भर करता है। अगर जंगल का क़ानून फिर क़ायम हो जाता है, तो यह आतंकवादियों की ग़लती नहीं होगी।

अकाल, महामारी और युद्ध शायद आने वाले दशकों में लाखों लोगों को अपना शिकार बनाना जारी रखेंगे। तब भी वे एक असहाय मनुष्यता की समझ और उसके नियन्त्रण से परे की अपरिहार्य त्रासदियाँ नहीं हैं। इसकी बजाय, वे ऐसी चुनौतियाँ बन चुकी हैं, जिनसे निपटा जा सकता है। इस निष्कर्ष का मकसद ग़रीबी के शिकार करोड़ों लोगों, हर साल मलेरिया, एड्स, और तपेदिक से मरने वाले लाखों लोगों, या सीरिया, कांगो या अफ़गानिस्तान में हिंसक दुष्चक्रों में फँसे लाखों लोगों की पीड़ा को कम करके आँकना कदापि नहीं है। सन्देश यह नहीं है कि अकाल, महामारी और युद्ध पूरी तरह से पृथ्वी की सतह से ग़ायब हो चुके हैं, और अब हमें उनकी चिन्ता करना बन्द कर देना चाहिए। बात इसके ठीक उलट है। समूचे इतिहास के दौरान लोग सोचा करते थे कि ये न सुलझाई जा सकने वाली समस्याएँ हैं, इसलिए उनका समाधान करने की कोशिश करने का कोई अर्थ नहीं है। लोग चमत्कारों की उम्मीद में ईश्वर की प्रार्थना किया करते थे, लेकिन वे ख़ुद अकाल, महामारी और युद्ध का ख़ात्मा करने की कोई गम्भीर कोशिश नहीं करते थे। जो लोग यह तर्क देते हैं कि 2016 की दुनिया उसी तरह से भूखी, बीमार और हिंसक है, जिस तरह वह 1916 में हुआ करती थी, तो वे इसी सदियों पुराने पराजयवादी दृष्टिकोण को जारी रखे हुए हैं। उनके कहने का यह अभिप्राय लगता है कि बीसवीं सदी के दौरान हुए महान मानवीय उद्यमों से कुछ भी हासिल नहीं हुआ है। चिकित्सकीय अनुसन्धान, आर्थिक सुधार और शान्ति की अनेक पहल - सब व्यर्थ रहे हैं। अगर ऐसा है, तो फिर और आगे

चिकित्सकीय अनुसन्धान करने, अनूठे आर्थिक सुधार करने और शान्ति की पहल करने का क्या फ़ायदा है?

हमारी अतीत की उपलब्धियों को स्वीकार करना उम्मीद और ज़िम्मेदारी का सन्देश पहुँचाता है, और हमें भविष्य में और भी बड़े प्रयत्न करने के लिए प्रोत्साहित करता है। इक्कीसवीं सदी की हमारी उपलब्धियों के बावजूद अगर लोग अभी भी अकाल, महामारी और युद्ध की तकलीफ़ें भोग रहे हैं, तो इसके लिए हम प्रकृति या ईश्वर को दोषी नहीं ठहरा सकते। स्थितियों को बेहतर बनाना और दुख को और भी कम करना हमारी सामर्थ्य के भीतर है।

अपनी उपलब्धियों के महत्त्व को स्वीकार करने में एक और सन्देश भी निहित है: इतिहास किसी ख़ालीपन को बर्दाश्त नहीं करता। अगर अकाल, महामारी और युद्ध की घटनाएँ बढ़ रही हैं, तो मनुष्य की कार्यसूची में किसी न किसी चीज़ का शामिल होना अनिवार्य है। बेहतर होगा कि हम सावधानीपूर्वक विचार करें कि क्या होने वाला है, अन्यथा, मुमकिन है कि युद्ध के पुराने मैदानों में हमारी पूर्ण विजय हमें सर्वथा ऐसे नए मोर्चों के सामने ला खड़ा करेगी, जिनका हमें पहले से कोई आभास नहीं होगा। वे कौन-सी परियोजनाएँ हैं, जो अकाल, महामारी और युद्ध की जगह लेती हुई इक्कीसवीं सदी की मानवीय कार्यसूची में सबसे ऊपर होंगी?

एक मुख्य परियोजना मानव जाति और पृथ्वी मात्र को ख़ुद हमारी ताक़त में निहित ख़तरे से बचाने की होगी। हमने अकाल, महामारी और युद्ध को व्यापक तौर पर अपने उस असाधारण आर्थिक विकास के बूते क़ाबू में कर लिया है, जो हमें भरपूर मात्रा में भोजन, चिकित्सा, ऊर्जा और कच्चा माल मुहैया कराता है, लेकिन यही आर्थिक विकास पृथ्वी के पारिस्थितिकीय (इकॉलॉजिकल) सन्तुलन को असंख्य तरीक़ों से अस्थिर भी करता है, जिसे हमने अभी समझना शुरू ही किया है। मानव जाति ने इस ख़तरे को देर से पहचाना है, और इस बारे में अब तक बहुत कम प्रयत्न किए हैं। प्रदूषण, ग्लोबल वार्मिंग और जलवायु परिवर्तन की तमाम चर्चाओं के बावजूद ज़्यादातर देशों ने स्थिति को बेहतर बनाने के लिए अभी तक किसी तरह के गम्भीर आर्थिक या राजनैतिक त्याग नहीं किए हैं। जब आर्थिक विकास और पारिस्थितिकीय स्थिरता के बीच चयन का क्षण आता है, तो राजनेता, सीईओ और मतदाता लगभग हमेशा ही विकास को प्राथमिकता देते हैं। इक्कीसवीं सदी में अगर हम विनाश को टालना चाहते हैं, तो हमें इससे बेहतर कुछ करना होगा।

और क्या है, जिसके लिए मनुष्यता उद्यम करेगी? क्या हम अपने जीवन की अच्छी चीज़ों के लिए शुक्रगुज़ार होने, अकाल, महामारी और युद्ध को परे बनाए रखने, और पारिस्थितिकीय सन्तुलन की रक्षा करने मात्र से सन्तुष्ट होकर रह जाएँगे? यह निश्चय ही

बहुत अक़्लमन्दी का काम होगा, लेकिन इसकी सम्भावना दिखाई नहीं देती कि मानव जाति इस रास्ते पर चलेगी। ऐसा बहुत कम होता है कि मनुष्य उतने मात्र से सन्तुष्ट हो जाए, जो उसके पास पहले से उपलब्ध है। उपलब्धियों के प्रति मनुष्य की सबसे आम प्रतिक्रिया सन्तोष की नहीं, बल्कि और अधिक की लालसा करने की होती है। मनुष्य हमेशा कुछ बेहतर, ज़्यादा बड़ी, ज़्यादा स्वादिष्ट चीज़ की तलाश में होते हैं। जब मानव जाति के पास अपरिमित नई शक्तियाँ होंगी, और जब अकाल, महामारी और युद्ध के ख़तरे अन्तिम रूप से समाप्त हो जाएँगे, तब हम अपना क्या उपयोग करेंगे? वैज्ञानिक, निवेशक, बैंक कर्मी, और राष्ट्रपति दिनभर क्या किया करेंगे? कविताएँ लिखेंगे?

सफलता महत्त्वाकांक्षा को जन्म देती है, और हमारी हाल की उपलब्धियाँ मानव जाति को और भी ज़्यादा साहसिक लक्ष्य निर्धारित करने की दिशा में धकेल रही हैं। समृद्धि, आरोग्य और समरसता के अपूर्व स्तरों को हासिल कर लेने के बाद, और हमारे अतीत के रिकॉर्ड तथा मौजूदा मूल्यों के चलते, मनुष्यता के अगले सम्भावित लक्ष्य अमरता, सुख और दिव्यता होंगे। भूख, बीमारी और हिंसा से जुड़ी मृत्यु दर को कम कर चुकने के बाद हम अब बुढ़ापे और यहाँ तक कि मृत्यु पर भी विजय प्राप्त करने की ओर बढ़ेंगे। लोगों को घृणित दुख से बचा लेने के बाद अब हम उनको सकारात्मक रूप से सुखी बनाना चाहेंगे। और मनुष्यता को ज़िन्दा बने रहने के संघर्ष के पाशविक स्तर से ऊपर उठा चुकने के बाद, अब हम मनुष्यों को देवताओं के रूप में पदोन्नत करना चाहेंगे, और *होमो सेपियन्स (बुद्धिमान मानव) को होमो डेयस (मानव देवता या अतिमानव) में बदलना चाहेंगे।*

मौत के आख़िरी दिन

इक्कीसवीं सदी में मनुष्यों द्वारा अमरता हासिल करने की गम्भीर कोशिश किए जाने की सम्भावना है। वृद्धावस्था और मृत्यु के विरुद्ध लड़ते रहना महज़ अकाल और बीमारियों के विरुद्ध लड़ी गई चिरप्रचलित लड़ाई को जारी रखना होगा, और यह समकालीन संस्कृति के सबसे बड़े मूल्य को प्रकट करता है: मानव जीवन का मूल्य। हमें निरन्तर याद दिलाया जाता रहा है कि मानव जीवन इस विश्व की सबसे पवित्र वस्तु है। यह बात हर कोई कहता है: स्कूलों में अध्यापक कहते हैं, संसद में राजनेता कहते हैं, अदालतों में वकील कहते हैं और नाटक के मंचों पर अभिनेता कहते हैं। दूसरे विश्व युद्ध के बाद संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा स्वीकार किया गया मानवाधिकारों का वैश्विक घोषणा-पत्र (द यूनिवर्सल डिक्लेयरेशन ऑफ़ ह्यूमन राइट्स) - जो कि हमारे पास वैश्विक संविधान के सबसे क़रीब की चीज़ है - स्पष्ट तौर पर कहता है कि 'जीवन का अधिकार' मानवता का सबसे बुनियादी मूल्य है। चूँकि मृत्यु इस अधिकार का स्पष्ट तौर पर उल्लंघन करती है, इसलिए मृत्यु मानवता के विरुद्ध एक अपराध है, और हमें इसके ख़िलाफ़ मुकम्मल युद्ध छेड़ना चाहिए।

समूचे इतिहास के दौरान, मज़हबों और विचारधाराओं ने स्वयं जीवन का पवित्रीकरण नहीं किया। उन्होंने हमेशा सांसारिक अस्तित्व से ऊपर और उससे परे की किसी चीज़ का पवित्रीकरण किया, और परिणामतः वे मृत्यु के प्रति सर्वथा सहिष्णु बने रहे। दरअसल, उनमें से कुछ तो ग्रिम रीपर (मृत्यु का साक्षत रूप) को बहुत पसन्द करते थे, क्योंकि ईसाइयत, इस्लाम और हिन्दू धर्म इस बात पर ज़ोर देते थे कि हमारे अस्तित्व का अर्थ मृत्यु के बाद के जीवन की हमारी नियति पर निर्भर करता है, इसलिए वे मृत्यु को संसार के अनिवार्य और सकारात्मक अंग के रूप में देखते थे। मनुष्य इसलिए मरते थे, क्योंकि ईश्वर का ऐसा आदेश था, और उनकी मृत्यु का क्षण अर्थ के विस्फोट से युक्त एक पवित्र आध्यात्मिक अनुभव हुआ करता था। जब कोई मनुष्य अन्तिम साँस लेने को होता था, तो ये पुरोहितों, रब्बियों और शामनों को बुलाने, जीवन का हिसाब करने, और विश्व में व्यक्ति की वास्तविक भूमिका को अंगीकार करने का वक़्त हुआ करता था। ज़रा एक मृत्यु-रहित दुनिया में ईसाइयत, इस्लाम या हिन्दू धर्म की कल्पना करने की कोशिश करें, जो कि स्वर्ग, नर्क या पुनर्जन्म से रहित दुनिया भी हो।

जीवन और मृत्यु के प्रति आधुनिक विज्ञान और आधुनिक संस्कृति का नज़रिया सर्वथा अलग है। वे मृत्यु को एक आध्यात्मिक रहस्य की तरह नहीं देखते, और वे मृत्यु को जीवन के अर्थ के स्रोत के रूप में तो निश्चय ही नहीं देखते। इसकी बजाय, आधुनिक लोगों के लिए मृत्यु एक तकनीकी समस्या है, जिसे हम सुलझा सकते हैं और हमें सुलझाना चाहिए।

मनुष्य ठीक किस तरह से मरता है? मध्ययुगीन परी कथाएँ मृत्यु का चित्रण हाथ में हँसिया धारण किए टोपीदार काले लबादे से ढँकी एक आकृति के रूप में किया करती थीं। आदमी अपना जीवन जीता है, इस और उस चीज़ की चिन्ता करता रहता है, यहाँ-वहाँ भागता रहता है, तभी ग्रिम रीपर अचानक उसके सामने प्रकट होता है, अपनी हड़ियल अंगुलियों से उसका कन्धा थपथपाता है और कहता है, 'चलो!' और वह आदमी उससे विनती करता है, 'नहीं, मेहरबानी करके सिर्फ़ एक साल, एक महीना, एक दिन और इन्तज़ार करो!' लेकिन वह टोपीधारी आकृति फुफकारती है, 'नहीं! तुमको अभी चलना होगा!' और इस तरह हम मर जाते हैं।

लेकिन वास्तविकता यह है कि मनुष्य इसलिए नहीं मरता कि वह काले लबादे वाली आकृति उसके कन्धे को थपथपाती है, या इसलिए कि ईश्वर ने ऐसा आदेश दिया होता है, या इसलिए कि मृत्यु होना किसी महान ब्रह्माण्डीय योजना का अनिवार्य हिस्सा है। मनुष्य हमेशा किसी तकनीकी रुकावट की वजह से मरता है। हृदय रक्त को पम्प करना बन्द कर देता है। चरबी के जमाव की वजह से मुख्य धमनी अवरुद्ध हो जाती है। लिवर में कैंसर की कोशिकाएँ फैल जाती हैं। रोगाणु फेफड़ों में कई गुना बढ़ जाते हैं। और इन सारी तकनीकी

समस्याओं के लिए क्या चीज़ ज़िम्मेदार है? दूसरी तकनीकी समस्याएँ। दिल ख़ून को पम्प करना इसलिए बन्द कर देता है, क्योंकि दिल की मांसपेशियों तक पर्याप्त ऑक्सीजन नहीं पहुँच पाती। कैंसर की कोशिकाएँ इसलिए फैल जाती हैं, क्योंकि कोई संयोगजन्य जनेटिक उत्परिवर्तन अपने निर्देशों का पुनर्लेखन कर देता है। रोगाणु मेरे फेफड़ों में इसलिए जम कर बैठ गए थे, क्योंकि भूमिगत मार्ग में किसी ने छींक दिया था। इस सबमें आध्यात्मिक कुछ भी नहीं है। ये सब तकनीकी समस्याएँ हैं।

5. मध्ययुगीन चित्रकारी में मृत्यु को ग्रिम रीपर के रूप में दिखाया जाता था।

और हर तकनीकी समस्या का एक तकनीकी समाधान होता है। मृत्यु को जीतने के लिए हमें किसी सेकेंड कमिंग (ईसा मसीह के पुनरागमन) का इन्तज़ार करने की ज़रूरत नहीं है। यह काम प्रयोगशाला के कुछ विशेषज्ञ कर सकते हैं। अगर पारम्परिक तौर पर मृत्यु पुरोहितों और धर्माचार्यों की विशेषज्ञता का क्षेत्र था, तो आज यह काम इंजीनयर अपने हाथ में ले रहे हैं। हम कैंसर की कोशिकाओं को कीमोथेरेपी या नैनोरोबोट्स से मार सकते हैं। हम फेफड़ों के रोगाणुओं का एंटीबायोटिक्स की मदद से ख़ात्मा कर सकते हैं। अगर हृदय पम्पिंग करना बन्द कर देता है, तो हम इसे दवाओं और बिजली के झटकों की मदद से फिर बल प्रदान कर सकते हैं और अगर यह युक्ति भी काम नहीं आती, तो हम नया हृदय लगा सकते हैं। सही है कि फ़िलहाल हमारे पास सारी तकनीकी समस्याओं के समाधान मौजूद नहीं हैं, लेकिन ठीक इसी वजह से हम कैंसर, रोगाणु, जनेटिक्स और अतिसूक्ष्म प्रौद्योगिकी के अनुसन्धान में इतने अधिक धन और समय का निवेश करते हैं।

यहाँ तक कि साधारण लोग भी, जो वैज्ञानिक अनुसन्धानों में नहीं लगे हुए हैं, मृत्यु को एक तकनीकी समस्या के रूप में देखने के अभ्यस्त हो चले हैं। जब एक स्त्री अपने डॉक्टर के पास जाकर उससे पूछती है, 'डॉक्टर, मुझे क्या समस्या है?' तो डॉक्टर का जवाब यह हो सकता है कि 'आपको फ़्लू है,' या 'आपको तपेदिक है' या 'आपको कैंसर है।' लेकिन डॉक्टर यह कभी नहीं कहेगा कि 'आपको मौत है'। और हम सबको यही लगता है कि फ़्लू, तपेदिक और कैंसर तकनीकी समस्याएँ हैं, जिनका एक दिन हमें कोई तकनीकी समाधान हासिल हो जाएगा।

यहाँ तक कि जब लोग तूफ़ान से, किसी कार दुर्घटना या युद्ध में मरते हैं, तो हम इसे एक ऐसी तकनीकी चूक की तरह देखने की ओर प्रवृत्त होते हैं, जिससे बचा जा सकता था और बचा जाना चाहिए था। अगर सरकार ने एक बेहतर नीति अपनाई होती, अगर नगरपालिका ने अपना काम ठीक से किया होता, और अगर सेना के कमांडर ने अक़्लमन्दी भरा फ़ैसला लिया होता, तो मौत को टाला जा सकता था। मृत्यु क़ानूनी मुक़दमे और जाँच-पड़ताल का लगभग सहज कारण बन गई है। 'वे कैसे मारे गए? निश्चय ही किसी ने कहीं कोई गड़बड़ी की होगी'।

बहुसंख्यक वैज्ञानिक, डॉक्टर और अध्येता अमरता की प्रत्यक्ष कल्पना से अपनी दूरी बनाकर रखते हैं, और यह दावा करते हैं कि वे तो महज़ इस या उस समस्या पर विजय प्राप्त करने की कोशिश कर रहे हैं, लेकिन क्योंकि बुढ़ापा और मृत्यु कुछ निश्चित समस्याओं का नतीजा होने के अलावा और कुछ भी नहीं हैं, इसलिए ऐसा कोई मुक़ाम नहीं है, जहाँ पहुँचकर डॉक्टर और वैज्ञानिक अपना काम बन्द करके यह घोषणा करने वाले हों कि 'बस यहीं तक, और आगे अन्य कोई क़दम नहीं। हमने तपेदिक और कैंसर पर विजय पा ली है, लेकिन हम अलज़ाइमर्स से लड़ने के लिए कोई अंगुली नहीं उठाएँगे। लोग उससे मरते रह सकते हैं'। मानवाधिकारों का वैश्विक घोषणा-पत्र यह नहीं कहता कि 'मनुष्यों को नब्बे साल की उम्र तक जीवित रहने का अधिकार है'। वह यह कहता है कि हर मनुष्य को जीने का अधिकार है, बस। यह अधिकार किसी अन्तिम तिथि से बँधा हुआ नहीं है।

नतीजतन, कम संख्या वाले ऐसे वैज्ञानिक और विचारक आजकल लगातार बढ़ते जा रहे हैं और वे ज़्यादा मुखर होकर बात करने लगे हैं। वे कहते हैं कि आधुनिक विज्ञान का सबसे अग्रणी उद्यम मौत को पराजित करना और मनुष्यों को शाश्वत यौवन प्रदान करना है। इसके उल्लेखनीय उदाहरण हैं जरा विज्ञानी (जेरेंटोलॉज़िस्ट) ऑब्री दि ग्रे और अनेक विषयों के मर्मज्ञ तथा आविष्कारक रे कुर्ज़वेल (संयुक्त राज्य अमेरिका के 1999 के नेशनल मेडल ऑफ़ टेक्नॉलॉजी एंड इन्नोवेशन के विजेता)। 2012 में कुर्ज़वेल गूगल में इंजीनियरिंग के निदेशक नियुक्त हुए थे, और एक साल बाद गूगल ने कैलिको नामक एक

सब-कम्पनी की शुरुआत की, जिसका घोषित लक्ष्य 'मृत्यु को हल करना' था। 2009 में गूगल ने गूगल वेंचर इन्वेस्मेंट फ़ंड की अध्यक्षता के लिए अमरता में सच्चा विश्वास रखने वाले एक अन्य व्यक्ति बिल मैरिस को नियुक्त किया। जनवरी 2015 में दिए गए एक इंटरव्यू में मैरिस ने कहा, 'अगर आप आज मुझसे पूछें कि क्या 500 साल तक जीना मुमकिन है, तो मेरा जवाब है, हाँ'। मैरिस के इन साहसिक शब्दों के पक्ष में बहुत बड़ी तादाद में धनराशि मौजूद है। गूगल वेंचर अपने 2 अरब डॉलर के पोर्टफ़ोलियो के 36 प्रतिशत हिस्से का निवेश लाइफ़ साइंस स्टार्ट-अप्स में कर रहा है, जिसमें आयु को विस्तार देने की अनेक महत्त्वाकांक्षी परियोजनाएँ शामिल हैं। अमेरिकी फ़ुटबाल की एक उपमा का इस्तेमाल करते हुए मैरिस स्पष्ट करते हैं कि मृत्यु के ख़िलाफ़ लड़ाई में 'हम कुछ यार्ड्स हासिल करने की कोशिश नहीं कर रहे हैं। हम खेल को जीतने की कोशिश कर रहे हैं'। क्यों? क्योंकि, मैरिस कहते हैं, 'जीवित रहना मरने से बेहतर है'।

सिलिकॉन वैली के कई दूसरे दिग्गज भी ऐसे ही सपने देखते हैं। पेपैल के सह-संस्थापक पीटर थिएल ने हाल ही में स्वीकार किया कि उनका लक्ष्य हमेशा-हमेशा के लिए जीवित बने रहने का है। 'मैं समझता हूँ कि मृत्यु से रिश्ता बनाने के शायद तीन मुख्य ढंग हैं,' वे समझाते हैं। 'आप उसको स्वीकार कर सकते हैं, आप उससे इंकार कर सकते हैं या आप उससे लड़ सकते हैं। मुझे लगता है कि हमारे समाज में उन लोगों का बोलबाला है, जो या तो उससे इंकार करते हैं या उसको स्वीकार कर लेते हैं, और मैं उससे लड़ना पसन्द करता हूँ'। बहुत-से लोग इस तरह के वक्तव्य को किशोरावस्था के दिवास्वप्न कहकर ख़ारिज़ करना चाह सकते हैं। तब भी थिएल उन लोगों में से हैं, जिनको गम्भीरता से लिया जाना चाहिए। वे सिलिकॉन वैली के सबसे ज़्यादा सफल और प्रभावशाली उद्यमियों में से हैं, जिनके पास 2.2 अरब डॉलर की निजी सम्पत्ति है। चेतावनी है: समानता बाहर है - अमरता अन्दर है।

जनेटिक इंजीनियरिंग, रि-जनरेटिव मेडीसिन और अतिसूक्ष्म प्रौद्योगिकी जैसे अनुशासनों का अन्धाधुन्ध विकास इससे भी ज़्यादा आशावादी भविष्यवाणियों को प्रोत्साहित करने वाला है। कुछ विशेषज्ञों का मानना है कि मनुष्य 2200 तक मृत्यु पर विजय पा लेंगे, कुछ दूसरे हैं, जो कहते हैं कि यह विजय 2100 में पा ली जाएगी। कुर्ज़वेल और दि ग्रे तो और भी ज़्यादा उत्साहित हैं। उनका मानना है कि 2050 में कोई भी स्वस्थ शरीर और तगड़े बैंक अकाउंट वाला व्यक्ति मौत को एक बार में एक दशक तक धोखा देकर अमरता हासिल करने की गम्भीर कोशिश कर सकेगा। कुर्ज़वेल और दि ग्रे के मुताबिक़ हम हर दसवें-ग्यारहवें साल में क्लीनिक में जाया करेंगे और वहाँ काया-कल्प कर देने वाली ऐसी चिकित्सा हासिल करेंगे, जो न सिर्फ़ बीमारियों को ठीक कर देगी, बल्कि क्षरणशील ऊतकों को नया जीवन प्रदान करेगी, और हाथों, आँखों और मस्तिष्कों को

उन्नत कर देगी। अगली चिकित्सा का समय आने के पहले, डॉक्टर प्रचुर मात्रा में नई दवाओं, सुधारों और यन्त्रों का आविष्कार कर चुके होंगे। अगर कुर्ज़वेल और दि ग्रे का कहना सही है, तो मुमकिन है कि सड़क पर अभी भी कुछ अमर लोग आपके साथ चल रहे हों - कम से कम अगर आप संयोग से वॉल स्ट्रीट या फ़िफ़्थ एवेन्यू में चल रहे हों।

वास्तव में वे अमर (इम्मॉर्टल) होने की बजाय अजर (ए-मॉर्टल) होंगे। ईश्वर से भिन्न, भविष्य के अतिमानव किसी युद्ध या दुर्घटना में तब भी मर सकेंगे, और उनको कोई भी शक्ति मृतकों की दुनिया से वापस नहीं ला सकेगी, लेकिन हम नाशवान लोगों से भिन्न, उनके जीवन की कोई आख़िरी तारीख़ नहीं होगी। जब तक उनको कोई बम उड़ाकर टुकड़े-टुकड़े नहीं कर देगा, तब तक वे अनन्त काल जीते रहेंगे। यह चीज़ उनको इतिहास के सबसे ज़्यादा उद्विग्न लोग बना देगी। हम नाशवान लोग रोज़ अपनी ज़िन्दगियों के साथ जोखिम उठाते रहते हैं, क्योंकि हम जानते हैं कि यूँ भी उनका अन्त होने वाला है। इसलिए हम हिमालय पर चढ़ते हैं, समुद्र में तैरते हैं, और तमाम दूसरे ख़तरनाक काम करते रहते हैं, जैसे कि सड़क पार करना, बाहर खाना आदि, लेकिन अगर आपको विश्वास हो जाता है कि आप हमेशा जीवित रह सकते हैं, तो आप पागल ही होंगे, जो इस तरह के अनन्त जोखिम उठाते रहें।

तब क्या शायद यह बेहतर होता कि हम ज़्यादा साधारण लक्ष्यों के साथ शुरुआत करते, जैसे कि आयु को दुगुना करना? बीसवीं सदी में हमने अपनी जीवन-प्रत्याशा को चालीस से सत्तर वर्ष करके लगभग दुगुना कर लिया था, इसलिए इक्कीसवीं सदी में हमें इसे एक बार फिर दुगुना करके 150 तक ले जाना चाहिए। अमरत्व से बहुत दूर होने के बावजूद यह चीज़ तब भी मानव समाज में क्रान्ति ला देने वाली होगी। शुरुआत करने वालों के लिए इससे परिवार की संरचना, विवाह और बच्चे तथा अभिभावक के सम्बन्धों में काया-कल्प हो जाएगा। आज लोग विवाह करते हुए अपेक्षा करते हैं कि 'हम तब तक एक-दूसरे के साथ रहें, जब तक कि मौत हमें ज़ुदा न कर दे', और उनका ज़्यादातर जीवन बच्चों को पैदा करने और उनका पालन-पोषण करने के इर्द-गिर्द घूमता रहता है। अब ज़रा 150 साल की उम्र वाली स्त्री की कल्पना करें। चालीस साल की उम्र में शादी करने के बाद उसके पास जीने के लिए अभी भी 110 साल पड़े हैं। क्या यह उम्मीद करना व्यावहारिक होगा कि उसका वैवाहिक जीवन 110 साल तक जारी रहेगा? यहाँ तक कि कैथोलिक कट्टरपन्थी तक इसका विरोध करेंगे। इसलिए एक के बाद एक विवाहों के मौजूदा चलन के और भी सघन हो जाने की सम्भावना होगी। अपने चालीस के दशक में दो बच्चों को जन्म दे चुकने के बाद जब वह 120 साल की हो जाएगी, तब उसे उन वर्षों की सिर्फ़ धुँधली-सी स्मृति भर होगी, जो उसने उन बच्चों का पालन-पोषण करते हुए बिताए होंगे। वह उसकी लम्बी ज़िन्दगी का एक बहुत छोटा-सा प्रसंग होगा। कहना मुश्किल है कि इस तरह की

परिस्थितियों में माता-पिता और बच्चे के बीच विकसित होने वाले नए रिश्तों का क्या रूप होगा।

या व्यावसायिक जीवन पर विचार करें। आज हम मानकर चलते हैं कि हम अपने व्यवसाय को किशोरावस्था में या बीस से तीस की उम्र के दौरान सीखते हैं, और फिर अपना बाक़ी जीवन उसी काम के क्षेत्र में बिताते हैं। ज़ाहिर है कि चालीस से पचास और पचास से बाद की उम्र में भी आप नई चीज़ें सीखते हैं, लेकिन जीवन सीखने की अवधि और उसके बाद काम करने की अवधि के बीच बँटा हुआ होता है। जब आप 150 साल जीने वाले होंगे, तब ऐसा नहीं होगा, ख़ासतौर से एक ऐसी दुनिया में, जो निरन्तर नई प्रौद्योगिकियों से झकझोरी जा रही है। लोगों के कहीं ज़्यादा लम्बे व्यावसायिक जीवन हुआ करेंगे, और उनको नब्बे साल की उम्र में भी ख़ुद को बार-बार नए सिरे से गढ़ना होगा।

इसी के साथ, लोग पैंसठ की उम्र में सेवानिवृत्त नहीं होंगे और अनूठे विचारों तथा महत्त्वाकांक्षाओं से युक्त नई पीढ़ी के लिए रास्ता नहीं खोलेंगे। भौतिक विज्ञानी मैक्स प्लेंक का यह कथन प्रसिद्ध है कि विज्ञान एक बार में एक अन्तिम संस्कार करके आगे बढ़ता है। उनके कहने का अभिप्राय यह है कि जब एक पीढ़ी गुज़र जाती है, केवल तभी नए सिद्धान्तों को पुराने सिद्धान्तों से मुक्ति पाने का अवसर मिलता है। यह बात सिर्फ़ विज्ञान के बारे में ही सही नहीं है। ज़रा उस स्थान के बारे में सोचिए, जहाँ पर आप काम करते हैं। चाहे आप कोई स्कॉलर हों, पत्रकार हों, रसोइया हों या फ़ुटबॉल के खिलाड़ी हों, लेकिन आप कैसा महसूस करेगें अगर आपका बॉस 120 साल का हो, उसके विचारों ने तब रूप लिया था, जब विक्टोरिया महारानी हुआ करती थीं, और उसके कुछ और दशकों तक आपका बॉस बना रहने की सम्भावना हो?

राजनैतिक क्षेत्र में तो परिणाम और भी भयावह होंगे। क्या आप चाहेंगे कि पुतिन अगले नब्बे और सालों तक अपने पद पर बने रहें? दूसरी तरफ़, अगर लोग 150 साल तक जीवित रहते होते, तो 2016 में स्तालिन 138 साल की उम्र में तन्दुरुस्त, सक्रिय और कामयाब रहते हुए अभी भी मॉस्को पर शासन कर रहे होते, चेयरमैन माओ 123 साल के अधेड़ होते, और राजकुमारी एलिज़ाबेथ 121 साल पुराने जॉर्ज पंचम से विरासत प्राप्त करने की प्रतीक्षा कर रही होतीं। उनके बेटे चार्ल्स की बारी 2076 तक नहीं आती।

यथार्थ की दुनिया में वापस लौटते हुए बात करें, तो यह बात दूर-दूर तक निश्चयपूर्वक नहीं कही जा सकती कि कुर्ज़वेल और दि ग्रे की भविष्यवाणियाँ 2050 या 2100 तक सही साबित होंगी या नहीं। मेरा अपना दृष्टिकोण यह है कि इक्कीसवीं सदी में शाश्वत यौवन की उम्मीदें अपरिपक्व हैं, और जो भी कोई उनको बहुत गम्भीरता से लेता है, वह बुरी तरह निराश होने वाला है। यह जानते हुए जीना कि आप मरने वाले हैं आसान नहीं है,

लेकिन अमरता पर विश्वास करना और फिर इस विश्वास में ग़लत साबित होना, उससे भी ज़्यादा तकलीफ़देह है।

हालाँकि, औसत जीवन प्रत्याशा पिछले सौ सालों के दौरान दुगुनी हो गई है, लेकिन इससे यह धारणा बनाना और निष्कर्ष निकालना निराधार है कि आने वाली सदी में हम इसको दुगुना करके 150 कर लेंगे। 1900 में वैश्विक जीवन प्रत्याशा चालीस से ऊपर नहीं थी, क्योंकि बहुत-से लोग कुपोषण, संक्रामक बीमारियों और हिंसा से मर जाते थे, लेकिन जो लोग अकाल, महामारी और युद्ध से बच निकलते थे, वे भली-भाँति सत्तर और अस्सी से ऊपर की उम्र तक जी जाते थे, जो कि *होमो सेपियन्स* की स्वाभाविक आयु है। आम धारणाओं के विपरीत, पिछली सदियों में सत्तर साल के लोगों को प्रकृति की विरली मनमौजी तरंग के रूप में नहीं देखा जाता था। गैलीलियो गैलीली ने सतहत्तर साल की उम्र पाई, आइज़ैक न्यूटन ने चौरासी साल की उम्र में दुनिया को अलविदा कहा, और माइकेल एंजेलो अठासी साल की परिपक्व उम्र तक जीवित रहे, और इसके लिए इनको किसी तरह के एंटीबायोटिक्स, टीकाकरण या अंग प्रत्यारोपणों की मदद नहीं लेनी पड़ी। दरअसल, यहाँ तक कि जंगलों में रहने वाले चिम्पांज़ी तक कभी-कभी अपने साठ के दशक तक जीवित रहते हैं।

वास्तव में, अब तक आधुनिक चिकित्सा विज्ञान ने हमारे क़ुदरती जीवन काल को एक साल भी नहीं बढ़ाया है। इसकी महान उपलब्धि हमें *अकाल* मृत्यु से बचाने और हमें अपने जीवन का भरपूर आनन्द लेने की गुंजाइश देने की रही है। अगर हम आज कैंसर, डायबिटीज़ और दूसरी बड़ी जानलेवा बीमारियों पर विजय पा भी लेते हैं, तो इसका मतलब सिर्फ़ इतना होगा कि हर कोई नब्बे साल तक जीने का अवसर पा लेगा, लेकिन यह 500 साल तो दूर 150 साल की उम्र तक पहुँचने के लिए पर्याप्त नहीं होगा। इसके लिए चिकित्सा विज्ञान को मानव शरीर की सबसे बुनियादी संरचनाओं और प्रक्रियाओं को नए सिरे से गढ़ना, और इस बात की खोज करना ज़रूरी होगा कि अंगों और ऊतकों में नए सिरे से प्राण कैसे फूँके जाएँ। यह बात किसी भी तरह से स्पष्ट नहीं है कि यह काम हम 2100 तक कर लेंगे।

लेकिन मृत्यु को जीतने की प्रत्येक नाकामयाब कोशिश हमें लक्ष्य के एक क़दम और क़रीब ले जाएगी, और इससे और ज़्यादा उम्मीद करने की प्रेरणा मिलेगी तथा लोग और भी बड़े उद्यम करने को प्रोत्साहित होंगे, हालाँकि गूगल का कैलिको शायद मौत की समस्या को इतना समय रहते हल नहीं कर पाएगा कि गूगल के सह-संस्थापक सर्गेई ब्रिन और लैरी पेज अमर हो जाएँ, लेकिन पूरी सम्भावना है कि यह कम्पनी कोशिका जैविकी, जनेटिक चिकित्सा और मानवीय स्वास्थ्य के बारे में महत्त्वपूर्ण खोजें कर लेगी। इस तरह गूगल वालों की अगली पीढ़ी नए और बेहतर मोर्चों से मौत पर हमले की शुरूआत कर

सकेगी। जो वैज्ञानिक अमरता की चीख़-पुकार मचाते हैं, वे उस लड़के की तरह हैं, जो भेड़िया-भेड़िया कह कर चिल्लाता है: आगे-पीछे भेड़िया वाक़ई आ जाता है।

इसलिए अगर हम अपने जीवन-काल में अमरता हासिल नहीं भी कर पाते, तब भी पूरी सम्भावना है कि मृत्यु के ख़िलाफ़ लड़ाई आने वाली सदी की अग्रगामी परियोजना होगी। जब आप मानव जीवन की पवित्रता में विश्वास को ध्यान में रखते हैं, उसमें वैज्ञानिक संस्थान की गतिशीलता को जोड़ते हैं, और उसके शीर्ष पर पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की सारी ज़रूरतों को रखते हैं, तो मृत्यु के ख़िलाफ़ एक अथक युद्ध अपरिहार्य लगता है। मानव जीवन के प्रति हमारी विचारधारात्मक प्रतिबद्धता हमें कभी भी मनुष्य की मृत्यु को सहज स्वीकार करने की छूट नहीं देगी। जब तक लोग किसी चीज़ से मरते रहेंगे, तब तक हम उस चीज़ पर विजय प्राप्त करने का उद्यम करते रहेंगे।

वैज्ञानिक संस्थान और पूँजीवादी अर्थव्यवस्था बहुत ख़ुशी-ख़ुशी इस संघर्ष के लिए समर्थन देंगे। ज़्यादातर वैज्ञानिक और बैंककर्मी इस चीज़ की परवाह नहीं करते कि वे किस चीज़ पर काम कर रहे हैं, बशर्ते कि इससे उनको नई खोजें करने तथा ज़्यादा-से-ज़्यादा मुनाफ़ा कमाने के अवसर मिलते हों। क्या कोई मौत को मात देने से ज़्यादा उत्तेजक वैज्ञानिक चुनौती की कल्पना कर सकता है या शाश्वत यौवन के बाज़ार से ज़्यादा भरोसेमन्द बाज़ार की? अगर आप चालीस से ऊपर के हैं, तो पल भर के लिए अपनी आँखें बन्द कर अपने उस शरीर को याद करें, जो पच्चीस की उम्र में हुआ करता था। सिर्फ़ इतना नहीं कि वह कैसा दिखता था, बल्कि सबसे ऊपर यह कि वह कैसा *महसूस* करता था। अगर आपको वह शरीर वापस मिल सकता, तो आप उसके लिए कितना भुगतान करने को तैयार हो जाते? बेशक कुछ लोग इस अवसर से परहेज़ करके ख़ुश होंगे, लेकिन काफ़ी ग्राहक ऐसे होंगे, जो इसके लिए कितनी भी क़ीमत चुकाने को तैयार होते हुए एक लगभग अनन्त बाज़ार तैयार करेंगे।

अगर इतना सब काफ़ी नहीं है, तो भी अधिकांश मनुष्यों में समाया हुआ मौत का भय मौत के ख़िलाफ़ युद्ध को ज़बरदस्त गति प्रदान करेगा। जब तक लोग यह मान कर चलते थे कि मृत्यु अपरिहार्य है, तब तक वे बहुत छोटी उम्र से ही हमेशा जीवित बने रहने की इच्छा को दबाने के लिए ख़ुद को प्रशिक्षित करते रहते थे, या इस इच्छा को वैकल्पिक लक्ष्यों के पक्ष में इस्तेमाल किया करते थे। लोग हमेशा के लिए जीवित बने रहना चाहते थे, इसलिए वे एक 'अमर' सिम्फ़नी' की रचना करते थे, वे किसी युद्ध में 'शाश्वत कीर्ति' हासिल करने के लिए उद्यम करते थे, या वे अपने जीवन तक को इसलिए कुर्बान कर देते थे, ताकि उनकी आत्माओं को 'स्वर्ग में चिरस्थायी आनन्द प्राप्त हो सके'। हमारे कलात्मक सृजन, हमारी राजनैतिक प्रतिबद्धता और हमारी धर्मनिष्ठता मृत्यु के भय से ही उत्प्रेरित हैं।

वुडी एलन ने मृत्यु के भय के चलते एक उत्कृष्ट करियर बनाया था। उनसे एक बार पूछा गया था कि क्या वे रजत पट (सिनेमा के परदे) पर हमेशा-हमेशा के लिए जीवित रहने की उम्मीद करते हैं। एलन ने जवाब दिया था कि 'मैं तो बल्कि अपने अपार्टमेंट में बने रहना पसन्द करूँगा'। फिर उन्होंने आगे कहा, 'मैं अपने काम के माध्यम से अमरता हासिल नहीं करना चाहता। मैं न मर के उसको हासिल करना चाहता हूँ'। एलन जैसे मनुष्य वास्तव में जो चाहते हैं - यानी न मरना - उसके सामने शाश्वत कीर्ति, राष्ट्रवादी स्मृति समारोह और स्वर्ग के सपने बहुत तुच्छ विकल्प हैं। जैसे ही लोग (सही वजह से या उसके अभाव में) यह सोचने लगेंगे कि उनके पास मौत से बच निकलने का गम्भीर मौक़ा है, तो जीवन की इच्छा कला, विचारधारा और धर्म की जर्जर गाड़ी को खींचना बन्द कर देगी, और बर्फ़ की चट्टान की भाँति फिसलती हुई आगे चली जाएगी।

अगर आप सोचते हैं कि सुर्ख़ आँखों और लहराती हुई दाढ़ियों वाले मज़हबी कट्टरपन्थी बेरहम होते हैं, तो ज़रा इन्तज़ार करिए और देखिए कि जब बुज़ुर्ग रिटेल बादशाहों, और बुढ़ाती हुई अभिनेत्रियों को लगेगा कि जीवन का अमृत उनकी पहुँच में है, तो वे क्या करेंगे। अगर विज्ञान मृत्यु के ख़िलाफ़ युद्ध में महत्त्वपूर्ण प्रगति कर लेता है, तो असली लड़ाई प्रयोगशालाओं से हटकर संसदों, अदालतों और सड़कों पर पहुँच जाएगी। एकबारगी जैसे ही वैज्ञानिक उद्यम कामयाबी हासिल कर लेते हैं, वे कठोर राजनैतिक टकरावों की शुरुआत कर देंगे। इतिहास के सारे युद्ध और टकराव इस आने वाले वास्तविक संघर्ष, यानी शाश्वत यौवन के लिए संघर्ष की फीकी भूमिका में बदलकर रह जाएँगे।

सुख का अधिकार

मनुष्य की कार्यसूची की दूसरी बड़ी योजना शायद सुख की कुंजी हासिल करने की होगी। समूचे इतिहास के दौरान अनेक चिन्तकों, भविष्यवक्ताओं और साधारण लोगों ने जीवन की बजाय सुख को परम कल्याण के रूप में परिभाषित किया था। प्राचीन ग्रीस में दार्शनिक इपीक्यूरस ने कहा था कि देवताओं की उपासना करना वक़्त की बर्बादी है, मृत्यु के बाद कोई अस्तित्व नहीं होता, और सुख ही जीवन का एकमात्र उद्देश्य है। प्राचीन युगों के ज़्यादातर लोगों ने इपीक्यूरियनवाद का तिरस्कार किया था, लेकिन आज यह एक अचूक दृष्टिकोण बन चुका है। जीवन के बाद के अस्तित्व के प्रति सन्देह मानव जाति को न केवल अमरता की खोज के लिए प्रेरित करता है, बल्कि सांसारिक सुख की खोज के लिए भी प्रेरित करता है। क्योंकि कौन होगा, जो शाश्वत दुख भोगते हुए हमेशा-हमेशा के लिए जीवित बने रहना चाहेगा?

इपीक्यूरस के लिए सुख की तलाश एक निजी खोज थी। इसके विपरीत आधुनिक चिन्तक इसे एक सामूहिक मुहिम की तरह देखने की ओर प्रवृत्त होते हैं। सरकारी योजना, आर्थिक संसाधनों और वैज्ञानिक अनुसन्धान के बग़ैर व्यक्ति सुख की अपनी खोज में दूर तक नहीं जा पाएँगे। अगर कोई मुल्क युद्ध से तहस-नहस हो चुका है, अगर अर्थव्यवस्था संकट में है और स्वास्थ्य-व्यवस्था का कोई अस्तित्व नहीं है, तो आपकी स्थिति के दयनीय बने रहने की सम्भावना है। अठारहवीं सदी के अन्त में अँग्रेज़ दार्शनिक जेरेमी बेन्थम ने घोषणा की थी कि परम कल्याण 'अधिकतम लोगों का अधिकतम सुख' है, और निष्कर्ष निकाला था कि राज्य, बाज़ार और वैज्ञानिक समुदाय का एकमात्र उत्तम लक्ष्य वैश्विक सुख में वृद्धि करना है। राजनेताओं को शान्ति स्थापित करनी चाहिए, कारोबारों से जुड़े लोगों को समृद्धि को बढ़ावा देना चाहिए और अध्येताओं को प्रकृति का अध्ययन करना चाहिए, राजा, देश या ईश्वर के गौरव में वृद्धि की ख़ातिर नहीं, बल्कि इसलिए ताकि आप और मैं एक ज़्यादा सुखद जीवन का आनन्द ले सकें।

उन्नीसवीं और बीसवीं सदियों के दौरान हालाँकि ज़्यादातर लोगों ने बेन्थम के स्वप्न के प्रति दिखावटी प्रेम ही दर्शाया, सरकारों, कॉर्पोरेशनों और प्रयोगशालाओं ने कहीं ज़्यादा तात्कालिक और सुपरिभाषित लक्ष्यों पर ध्यान केन्द्रित किया। देशों ने अपनी सफलता को अपने अधिकार-क्षेत्र के आकार से, अपनी आबादी में हुई बढ़ोतरी और जीडीपी (सकल घरेलू उत्पाद) की वृद्धि से मापा - अपने नागरिकों के सुख से नहीं। जर्मनी, फ़्रांस और जापान जैसे औद्योगिक देशों ने शिक्षा, स्वास्थ्य और जनकल्याण के विशाल तन्त्र खड़े किए, लेकिन इन तन्त्रों का उद्देश्य वैयक्तिक कल्याण को सुनिश्चित करने की बजाय राष्ट्र को मज़बूती प्रदान करना था।

स्कूलों की स्थापना ऐसे दक्ष और आज्ञाकारी नागरिकों को उत्पन्न करने के लिए की गई, जो वफ़ादारी के साथ राष्ट्र की सेवा करें। अठारह की उम्र में नौजवानों को न सिर्फ़ देशभक्त होना ज़रूरी था, बल्कि साक्षर होना भी ज़रूरी था, ताकि वे ब्रिगेडियर के आज के आदेश को पढ़ सकते और कल के युद्ध की योजना का ख़ाका तैयार कर सकते। उनके लिए गणित को समझना इसलिए ज़रूरी था, ताकि वे बम के गोले के प्रक्षेप-पथ का आकलन कर सकते या दुश्मन के ख़ुफ़िया कोड को हल कर सकते। उनके लिए वायरलैस सेटों को संचालित करने, टैंकों को चलाने और घायल साथियों की देखभाल करने के लिए विद्युत, मैकेनिक्स और चिकित्सा-विज्ञान पर पर्याप्त नियन्त्रण होना आवश्यक था। जब वे सेना छोड़ देते, तो उनसे क्लर्क, अध्यापक और इंजीनियर के रूप में राष्ट्र की सेवा करने, आधुनिक अर्थव्यवस्था को खड़ा करने और भरपूर करों का भुगतान करने की अपेक्षा की जाती थी।

यही स्थिति चिकित्सा व्यवस्था के मामले में थी। उन्नीसवीं सदी के अन्त में फ़्रांस, जर्मनी और जापान जैसे देशों ने निःशुल्क स्वास्थ्य सेवाएँ उपलब्ध करानी शुरू कीं। उन्होंने शिशुओं के टीकाकरण, बच्चों के सन्तुलित आहार और किशोरों की शारीरिक शिक्षा में पैसा लगाया। उन्होंने दलदलों को सुखाया, मच्छरों का विनाश किया और पानी के निकास की एक केन्द्रीकृत व्यवस्था खड़ी की। इस सबका उद्देश्य लोगों को सुखी बनाना नहीं था, बल्कि राष्ट्र को मज़बूत बनाना था। देश के लिए तगड़े सैनिकों और कामगारों की ज़रूरत थी, ऐसी तन्दुरुस्त स्त्रियों की ज़रूरत थी, जो और ज़्यादा सैनिकों और कामगारों को, और नौकरशाहों को जन्म देतीं, जो घर पर बीमार पड़े रहने की बजाय समय की पाबन्दी बरतते हुए सुबह ठीक 8 बजे ऑफ़िस पहुँचते।

यहाँ तक कि जन-कल्याण-व्यवस्था की योजना भी मूलतः ज़रूरतमन्द व्यक्तियों के हित की बजाय राष्ट्र के हित में बनाई गई थी। जब ओटो वॉन बिस्मार्क ने जर्मनी में उन्नीसवीं सदी के परवर्ती दौर में राजकीय पेंशन और सामाजिक सुरक्षा की योजनाओं की शुरुआत की थी, तो उसका मुख्य उद्देश्य नागरिकों की ख़ुशहाली में वृद्धि करने की बजाय उनकी वफ़ादारी को सुनिश्चित करना था। जब आप अठारह के थे, तब आप अपने देश के लिए लड़ते थे, और जब आप चालीस के हुए तो आपने करों का भुगतान किया, क्योंकि आपको भरोसा था कि जब आप सत्तर के होंगे, तब आपका राज्य आपकी देखभाल करेगा।

1776 में संयुक्त राज्य अमेरिका के संस्थापक नेताओं ने जीवन के अधिकार और स्वतन्त्रता के अधिकार के साथ-साथ सुख की खोज के अधिकार के रूप में तीन अहस्तान्तरणीय मानवाधिकारों की स्थापना की थी, लेकिन यह दर्ज़ करना महत्त्वपूर्ण है कि अमेरिकन डिक्लेयरेशन ऑफ़ इंडिपेंडेंस (स्वाधीनता के अमेरिकी घोषणा-पत्र) ने सुख की *खोज* के अधिकार की गारंटी दी थी, स्वयं सुख के अधिकार की नहीं। थॉमस जेफ़रसन ने अपने नागरिकों के सुख के लिए राज्य को ज़िम्मेदार नहीं बनाया था। इसकी बजाय, उन्होंने सिर्फ़ राज्य की शक्ति को सीमित भर किया था। विचार व्यक्तियों के लिए राज्य के निरीक्षण से मुक्त चुनाव के एक निजी क्षेत्र को आरक्षित करने का था। अगर मैं सोचता कि मैं मैरी से शादी करने की बजाय जॉन से शादी करके, सॉल्ट लेक सिटी में रहने की बजाय सैन फ़्रांसिस्को में रहते हुए, और एक डेरी के किसान की बजाय बारटेंडर के रूप में काम करके ज़्यादा सुखी रहूँगा, तो अपने ढंग से इस सुख की तलाश करना मेरा अधिकार है, और राज्य को इसमें कोई दख़लन्दाज़ी नहीं करनी चाहिए, भले ही मैं ग़लत विकल्प क्यों न चुन रहा होऊँ।

तब भी पिछले कुछ दशकों में हालात बदल चुके हैं, और बेन्थम की कल्पना को ज़्यादा गम्भीरता से लिया जाने लगा है। अब लोग उत्तरोत्तर यह विश्वास करने लगे हैं कि

राष्ट्र को मज़बूत बनाने के लिए एक सदी से ज़्यादा पहले स्थापित की गई विशाल व्यवस्थाओं को वास्तव में स्वतन्त्र नागरिकों के सुख और ख़ुशहाली के लिए काम करना चाहिए। हम यहाँ राज्य की सेवा करने के लिए नहीं हैं - उसका अस्तित्व हमारी सेवा करने के लिए है। मूलतः राज्य-शक्ति को संयमित करने के लिए परिकल्पित किया गया सुख की तलाश का अधिकार अति सूक्ष्म ढंग से सुख के अधिकार में बदल चुका है, मानो मनुष्यों को सुखी होने का नैसर्गिक अधिकार है, और हमें असन्तुष्ट करने वाली कोई भी कार्रवाई हमारे बुनियादी मानव अधिकारों का उल्लंघन है, इसलिए राज्य को इसके बारे में कुछ करना चाहिए।

बीसवीं सदी में प्रति व्यक्ति जीडीपी शायद राष्ट्रीय सफलता के मूल्यांकन का सबसे प्रमुख पैमाना हुआ करता था। इस दृष्टि से, सिंगापुर, जिसका हर नागरिक औसतन सालाना 56,000 डॉलर मूल्य की वस्तुओं और सुविधाओं को उत्पादित करता है, उस कोस्टारिका के मुक़ाबले ज़्यादा सफल देश है, जिसके नागरिक सालाना सिर्फ़ 14,000 डॉलर पैदा करते हैं, लेकिन आजकल चिन्तक, राजनेता और यहाँ तक कि अर्थशास्त्री भी जीडीएच (सकल घरेलू सुख) को जीडीपी के अनुपूरक के रूप में जोड़ने या उसको जीडीपी की जगह रखने का आग्रह कर रहे हैं। आख़िरकार, लोग क्या चाहते हैं? वे उत्पादन नहीं करना चाहते। वे सुखी होना चाहते हैं। उत्पादन इसलिए महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि वह सुख के लिए भौतिक आधार उपलब्ध कराता है, लेकिन वह महज़ एक साधन है, साध्य नहीं। कई सर्वेक्षणों में कोस्टारिका के लोगों में सिंगापुर के लोगों के मुक़ाबले सन्तोषजनक जीवन के कहीं ऊँचे स्तर के परिणाम सामने आए हैं। आप अत्यन्त उत्पादनशील, किन्तु असन्तुष्ट सिंगापुरी होना पसन्द करेंगे, या कम उत्पादनशील, किन्तु सन्तुष्ट कोस्टारिकी होना पसन्द करेंगे?

इस क़िस्म का तर्क मानव जाति के लिए सुख को इक्कीसवीं सदी का दूसरा मुख्य लक्ष्य बनाने की ओर प्रेरित कर सकता है। पहली निगाह में यह तुलनात्मक रूप से एक आसान मुहिम लग सकती है। अगर अकाल, महामारियाँ और युद्ध दृश्य से नदारद हो रहे हैं, अगर मानव जाति अपूर्व शान्ति और समृद्धि को अनुभव कर रही है, और अगर जीवन की अवधि आश्चर्यजनक रूप से बढ़ रही है, तो निश्चय ही ये सारी चीज़ें मनुष्य को सुखी बनाएँगी, ठीक है?

ग़लत। जब इपीक्यूरस ने सुख को परम कल्याण के रूप में परिभाषित किया था, तो उसने अपने शिष्यों को चेतावनी दी थी कि सुखी होना बहुत मुश्किल काम है। भौतिक उपलब्धियाँ मात्र हमें लम्बे समय तक सुखी नहीं रख पाएँगी। सचमुच, दौलत, प्रसिद्ध और आनन्द की अन्धी तलाश हमें सिर्फ़ दयनीय अवस्था में ही ले जाएगी। उदाहरण के लिए, इपीक्यूरस ने खाने-पीने के मामले में संयम बरतने की, और अपनी काम वासना को

नियन्त्रण में रखने की सलाह दी थी। लम्बी अवधि में, एक उन्मत्त भोग-विलास से ज़्यादा एक प्रगाढ़ मैत्री हमें ज़्यादा सन्तोष प्रदान करेगी। सुख के जोखिम भरे रास्ते पर चलने वालों का मार्गदर्शन करने के लिए इपीक्यूरस ने करणीय और अकरणीय कृत्यों के एक समूचे नीति-शास्त्र की रूपरेखा प्रस्तुत की थी।

ज़ाहिर है कि इपीक्यूरस कुछ और कहना चाह रहे थे। सुखी होने की अवस्था आसानी से प्राप्त नहीं होती। पिछले कुछ दशकों की हमारी अपूर्व उपलब्धियों के बावजूद यह बात शायद ही स्पष्ट तौर पर कही जा सकती हो कि समकालीन लोग गए ज़माने के अपने पूर्वजों के मुक़ाबले सार्थक तौर पर ज़्यादा सन्तुष्ट हैं। सचमुच यह एक अपशकुन ही है कि उच्चतर समृद्धि, आराम और सुरक्षा के बावजूद विकसित दुनिया में आत्महत्या की दर भी पारम्परिक समाजों की तुलना में कहीं ज़्यादा है।

पेरू, हैती, फिलीपिन्स और घाना ग़रीबी और राजनैतिक अस्थिरता से त्रास्त विकासशील देश हैं, इनमें प्रति 100,000 में से हर साल पाँच से ज़्यादा लोग आत्महत्या नहीं करते। स्विट्ज़रलैंड, फ्रांस, जापान और न्यूज़ीलैंड जैसे समृद्ध देशों में प्रति 100,000 में से दस से ज़्यादा लोग हर साल अपनी जान ले लेते हैं। 1985 में दक्षिण कोरिया एक अपेक्षाकृत ग़रीब मुल्क था, जो सख़्त परम्पराओं से बँधा और स्वेच्छाचारी शासन द्वारा शासित था। आज दक्षिण कोरिया एक अग्रतम आर्थिक शक्ति है, इसके नागरिक दुनिया के श्रेष्ठ शिक्षितों में शामिल हैं, और वहाँ एक स्थिर और तुलनात्मक रूप से उदार लोकतान्त्रिक शासन पद्धति है। तब भी जहाँ 1985 में प्रति 100,000 में से नौ दक्षिण कोरियाइयों ने अपनी जान ली, वहीं आज आत्महत्या की सालाना दर प्रति 100,000 पर 36 है।

बेशक इसके विपरीत तथा कहीं ज़्यादा उत्साहवर्धक प्रवृत्तियाँ भी हैं। बाल मृत्यु दर में आई ज़बरदस्त कमी ने निश्चय ही मानवीय सुख में वृद्धि की है, और लोगों के आधुनिक जीवन के तनाव की आंशिक क्षतिपूर्ति की है। फिर भी, अगर हम किसी रूप में अपने पूर्वजों से ज़्यादा सुखी हैं, तो भी हमारी ख़ुशहाली में हुई वृद्धि उससे बहुत-बहुत कम है, जितनी की हमने अपेक्षा की हो सकती थी। पाषाण युग में, एक औसत इंसान को अपने इस्तेमाल के लिए प्रतिदिन ऊर्जा की 4,000 कैलोरी उपलब्ध हुआ करती थी। इसमें सिर्फ़ भोजन ही शामिल नहीं होता था, बल्कि औज़ार, वस्त्र, कला और अलाव तैयार करने में लगाई गई ऊर्जा भी शामिल थी। आज अमेरिकी लोग, सिर्फ़ अपना पेट भरने के लिए नहीं, बल्कि अपनी कारों, कम्प्यूटरों, रेफ़्रिज़रेटरों और टेलिविज़नों का पेट भरने के लिए भी औसतन प्रति व्यक्ति प्रतिदिन ऊर्जा की 228,000 कैलोरी का इस्तेमाल करते हैं। इस तरह एक औसत अमेरिकी पाषाण युग के शिकारी-संग्रहकर्ता के मुक़ाबले साठ गुना ज़्यादा

ऊर्जा का इस्तेमाल करता है। क्या यह औसत अमेरिकी साठ गुना ज़्यादा सुखी है? हम इस तरह के सुहाने दृष्टिकोणों को लेकर शायद शंकालु हो सकते हैं।

और अगर हमने बीते दिनों के बहुत सारे दुखों पर विजय पा भी ली है, तो भी सकारात्मक सुख की प्राप्ति दुखों को सर्वथा मिटा देने से कहीं ज़्यादा मुश्किल चीज़ है। मध्य युग के एक भूखों मरते किसान को आनन्दित करने के लिए एक छोटी-सी ब्रेड से काम चल जाता था। एक ऊबे हुए, ज़रूरत से ज़्यादा वेतन पाने वाले और ज़रूरत से ज़्यादा वज़न वाले इंजीनियर में आप किस तरह आनन्द का संचार करेंगे? बीसवीं सदी का दूसरा आधा हिस्सा संयुक्त राज्य अमेरिका का स्वर्ण युग था। दूसरे विश्व युद्ध में विजय, और उसके बाद शीत युद्ध में उससे भी ज़्यादा निर्णायक विजय ने उसको अग्रगामी वैश्विक महाशक्ति में बदल दिया था। 1950 और 2000 के बीच अमेरिकी जीडीपी 20 खरब डॉलर से बढ़कर 120 खरब डॉलर हो गया था। वास्तविक प्रति व्यक्ति आय दुगुनी हो गई थी। नव आविष्कृत गर्भनिरोधक गोलियों ने सेक्स को हमेशा से ज़्यादा मुक्त बना दिया था। स्त्रियों, समलैंगिकों, अफ़्रीकी अमेरिकी लोगों और दूसरे अल्पसंख्यकों को अन्ततः अमेरिकी केक का एक बड़ा हिस्सा उपलब्ध हो गया था। सस्ती कारों, रेफ़्रिजरेटरों, एयरकंडीशनरों, वैक्यूम क्लीनरों, बर्तन माँजने की मशीनों, कपड़े धोने की मशीनों, टेलीफ़ोनों, टेलीविज़नों और कम्प्यूटरों की बाढ़ ने रोज़मर्रा ज़िन्दगी को पहचान से परे ले जाकर बदल डाला था। तब भी अध्ययनों ने यह बात दर्शाई है कि अमेरिकी आत्मपरक ख़ुशहाली के स्तर 1990 के दशक में लगभग वही बने रहे, जो वे 1950 के दशक में हुआ करते थे।

जापान में 1958 और 1987 के बीच इतिहास के एक सबसे तेज़ आर्थिक उछाल के दौरान औसत वास्तविक आय पाँच गुना बढ़ गई थी। जापानी जीवन शैली और सामाजिक सम्बन्धों में आए असंख्य नकारात्मक और सकारात्मक बदलावों के साथ मिलकर सम्पत्ति के इस भीषण प्रवाह ने जापान की आत्मपरक ख़ुशहाली के स्तरों पर आश्चर्यजनक रूप से बहुत कम असर डाला। जापानी 1990 के दशक में उतने ही सन्तुष्ट या असन्तुष्ट थे, जितने वे 1950 के दशक में हुआ करते थे।

लगता है कि हमारा सुख काँच की किसी ऐसी रहस्यमय अन्दरूनी छत से टकरा जाता है, जो उसको हमारी तमाम अपूर्व उपलब्धियों के बावजूद ऊपर नहीं उठने देती। अगर हम हर किसी को मुफ़्त भोजन भी मुहैया करा दें, सारी बीमारियों को दूर कर दें और विश्व-शान्ति को सुनिश्चित कर दें, तब भी ज़रूरी नहीं कि ये सारी चीज़ें मिलकर काँच की उस अन्दरूनी छत को तोड़ दें। सच्चे सुख की उपलब्धि बुढ़ापे और मृत्यु को जीतने से ज़्यादा आसन होने वाली नहीं है।

सुख की यह काँच की अन्दरूनी छत दो मज़बूत खम्भों पर टिकी है, एक मानसिक और दूसरा जैविक। मानसिक स्तर पर सुख वस्तुपरक परिस्थितियों की बजाय अपेक्षाओं पर निर्भर करता है। हम एक शान्तिपूर्ण और समृद्ध जीवन बिताते हुए सन्तुष्ट नहीं हो जाते। इसकी बजाय हम तब सन्तुष्ट होते हैं, जब हमारी अपेक्षाओं के साथ वास्तविकता का मेल बैठ जाता है। समस्या यह है कि जैसे-जैसे परिस्थितियाँ बेहतर होती जाती हैं, वैसे-वैसे अपेक्षाएँ गुब्बारे की तरह फूलती जाती हैं। परिस्थितियों में आकस्मिक और आश्चर्यजनक सुधार, जैसा कि मानव जाति ने हाल के दशकों में अनुभव किया है, ज़्यादा सन्तोष की बजाय ज़्यादा अपेक्षाओं में रूपान्तरित हो जाता है। अगर हम इसके बारे में कुछ नहीं करते, तो हमारी भविष्य की उपलब्धियाँ भी हमें हमेशा की तरह असन्तुष्ट छोड़ सकती हैं।

जैविक स्तर पर, हमारी अपेक्षाएँ और हमारे सुख हमारी आर्थिक, सामाजिक या राजनैतिक स्थितियों की बजाय हमारी जैवरासायनिकी (बायोकैमिस्ट्री) से निर्धारित होते हैं। इपीक्यूरस के मुताबिक़, हम उस वक़्त सुखी होते हैं, जब हमें सुखद अनुभूतियाँ हो रही होती हैं और हम अप्रिय अनुभूतियों से मुक्त होते हैं। इसी तरह जेरेमी बेन्थम का मानना है कि प्रकृति ने मनुष्य को दो प्रभावी शक्तियों के अधीन बनाया हुआ है - आनन्द और पीड़ा - और ये ही हमारे सारे कृत्यों को, हमारी वाणी और चिन्तन को निर्धारित करते हैं। बेन्थम के उत्तराधिकारी जॉन स्टुअर्ट मिल ने स्पष्ट किया था कि पीड़ा से मुक्ति और आनन्द के अलावा सुख और कुछ भी नहीं है, और आनन्द तथा पीड़ा के परे न तो कोई शुभ है और न कोई अशुभ है। जो भी कोई शुभ और अशुभ का निर्णय किसी और चीज़ (जैसे कि ईश्वर, या राष्ट्रीय हित) से करने की कोशिश करता है, वह आपको, और शायद ख़ुद को भी, बेवकूफ़ बना रहा होता है।

इपीक्यूरस के ज़माने में इस तरह की बातें धर्मद्रोह हुआ करती थीं। बेन्थम और मिल के ज़माने में ये मूलगामी विद्रोह था, लेकिन आरम्भिक इक्कीसवीं सदी में यह वैज्ञानिक धर्मनिष्ठता है। जैविक विज्ञानों के मुताबिक़ सुख और दुख शारीरिक अनुभूतियों के अलग-अलग सन्तुलनों के अलावा और कुछ नहीं हैं। हम बाहरी दुनिया में होने वाली घटनाओं पर कभी प्रतिक्रिया नहीं करते, हम सिर्फ़ अपने शरीर की अनुभूतियों पर ही प्रतिक्रिया करते हैं। इससे कोई दुखी नहीं होता कि उसकी नौकरी चली गई है, उसका तलाक हो गया है या सरकार ने युद्ध छेड़ दिया है। जो एकमात्र चीज़ लोगों को दुखी बनाती है, वह उनके शरीरों में उत्पन्न होने वाली अप्रिय अनुभूतियाँ होती हैं। जब आपकी नौकरी चली जाती है, तो निश्चय ही आप अवसाद में चले जाते हैं, लेकिन अवसाद स्वयं एक क़िस्म की अप्रिय शारीरिक अनुभूति है। हज़ारों चीज़ें हमें क्रोध से भर सकती हैं, लेकिन क्रोध कभी भी अमूर्तन नहीं होता। वह हमेशा गर्मी और तनाव की शारीरिक अनुभूतियों की तरह ही

महसूस होता है, और यही वजह है कि क्रोध इतना उत्तेजना से भर देने वाला होता है। हम यूँ ही नहीं कहते कि हम क्रोध से 'जल' रहे हैं।

इसके विपरीत, विज्ञान कहता है कि पदोन्नति पाकर, लॉटरी जीतकर या सच्चा प्रेम पाकर भी कभी कोई सुखी नहीं होता। लोग एक चीज़ और सिर्फ़ एक ही चीज़ से सुखी होते हैं - शरीर में उत्पन्न होने वाली आनन्द की तरंगों से। कल्पना कीजिए कि आप मारियो गोट्ज़े हैं और अर्जेंटीना के ख़िलाफ़ 2014 के वर्ल्ड कप फ़ाइनल में जर्मन फ़ुटबॉल के मिडिल फ़ील्डर के रूप में हमला कर रहे हैं: बिना कोई गोल किए 113 मिनट पहले ही बीत चुके हैं। ख़तरनाक पेनल्टी शूट-आउट के पहले मात्र सात मिनट बाक़ी रह गए हैं। कोई 75,000 उत्तेजित प्रशंसकों से रियो का माराकाना स्टेडियम भरा हुआ है और दुनियाभर में असंख्य लाखों लोग टेलिविज़न पर यह खेल देख रहे हैं। आप अर्जेंटीनियाई गोल से कुछ ही गज़ दूर हैं, जब आन्द्रे शुअर्रल आपकी दिशा में एक शानदार पास भेजता है। आप अपनी छाती से बॉल को रोकते हैं, वह आपके पैर की दिशा में गिरती है, आप उसे बीच हवा में एक किक मारते हैं, और आप उसको अर्जेंटीनियाई गोलकीपर को पीछे छोड़ उड़ती हुई और नेट के भीतर गहरे धँसती हुई देखते हैं। गोल! स्टेडियम ज्वालामुखी की तरह फट पड़ता है। दसियों हज़ार लोग पागलों की तरह चिल्ला उठते हैं, आपकी टीम के साथी आपको गले लगा रहे हैं और चूम रहे हैं, बर्लिन और म्यूनिख़ में लाखों लोग टेलिविज़न स्क्रीन के सामने ख़ुशी के आँसुओं से भर उठते हैं। आप उल्लास से भरे हैं, लेकिन बॉल के अर्जेंटीनियाई नेट में चले जाने के कारण या खचाखच भरे बावेरियाई बियरगार्टन्स में मनाए जा रहे जश्न के कारण नहीं। आप, दरअसल, आपके भीतर उठ रही अनुभूतियों के अन्धड़ पर प्रतिक्रिया कर रहे हैं। आपकी रीढ़ में ऊपर से नीचे तक सिहरन दौड़ रही है, आपकी पूरी काया पर विद्युत तरंगें लहरा रही हैं, और ऐसा महसूस हो रहा है, जैसे आप ऊर्जा की लाखों फटती हुई गोलियों में विलीन होते जा रहे हैं।

इस तरह की अनुभूतियों को महसूस करने के लिए आपको विश्व कप फ़ाइनल में जीत दिलाने वाला गोल करने की ज़रूरत नहीं है। अगर आपको अपनी नौकरी में एक ऐसी पदोन्नति मिल जाती है, जिसकी आपने उम्मीद नहीं की थी, और आप ख़ुशी से उछलने लगते हैं, तब भी आप उसी तरह की अनुभूतियों पर प्रतिक्रिया कर रहे होते हैं। आपके मस्तिष्क के गहनतर हिस्से फ़ुटबॉल के बारे में या आपकी नौकरी के बारे में कुछ नहीं समझते। वे सिर्फ़ अनुभूतियों को समझते हैं। अगर आपको पदोन्नति मिल जाती है, लेकिन किसी वजह से आपको सुखद अनुभूतियों का अहसास नहीं होता, तो आप सन्तुष्ट महसूस नहीं करेंगे। इसका उलटा भी सही है। अगर आपको अभी-अभी नौकरी से निकाल दिया गया है (या आप कोई निर्णायक फ़ुटबॉल मैच हार गए हैं), लेकिन आप बेहद सुखद

अनुभूतियाँ महसूस कर रहे हैं (हो सकता है इसलिए कि आपने दवा की कोई गोलियाँ खा रखी हैं), तो आप तब भी अपने आपको दुनिया के शिखर पर महसूस करेंगे।

समस्या यह है कि सुखद अनुभूतियाँ बहुत जल्दी समाप्त हो जाती हैं और आगे-पीछे अप्रिय अनुभूतियों में बदल जाती हैं। यहाँ तक कि विश्व कप फ़ाइनल में किया गया जीत का गोल भी आजीवन आनन्द की गारंटी नहीं देता। दरअसल, वहाँ के बाद से सब कुछ ढलान की दिशा में जा रहा हो सकता है। इसी तरह, अगर मुझे पिछले साल अपनी नौकरी में अनपेक्षित पदोन्नति मिल गई थी, तो मैं अभी भी उसी पद पर बना हो सकता हूँ, लेकिन वह ख़बर सुनकर जो सुखद अनुभूतियाँ मुझे हुई थीं, वे कुछ ही घण्टों में उड़ गई थीं। अगर मैं उन अद्भुत अनुभूतियों को फिर महसूस करना चाहता हूँ, तो मुझे एक और पदोन्नति मिलनी चाहिए। फिर एक और। और अगर मुझे पदोन्नति नहीं मिलती, तो मैं उससे ज़्यादा कटु और क्रोधित हो सकता हूँ, जितना तब होता अगर मैं एक विनम्र प्यादा बना रहा होता।

यह सारी की सारी ग़लती विकास-प्रक्रिया की है। अन्तहीन पीढ़ियों से हमारी जैवरासायनिक पद्धति हमारे जीवित बने रहने और प्रजनन करते रहने के लिए अनुकूलित होती रही है, हमारे सुखी होने के लिए नहीं। यह जैवरासायनिक पद्धति ऐसे ही कृत्यों को सुखद अनुभूतियों से नवाज़ती है, जो जीवित बने रहने और प्रजनन के अनुकूल होते हैं। हम भोजन प्राप्त करने के लिए और सम्भोग करने के लिए संघर्ष करते हैं, ताकि भूख की अप्रिय अनुभूतियों से बच सकें और कामोत्तेजना की परम आनन्ददायी चरमावस्था का मज़ा ले सकें, लेकिन अच्छे स्वाद और कामोत्तेजना की परम आनन्ददायी चरमावस्था बहुत देर तक टिकने वाली चीज़ें नहीं हैं, और अगर हम उनको फिर महसूस करना चाहते हैं, तो हमें और भी भोजन तथा सम्भोग की तलाश में निकलना होगा।

क्या हुआ होता अगर किसी दुर्लभ उत्परिवर्तन ने एक ऐसी गिलहरी को उत्पन्न किया होता, जो एक बीज खाने के बाद परम आनन्द की चिरस्थायी अनुभूति महसूस करती? तकनीकी तौर पर यह गिलहरी के मस्तिष्क की रिवायरिंग करके किया जा सकता था। कौन जानता है कि लाखों साल पहले किसी सौभाग्यशाली गिलहरी के साथ सचमुच ऐसा हुआ हो, लेकिन अगर ऐसा हुआ होता, तो उस गिलहरी को चरम रूप से सुखी और चरम रूप से संक्षिप्त जीवन मिला होता, और उसी के साथ उस दुर्लभ उत्परिवर्तन का अन्त हो गया होता, क्योंकि उस परम आनन्दित गिलहरी ने संसर्ग करना तो दूर की बात है, खाने के लिए और ज़्यादा बीजों की भी तलाश न की होती। प्रतिद्वन्द्वी गिलहरियाँ, जिन्होंने एक बीज खाने के पाँच मिनट बाद फिर भूख महसूस की होगी, उनके जीवित बने रहने और अगली पीढ़ी तक अपने जीन्स फैलाने के ज़्यादा अवसर रहे होंगे। ठीक इसी वजह से हम मनुष्य जिन बीजों, यानी लाभदायक रोज़गारों, बड़े मकानों, सुन्दर जीवन-साथियों को जुटाने की कोशिश करते हैं, वे शायद ही कभी लम्बे समय तक हमें सन्तुष्ट कर पाते हैं।

कुछ लोग कह सकते हैं कि यह कोई बुरी बात नहीं है, क्योंकि हमें सुखी बनाने वाली चीज़ गन्तव्य नहीं, बल्कि उस गन्तव्य तक ले जाने वाली यात्रा है। एवरेस्ट पर चढ़ना ज़्यादा सन्तोषदायी है, बजाय चोटी पर खड़े होने के, प्रियतम की अदाएँ और काम-क्रीड़ाएँ कामावेग की चरमावस्था से कहीं ज़्यादा उत्तेजक होती हैं, और प्रयोगशाला में नवीनतम आविष्कार करना प्रशंसा और पुरस्कार हासिल करने से ज़्यादा दिलचस्प होता है। तब भी इससे स्थिति पर कोई ख़ास फ़र्क़ नहीं पड़ता। इससे सिर्फ़ इतना ही पता चलता है कि विकास-प्रक्रिया हमें सुखों के एक व्यापक दायरे से नियन्त्रित करती है। कभी-कभी यह हमें परम आनन्द और शान्तचित्तता की अनुभूतियों से लुभाती है, तो कभी-कभी यह हमें उल्लास और उत्तेजना की रोमांचक अनुभूतियों से उकसाती है।

जब कोई प्राणी किसी ऐसी चीज़ की तलाश कर रहा होता है, जो उसके जीवित बने रहने और प्रजनन करने के अवसर बढ़ा देने वाली है (यानी भोजन, जीवन-साथी या सामाजिक हैसियत), तो मस्तिष्क चौकन्नेपन और उत्तेजना की अनुभूतियाँ उत्पन्न करता है। ये उस प्राणी को और भी ज़्यादा बड़ा उद्यम करने को प्रेरित करती हैं क्योंकि वे बहुत सुखद होती हैं। एक प्रसिद्ध प्रयोग के तहत वैज्ञानिकों ने कई चूहों के मस्तिष्कों से इलेक्ट्रोड जोड़े थे, जो महज़ एक पैडल पर दबाव डालने से उन प्राणियों में उत्तेजना की अनुभूतियाँ जगाते थे। जब उन चूहों को स्वादिष्ट भोजन और पैडल पर दबाव डालने के बीच चयन करने का अवसर दिया गया, तो उन्होंने पैडल को चुना (काफ़ी कुछ उसी तरह, जिस तरह बच्चे डिनर के लिए आने की बजाय वीडियो गेम देखना पसन्द करते हैं)। चूहे पैडल को तब तक बार-बार दबाते रहे जब तक कि वे भूख और थकान से ढेर नहीं हो गए। इसी तरह मनुष्य भी दौड़ की प्रतियोगिता में कामयाबी से मिलने वाली प्रशंसा और सम्मान पर टिक जाने की बजाय दौड़ से मिलने वाली उत्तेजना को प्राथमिकता देते हैं, लेकिन जो चीज़ दौड़ को इतना आकर्षक बनाती है, वह वे आनन्दित करने वाली अनुभूतियाँ हैं, जो उसके साथ जुड़ी होती हैं। कोई भी व्यक्ति पर्वतारोहण नहीं करना चाहता, वीडियो गेम नहीं खेलना चाहता या किसी अजनबी से मुलाक़ात के लिए नहीं जाना चाहता, अगर इस तरह की गतिविधियों से पूरी तरह से तनाव, मायूसी या ऊब की अप्रिय अनुभूतियाँ जुड़ी होतीं।

आह! दौड़ की उत्तेजक अनुभूतियाँ उतनी ही क्षणभंगुर होती हैं, जितनी जीत की आनन्ददायी अनुभूतियाँ होती हैं। रातभर के लिए रँगरेलियों का मज़ा लूटते डॉन जुआन को, डाउ जोन्स शेयर बाज़ार इंडेक्स का उठना-गिरना देखकर अपनी अंगुलियों के नाख़ून कुतरने का आनन्द लेते व्यापारी को, और कम्प्यूटर स्क्रीन पर दैत्यों को मारने का आनन्द लेते खिलाड़ी को कल के अपने इन अद्भुत कृत्यों को याद कर कोई सन्तोष नहीं मिलेगा। पैडल पर बार-बार दबाव डालते चूहों की तरह डॉन जुआन, उद्योगपति और खिलाड़ी को

हर रोज़ एक नए धक्के की ज़रूरत होती है। और भी बदतर बात यह है कि यहाँ भी अपेक्षाएँ परिस्थितियों के अनुरूप ढल जाती हैं और बीते कल की चुनौतियाँ बहुत जल्दी आज की ऊब में बदल जाती हैं। सुख की कुंजी शायद न तो दौड़ है और न ही स्वर्ण पदक है, बल्कि उत्तेजना और शान्तचित्तता का सही संयोजन है, लेकिन हम में से ज़्यादातर लोग पूरे वक़्त तनाव से भागकर ऊब की ओर और ऊब से भागकर तनाव की ओर छलांग लगाते रहते हैं, एक परिस्थिति में उसी तरह असन्तुष्ट बने रहते हैं, जिस तरह दूसरी में।

अगर विज्ञान सही है और हमारा सुख हमारी जैवरासायनिक प्रणाली से निर्धारित होता है, तो चिरस्थायी सन्तोष को सुनिश्चित करने का एकमात्र तरीक़ा इस प्रणाली के साथ छलपूर्वक पेश आना है। भूल जाइए आर्थिक उन्नति के बारे में, सामाजिक सुधारों के बारे में और राजनैतिक क्रान्तियों के बारे में: सुख के वैश्विक स्तरों में वृद्धि करने के लिए हमें मनुष्य की जैवरासायनिकी के साथ छल-योजना करना ज़रूरी है। और ठीक यही काम हमने पिछले कुछ दशकों से करना शुरू कर दिया है। पचास साल पहले मनोविकार सम्बन्धी दवाएँ (साइक्याट्रिक ड्रग्स) बदनाम हुआ करती थीं। आज, वह बदनामी ख़त्म हो चुकी है। चाहे यह ठीक हो या ग़लत, लेकिन आबादी का उत्तरोत्तर बढ़ता हुआ हिस्सा नियमित रूप से मनोविकार-सम्बन्धी दवाएँ ले रहा है, सिर्फ़ कमज़ोर बनाने वाली मानसिक बीमारियों का इलाज़ करने के लिए नहीं, बल्कि बहुत साधारण क़िस्म के अवसादों और यदा-कदा सताने वाले विषाद का सामना करने के लिए भी।

उदाहरण के लिए, बढ़ती हुई तादाद में स्कूली बच्चे रिटालिन जैसी उत्तेजक औषधियाँ लेते हैं। 2011 में 35 लाख अमेरिकी बच्चे एडीएचडी (अटेंशन डिफ़िसिट हाइपरएक्टिविटी डिसऑर्डर) के लिए दवाएँ ले रहे थे। यूनाइटेड किंगडम में यह तादाद 1997 की 92,000 से बढ़कर 2012 में 786,000 हो गई थी। मूल उद्देश्य अटेंशन डिसऑर्डर का इलाज़ करना था, लेकिन आज पूरी तरह से स्वस्थ बच्चे अपने प्रदर्शन को उत्कृष्ट बनाने तथा अपने अध्यापकों और अभिभावकों की अपेक्षाओं पर खरा उतरने के लिए इस तरह की दवाएँ लेते हैं। इस स्थिति को लेकर बहुत सारे लोग आपत्ति करते हैं और तर्क देते हैं कि समस्या बच्चों में नहीं, बल्कि शिक्षा-व्यवस्था में निहित है। अगर विद्यार्थी अटेंशन डिसऑर्डर्स, तनाव और निचली श्रेणियों (लो ग्रेड्स) के शिकार हैं, तो इसके लिए हमें बच्चों की बजाय शायद पुरानी पड़ चुकी अध्यापन पद्धतियों, भीड़-भरी कक्षाओं और जीवन की अस्वाभाविक रूप से तेज़ रफ़्तार को दोष देना चाहिए। हो सकता है कि हमें बच्चों में बदलाव लाने की बजाय स्कूलों में बदलाव लाने की ज़रूरत हो। यह देखना दिलचस्प है कि तर्क किस तरह विकसित हुए हैं। शिक्षा-पद्धतियों को लेकर लोग हज़ारों साल से झगड़ रहे हैं। चाहे प्राचीन चीन हो या विक्टोरिया के युग का ब्रिटेन हो, हर व्यक्ति की अपनी मनपसन्द पद्धति हुआ करती थी, और हर व्यक्ति विकल्पों का ज़ोरदार ढंग से

विरोध किया करता था। तब भी उस समय तक हर व्यक्ति एक बात पर सहमत था: शिक्षा को उन्नत रूप देने के लिए हमें स्कूलों को बदलना ज़रूरी है। आज, इतिहास में पहली बार है, जब कम से कम कुछ लोगों का सोचना है कि विद्यार्थियों की जैवरासायनिकी को बदलना ज़्यादा फलदायी होगा।

सेनाएँ भी इसी रास्ते पर बढ़ रही हैं: इराक़ में 12 प्रतिशत अमेरिकी सैनिक और अफ़गानिस्तान में 17 प्रतिशत अमेरिकी सैनिक युद्ध के दबाव और त्रास से बचने के लिए नींद की गोलियाँ और एंटीडिप्रेसेंट लेते थे। भय, अवसाद और मानसिक आघात बम के गोलों, बारूदी सुरंगों या कार बमों के नतीजे में पैदा नहीं होते। वे हॉर्मोनों, न्यूरोट्रांसमीटरों और न्यूरल नेटवर्कों की उपज होते हैं। दो सैनिक कन्धे से कन्धा मिलाए एक ही घात-स्थल पर हो सकते हैं, उनमें से एक आतंक से अकड़ जाएगा, अपने होशो-हवास खो देगा और उस घटना के बाद सालों तक दुःस्वप्नों से पीड़ित रहेगा, तो दूसरा आगे बढ़कर हमला करेगा और पदक जीत लेगा। यह फ़र्क़ इन सैनिकों की जैवरासायनिकी का है, और अगर हम इसे नियन्त्रित करने का तरीक़ा निकाल लें, तो हम एक ही झटके में ज़्यादा सुखी सैनिकों और ज़्यादा दक्ष सेनाओं को उत्पन्न कर सकते हैं।

सुख की जैवरासायनिक खोज दुनिया में अपराध की भी पहली वजह है। 2009 में संयुक्त राज्य अमेरिका की संघीय जेलों के आधे क़ैदी नशीले पदार्थों की वजह से वहाँ पहुँचे थे, 38 प्रतिशत इतालवी क़ैदी नशीले पदार्थों से जुड़े अपराधों की वजह से दोषी साबित हुए थे, यूनाइटेड किंगडम के 55 प्रतिशत क़ैदियों ने सूचित किया था कि उन्होंने अपने अपराध या तो नशीले पदार्थों का इस्तेमाल करते हुए या उनका क्रय-विक्रय करते हुए किए थे। 2001 की एक रिपोर्ट से पता चला था कि 62 प्रतिशत ऑस्ट्रेलियाई अपराधियों ने नशीले पदार्थों के प्रभाव के दौरान वे अपराध किए थे, जिनके लिए वे जेल भोग रहे थे। लोग भूलने की ख़ातिर अल्कोहल पीते हैं, वे शान्ति महसूस करने की ख़ातिर गाँजा पीते हैं, वे कुशाग्र बुद्धि होने और आत्मविश्वास अर्जित करने की ख़ातिर कोकीन और मेथम्फ़ेटामाइन्स लेते हैं, वहीं एक्सटेसी आह्लादकारी अनुभूतियाँ जगाती है और एलएसडी आपको लूसी इन द स्काइ विद डायमंड से मिलने भेज देती है। जो चीज़ कुछ लोग अध्ययन करने, काम करने या परिवार चलाने से हासिल करने की उम्मीद करते हैं, उसी चीज़ को कुछ दूसरे लोग मॉलीक्यूल्स की सही ख़ुराक की मार्फ़त ज़्यादा आसानी से हासिल करने की कोशिश करते हैं। यह सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था के लिए एक अस्तित्वपरक ख़तरा है, इसीलिए देश जैवरासानिक अपराधों के ख़िलाफ़ सख़्त, ख़ूनी और हताश लड़ाई छेड़ते हैं।

राज्य 'बुरी' छलयोजनाओं को 'अच्छी' छलयोजनाओं से अलग करते हुए सुख की जैवरासायनिक तलाश को अनुशासित करने की उम्मीद करते हैं। सिद्धान्त स्पष्ट है: जो

जैवरासायनिक छलयोजनाएँ राजनैतिक स्थिरता, सामाजिक व्यवस्था और आर्थिक विकास को मज़बूती प्रदान करती हैं, उनकी छूट दी जाती है, यहाँ तक कि उनको प्रोत्साहित किया जाता है (उदाहरण के लिए, ऐसी छलयोजनाएँ, जो अति चंचल बच्चों को कक्षा में शान्त रखती हैं या जो घबराने वाले सैनिकों को उत्प्रेरित करती हैं)। ऐसी छलयोजनाएँ प्रतिबन्धित हैं, जो स्थिरता और विकास के समक्ष ख़तरा पैदा करती हैं, लेकिन विश्वविद्यालयों, औषधि-निर्माता कम्पनियों और आपराधिक संगठनों की प्रयोगशालाओं में हर साल नए मादक पदार्थ पैदा हो जाते हैं, और राज्य तथा बाज़ार की ज़रूरतें भी बदलती रहती हैं। जैसे-जैसे सुख की जैवरासायनिक तलाश गति पकड़ती जाएगी, वैसे-वैसे वह राजनीति, समाज और अर्थव्यवस्था को भी नया रूप देगी, और उसको नियन्त्रित करना बहुत मुश्किल होता जाएगा।

और मादक पदार्थ तो महज़ शुरुआत हैं। अनुसन्धान प्रयोगशालाओं में विशेषज्ञ पहले से ही मनुष्य की जैवरासायनिकी की छलयोजना के कहीं ज़्यादा परिष्कृत तरीक़े खोजने में जुटे हैं, जैसे कि मस्तिष्क के सटीक स्थलों पर सीधे विद्युतीय उत्तेजकों को भेजना, या हमारे शरीरों की योजनाओं की जनेटिक जोड़-तोड़ करना। पद्धति चाहे कितनी भी सटीक हो, जैविक छलयोजना के रास्ते सुख को हासिल करना आसान काम नहीं होगा, क्योंकि इसके लिए जीवन के बुनियादी ताने-बाने में बदलाव करने की ज़रूरत होगी, लेकिन वैसे तो अकाल, महामारी और युद्ध पर क़ाबू पाना भी आसान नहीं था।

यह बात तय नहीं है कि मानव जाति के वास्ते सुख की जैवरासायनिक तलाश के लिए इतना उद्यम करना ज़रूरी है। कुछ लोग तर्क देंगे कि सुख इतनी महत्त्वपूर्ण चीज़ है ही नहीं, और वैयक्तिक सन्तोष को मानव समाज का सर्वोच्च लक्ष्य मानना एक ग़ैरवाजिब ख़याल है। दूसरे लोग इस बात पर सहमत हो सकते हैं कि सुख सचमुच परम कल्याण है, तब भी वे सुख की जैविक परिभाषा को सुखद अनुभूतियों के अनुभव के रूप में देखने पर राज़ी होने से इंकार करेंगे।

कोई 2,300 साल पहले इपीक्यूरस ने अपने शिष्यों को चेतावनी दी थी कि आनन्द की अत्यधिक तलाश उनको सुखी बनाने की बजाय दुखी बना सकती है। कुछ सदियों पहले बुद्धि ने इससे भी ज़्यादा बुनियादी दावा करते हुए उपदेश दिया था कि सुखद अनुभूतियों की तलाश वस्तुतः दुःख का मूल है। इस तरह की अनुभूतियाँ महज़ क्षणभंगुर और अर्थहीन स्पन्दन हैं। जब हम उनको अनुभव भी करते हैं, तो हम उनसे सन्तुष्ट नहीं हो जाते, इसकी बजाय हम और ज़्यादा की लालसा करते हैं। इसलिए मुझे चाहे कितनी ही आनन्ददायी या उत्तेजक अनुभूतियाँ क्यों न हो रही हों, वे मुझे कभी सन्तुष्ट नहीं करेंगी।

अगर मैं क्षणिक सुखद अनुभूतियों को ही सुख समझ लेता हूँ, तथा उनको और ज़्यादा अनुभव करने की लालसा करता हूँ, तो उनकी निरन्तर तलाश में लगे रहने के अलावा मेरे पास कोई विकल्प नहीं है। जब मैं अन्ततः उनको हासिल कर लेता हूँ, वे तेज़ी-से ग़ायब हो जाती हैं, और क्योंकि महज़ अतीत के आनन्दों की स्मृति मुझे सन्तुष्ट नहीं कर पाएगी, इसलिए मुझे फिर उसी सिलसिले की शुरुआत कर देनी होगी। अगर मैं इस तलाश को दशकों तक भी जारी रखता हूँ, इससे मुझे ऐसा कुछ भी हासिल नहीं होगा, जो चिरस्थायी हो, इसके विपरीत, मैं जितना ही इन सुखद अनुभूतियों की लालसा करूँगा, उतना ही दुखी और असन्तुष्ट होता जाऊँगा। वास्तविक सुख की प्राप्ति के लिए मनुष्यों को सुखद अनुभूतियों की तलाश को बढ़ाने की नहीं, उसको धीमा करने की ज़रूरत है।

सुख का यह बौद्धधर्मी दृष्टिकोण सुख के जैवरासायनिक दृष्टिकोण से काफ़ी समानताएँ रखता है। दोनों ही इस बात से सहमत हैं कि सुखद अनुभूतियाँ जितनी तेज़ी-से उत्पन्न होती हैं, उतनी ही तेज़ी-से लुप्त हो जाती हैं, और जब तक लोग सुखद अनुभूतियों को वास्तव में अनुभव किए बग़ैर उनकी लालसा करना जारी रखते हैं, तब तक वे असन्तुष्ट बने रहते हैं, लेकिन इस समस्या के दो बहुत अलग समाधान हैं। जैवरासायनिक समाधान ऐसे उत्पादों और चिकित्साओं को विकसित करना है, जो मनुष्यों को सुखद अनुभूतियों का एक अनन्त प्रवाह उपलब्ध कराएँगे, इसलिए हम कभी उनसे वंचित नहीं होंगे। बौद्ध परामर्श सुखद अनुभूतियों की लालसा को कम करने और उनको हमारी ज़िन्दगियों को नियन्त्रित करने की छूट न देने का था। बुद्ध के अनुसार, हम अपने मस्तिष्क को इस तरह प्रशिक्षित कर सकते हैं कि वे सावधानीपूर्वक यह लक्ष्य कर सकें कि सारी अनुभूतियाँ किस तरह उत्पन्न होती हैं और गुज़र जाती हैं। जब हमारा मस्तिष्क अनुभूतियों को उनके वास्तविक रूप यानी उनके क्षणभंगुर और अर्थहीन स्पन्दन होने में समझ लेता है, तो उनकी तलाश में हमारी कोई दिलचस्पी नहीं रह जाती, क्योंकि एक ऐसी चीज़ के पीछे भागते रहने का क्या अर्थ है, जो जिस तेज़ी-से उदित होती है, उसी तेज़ी-से लुप्त हो जाती है?

फ़िलहाल मानव जाति की कहीं ज़्यादा दिलचस्पी जैवरासायनिक समाधान में है। हिमालय की कन्दराओं में बैठे भिक्षु या अपने एकान्त में बैठे दार्शनिक जो भी कहते हों, पूँजीवादी महाशक्ति के लिए आनन्द ही सुख है। बस। हर गुज़रते हुए साल के साथ अप्रिय अनुभूतियों को लेकर हमारी सहनशीलता में कमी आती जा रही है, और सुखद अनुभूतियों को लेकर हमारी लालसा बढ़ती जा रही है। वैज्ञानिक अनुसन्धान और आर्थिक गतिविधि को इसी लक्ष्य के लिए जोता जा रहा है, जो हर साल बेहतर दर्द-निवारक, नए आइसक्रीम स्वाद, हमारे स्मार्टफ़ोनों के लिए ज़्यादा लत पैदा करने वाले गेम्स तैयार कर रहे हैं, ताकि हमें बस का इन्तज़ार करते हुए एक पल के लिए भी ऊब का सामना न करना पड़े।

बेशक, यह सब निश्चय ही काफ़ी नहीं है। चूँकि विकास-प्रक्रिया ने *होमो सेपियन्स* को निरन्तर आनन्द का अनुभव करने के लिए नहीं ढाला था, तब भी मानव जाति अगर यही चाहती है, तो आइसक्रीम और स्मार्टफ़ोन से काम नहीं चलेगा। हमारी जैवरासायनिकी को बदलना तथा हमारी कायाओं और मस्तिष्कों को नए सिरे से गढ़ना ज़रूरी होगा। इसलिए हम इसी पर काम कर रहे हैं। आप इसके सही या ग़लत होने को लेकर बहस कर सकते हैं, लेकिन ऐसा लगता है कि इक्कीसवीं सदी की दूसरी महान मुहिम, यानी वैश्विक सुख को सुनिश्चित करने में *होमो सेपियन्स* को नए सिरे से गढ़ना (रि-इंजनियरिंग करना) शामिल होगा, ताकि वह चिरस्थायी आनन्द का उपभोग कर सके।

पृथ्वी ग्रह के देवता

स्वर्गिक सुख और अमरता की तलाश करते हुए मनुष्य दरअसल अपने आपको देवताओं रूप में पदोन्नत करने की कोशिश कर रहे हैं। महज़ इसलिए नहीं कि ये अलौकिक गुण हैं, बल्कि इसलिए कि बुढ़ापे और दुख पर विजय प्राप्त करने के लिए मनुष्यों को सबसे पहले अपनी जैविक बुनियाद पर देवताओं जैसा नियन्त्रण हासिल करना होगा। अगर हमारे पास कभी ऐसी शक्ति आ सकी कि हम किसी तरह मृत्यु और पीड़ा को अपनी काया से बाहर निकाल सके, तो यही शक्ति शायद हमें अपनी काया को लगभग हमारे मनचाहे ढंग से गढ़ने के लिए, और हमारे अंगों, भावनाओं और बौद्धिक क्षमताओं की असंख्य तरीक़ों से जोड़-तोड़ करने के लिए पर्याप्त होगी। अगर आप चाहेंगे, तो आप अपने लिए हर्क्यूलिस की ताक़त, एफ़्रोडाइट की काम-भावना, एथेना की प्रज्ञा और डायोनिसस की विक्षिप्तता ख़रीद सकेंगे। अब तक बढ़ती हुई मानवीय शक्ति मुख्यतः हमारे बाहरी उपकरणों के स्तर को ऊँचा उठाने पर निर्भर करती रही है। भविष्य में वह मनुष्य की काया और मस्तिष्क के स्तर को ऊँचा उठाने पर, या सीधे-सीधे हमारे उपकरणों के साथ एकाकार हो जाने पर निर्भर कर सकती है।

मनुष्यों को देवताओं के स्तर पर ऊँचा उठाने की प्रक्रिया तीन रास्ते अपना सकती है: जैव अभियान्त्रिकी (बायोलॉजिकल इंजीनियरिंग), साइबोर्ग अभियान्त्रिकी और अजैविक सत्ताओं की अभियान्त्रिकी।

जैविक अभियान्त्रिकी की शुरुआत इस आन्तरिक बोध के साथ होती है कि हम जैविक कायाओं की पूरी सम्भावनाओं का दोहन करने से काफ़ी दूर हैं। चार अरब वर्षों से प्राकृतिक वरण (नेचुरल सिलेक्शन) इन कायाओं को सुधारने और सँवारने में लगा रहा है, जिससे हम अमीबा से रेंगने वाले जीवों, फिर स्तनपायियों से सेपियन्स तक पहुँच सके हैं। तब भी यह मानने की कोई वजह नहीं है कि सेपियन्स अन्तिम पड़ाव है। सापेक्षिक तौर पर जीनों, हार्मोनों और न्यूरॉनों में हुए मामूली-से परिवर्तन *होमो इरेक्टस* (तनकर चलने वाले

मानव) को *होमो सेपियन्स* में रूपान्तरित करने के लिए काफ़ी रहे, जो अन्तरिक्ष यान और कम्प्यूटर तैयार कर लेते हैं। *होमो इरेक्टस* चकमक पत्थर के चाकुओं से ज़्यादा प्रभावशाली कोई चीज़ उत्पन्न नहीं कर पाते थे। कौन जानता है कि हमारे डीएनए, हार्मोनल सिस्टम या मस्तिष्क की संरचना में थोड़े-से और बदलावों के क्या परिणाम हो सकते हैं। जैविक अभियान्त्रिकी धीरज के साथ बैठकर प्राकृतिक वरण के जादू का इन्तज़ार नहीं करेगी। इसकी बजाय, जैव इंजीनियर पुराने सेपियन्स की काया को लेंगे और संकल्पपूर्वक उसके जनेटिक कोड का पुनर्लेखन करेंगे, उसके मस्तिष्क के परिपथों (सर्किट्स) का पुनर्लेखन करेंगे, उसके जैवरासायनिक सन्तुलन में बदलाव लाएँगे, और यहाँ तक कि सर्वथा नए अंगों तक को विकसित करेंगे। इस तरह वे नई देवतानुमा सत्ताओं की सृष्टि करेंगे, जो मुमकिन है हम सेपियन्स से उसी तरह भिन्न हों, जैसे हम *होमो इरेक्टस* से भिन्न हैं।

साइबोर्ग अभियान्त्रिकी एक क़दम आगे जाकर जैविक काया को अजैविक उपकरणों से मिला देगी, जैसे कि बायोनिक हाथ, कृत्रिम आँख या ऐसे लाखों नैनो-रोबोट हमारे रक्त-प्रवाह में तैरते हुए समस्याओं का निदान करेंगे और जहाँ कहीं कोई क्षति होगी, उसका निवारण करेंगे। इस तरह के साइबोर्ग में एक जैविक काया से परे की क्षमताएँ हो सकती हैं। उदाहरण के लिए, एक जैविक काया के सारे अंगों को काम करने के लिए एक-दूसरे के साथ सीधे सम्पर्क में होना अनिवार्य है। अगर एक हाथी का मस्तिष्क हिन्दुस्तान में है, उसकी आँखें और कान चीन में हैं और उसके पैर ऑस्ट्रेलिया में हैं, तो पूरी सम्भावना है कि यह हाथी मृत हो, और अगर वह किसी रहस्यमय अर्थ में जीवित भी है, तो वह सुन, देख या चल नहीं पाएगा। इसके विपरीत एक साइबोर्ग का वजूद एक ही समय में कई स्थानों पर हो सकता है। एक साइबोर्ग डॉक्टर स्टॉकहोम के अपने कार्यालय में बने रहते हुए भी टोक्यो में, शिकागो में और मंगल ग्रह पर स्थित स्पेस-स्टेशन पर ऑपरेशन कर सकेगी। उसके लिए सिर्फ़ एक तेज़ रफ़्तार इंटरनेट कनेक्षन की, और कुछ जोड़ा बायोनिक आँखों और हाथों भर की ज़रूरत होगी। या फिर, जोड़ा ही क्यों? चार क्यों नहीं? वाक़ई देखा जाए तो ये भी अनावश्यक हैं। आख़िर एक साइबोर्ग डॉक्टर को एक सर्जन की छुरी हाथ से पकड़ने की ज़रूरत क्यों होनी चाहिए, जबकि वह अपने दिमाग़ को सीधे अपने इस उपकरण से जोड़ सकती है?

यह चीज़ विज्ञान-कथा जैसी लग सकती है, लेकिन यह पहले ही एक वास्तविकता बन चुकी है। बन्दरों ने हाल ही में अपने शरीरों से ज़ुदा हाथों और पैरों को अपने मस्तिष्कों में लगाए गए इलेक्ट्रोडों की मार्फ़त नियन्त्रित करना सीख लिया है। लकवे के शिकार मरीज़ अकेले अपने विचारों की ताक़त के सहारे अपने बायोनिक अंगों का संचालन करने या कम्प्यूटरों को संचालित करने में सक्षम हैं। अगर आप चाहें, तो आप अभी भी एक 'माइंड-

रीडिंग' हेल्मट का इस्तेमाल करते हुए अपने घर के विद्युत उपकरणों को दूर बैठे नियन्त्रित कर सकते हैं। इस हेल्मट के लिए किसी तरह के मस्तिष्कीय प्रत्यारोपणों की ज़रूरत नहीं है। ये आपकी खोपड़ी के भीतर गुज़रते विद्युत संकेतों को पढ़ते हुए अपना काम करता है। अगर आप रसोई की बत्ती जलाना चाहते हैं, तो आप सिर्फ़ यह हेल्मट पहन लीजिए, किन्हीं पहले से योजनाबद्ध मानसिक संकेतों की कल्पना कीजिए (जैसे कि, कल्पना कीजिए कि आपका दायाँ हाथ आगे बढ़ रहा है), और स्विच चालू हो जाएगा। आप ये हेल्मट मात्र 400 डॉलर में ऑनलाइन ख़रीद सकते हैं।

2015 की शुरुआत में स्टॉकहोम के इपिसेंटर हाइटेक हब में सैकड़ों कामगारों के हाथों में माइक्रोचिप्स प्रत्यारोपित किए गए थे। ये चिप्स लगभग एक चावल के आकार के हैं और इनमें ऐसी व्यक्तिगत सुरक्षा सूचना भरी हुई है, जो इन कामगारों को हाथ के एक इशारे से दरवाज़े खोलने और फ़ोटोकॉपी मशीनों को संचालित करने में मदद करती है। उनको उम्मीद है कि वे जल्दी ही इसी तरीक़े से भुगतान भी कर सकेंगे। इस पहल के पीछे जो लोग हैं, उनमें से एक हानेस एसजोब्लाड ने बताया था, 'हम प्रौद्योगिकी के साथ पूरे समय संवाद करते रहते हैं। आज ये किंचित अस्त-व्यस्त है: हमें सिर्फ़ कोड्स और पासवर्ड्स की ज़रूरत होती है। क्या महज़ अपने हाथ से छू भर देना आसान नहीं होगा?'

तब भी साइबोर्ग अभियान्त्रिकी उस हद तक अपेक्षाकृत रूढ़िवादी है, जिस हद तक वह यह मानकर चलती है कि जैविक मस्तिष्क जीवन के आदेश और नियन्त्रण का केन्द्र बना रहेगा। एक अधिक साहसिक विधि जैविक अंगों को पूरी तरह से ग़ैरज़रूरी बना देती है, और पूरी तरह से अ-जैविक सत्ताओं को गढ़ने की उम्मीद करती है। तन्त्रिका नेटवर्क की जगह अक़्लमन्द सॉफ़्टवेयर ले लेगा, जो जैव रसायन की सीमाओं से मुक्त वास्तविक और आभासी, दोनों तरह की दुनियाओं में सर्फ कर सकेगा। जैविक यौगिक पदार्थों के साम्राज्य में 4 अरब वर्षों तक भटकने के बाद जीवन छिटककर अजैविक जगत के विपुल विस्तार में आ जाएगा, और ऐसे रूपाकार ले लेगा, जिनकी कल्पना हम अपने विलक्षण सपनों में नहीं कर सकते। आख़िरकार, हमारे ये विलक्षण सपने भी तो जैविक रसायन की ही देन हैं।

जैविक जगत से अलग हो जाना जीवन को पृथ्वी ग्रह से भी अलग हो जाने की छूट देगा। चार अरब वर्षों तक जीवन एक ग्रह के इस छोटे से बिन्दु तक सीमित रहा, क्योंकि प्राकृतिक वरण ने सारे प्राणियों को पूरी तरह से इस तैरती हुई चट्टान की परिस्थितियों पर निर्भर बनाए रखा। सख़्त से सख़्त जीवाणु भी मंगल ग्रह पर जीवित नहीं रह सकता। इसके विपरीत एक अजैविक कृत्रिम बुद्ध (नॉन-ऑर्गेनिक आर्टिफ़िशल इंटेलिजेंस) के लिए तमाम ग्रहों को उपनिवेशीकृत करना आसान होगा। इसलिए अजैविक सत्ताओं द्वारा जैविक जीवन का विस्थापन समूची आकाशगंगा में फैलने वाले उस साम्राज्य का

बीजारोपण कर सकता है, जिस पर कैप्टन किर्क की बजाय मिस्टर डाटा की हुकूमत होगी।

हम नहीं जानते कि ये रास्ते हमें कहाँ ले जाएँगे, न ही हम यह जानते हैं कि ये देवतानुमा वंशज कैसे दिखाई देंगे। भविष्यवाणियाँ करना कभी आसान नहीं रहा, और क्रान्तिकारी जैवप्रौद्योगिकी इसे और भी मुश्किल बना देती है, क्योंकि जब परिवहन, संचार और ऊर्जा जैसे क्षेत्रों पर पड़ने जा रहे नई प्रौद्योगिकियों के प्रभावों का पूर्वानुमान करना ही बहुत मुश्किल है, तब मनुष्यों को उन्नत रूप देने वाली प्रौद्योगिकियाँ एक बिल्कुल अलग ही तरह की चुनौती पेश करती हैं। चूँकि उनका इस्तेमाल इंसानी दिमाग़ों और ख़्वाहिशों को रूपान्तरित करने के लिए किया जा सकता है, इसलिए आज के दिमाग़ और ख़्वाहिशें रखने वाले लोग स्वाभाविक ही उनके नतीजों की थाह नहीं ले सकते।

हज़ारों सालों तक इतिहास प्रौद्योगिकीय, आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक उथल-पुथल से भरा रहा, लेकिन एक चीज़ अटल बनी रही: स्वयं मनुष्यता। हमारे उपकरण और संस्थाएँ बाइबिल के युगों के उपकरणों और संस्थाओं से बहुत भिन्न हैं, लेकिन मनुष्य के मस्तिष्क की अन्दरूनी संरचनाएँ वैसी की वैसी बनी हुई हैं। यही वजह है कि हम आज भी ख़ुद को बाइबिल के पन्नों में, कन्फ़्यूसियस के लेखन में या सोफ़ोक्लीज़ और यूरीपिडीज़ की त्रासदियों में पा सकते हैं। इन महान ग्रन्थों की रचना हम जैसे इंसानों द्वारा ही की गई थी, इसलिए हम महसूस करते हैं कि वे हमारे बारे में बात करते हैं। आधुनिक नाट्य प्रस्तुतियों में इडीपॅस, हैमलेट और अॅथेलो जीन्स और टी-शर्ट पहन सकते हैं और उनके फेसबुक अकाउंट हो सकते हैं, लेकिन उनके भावनात्मक संघर्ष वही हैं, जो मूल नाटक में हैं।

लेकिन, जब प्रौद्योगिकी हमें मानव-मस्तिष्कों को नए सिरे से गढ़ने में सक्षम बना देगी, तब *होमो सेपियन्स* लुप्त हो जाएँगे, मनुष्य के इतिहास का अन्त हो जाएगा और एक पूरी तरह से नई प्रक्रिया शुरू हो जाएगी, जिसे मेरे और आपके जैसे लोग समझ नहीं सकते। बहुत सारे अध्येता अनुमान लगाने की कोशिश करते हैं कि 2100 या 2200 में दुनिया कैसी दिखेगी। यह वक़्त की बर्बादी है। किसी भी उपयुक्त अनुमान के लिए मनुष्य के मस्तिष्कों को नए सिरे से गढ़ने की सामर्थ्य को ध्यान में रखना अनिवार्य है, और यह असम्भव है। इस सवाल के कई बुद्धिमत्तापूर्ण जवाब हैं कि 'हम जैसे मस्तिष्कों वाले लोग जैवप्रौद्योगिकी का किस तरह का इस्तेमाल करेंगे?' तब भी इस सवाल का कोई ठीक जवाब नहीं है कि 'एक *भिन्न* क़िस्म के दिमाग़ वाले प्राणी जैवप्रौद्योगिकी का किस तरह का इस्तेमाल करेंगे?' हम सिर्फ़ इतना ही कह सकते हैं कि उम्मीद है, हम जैसे लोग ही अपने ख़ुद के मस्तिष्कों को नए सिरे गढ़ने के लिए जैवप्रौद्योगिकी का इस्तेमाल करेंगे, और इसके बाद क्या होगा, इसे हमारे आज के दिमाग़ नहीं समझ सकते।

इसलिए ब्योरे हालाँकि अस्पष्ट हैं, तब भी हम इतिहास की सामान्य दिशा के बारे में निश्चित तौर पर कह सकते हैं। इक्कीसवीं सदी में मानव जाति की तीसरी बड़ी मुहिम हमारे लिए सृष्टि और संहार की दैवीय शक्तियाँ उपलब्ध कराने, और *होमो सेपियन्स* को *होमो डियॅस* (मानव देवता/अतिमानव) के स्तर पर उन्नत करने की होगी। इस तीसरी मुहिम में स्वाभाविक ही पहली दो मुहिमें शामिल हैं, और वे मुहिमें इस तीसरी मुहिम को उकसाने वाली हैं। हम अपनी कायाओं और मस्तिष्कों को नए सिरे से गढ़ने की सामर्थ्य सर्वप्रथम इसलिए हासिल करना चाहते हैं, ताकि हम बुढ़ापे, मृत्यु और दुख पर विजय पा सकें, लेकिन एकबारगी जैसे ही यह मुमकिन हो जाता है, तब कौन जानता है कि हम इस सामर्थ्य का और क्या उपयोग करना चाहेंगे? इसलिए हम नई मानवीय कार्यसूची में (कई शाखाओं वाली) सिर्फ़ एक ही मुहिम को शामिल मानकर चल सकते हैं: दिव्यता (डिविनिटी) हासिल करने की मुहिम।

अगर यह बात अवैज्ञानिक या सर्वथा झक्कीपन जैसी प्रतीत होती है, तो इसलिए कि लोग अक्सर दिव्यता के अर्थ को ग़लत समझते हैं। दिव्यता कोई धुँधला-सा आध्यात्मिक गुण नहीं है। और यह सर्वशक्तिमत्ता जैसी चीज़ भी नहीं है। जब हम मनुष्यों को देवताओं के स्तर पर ऊँचा उठाने की बात करते हैं, तो इसे बाइबिल के सर्वशक्तिमान स्काइ फ़ादर की पदावली में समझने की बजाय ग्रीक देवताओं या हिन्दू देवताओं की पदावली में समझिए। हमारे इन वंशजों में तब भी कमज़ोरियाँ, ग्रन्थियाँ और सीमाएँ होंगी, उसी तरह जैसे वे यूनानी देवराज ज़ीउस या इन्द्र में हुआ करती थीं, लेकिन वे हमसे कहीं ज़्यादा बड़े स्तर पर प्रेम और घृणा कर सकेंगे, सृष्टि और संहार कर सकेंगे।

समूचे इतिहास के दौरान ज़्यादातर देवता अपनी सर्वशक्तिमत्ता के प्रयोग के लिए नहीं, बल्कि अपनी विस्मयकारी क्षमता के लिए जाने जाते रहे हैं, जैसे कि जीवित सत्ताओं की परिकल्पना करना और उनको रचना, ख़ुद अपनी कायाओं को रूपान्तरित कर लेना, वातावरण और मौसम को नियन्त्रित करना, मन की बातें जान लेना और एक दूरी से सम्प्रेषण करना, एक अतिशय तीव्र गति से यात्रा करना और बेशक मृत्यु से बच निकलना तथा अनन्त काल तक जीवित बने रहना। मनुष्य इन सारी और इनसे भी ज़्यादा क्षमताओं को हासिल करने के काम में लगे हैं। कुछ पारम्परिक क्षमताएँ, जिनको कई सहस्राब्दियों तक दैवीय माना जाता रहा था, वे आज इतनी आम हो चुकी हैं कि कोई उनके बारे में सोचता तक नहीं है। एक औसत व्यक्ति आज प्राचीन युग के ग्रीक, हिन्दू या अफ़्रीकी देवताओं से कहीं ज़्यादा आसानी-से सुदूर यात्राएँ और सम्प्रेषण करता है।

उदाहरण के लिए, नाइजीरिया के इग्बो लोगों का विश्वास है कि सृजन का देवता चुक्वू शुरू में लोगों को अमर बनाना चाहता था। उसने मनुष्यों के पास एक कुत्ते को भेज कर उससे कहलवाया कि जब कोई मरे, तो उनको उसके शव पर राख छिड़क देना चाहिए,

जिससे वह मुर्दा जीवित हो उठेगा। बदक़िस्मती से, वह कुत्ता थक गया और रास्ते में ही ठहर गया। अपना धीरज खोते हुए चुक्वू ने एक भेड़ को भेजा, और उससे कहा कि वह जल्दी से जल्दी यह सन्देश पहुँचाए। आह, लेकिन जब तक हाँफ़ती हुई भेड़ अपने गन्तव्य पर पहुँची, तो उसने उस निर्देश को विकृत कर दिया, और मनुष्यों से उनके मृतकों दफ़नाने को कह दिया, और इस तरह मृत्यु को स्थायी बना दिया। यही वजह है कि मनुष्यों को आज तक मरना पड़ता है। काश! अपने सन्देषों को भेजने के लिए चुक्वू के पास उस आलसी कुत्ते और मन्दमति भेड़ पर निर्भर होने की बजाय के ट्विटर अकाउंट होता!

प्राचीन कृषिपरक समाजों में, बहुत-से मज़हब आश्चर्यजनक रूप से आध्यात्मिक प्रश्नों और मृत्यु बाद के मसलों में बहुत कम दिलचस्पी लेते थे। इसकी बजाय वे फ़सल में वृद्धि के निहायत सांसारिक मुद्दे पर अपना ध्यान केन्द्रित करते थे। इस तरह ओल्ड टेस्टामेंट का ईश्वर मृत्यु के बाद किसी तरह के पुरस्कार या सज़ा का कभी भी वादा *नहीं* करता। इसकी बजाय वह इज़रायल के लोगों से कहता है, 'अगर तुम मेरे द्वारा दिए गए निर्देशों का ध्यान से पालन करोगे [...] तो मैं मौसम आने पर तुम्हारी धरती पर बारिश भेजूँगा [...] और तुम अनाज, वाइन और तेल प्राप्त करोगे। मैं तुम्हारे मवेशियों के लिए चारागाहों में घास उपलब्ध कराऊँगा, और तुम खाओगे और सन्तुष्ट रहोगे। सावधान रहना! अन्यथा, तुम्हारे हृदय तुमको धोखा देंगे और तुम दूसरे देवताओं की सेवा और उपासना की ओर मुड़ जाओगे। तुम्हारे ख़िलाफ़ ईश्वर का क्रोध भड़क उठेगा, जिससे वह आकाश को अवरुद्ध कर देगा और वह बारिश नहीं करेगा। ज़मीन अपनी फ़सल पैदा नहीं करेगी और तुम बहुत जल्दी उस अच्छी भूमि से उजड़ जाआगे, जो प्रभु तुमको देने वाला है' (ड्यूटरनॉमी 11:13-17)। आज के वैज्ञानिक ओल्ड टेस्टामेंट के इस ईश्वर से बेहतर काम कर सकते हैं। कृत्रिम खादों, औद्योगिक कीटाणुनाशकों और जनेटिक ढंग से परिष्कृत फ़सलों की कृपा से आज कृषि उत्पादन उन बड़ी से बड़ी अपेक्षाओं को काफ़ी पीछे छोड़ चुका है, जो प्राचीन युग के किसान अपने देवताओं से किया करते थे। और शुष्क इज़रायल अब इस बात के ख़ौफ़ में नहीं रहता कि कोई क्रोधित देवता बारिश रोकने के लिए आकाश अवरुद्ध कर देगा, क्योंकि इज़रायलियों ने समुद्र से पीने का पानी हासिल करने के लिए हाल ही भूमध्यसागर के तटों पर नमक को हटाने का एक विशाल संयंत्र (डेसेलिनेशन प्लांट) खड़ा कर लिया है।

अब तक हम उत्तरोत्तर बेहतर उपकरण बनाकर पुराने देवताओं से मुक़ाबला करते रहे हैं। वह दिन अब बहुत दूर नहीं है, जब हम ऐसे अतिमानव पैदा कर लेंगे, जो प्राचीन देवताओं को उनके उपकरणों के मामले में नहीं, बल्कि उनकी दैहिक और मानसिक क्षमताओं के मामले में भी पीछे छोड़ देंगे, लेकिन अगर हम जब कभी उस स्थिति में पहुँच

जाएँगे, तब दिव्यता उतनी ही सांसारिक हो जाएगी, जितनी साइबरस्पेस है - एक आश्चर्यों का आश्चर्य, जिसे हम सहज ही मानकर चलते हैं।

हम इस बारे में पूरी तरह से निश्चित हो सकते हैं कि मनुष्य दिव्यता को हासिल करने का दाँव खेलेंगे, क्योंकि इंसान के पास इस तरह की पदोन्नति की आकांक्षा करने की कई वजहें हैं, और उसको पूरा करने के कई तरीक़े हैं। यहाँ तक कि अगर कोई भरोसेमन्द रास्ता अन्धी गली साबित होता है, तो भी वैकल्पिक रास्ते खुले रहेंगे। उदाहरण के लिए, हमें पता चल सकता है कि मनुष्यों का जीन-समूह गम्भीर क़िस्म की जोड़-तोड़ के लिहाज़ से बहुत जटिल है, लेकिन यह चीज़ ब्रेन-कम्प्यूटर इंटरफ़ेस, नैनो-रोबेट्स या आर्टिफ़िशल इंटेलिजेंस को विकसित करने में कोई रुकावट पैदा नहीं करेगी।

हालाँकि, घबराने की कोई ज़रूरत नहीं है। कम से कम तुरन्त तो नहीं ही है। सेपियन्स के स्तर को उन्नत करना हॉलीवुडीय क़यामत होने की बजाय एक क्रमिक ऐतिहासिक प्रक्रिया होगी। होमो सेपियन्स किसी रोबोट क्रान्ति से ख़त्म नहीं होने जा रहा है। इसकी बजाय, सम्भावना यही है कि *होमो सेपियन्स* स्वयं को सीढ़ी-दर-सीढ़ी उन्नत करेगा और इस प्रक्रिया में रोबोटों और कम्प्यूटरों में तब तक विलीन होता जाएगा, जब तक कि हमारे ये वंशज वापस मुड़कर देखेंगे और पाएँगे कि वे अब उस तरह के प्राणी नहीं रहे, जिन्होंने बाइबिल लिखी थी, ग्रेट वॉल ऑफ़ चाइना का निर्माण किया था और जो चार्ली चैपलिन की विदूषकीय हरक़तों पर हँसा करते थे। यह सब एक दिन में, या एक साल में नहीं होगा। दरअसल, यह प्रक्रिया असंख्य सामान्य गतिविधियों की मार्फ़त इस वक़्त भी जारी है। हर दिन लाखों लोग अपने स्मार्टफ़ोन को अपने जीवन को नियन्त्रित करने की कुछ और इजाज़त देने का फ़ैसला करते हैं या कोई नया और ज़्यादा कारगर एंटीडिप्रेसेंट ड्रग आज़माते हैं। तन्दुरुस्ती, सुख और शक्ति की तलाश में मनुष्य धीरे-धीरे पहले अपना एक लक्षण बदलेंगे, फिर एक और लक्षण बदलेंगे और फिर एक और, और ऐसा वे तब तक करते चले जाएँगे, जब तक कि वे मनुष्य ही नहीं रह जाएँगे।

क्या कोई ब्रेक लगाएगा?

ठण्डी व्याख्याएँ अपनी जगह हैं, लेकिन बहुत-से लोग इस तरह की सम्भावनाओं के बारे में सुनकर घबरा जाते हैं। वे अपने स्मार्टफ़ोनों की सलाह का अनुसरण करके या डॉक्टर द्वारा लिखी गई कोई भी दवा लेकर तो ख़ुश होते हैं, लेकिन जब वे उन्नत अतिमानव के बारे में सुनते हैं, तो कहते हैं: 'उम्मीद है कि ऐसा होने के पहले मैं मर जाऊँगा'। एक बार मेरी एक दोस्त ने मुझसे कहा था कि बूढ़ी होने को लेकर जिस चीज़ से वह सबसे ज़्यादा डरती है, वह अप्रासंगिक हो जाना है, अतीत की यादों में खोई हुई एक ऐसी बुढ़िया में बदल जाना, जो अपने आस-पास की दुनिया को नहीं समझती या उसमें कोई योगदान नहीं

करती। यही वह भय है, जो सामूहिक रूप से हम सब को उस वक़्त सताता है, जब हम अतिमानवों के बारे में सुनते हैं। हम महसूस करते हैं कि इस तरह की दुनिया में हमारी पहचान, हमारे सपने, यहाँ तक कि हमारे डर भी अप्रासंगिक हो जाएँगे, और हमारे पास योगदान करने लायक़ और कुछ भी नहीं होगा। आज आप जो भी हों - धर्मपरायण हिन्दू क्रिकेट खिलाड़ी या एक महत्त्वाकांक्षी लैस्बियन पत्रकार - उस उन्नत जगत में आप वॉल स्ट्रीट पर एक निएंडरथल शिकारी जैसा महसूस करेंगे। आप उस दुनिया के नहीं होंगे।

निएंडरथलों को नैस्डैक़ (अमेरिकी शेयर बाज़ार) को लेकर परेशान होने की ज़रूरत नहीं होती थी, क्योंकि वे उससे दसियों हज़ारों साल दूर थे। आज, लेकिन, अर्थ की हमारी दुनिया कुछ दशकों के भीतर ही धराशायी हो सकती है। आप ख़ुद को पूरी तरह से अप्रासंगिक होने से बचाने के लिए मृत्यु पर भरोसा नहीं कर सकते। अगर 2100 तक देवता हमारी सड़कों पर चलना शुरू नहीं भी कर देते, तब भी पूरी सम्भावना है कि *होमो सेपियन्स* को उन्नत बनाने की कोशिश दुनिया को इसी सदी में इस क़दर बदल देगी कि वह पहचान से परे चली जाएगी। वैज्ञानिक अनुसन्धान और टेक्नॉलॉजिकल घटनाक्रम इतनी तेज़ रफ़्तार से आगे बढ़ रहे हैं कि वे हममें से ज़्यादातर लोगों की समझ से परे हैं।

अगर आप विशेषज्ञों से बात करें, तो उनमें से बहुत-से विशेषज्ञ आपसे कहेंगे कि हम अभी जनेटिक ढंग से गढ़े गए शिशुओं या मनुष्य के स्तर के आर्टिफ़िशल इंटेलिजेंस से बहुत दूर हैं, लेकिन बहुत-से विशेषज्ञ अकादमिक अनुदान और कॉलेज की नौकरियों के सन्दर्भ में सोचते हैं। इसलिए 'बहुत दूर' का अर्थ बीस साल हो सकता है, और 'कभी नहीं' का अर्थ पचास साल से अधिक नहीं हो सकता है।

मुझे अभी भी वह दिन याद है, जब मैं पहली बार इंटरनेट के सम्पर्क में आया था। यह 1993 की बात है, जब मैं हाई स्कूल में था। मैं अपने कुछ दोस्तों के साथ अपने एक दोस्त इदो (जो अब एक कम्प्यूटर वैज्ञानिक है) से मिलने गया था। हम टेबिल टेनिस खेलना चाहते थे। इदो पहले से ही कम्प्यूटर को बेहद पसन्द करता था, और टेनिस की टेबिल खोलने से पहले उसने हमसे एक ताज़ातरीन चमत्कार देखने का आग्रह किया। उसने अपने फ़ोन के केबल को अपने कम्प्यूटर से जोड़ा और कुछ बटन दबाए। कुछ मिनटों तक हम चूँ-चूँ की आवाज़ें, चीखें और भनभनाहटें ही सुन सके और फिर ख़ामोशी छा गई। वह कारगर नहीं रहा। हम बुदबुदाए, बड़बड़ाए, लेकिन इदो ने फिर कोशिश की। और फिर कोशिश की। और एक बार फिर कोशिश की। अन्ततः उसने एक चीख़ छोड़ी और ऐलान किया कि वह अपने कम्प्यूटर को पास की यूनिवर्सिटी के सेंट्रल कम्प्यूटर से जोड़ने में कामयाब रहा है। 'और उस सेंट्रल कम्प्यूटर में क्या है?' हमने पूछा। 'दरअसल,' उसने स्वीकार किया कि 'अभी तक तो वहाँ कुछ भी नहीं है, लेकिन तुम तमाम तरह की चीज़ें वहाँ रख सकते हो'। 'किस तरह की चीज़ें?' हमने सवाल किया। 'मैं नहीं जानता,' उसने

कहा, ‘तमाम तरह की चीज़ें’। ये बहुत आशाप्रद प्रतीत नहीं हुआ। हम टेबिल टेनिस खेलने गए, और बाद के सप्ताहों में हमने इदो के हास्यास्पद ख़याल का मज़ाक़ उड़ाते हुए कई तरह से अपना मनोरंजन किया। यह (अभी जब कि मैं यह लिख रहा हूँ) पच्चीस साल से भी कम समय की घटना है। कौन जानता है कि अब से पच्चीस साल बाद क्या होगा?

यही वजह है कि व्यक्ति, संगठन, कॉर्पोरेशन और सरकारें अमरता, सुख और देवतानुमा शक्तियों की तलाश में उत्तरोत्तर गम्भीर दिलचस्पी ले रही हैं। बीमा कम्पनियाँ, पेंशन निधियाँ, स्वास्थ्य व्यवस्थाएँ और वित्त मन्त्रलय पहले ही लोगों की आयु-सीमा बढ़ने को लेकर भौंचक हैं। लोग उम्मीद से ज़्यादा समय तक जी रहे हैं, और उनकी पेंशन तथा चिकित्सा का भुगतान करने के लिए पर्याप्त पैसा नहीं है। जैसे-जैसे सत्तर की उम्र नई चालीस की उम्र बनने का ख़तरा पैदा कर रही है, विशेषज्ञ लोग सेवानिवृत्ति की आयु-सीमा बढ़ाने और रोज़गार के समूचे बाज़ार को पूरी तरह से नया रूप देने की गुहार लगा रहे हैं।

जब लोगों को अहसास हो जाता है कि हम किस तेज़ी के साथ किसी बड़ी अज्ञात घटना की ओर भाग रहे हैं, और वे इससे बचाव के लिए मृत्यु तक पर भरोसा नहीं कर सकते, तो वे उम्मीद करते हैं कि कोई तो होगा, जो ब्रेक लगाएगा और हमारी इस रफ़्तार को धीमा करेगा, लेकिन कई वजहें हैं, जिनसे हम ब्रेक नहीं लगा सकते।

पहली वजह यह है कि कोई नहीं जानता कि ब्रेक कहाँ पर हैं। जहाँ कुछ विशेषज्ञ किसी एक क्षेत्र की घटनाओं से परिचित हैं, जैसे कि आर्टिफ़िशल इंटेलिजेंस, अतिसूक्ष्म प्रौद्योगिकी, बिग डाटा या जनेटिक्स, वहीं इनमें से हर चीज़ का विशेषज्ञ कोई नहीं है। इसलिए सारे बिन्दुओं को एक-दूसरे से जोड़कर पूरी तसवीर देखने की क्षमता किसी में नहीं है। अलग-अलग क्षेत्र एक-दूसरे को इस क़दर पेचीदा ढंग से प्रभावित करते हैं कि श्रेष्ठतम दिमाग़ वाले लोग भी इस बात की थाह नहीं ले सकते कि मसलन आर्टिफ़िशल इंटेलिजेंस के क्षेत्र की महत्त्वपूर्ण खोजें अतिसूक्ष्म प्रौद्योगिकी पर किस तरह का प्रभाव डाल सकती हैं, या अतिसूक्ष्म प्रौद्योगिकी की महत्त्वपूर्ण खोजें आर्टिफ़िशल इंटेलिजेंस पर किस तरह का प्रभाव डाल सकती हैं। सारी ताज़ा वैज्ञानिक खोजों को कोई नहीं समझ सकता, कोई नहीं है, जो यह अनुमान लगा सकता हो कि दस साल बाद वैश्विक अर्थव्यवस्था का क्या रूप होगा, और किसी को अनुमान नहीं है कि इस भागमभाग में हम किस दिशा की ओर जा रहे हैं। चूँकि इस व्यवस्था को समझने वाला अब कोई नहीं है, इसलिए इस पर रोक भी कोई नहीं लगा सकता।

दूसरी वजह यह है कि अगर हम किसी तरह ब्रेक लगाने में कामयाब हो भी जाते हैं, तो हमारे समाज के साथ-साथ हमारी अर्थव्यवस्था धराशायी हो जाएगी। जैसा कि अगले एक अध्याय में स्पष्ट किया गया है, आधुनिक अर्थव्यवस्था को अपने जीवित बने रहने के लिए निरन्तर और अन्तहीन रूप से विकसित होते रहना ज़रूरी है। अगर यह विकास कभी

थमा, तो अर्थव्यवस्था किसी सुखद सन्तुलन पर आकर नहीं ठहर जाने वाली, बल्कि वह टुकड़ा-टुकड़ा हो जाएगी। यही वजह है कि पूँजीवाद हमें अमरता, सुख और दिव्यता की तलाश के लिए प्रोत्साहित करता है। इस बात की सीमा है कि हम कितने जूते पहन सकते हैं, कितनी कारें ड्राइव कर सकते हैं और स्कीइंग की कितनी छुट्टियों का आनन्द ले सकते हैं। चिरस्थायी विकास पर टिकी हुई अर्थव्यवस्था के लिए अन्तहीन मुहिमों की ज़रूरत है - अमरता, परम सुख और दिव्यता की ही तरह।

चलिए, अगर हमें अन्तहीन मुहिमों की ज़रूरत है, तो हम परम सुख और अमरता पर ही समझौता क्यों नहीं कर लेते, और कम से कम अतिमानवीय शक्तियों की डरावनी तलाश को एक तरफ़ क्यों नहीं रख देते? इसलिए क्योंकि यह तीसरी चीज़ पिछली दोनो चीज़ों से इस क़दर जुड़ी है कि उसको उनसे अलग नहीं किया जा सकता। जब आप ऐसे बायोनिक पैर विकसित कर लेते हैं, जो शरीर के निचले हिस्से के पक्षाघात से ग्रस्त लोगों को फिर चलने-फिरने में सक्षम बना देते हैं, तो आप इसी प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल स्वस्थ लोगों को उन्नत रूप देने में भी कर सकते हैं। जब आप यह पता लगा लेते हैं कि बूढ़े लोगों की याददाश्त की क्षति को कैसे रोका जाए, तो यही चिकित्सा नौजवानों की याददाश्त भी बढ़ा सकती है।

ऐसी कोई स्पष्ट रेखा नहीं है, जो चिकित्सा को उन्नत बनाने की प्रक्रिया से अलग करती हो। चिकित्सा की शुरुआत लगभग हमेशा ही लोगों को मानक स्तर से नीचे गिरने से रोकने के साथ होती है, लेकिन उन्हीं उपकरणों और अनुभवों का इस्तेमाल उस मानक स्तर को पीछे छोड़ देने के लिए भी तो किया जा सकता है। वियाग्रा ने अपनी ज़िन्दगी की शुरुआत रक्तचाप की समस्याओं के इलाज़ के साथ की थी, लेकिन फ़ाइज़र कम्पनी के लिए यह आश्चर्य और आह्लाद का विषय साबित हुआ, जब यह मालूम हुआ कि वियाग्रा नपुंसकता पर भी विजय पा सकती है। इसने करोड़ों लोगों को अपनी मानक सम्भोग-क्षमताओं को फिर हासिल करने में सक्षम बना दिया, लेकिन बहुत जल्द ही जिन लोगों के साथ नपुंसकता की समस्याएँ नहीं थीं, उन्होंने भी इन गोलियों का इस्तेमाल इस मानकों को पीछे छोड़ देने के लिए करना शुरू कर दिया, और ऐसी काम-शक्तियाँ हासिल कर लीं, जो उनमें इसके पहले कभी नहीं थीं।

जो चीज़ किन्हीं ख़ास दवाओं के सन्दर्भ में हो सकती है, वह चिकित्सा-विज्ञान के समूचे क्षेत्र के सन्दर्भ में भी सही हो सकती है। आधुनिक प्लास्टिक सर्जरी का जन्म प्रथम विश्व युद्ध में हुआ था, जब हैरॉल्ड गिलीज़ ने एल्डरशॉट सैन्य अस्पताल में चेहरे के घावों की चिकित्सा शुरू की थी। जब युद्ध समाप्त हो गया, तो शल्य चिकित्सकों ने पाया कि वही तकनीकें पूरी तरह स्वस्थ, किन्तु बदसूरत नाकों को ख़ूबसूरत नमूनों में बदल सकती हैं, हालाँकि प्लास्टिक सर्जरी ने बीमारों और घायलों की सहायता करना जारी रखा, लेकिन

यह तन्दुरुस्त लोगों को उन्नत रूप देने के लिए उत्तरोत्तर समर्पित होती गई। आज प्लास्टिक सर्जन निजी क्लीनिकों में करोड़ों की कमाई करते हैं, जिनका एकमात्र लक्ष्य स्वस्थ लोगों को उन्नत रूप देना और रईसों के सौन्दर्य में वृद्धि करना है।

यही चीज़ जनेटिक इंजीनियरिंग के साथ हो सकती है। अगर किसी अरबपति ने खुलेआम यह कहा होता कि उसका इरादा सुपर-स्मार्ट सन्तानों को गढ़ने का है, तो इससे जो सार्वजनिक शोर हुआ होता, उसकी कल्पना कीजिए, लेकिन अब इस तरह की स्थिति नहीं बनेगी। अब हमारे एक चिकनी ढलान पर फिसलने की कहीं ज़्यादा सम्भावना है। इसकी शुरुआत उन अभिभावकों के साथ होती है, जिनकी जनेटिक रूपरेखाएँ उनके बच्चों के समक्ष घातक जनेटिक बीमारियों का बड़ा जोखिम पैदा करती हैं। इसलिए वे *इन विट्रो* फ़र्टिलाइजेशन (परख नली में अण्डे का प्रजनन) करते हैं, और प्रजनित अंडे के डीएनए का परीक्षण करते हैं। अगर सब कुछ ठीक-ठाक है, तो अच्छा है, लेकिन अगर डीएनए परीक्षण से ख़तरनाक विकृतियों (म्यूटेशन्स) का पता चलता है, तो भ्रूण को नष्ट कर दिया जाता है।

लेकिन महज़ एक अण्डे का प्रजनन करने का जोखिम क्यों उठाया जाए? बेहतर है कि कई अण्डों का प्रजनन किया जाए, ताकि अगर तीन या चार भी दूषित हैं, तो कम से कम एक अच्छा भ्रूण निकल आए। जब यह *इन विट्रो* चयन-पद्धति स्वीकार्य और पर्याप्त सस्ती हो जाएगी, तो इसके उपयोग का विस्तार होगा। उत्परिवर्तनों का होना सर्वव्यापी जोखिम है। तमाम लोग अपने डीएनए में कुछ हानिकारक उत्परिवर्तन और अभीष्ट से कम अलील (alleles) लिए होते हैं। यौनपरक प्रजनन एक लॉटरी होता है। (एक प्रसिद्ध - और सम्भवतः अप्रमाणिक - क़िस्सा 1923 में नोबेल पुरस्कार विजेता अनातोले फ्रांस तथा ख़ूबसूरत और प्रतिभाशाली नर्तकी इसाडोरा डंकन के बीच हुई मुलाक़ात के बारे बताता है। उस समय के लोकप्रिय यूजेनिक्स आन्दोलन के बारे में चर्चा करते हुए डंकन ने कहा, 'ज़रा ऐसे बच्चे की कल्पना कीजिए, जो मेरे जैसा सुन्दर हो और आपके जैसे दिमाग़ वाला हो'! फ्रांस ने जवाब दिया, 'हाँ, लेकिन एक ऐसे बच्चे की कल्पना कीजिए, जो *मेरे* जैसा सुन्दर हो और *आपके* जैसे दिमाग़ वाला हो'।) तब फिर लॉटरी क्यों न आज़माई जाए? कई सारे अण्डों का प्रजनन करिए, और जिसका संयोजन सबसे अच्छा हो, उसको चुन लीजिए। एक बार जैसे ही मूल कोशिका (स्टेम-सेल) सम्बन्धी अनुसन्धान हमें सस्ते में इंसानी भ्रूणों की असीमित आपूर्ति में सक्षम बना देता है, वैसे ही आप उन सैकड़ों प्रत्याशियों में से अपना मनपसन्द शिशु चुन सकते हैं, जिनमें पूरी तरह से आपका डीएनए हो, जो पूरी तरह से क़ुदरती हो, और जिनमें से किसी के लिए भी भविष्य में जनेटिक इंजीनियरिंग की दरकार न हो। इस पद्धति को कुछ पीढ़ियों तक दोहराते रहिये, और अन्त में आप आसानी से अतिमानवों (या एक दहला देने वाले डरावने राज्य) तक पहुँच जाएँगे।

लेकिन तब क्या होगा अगर असंख्य अण्डों का प्रजनन करने के बाद आप पाते हैं कि उन सबमें घातक विकृतियाँ मौजूद हैं? तब क्या आप सारे भ्रूणों को नष्ट कर देंगे? ऐसा करने की बजाय ऐसे जीन्स को बदल क्यों नहीं देते, जिनके साथ समस्या है? एक क्रान्तिकारी रूप से कामयाब प्रकरण माइटोकोंड्रियल डीएनए से ताल्लुक़ रखता है। माइटोकोंड्रियल मनुष्य की कोशिकाओं में मौजूद सूक्ष्म अंग हैं, जो कोशिकाओं द्वारा इस्तेमाल की जाने वाली ऊर्जा को उत्पन्न करते हैं। उनके अपने जीन्स का सेट होता है, जो कोशिका के नाभिक में मौजूद डीएनए से पूरी तरह से अलग होता है। दोषपूर्ण माइटोकोंड्रियल डीएनए कई तरह की दुर्बलताओं या घातक बीमारियों तक का कारण बन जाता है। इस वक़्त की *इन विट्रो* प्रौद्योगिकी के तहत 'तीन-अभिभावक शिशु' की रचना के माध्यम से माइटोकोंड्रिक जनेटिक बीमारियों पर विजय पाना सम्भव है। शिशु का नाभिक डीएनए दो अभिभावकों से आता है, जबकि माइटोकोंड्रियल डीएनए किसी तीसरे व्यक्ति से आता है। 2000 में वेस्ट ब्लूमफ़ील्ड, मिशिगन की शेरोन सरीनेन ने एक तन्दुरुस्त बच्ची अलेना को जन्म दिया था। अलेना का नाभिक डीएनए उसकी माँ शेरोन और पिता पॉल से आया था, लेकिन उसका माइटोकोंड्रियल डीएनए एक अन्य स्त्री से आया था। इस तरह एक विशुद्ध तकनीकी सन्दर्भ में, अलेना के तीन जैविक अभिभावक थे। एक साल बाद, 2001 में संयुक्त राज्य अमेरिका की सरकार ने सुरक्षा और नैतिकता सम्बन्धी चिन्ताओं के चलते इस चिकित्सा पर प्रतिबन्ध लगा दिया।

लेकिन, 3 फ़रवरी 2015 को ब्रिटिश संसद ने इस तथाकथित तीन-अभिभावकीय भ्रूण' क़ानून के पक्ष में मतदान करते हुए इस चिकित्सा और तत्सम्बन्धी अनुसन्धान की यूनाइटेड किंगडम में इजाज़त दे दी। फ़िलहाल नाभिक डीएनए को बदलना तकनीकी तौर पर अव्यावहारिक और ग़ैरक़ानूनी है, लेकिन जब कभी भी अगर ये तकनीकी मुश्किलें हल कर ली जाती हैं, तो जिस तर्क ने दोषपूर्ण माइटोकोंड्रियल को बदलने का पक्ष लिया है, लगता है कि वही तर्क नाभिक डीएनए के साथ भी वैसे ही सुलूक को उचित ठहराएगा।

चयन और फेरबदल के बाद अगला सम्भावित क़दम होगा संशोधन का। एक बार घातक जीनों को संशोधित करना मुमकिन हो जाए, तो फिर किसी विजातीय डीएनए के झमेले में पड़ने की क्या ज़रूरत है, जबकि आप महज़ नए कोड का पुनर्लेखन कर सकते हैं और ख़तरनाक दोषपूर्ण जीन्स को उसके हितकारी रूप में बदल सकते हैं? इसके बाद हम इसी प्रक्रिया का इस्तेमाल न सिर्फ़ जानलेवा जीनों को ठीक करने के लिए, बल्कि कमतर घातक बीमारियों, ऑटिज़्म, बुद्धहीनता और मोटापे को ठीक करने के लिए भी कर सकते हैं। कौन चाहेगा कि उसका बच्चा इनमें से किसी भी बुराई का शिकार हो? मान लीजिए कि किसी जनेटिक परीक्षण से पता चलता है कि पूरी सम्भावना है आपकी होने वाली बेटी स्मार्ट, ख़ूबसूरत और दयालु स्वभाव की होगी, लेकिन वह लाइलाज़ विषाद

(डिप्रेशन) से ग्रस्त रहा करेगी। तब क्या आप उसको वर्षों के इस दुख से निज़ात दिलाने के लिए टेस्ट ट्यूब में फुर्तीली और पीड़ा-रहित दख़लन्दाज़ी नहीं करेंगे?

और जब आप यह कर ही रहे हैं, तो बच्ची को हल्का-सा बढ़ावा और क्यों नहीं देते? जीवन स्वस्थ लोगों तक के लिए मुश्किलों और चुनौतियों से भरा हुआ है। इसलिए यह निश्चय ही उपयोगी होगा अगर लड़की का प्रतिरक्षी तन्त्र सामान्य से ज़्यादा मज़बूत हो, औसत से ज़्यादा बेहतर स्मृति हो या वह कुछ ज़्यादा ख़ुशमिजाज़ हो। और अगर आप अपनी बच्ची के लिए यह नहीं चाहते, लेकिन आपके पड़ोसी अपने बच्चों के लिए यह सब कर रहे हों, तो उस सूरत में आप क्या करेंगे? क्या आप चाहेंगे कि आपकी बच्ची पीछे रह जाए? और अगर सरकार सारे नागरिकों को उनके शिशुओं को इस तरह गढ़ने (इंजीनियरिंग करने) से रोकती है, तब उस सूरत में क्या होगा अगर उत्तरी कोरियाई ये कर रहे होंगे और विस्मयकारी प्रतिभाओं, कलाकारों और एथलीटों को पैदा कर रहे होंगे? और इस तरह शिशुओं के मामले में हम एक जनेटिक चाइल्ड कैटलॉग की राह पर हैं।

उन्नत बनाने की हर प्रक्रिया को शुरू में इलाज़ के नाम पर उचित ठहराया जाता है। आप किन्हीं ऐसे प्रोफ़ेसरों को खोजिए, जो जनेटिक इंजीनियरिंग के क्षेत्र में या ब्रेन-कम्प्यूटर इंटरफ़ेसों पर प्रयोग कर रहे हैं, और उनसे पूछिए कि वे इस तरह के अनुसन्धान में क्यों लगे हैं। पूरी सम्भावना है कि उनका जवाब हो कि यह सब वे बीमारियों का इलाज़ करने के लिए कर रहे हैं। वे कहेंगे, 'जनेटिक इंजीनियरिंग की मदद से हम कैंसर को पराजित कर सकेंगे। और अगर हम मस्तिष्क और कम्प्यूटर को सीधे जोड़ सके, तो हम सिज़ोफ़्रेनिया का इलाज़ कर सकेंगे'। हो सकता है, लेकिन उसका सिलसिला निश्चय ही वहीं पर ख़त्म नहीं होगा। जब हम मस्तिष्कों और कम्प्यूटरों को कामयाबी के साथ आपस में जोड़ लेंगे, तो क्या हम इस प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल मात्र सिज़ोफ़्रेनिया का इलाज़ करने के लिए करेंगे? अगर कोई वाक़ई ऐसा मानता है, तो हो सकता है कि वह मस्तिष्कों और कम्प्यूटरों के बारे में बहुत कुछ जानता हो, लेकिन वह इंसान के मन और इंसानी समाज के बारे में बहुत कम जानता है। जैसे ही एक बार आपको महत्त्वपूर्ण कामयाबी मिल जाती है, तो यह मुमकिन ही नहीं है कि आप इसके उपयोग को इलाज़ तक सीमित रखते हुए उन्नत बनाने की प्रक्रिया के लिए उसके इस्तेमाल को पूरी तरह से वर्जित कर दें।

बेशक इंसान नई प्रौद्योगिकियों के अपने इस्तेमाल को सीमित कर सकते हैं। इसी लिहाज़ से यूजेनिक्स आन्दोलन ने दूसरे विश्वयुद्ध के बाद लोकप्रियता खो दी थी, और हालाँकि इंसानों के अंगों का व्यापार आज मुमकिन और ख़ासा लाभप्रद है, लेकिन अब तक यह एक हाशिये की गतिविधि ही बना रहा है। मुमकिन है कि डिज़ाइनरों द्वारा शिशुओं का गढ़ा जाना टेक्नॉलॉजी के स्तर पर एक दिन उसी तरह सहज सम्भाव्य हो जाए, जिस

तरह लोगों के अंगों को जमा करने के लिए लोगों की हत्याएँ की जाती हैं - तब भी यह गतिविधि हाशिये की ही बनी रहे।

ठीक जिस तरह हम युद्ध के खेल में चेख़व के नियम के शिकंजों से आज़ाद हो गए हैं, उसी तरह हम गतिविधि के दूसरे क्षेत्रों में भी इन शिकंजों से आज़ाद हो सकते हैं। मंच पर प्रकट होने वाली कुछ बन्दूक़ें कभी नहीं दागी जातीं। यही वजह है कि मनुष्य की नई कार्यसूची के बारे में सोचना बहुत महत्त्वपूर्ण है। निश्चित रूप से हमारे पास नई प्रौद्योगिकियों के इस्तेमाल को लेकर कुछ विकल्प हैं, इसलिए बेहतर होगा कि हम इस बात को समझें कि क्या हो रहा है और इसके पहले कि वह हमारे बारे में कोई फ़ैसले ले, हम उसके बारे में फ़ैसला करें।

ज्ञान का विरोधाभास

यह पूर्वानुमान कि इक्कीसवीं सदी में मानव जाति अमरता, परम सुख और दिव्यता को अपना लक्ष्य बना सकती है, कितने ही लोगों को नाराज़ कर सकता है, उनको हताश कर सकता है या डरा सकता है, इसलिए कुछ स्पष्टीकरण देना उचित होगा।

सबसे पहले तो यह कि यह काम इक्कीसवीं सदी में ज़्यादातर व्यक्ति नहीं करेंगे। यह काम मनुष्य जाति सामूहिक रूप से करेगी। ज़्यादातर लोगों की इन मुहिमों में अगर कोई भूमिका होगी भी, तो शायद छोटी-मोटी भूमिका ही होगी। अगर अकाल, महामारी और युद्ध की प्रबलता और भी कम हो जाती है, तब भी विकासशील देशों और फटेहाल पड़ोस के अरबों लोग ग़रीबी, बीमारी और हिंसा से जूझना जारी रखेंगे, जबकि उच्च वर्ग शाश्वत यौवन तथा देवतानुमा शक्तियों के क़रीब पहुँच रहा होगा। यह चीज़ साफ़ तौर पर अन्यायपूर्ण लगती है। आप तर्क दे सकते हैं कि जब तक एक भी बच्चा कुपोषण से मर रहा है या एक भी वयस्क ड्रग-लॉर्ड की जंग में मरता है, तब तक मनुष्यता को अपना पूरा ध्यान इन तबाहियों से लड़ने पर केन्द्रित करना चाहिए। जब आख़िरी जंग ख़त्म हो जाए, तभी हमें अगली बड़ी चीज़ की तरफ़ अपना ध्यान मोड़ना चाहिए, लेकिन इतिहास इस तरह काम नहीं करता। महलों में रहने वालों की कार्यसूचियाँ हमेशा उन लोगों की कार्यसूचियों से भिन्न होती हैं, जो झोपड़ियों में रह रहे होते हैं, और यह स्थिति इक्कीसवीं सदी में बदलेगी, इसकी कोई सम्भावना नहीं है।

दूसरा, यह एक ऐतिहासिक अनुमान है, कोई राजनैतिक घोषणा-पत्र नहीं है। अगर हम झुग्गियों में रहने वालों की नियति की उपेक्षा कर दें, तो भी यह बात समझ से परे है कि हमें अमरता, परम सुख और दिव्यता की तलाश में लगे रहना चाहिए। इन विशेष मुहिमों को अपनाना एक बहुत बड़ी भूल हो सकती है, लेकिन इतिहास भूलों से भरा हुआ है। हमारे अतीत के किए-घरे और हमारे मौजूदा मूल्यों को देखते हुए, पूरी सम्भावना इसी बात

की है कि हम परम सुख, दिव्यता और अमरता को हासिल करने की कोशिश कर रहे होंगे - भले ही यह कोशिश हमारी जान ही क्यों न ले ले।

तीसरा, कोशिश करने और हासिल करने में फ़र्क़ है। इतिहास अक्सर अतिरंजित उम्मीदों से आकार लेता रहा है। बीसवीं सदी के रूसी इतिहास को ग़ैरबराबरी को ख़त्म करने की साम्यवादी कोशिश से गढ़ा गया था, लेकिन वह इसमें कामयाब नहीं हुआ। मेरा अनुमान उस चीज़ पर केन्द्रित है, जिसे मानव जाति इक्कीसवीं सदी में हासिल करने की कोशिश करेगी, इस पर नहीं कि वह क्या हासिल करने में *कामयाब* होगी। हमारी भावी अर्थव्यवस्था, समाज और राजनीति मृत्यु को जीतने की कोशिश से आकार लेगी। इससे यह नतीजा नहीं निकलता कि 2100 में मनुष्य अमर हो जाएँगे।

चौथी, और सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि यह पूर्वानुमान भविष्यवाणी से उतना सम्बन्धित नहीं है, जितना हमारे आज के विकल्पों पर चर्चा करने के ढंग से सम्बन्धित है। अगर यह चर्चा हमें भिन्न ढंग से विकल्प चुनने की गुंजाइश देती, जिससे कि पूर्वानुमान ग़लत साबित हो जाता है, तो बहुत अच्छी बात है। ऐसे पूर्वानुमान करने से क्या फ़ायदा है अगर वे कोई बदलाव नहीं ला सकते?

कुछ जटिल क़िस्म की व्यवस्थाएँ, जैसे कि मौसम, हमारे पूर्वानुमानों से बेख़बर होती हैं। इसके विपरीत मानवीय विकास हमारे पूर्वानुमानों पर प्रतिक्रिया करता है। सच तो यह है कि हमारे पूर्वानुमान जितने बेहतर होते हैं, वे उतनी ही प्रतिक्रियाएँ पैदा करते हैं। इसी वजह से विरोधाभासी ढंग से जैसे-जैसे हम ज़्यादा से ज़्यादा आँकड़े एकत्र करते जाते हैं और हम अपनी संगणन शक्ति को बढ़ाते जाते हैं, घटनाएँ उतनी ही ज़्यादा प्रचण्ड और अनपेक्षित होती जाती हैं। जितना ही ज़्यादा हम जानते हैं, उतना ही कम पूर्वानुमान हम कर पाते हैं। उदाहरण के लिए, कल्पना कीजिए कि एक दिन विशेषज्ञ लोग अर्थव्यवस्था के बुनियादी नियमों को समझ लेते हैं। जैसे ही यह होगा, वैसे ही बैंक, सरकारें, निवेशक और ग्राहक इस ज्ञान का उपयोग अनूठे तरीक़ों से बरतने में करने लगेंगे, और अपने प्रतिद्वन्द्वियों से बेहतर स्थिति हासिल कर लेंगे, क्योंकि अगर नया ज्ञान अनूठे आचरणों का कारण नहीं बनता, तो ऐसे ज्ञान का क्या उपयोग है? आह, जैसे ही लोग अपने आचरण करने के ढंग को बदल लेते हैं, आर्थिक सिद्धान्त पुराने पड़ जाते हैं। हम यह तो जान सकते हैं कि अर्थव्यवस्था अतीत में किस तरह काम करती थी, लेकिन अब हम यह समझने की स्थिति में नहीं रह जाते कि वह वर्तमान में किस तरह काम करती है, भविष्य की तो छोड़िए।

यह कोई मनगढ़न्त उदाहरण नहीं है। उन्नीसवीं सदी के मध्य में कार्ल मार्क्स अर्थव्यवस्था के सन्दर्भ में विलक्षण अन्तर्दृष्टियों तक पहुँचे थे। इन अन्तर्दृष्टियों के आधार पर उन्होंने सर्वहारा और पूँजीपतियों के बीच एक ऐसे हिंसक टकराव का पूर्वानुमान किया

था, जिसका अन्त सर्वहारा वर्ग की जीत और पूँजीवादी व्यवस्था के ध्वंस में होना निश्चित था। मार्क्स को पक्का विश्वास था कि इस क्रान्ति की शुरुआत ब्रिटेन, फ़्रांस और संयुक्त राज्य अमेरिका जैसे उन देशों में होगी, जिन्होंने औद्योगिक क्रान्ति की अगुआई की थी, और फिर यह क्रान्ति बाक़ी दुनिया तक फैलेगी।

मार्क्स यह भूल गए थे कि पूँजीपतियों को पढ़ने का तरीक़ा आता था। शुरू में तो मार्क्स के मुट्ठीभर शिष्यों ने ही उनको गम्भीरता से लिया था और उनके लेखन को पढ़ा था, लेकिन जैसे ही इन समाजवादी क्रन्तिकारियों को समर्थक मिलते गए और शक्ति प्राप्त हुई, वैसे ही ये पूँजीपति चौकन्ने हो उठे। उन्होंने भी *दास कैपिटल* को पढ़कर मार्क्स की व्याख्या के बहुत सारे औज़ारों और अन्तर्दृष्टियों को अपना लिया। बीसवीं सदी में सड़क के छोकरों से लेकर राष्ट्रपतियों तक, सभी ने अर्थशास्त्र और इतिहास को लेकर मार्क्सवादी दृष्टिकोण को अपना लिया। यहाँ तक कि मार्क्सवादी पूर्वानुमानों का ज़ोरदार ढंग से विरोध करने वाले कट्टर पूँजीवादियों ने भी रोग के मार्क्सवादी निदानों का इस्तेमाल किया। जब 1960 के दशक में सीआईए ने वियतनाम या चिली में हालात का विश्लेषण किया, तो उसने समाज को वर्गों में विभाजित किया। जब निक्सन या थैचर भूमण्डल को देखते थे, तो वे ख़ुद से सवाल करते थे कि उत्पादन के आधारभूत साधनों को कौन नियन्त्रित करता है। 1989 से 1991 तक जॉर्ज बुश ने साम्यवाद के शैतानी साम्राज्य (ईविल एम्पायर) के पतन पर निगरानी रखी, जिसके बाद वे 1992 में बिल क्लिंटन के हाथों पराजित ही हुए। क्लिंटन की विजयी चुनावी मुहिम की रणनीति का सारसंक्षेप इस नीति-वाक्य में किया गया था: 'अरे बेवकूफ़, ये अर्थशास्त्र का मसला है'। ('इट इज़ इकॉनॉमी, स्टुपिड।') मार्क्स ने इससे बेहतर बात न कही होती।

मार्क्सवादी निदानों को अपनाते ही लोगों ने उनके अनुरूप अपने व्यवहार बदल लिए। ब्रिटेन और फ़्रांस जैसे देशों के पूँजीपतियों ने कामगारों के भाग्य को सँवारने, उनकी राष्ट्रीय चेतना को मज़बूती प्रदान करने और उनको राजनैतिक व्यवस्था के भीतर समाहित करने का उद्यम किया। नतीजतन, जब कामगारों ने चुनावों में मतदान करना शुरू किया, और श्रमिक एक के बाद एक मुल्कों में सत्ता में आते गए, तब भी पूँजीपति अपने बिस्तरों में चैन की नींद सोते रह सके। इसके परिणामस्वरूप, मार्क्सवादी पूर्वानुमान पूरी तरह ग़लत साबित हो गए। साम्यवादी क्रान्तियों ने ब्रिटेन, फ़्रांस और संयुक्त राज्य जैसी प्रमुख औद्योगिक शक्तियों को कभी नहीं निगला, और सर्वहारा की तानाशाही इतिहास के कूड़ेदान में पड़ी रह गई।

यह ऐतिहासिक ज्ञान का विरोधाभास है। ऐसा ज्ञान जो आचरण में बदलाव नहीं लाता, वह बेकार है, लेकिन जो ज्ञान आचरण में बदलाव लाता है, वह उतनी ही तेज़ी के साथ अप्रासंगिक हो जाता है। जितने ही ज़्यादा आँकड़े हमारे पास होते हैं और जितना ही

बेहतर ढंग से हम इतिहास को समझते हैं, उतनी ही तेज़ी के साथ इतिहास अपना रास्ता बदल लेता है और उतनी ही तेज़ी के साथ हमारा ज्ञान पुराना पड़ता जाता है।

सदियों पहले, मनुष्य के ज्ञान में धीमी गति से वृद्धि हुआ करती थी, इसलिए राजनीति और अर्थव्यवस्था में भी उतने ही इत्मीनान से बदलाव आते थे। आज हमारा ज्ञान अन्धाधुन्ध रफ़्तार से बढ़ रहा है, और इसलिए क़ायदे से दुनिया की हमारी समझ उत्तरोत्तर तीव्र गति से बढ़नी चाहिए, लेकिन इसका एकदम उलटा हो रहा है। हमारा नवीनतम ज्ञान तेज़ रफ़्तार आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक बदलावों का कारण बनता है, जो कुछ घटित हो रहा है, उसको समझने की कोशिश में हम ज्ञान के संचय को गति देते हैं, जिसके नतीजे में और भी तेज़ी-से तथा और भी बड़े स्तर के कायापलट घटित होते हैं। इसके परिणामस्वरूप हम वर्तमान को समझने में या भविष्य के बारे में पूर्वानुमान करने में उत्तरोत्तर कम सक्षम होते जाते हैं। 1016 में इस बात का पूर्वानुमान करना अपेक्षाकृत आसान था कि 1050 में यूरोप कैसा दिखेगा। निश्चय ही, राजवंशों का पतन हो सकता था, अज्ञात छापामार हमले कर सकते थे, और प्राकृतिक आपदाएँ घटित हो सकती थीं, तब भी यह बात स्पष्ट थी कि 1050 में भी यूरोप पर राजाओं और पुरोहितों की हुकूमत बरक़रार रहेगी, वह एक कृषि प्रधान समाज होगा, इसके अधिकांश बाशिन्दे किसान होंगे, और वह अकाल, महामारियों और युद्धों से बहुत ज़्यादा त्रस्त रहेगा। इसके विपरीत, 2016 में हमें इस बात का कोई अंदाज़ा नहीं है कि 2050 में यूरोप कैसा दिखेगा। हम कह नहीं सकते कि उसकी राजनैतिक व्यवस्था किस तरह की होगी, उसके रोज़गार के बाज़ार की संरचना कैसी होगी, या यहाँ तक कि इसके बाशिन्दों की कायाएँ किस तरह की होंगी।

उद्यानों का संक्षिप्त इतिहास

अगर इतिहास किन्हीं स्थिर नियमों के मुताबिक़ आगे नहीं बढ़ता, और अगर हम इसके भविष्य की दिशा का पूर्वानुमान नहीं कर सकते, तो फिर इसका अध्ययन किया ही क्यों जाए? अक्सर ऐसा लगता है कि विज्ञान का मुख्य लक्ष्य भविष्य का पूर्वानुमान करना है। मौसमविज्ञानियों से अपेक्षा की जाती है कि वे यह भविष्यवाणी करें कि कल बारिश होगी या धूप निकलेगी, अर्थशास्त्रियों को यह मालूम होना चाहिए कि मुद्रा के अवमूल्यन से आर्थिक संकट को टाला जा सकेगा या वह और भी ज़्यादा गहरा जाएगा, अच्छे डॉक्टरों को पूर्वानुमान करके कहना चाहिए कि क्या कीमोथेरेपी या रेडिएशन फेंफड़ों के कैंसर के इलाज़ में ज़्यादा कारगर हो सकेगा। इसी तरह इतिहासकारों से हमारे पूर्वजों के कृत्यों का परीक्षण करने को कहा जाता है, ताकि हम उनके विवेकपूर्ण निर्णयों को दोहरा सकें और उनकी ग़लतियों को दोहराने से बच सकें, लेकिन यह सब कभी कारगर नहीं होता, क्योंकि वर्तमान अतीत से बहुत ज़्यादा भिन्न होता है। दूसरे प्यूनिक युद्ध में हन्नीबल द्वारा अपनाई

गई युक्तियों का इसलिए अध्ययन करना कि तीसरे विश्व युद्ध में हम उनकी नक़ल कर सकेंगे, वक़्त की बर्बादी है। जो चीज़ घुड़सवार फ़ौजों की लड़ाई में कारगर रही थी, ज़रूरी नहीं कि साइबर युद्ध में उससे कोई फ़ायदा मिल सके।

विज्ञान का काम, हालाँकि, महज़ भविष्य का पूर्वानुमान करना नहीं है। तमाम क्षेत्रों के अध्येता अक्सर हमारे क्षितिज का विस्तार करने और इस तरह हमारे समक्ष नए और अज्ञात भविष्यों को खोलने की कोशिश करते हैं। यह बात ख़ासतौर से इतिहास के बारे में सच है, हालाँकि, इतिहासकार कभी-कभार भविष्यवाणियाँ करने के मामले में (किसी ख़ास उल्लेखनीय कामयाबी के बग़ैर) अपना हाथ आज़माने की कोशिश करते हैं, लेकिन इतिहास के अध्ययन का मुख्य लक्ष्य हमें उन सम्भावनाओं के प्रति जागरूक बनाना है, जिन पर हम सामान्यतः विचार नहीं करते। इतिहासकार अतीत का अध्ययन उसको दोहराने के लिए नहीं, बल्कि उससे मुक्त होने के लिए करते हैं।

हम में से प्रत्येक व्यक्ति एक प्रदत्त ऐतिहासिक वास्तविकता के भीतर जन्मा होता है, जिस वास्तविकता का कुछ ख़ास मानकों और मूल्यों द्वारा नियमन हुआ होता है, और एक अनूठी आर्थिक तथा राजनैतिक व्यवस्था द्वारा प्रबन्धन हुआ होता है। हम इस वास्तविकता को कोई ख़ास महत्त्व न देते हुए इसको स्वाभाविक, अपरिहार्य और अडिग मानकर चलते हैं। हम भूल जाते हैं कि हमारी दुनिया की रचना घटनाओं की एक संयोगजन्य शृंखला से हुई होती है, और यह कि इतिहास ने सिर्फ़ हमारी प्रौद्योगिकी, राजनीति और समाज को ही आकार नहीं दिया होता है, बल्कि हमारे विचारों, भयों और सपनों को भी गढ़ा होता है। हमारे पूर्वजों की क़ब्र से अतीत का ठिठुरा हुआ हाथ बाहर आता है, हमारी गर्दन को जकड़ता है और हमारी दृष्टि को एक एकल भविष्य की ओर मोड़ देता है। चूँकि इस जकड़न को हमने अपने जन्म के समय से ही अनुभव किया होता है, इसलिए हम इसको अपने वजूद का एक स्वाभाविक और अनिवार्य हिस्सा मान कर चलते हैं। इसलिए हम शायद ही कभी ख़ुद को उस जकड़न से आज़ाद करने, और वैकल्पिक भविष्यों की कल्पना करने की कोशिश करते हैं।

इतिहास के अध्ययन का उद्देश्य अतीत की जकड़न को ढीला करना है। यह हमें अपने सिर को यहाँ-वहाँ घुमाने और उन सम्भावनाओं को लक्ष्य करने की शुरुआत करने की गुंजाइश देता है, जिनकी कल्पना हमारे पूर्वज नहीं कर सके थे, या जिनकी कल्पना वे हमें नहीं करने देना चाहते थे। घटनाओं की जो संयोगजन्य शृंखला हमें यहाँ लेकर आई है, उसको लक्ष्य करते हुए हम इस बात को समझ पाते हैं कि स्वयं हमारे विचारों और सपनों ने किस तरह आकार लिया है और हम बिल्कुल अलग ढंग से सोचना और सपने देखना शुरू कर सकते हैं। इतिहास का अध्ययन हमें यह तो नहीं बताएगा कि किस तरह चुनाव किया जाए, लेकिन कम से कम वह हमें चुनने के लिए ज़्यादा विकल्प उपलब्ध कराता है।

दुनिया को बदलने की कामना करने वाले आन्दोलनों की शुरुआत अक्सर इतिहास को नए सिरे से लिखने के साथ होती है, जो लोगों को भविष्य की नई तरह से कल्पना करने में सक्षम बनाती है। चाहे आप यह चाहते हों कि कामगार आम हड़ताल पर चले जाएँ, चाहे आप यह चाहते हों कि स्त्रियों का उनके शरीर पर स्वामित्व हो, या चाहे आप यह चाहते हों कि दलित अल्पसंख्यक अपने राजनैतिक हक़ों की माँग करें, इन सबके लिए पहला क़दम है इतिहास का नए सिरे से लिखा जाना। यह नया इतिहास स्पष्ट करेगा कि 'हमारे मौजूदा हालात न तो क़ुदरती हैं, न शाश्वत हैं। एक समय था, जब स्थितियाँ भिन्न हुआ करती थीं। सिर्फ़ संयोगपरक घटनाओं की एक शृंखला ने ही उस अन्यायपूर्ण दुनिया को रचा है, जिसे हम आज जानते हैं। अगर हम अक़्लमन्दी के साथ काम करें, तो हम उस दुनिया को बदल सकते हैं, और एक कहीं ज़्यादा बेहतर दुनिया का निर्माण कर सकते हैं'। यही वजह है कि मार्क्सवादी पूँजीवाद के इतिहास का विस्तार से बयान करते हैं, यही वजह है कि नारीवादी पितृसत्तात्मक समाजों की उत्पत्ति का अध्ययन करते हैं, और यही वजह है कि अफ़्रीकी अमेरिकी ग़ुलामों के व्यापार की भयावहता का स्मरण करते हैं। इन सबका उद्देश्य अतीत को यादगार बनाए रखना नहीं होता, बल्कि उससे मुक्ति पाना होता है।

जो बात महान सामाजिक क्रान्तियों के बारे में सही है, वही रोज़मर्रा के जीवन के सूक्ष्म स्तर पर भी लागू होती है। एक नौजवान युगल अपने लिए नया घर बनवाते हुए आर्किटेक्ट से अहाते के सामने एक अच्छा-सा लॉन बनाने का आग्रह कर सकता है। लॉन क्यों? 'क्योंकि लॉन सुन्दर होते हैं,' वह युगल कह सकता है, लेकिन वे ऐसा क्यों सोचते हैं? क्योंकि उसके पीछे एक इतिहास है।

पाषाण युग के शिकारी-संग्रहकर्ता अपनी कन्दराओं के प्रवेश द्वार पर घास की खेती नहीं करते थे। ऐसा कोई चारागाह नहीं था, जो एथेनियाई एक्रोपोलिस, रोमन कैपिटोल, यरुशलम के यहूदी देवस्थल या बीजिंग के निषिद्ध नगर आने वाले आगन्तुकों का स्वागत करता। निजी आवासों और सार्वजनिक इमारतों के प्रवेश-द्वार पर लॉन विकसित करने का विचार मध्य युग में फ़्रांसीसियों तथा अँग्रेज़ कुलीनों के क़िलों में जन्मा था। शुरुआती आधुनिक युग में इस आदत ने गहरी जड़ें जमाईं, और यह अभिजात वर्ग की ख़ास पहचान बन गई।

सुव्यवस्थित लॉन ज़मीन की और ढेर सारे काम की माँग करते थे, ख़ासतौर से उससे पहले के दिनों में, जब घास काटने की मशीनें और पानी का छिड़काव करने वाले स्वचालित उपकरण नहीं हुआ करते थे। बदले में, वे कोई मूल्यवान चीज़ नहीं उपजाते थे। आप उन पर जानवरों तक को नहीं चरा सकते थे, क्योंकि वे घास को खाते और उसको रौंद देते। ग़रीब किसान लॉनों पर अपनी क़ीमती ज़मीन और वक़्त बर्बाद नहीं कर सकते थे। इसलिए सामन्ती क़िलों के प्रवेश-द्वार पर विशुद्ध घास के मैदान प्रतिष्ठा के ऐसे प्रतीक

हुआ करते थे, जिनकी नक़ल कोई नहीं कर सकता था। वह आने-जाने वालों के सामने पूरी दबंगई के साथ यह दावा करता था: 'मैं इतना धनवान और ताक़तवर हूँ, और मेरे पास खेत जोतने वाले इतने दास हैं कि मैं इस हरियाले वैभव को जुटाने में सहज समर्थ हूँ'। लॉन जितना ही बड़ा और स्वच्छ होता था, उतना ही वह राजवंश शक्तिशाली होता था। अगर आप किसी ड्यूक के घर जाते और उसके लॉन को बुरी हालत में देखते, तो आप समझ जाते कि वह ड्यूक मुश्किल हालात से गुज़र रहा है।

यह बेशक़ीमती लॉन अक्सर महत्त्वपूर्ण उत्सवों और सामाजिक कार्यक्रमों के आयोजनों का स्थल हुआ करता था, बाक़ी सारे समय दूसरे लोगों के लिए सख़्त रूप से प्रतिबन्धित होता था। आज दिन तक, असंख्य महलों, सरकारी इमारतों और सार्वजनिक स्थलों पर लगे साइनबोर्ड लोगों को 'घास से दूर रहने की' सख़्त हिदायत देते हैं। मेरे पूर्व ऑक्सफ़ोर्ड कॉलेज में समूचा अहाता विशाल, आकर्षक लॉन से निर्मित हुआ करता था, जिस पर हमें साल में सिर्फ़ एक दिन चलने या बैठने की इजाज़त हुआ करती थी। अन्य दिनों में बेचारे उस छात्र की शामत आ जाती थी, जिसने घास के उस पवित्र मैदान को अपने पैरों से गन्दा कर दिया होता था।
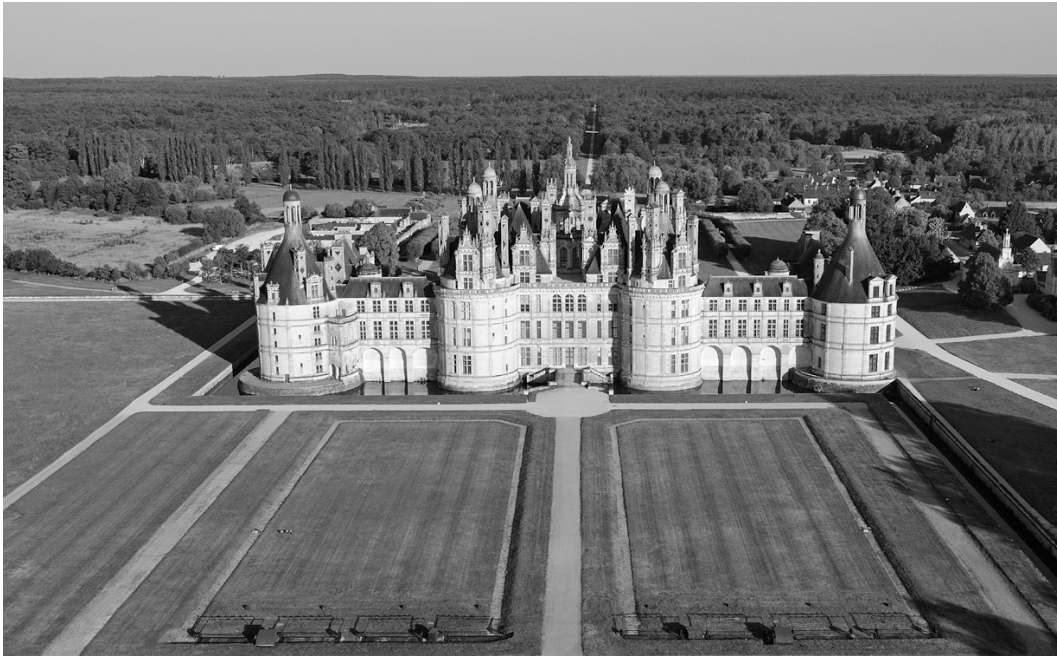
6. लुआख़ वैली में शातो दे शम्बोख़ का लॉन। किंग फ़्राँस्वा प्रथम ने इसका निर्माण सोलहवीं सदी की शुरुआत में कराया था। यही है, जिसके साथ इस सबकी शुरुआत हुई।

7. वाइट हाउस लॉन में क़्वीन एलिज़ाबेथ II के सम्मान में आयोजित स्वागत-समारोह।

8. माराकाना लॉन में 2014 में जर्मनी को विश्व कप प्रदान करने वाला निर्णायक गोल करते हुए मारियो गोट्ज़े।

9. पेटी-बूर्ज़्वा का स्वर्ग।

शाही महलों और सामन्ती क़िलों ने लॉनों को प्रभुत्व के प्रतीक में बदल दिया। जब परवर्ती आधुनिक काल में राजाओं को राजगद्दी से हटा दिया गया और सामन्तों के सिर क़लम कर दिए गए, तो नए राष्ट्रपति और प्रधानमन्त्री लॉन रखने लगे। संसदें, सर्वोच्च न्यायालय, राष्ट्रपति भवन और अन्य सार्वजनिक इमारतें स्वच्छ हरी पत्तियों की अनेक

कतारों में उत्तरोत्तर अपनी शक्ति की उद्घोषणा करती गईं। इसी के साथ-साथ लॉनों ने खेलों की दुनिया को भी जीत लिया। हज़ारों सालों से मनुष्य बर्फ़ से लेकर रेगिस्तान तक हर तरह के कल्पनीय मैदानों में खेलते आ रहे थे, लेकिन पिछली दो सदियों में वास्तविक महत्त्वपूर्ण खेल, जैसे कि फ़ुटबॉल और टेनिस घास के मैदानों में खेले जाते रहे हैं। बशर्ते, ज़ाहिर है, आपके पास पैसा हो। रियो डि जनेरियो के फ़ावेलाओं (झुग्गियों) में ब्राजीलीय फ़ुटबॉल की भावी पीढ़ी रेत और मिट्टी पर कामचलाऊ गेदों से खेल रही है, लेकिन समृद्ध उपनगरों में रईसों के बेटे उत्तम तरीक़े से तैयार लॉनों का आनन्द लेते हैं।

इस तरह मनुष्यों ने लॉन को राजनैतिक शक्ति, सामाजिक हैसियत और आर्थिक समृद्धि से जोड़ लिया। आश्चर्य की बात नहीं कि उन्नीसवीं सदी में उभरते हुए बूर्ज़्वा वर्ग ने पूरे उत्साह के साथ लॉन को अपनाया। शुरू में अपने निजी आवासों पर इस तरह की विलासिता सिर्फ़ बैंककर्मियों, वकीलों और उद्योगपतियों के बूते की ही बात हुआ करती थी, लेकिन जब औद्योगिक क्रान्ति ने मध्य वर्ग का विस्तार किया और घास काटने की मशीनों तथा पानी के छिड़काव के स्वचालित उपकरणों को जन्म दिया, तो लाखों परिवार अचानक घरेलू लॉनों का रख-रखाव करने में समर्थ हो गए। अमेरिकी उपनगरों में स्वच्छ और सुव्यवस्थित लॉन रईस आदमी की विलासिता से मध्यवर्ग की ज़रूरत में बदल गए।

यह तब हुआ, जब उपनगरीय गिरजाघरों की पूजन-पद्धति में एक नए अनुष्ठान का योग हुआ। गिरजाघर में इतवार की सुबह की उपासना के बाद बहुत सारे लोग समर्पित भाव से अपने लॉनों की घास काटने-छाँटने लगे। सड़कों पर चलते हुए आप तत्काल किसी भी परिवार के लॉन के आकार और ख़ासियत से उस परिवार की समृद्धि और हैसियत का निश्चय कर सकते थे। जॉनेस परिवार किसी मुसीबत में फँसा है, इस बात को जानने का उनके घर के सामने के हिस्से के उपेक्षित पड़े लॉन से ज़्यादा पक्का संकेत और कुछ नहीं हो सकता। संयुक्त राज्य अमेरिका में घास आज मक्का और गेहूँ के बाद सबसे व्यापक फ़सल है, और लॉन उद्योग (पौधे, खाद, घास काटने की मशीनें, पानी छिड़कने के उपकरण, माली) सालाना अरबों डॉलर का व्यापार करता है।

लॉन पूरी तरह से यूरोपीय या अमेरिकी जुनून नहीं रहा। जिन लोगों ने कभी लुआख़ वैली का भ्रमण नहीं किया, वे भी संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति का भाषण सुनने वाइट हाउस के लॉन में जाते हैं, हरे स्टेडियमों में महत्त्वपूर्ण फ़ुटबॉल खेल खेले जाते हैं, और घास को काटने-छाँटने की बारी किसकी है, इस बात को लेकर होमर तथा बार्ट सिम्पसन आपस में झगड़ते हैं। सारी दुनिया के लोग लॉनों को सत्ता, पैसे और प्रतिष्ठा से जोड़कर देखते हैं। इसलिए लॉन दूर-दूर तक और हर तरफ़ फैल चुके हैं, और मुस्लिम दुनिया का दिल जीतने की तैयारी में हैं। क़तर का नया-नया स्थापित म्यूज़ियम ऑफ़ इस्लामिक आर्ट ऐसे भव्य लॉनों से घिरा हुआ है, जो हारून अल-रशीद के बग़दाद से

ज़्यादा लुई चौदहवें के वर्साइल की याद दिलाते हैं। इनका आकल्पन और निर्माण एक अमेरिकी कम्पनी द्वारा किया गया था, और उनकी 100,000 वर्ग गज़ में फैली घास - अरब के रेगिस्तान के बीचोंबीच - हरी बनी रहने के लिए ताज़ा पानी की अतिविशाल मात्रा की माँग करती है। इस बीच, दोहा और दुबई के उपनगरों में मध्यवर्गीय परिवार अपने लॉनों पर गर्व करने लगे हैं। अगर वहाँ सफ़ेद चोगे और काले हिजाब दिखाई न देते होते, तो आप आसानी-से ऐसा सोच सकते थे कि आप मध्य पूर्व की बजाय मध्यपश्चिम में कहीं पर हैं।

लॉन का यह संक्षिप्त इतिहास पढ़ चुकने के बाद, अब आप जब अपने सपनों का मकान तैयार करने की योजना बना रहे होंगे, तब आप मुमकिन है कि सामने के परिसर में लॉन बनाने के बारे में दो बार सोचें। बेशक, आप अभी भी यह करने के लिए स्वतन्त्र हैं, लेकिन आप उस सांस्कृतिक बोझ को झटककर अलग करने के लिए भी स्वतन्त्र हैं, जो यूरोपीय सामन्तों, पूँजीपति मुग़लों और सिम्प्सनों ने आपको वसीयत में दिया है और आप अपने लिए एक जापानी रॉक गार्डन, या किसी सर्वथा नई चीज़ की कल्पना कर सकते हैं। इतिहास का अध्ययन करने की यह श्रेष्ठतम वजह है: भविष्य का पूर्वानुमान करने के लिए नहीं, बल्कि अपने आपको अतीत से मुक्त करने और वैकल्पिक नियतियों की कल्पना करने के लिए। बेशक, यह पूर्ण स्वतन्त्रता नहीं है - हम अतीत के हाथों गढ़े जाने से बच नहीं सकते। कोई स्वतन्त्रता न होने से कुछ स्वतन्त्रता होना बेहतर है।

पहले अंक में बन्दूक

इस पुस्तक में जिन सारे पूर्वानुमानों की बौछार की गई है, वे वर्तमान युग की दुविधाओं पर चर्चा करने की कोशिश और भविष्य को बदलने के आमन्त्रण से ज़्यादा कुछ नहीं हैं। यह पूर्वानुमान करना कि मानव जाति अमरता, परम सुख और दिव्यता हासिल करने की कोशिश करेगी, काफ़ी कुछ उसी तरह का पूर्वानुमान है कि मकान बनाने वाले लोग अपने घर के सामने के अहाते में एक लॉन तैयार करना चाहेंगे। यह काफ़ी सम्भावित प्रतीत होता है, लेकिन जैसे ही आप इस बात को मुखर ढंग से कहते हैं, वैसे ही आप विकल्पों के बारे में सोचना शुरू कर सकते हैं।

अमरता और दिव्यता के सपनों से लोग अचम्भित इसलिए नहीं हैं कि ये बहुत ज़्यादा विजातीय और असम्भाव्य प्रतीत होते हैं, बल्कि इसलिए कि आमतौर से इस क़दर दो-टूक ढंग से बात नहीं की जाती, लेकिन जब वे इसके बारे में सोचना शुरू करते हैं, तो ज़्यादातर लोगों को समझ में आ जाता है कि इस बात में बहुत दम है। इन सपनों की टेक्नॉलॉजिकल हेकड़ी के बावजूद, विचारधारात्मक स्तर पर ये पुरानी पड़ चुकी ख़बरें हैं। पिछले 300 सालों से दुनिया पर उस मानववाद का वर्चस्व है, जो जीवन, सुख और *होमो सेपियन्स* की ताक़त का पवित्रीकरण करता है। अमरता, परम सुख और दिव्यता हासिल करने की

कोशिश दीर्घकालिक मानववादी आदर्शों को महज़ उनके तार्किक निष्कर्ष तक ले जाने वाली है। ये उस चीज़ को खुलेआम मेज़ पर रख देती है, जिसे हम लम्बे अरसे से अपने नैपकिन के तले छिपाए रहे हैं।

लेकिन अब मैं मेज़ पर एक दूसरी चीज़ रखना चाहूँगा: एक बन्दूक़। जो बन्दूक़ नाटक के पहले अंक में प्रकट होती है, उसको तीसरे अंक में दागने के लिए। आगामी अध्याय इस पर चर्चा करते हैं कि मानववाद, यानी मानव जाति की उपासना ने किस तरह दुनिया पर विजय प्राप्त की है, लेकिन मानववाद के उदय में उसके पतन के बीज भी समाहित हैं। जहाँ मनुष्यों को देवताओं के रूप में पदोन्नत करने की कोशिश मानववाद को उसकी तार्किक परिणति तक ले जाती है, वहीं वह इसी के साथ-साथ मानववाद के अन्तर्निहित खोटों को भी उजागर करती है। अगर आप एक खोटे आदर्श के साथ शुरुआत करते हैं, तो आप अक्सर उसकी खामियों को तभी स्वीकार करते हैं, जब वह आदर्श अमल में आने के क़रीब होता है।

इस प्रक्रिया को हम पहले ही वृद्धों के अस्पतालों के वॉर्डों में कार्यरत देख सकते हैं। मनुष्य के जीवन की पवित्रता में एक अटल मानववादी विश्वास के चलते, हम लोगों को तब तक ज़िन्दा रखते हैं, जब तक कि वे इतनी दर्दनाक हालत में नहीं पहुँच जाते कि हम पूछने को विवश हो जाते हैं कि 'यहाँ इतना पवित्र आख़िर क्या है?' इसी तरह के मानववादी विश्वासों के चलते, इक्कीसवीं सदी में हमारे द्वारा समूची मानव जाति को उसकी सीमाओं से परे धकेलने की सम्भावना है। जो प्रौद्योगिकियाँ मनुष्यों को देवताओं के रूप में पदोन्नत कर सकती हैं, वे ही मनुष्य को अप्रासंगिक भी बना सकती हैं। उदाहरण के लिए, बुढ़ापे और मृत्यु के तन्त्रों को समझने और उनको जीतने में सक्षम कम्प्यूटर किसी भी तरह के उद्यम या सभी उद्यमों में मनुष्यों को हटा कर स्वयं उनकी जगह लेने की दृष्टि से भी पर्याप्त सक्षम होंगे।

इसलिए इक्कीसवीं सदी की असल कार्यसूची उससे कहीं ज़्यादा पेचीदा होने वाली है, जितने का संकेत इस लम्बे शुरुआती अध्याय में किया गया है। फ़िलहाल ऐसा लग सकता है कि अमरता, परम सुख और दिव्यता हमारी कार्यसूची के शीर्ष पर हैं, लेकिन जैसे ही हम इन लक्ष्यों को हासिल करने के क़रीब पहुँचेंगे, वैसे ही इसकी पूरी सम्भावना है कि उसके परिणामस्वरूप होने वाली उथल-पुथल हमारा ध्यान नितान्त भिन्न गन्तव्यों की दिशा में मोड़ दे। जिस भविष्य का वर्णन इस अध्याय में किया गया है, वह महज़ अतीत का भविष्य है, यानी उन विचारों और उम्मीदों पर आधारित भविष्य, जिनका वर्चस्व दुनिया पर पिछले 300 सालों से क़ायम रहा है। वास्तविक भविष्य, यानी इक्कीसवीं सदी के विचारों और उम्मीदों से जन्मा भविष्य पूरी तरह से भिन्न हो सकता है।

इस सब को समझने के लिए हमें वापस जाकर यह जाँचने की ज़रूरत है कि *होमो सेपियन्स* वास्तव में कौन है, मानववाद दुनिया का प्रभावशाली मज़हब कैसे बना, और क्यों मानववादी स्वप्न को साकार करने की कोशिश शायद उसके विघटन का कारण बन सकती है। यह इस पुस्तक की बुनियादी योजना है।

इस बात को समझने की कोशिश में कि वह क्या चीज़ है, जो हमारी प्रजाति को इतना विशिष्ट बनाती है, पुस्तक का पहला भाग *होमो सेपियन्स* और दूसरे पशुओं के बीच के रिश्तों की पड़ताल करता है। कुछ पाठक यह सोच सकते हैं कि भविष्य के बारे में लिखी गई एक पुस्तक में पशुओं पर इतना ध्यान क्यों दिया जा रहा है। मेरी दृष्टि में मानव जाति की प्रकृति और भविष्य के बारे में आप तब तक कोई गम्भीर चर्चा नहीं कर सकते, जब तक कि आप इस चर्चा की शुरुआत हमारे साथी पशुओं के साथ नहीं करते। होमो सेपियन्स ने इस तथ्य को भुलाने की भरसक कोशिश की है, लेकिन वह एक पशु है। एक ऐसे वक़्त में जब हम ख़ुद को देवताओं में बदलने की कोशिश कर रहे हैं, हमारा अपने उद्गमों को याद करना दोहरा महत्त्व रखता है। हमारे दैवीय भविष्य की कोई भी पड़ताल हमारे स्वयं के पशुपरक अतीत या अन्य पशुओं के साथ हमारे रिश्तों की उपेक्षा नहीं कर सकती, क्योंकि मनुष्यों और पशुओं के बीच का रिश्ता अतिमानवों और मानवों के बीच के भावी रिश्तों के लिए हमारे पास सबसे अच्छा मॉडल है। आप जानना चाहते हैं कि अति-बुद्धिमान साइबोर्ग हाड़-मांस के बने साधारण मनुष्यों के साथ किस तरह का बरताव कर सकते हैं? तब बेहतर होगा कि इसकी शुरुआत आप इस बात की पड़ताल के साथ करें कि मनुष्य अपने कम अक़्लमन्द पशु चचेरे भाई-बहनों के साथ किस तरह का बरताव करते हैं। बेशक यह एकदम सटीक उपमा नहीं है, लेकिन ऐसी सर्वश्रेष्ठ कसौटी है, जिसकी महज़ कल्पना करने की बजाय, जिसको हम वास्तव में अपना सकते हैं।

इस पहले भाग के निष्कर्षों के आधार पर, पुस्तक का दूसरा भाग उस अद्भुत दुनिया का परीक्षण करता है, जिसे *होमो सेपियन्स* ने पिछली सहस्राब्दियों में रचा है, और उस रास्ते का परीक्षण करता है, जो हमें हमारे वर्तमान चौराहे तक लेकर आया है। *होमो सेपियन्स* उस मानववादी धर्म-मत पर किस तरह विश्वास करने लगा, जिसके मुताबिक़ यह ब्रह्माण्ड मानव जाति के इर्द-गिर्द चक्कर लगाता है और मनुष्य समस्त अर्थ और प्रभुत्व का स्रोत है? इस धर्म-मत के आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक निहितार्थ क्या हैं? किस तरह यह हमारे रोज़मर्रा के जीवन, हमारी कला और हमारी सर्वाधिक गुप्त आकांक्षाओं को शक्ल देता है?

पुस्तक का तीसरा और अन्तिम भाग इक्कीसवीं सदी के आरम्भिक दौर पर वापस आता है। मानव जाति और मानववादी धर्म-मत की अधिक गहरी समझ पर आधारित यह भाग हमारी मौजूदा हालत और हमारे सम्भावित भविष्यों का वर्णन करता है। मानववाद के

क्रियान्वयन की कोशिश क्यों उसके पतन का कारण बन सकती है? अमरता, परम सुख और दिव्यता की खोज क्यों मानववाद में हमारी आस्था की बुनियादों को हिला सकती है? वे कौन-से संकेत हैं, जो इस उथल-पुथल की भविष्यवाणी करते हैं, और किस तरह ये हमारे रोज़ाना के निर्णयों में प्रतिबिम्बित होते हैं? और अगर मानववाद वाक़ई ख़तरे में है, तो वह क्या चीज़ है, जो इसकी जगह ले सकती है? पुस्तक के इस भाग में निरा चिन्तन या व्यर्थ का भविष्य-कथन नहीं है। इसकी बजाय, यह आने वाली परिस्थितियों के सुराग़ों की टोह लेने की कोशिश में हमारे स्मार्टफ़ोनों, हमारे मुलाक़ातों सम्बन्धी दस्तूरों और हमारे रोज़गार बाज़ार का परीक्षण करता है।

मानववाद में सच्ची आस्था रखने वालों के लिए यह सब बहुत ही निराशावादी और अवसादजनक लग सकता है, लेकिन बहुत अच्छा है कि नतीजों पर पहुँचने की जल्दबाज़ी न की जाए। इतिहास अनेक मज़हबों, साम्राज्यों और संस्कृतियों के उत्थान और पतन का गवाह रहा है। इस तरह की उथल-पुथल अनिवार्यतः बुरी नहीं होती। मानववाद दुनिया पर 300 सालों से अपना प्रभुत्व क़ायम रखता आया है, जो कि कोई बहुत लम्बा समय नहीं है। फ़ैरो ने मिस्र पर 3,000 सालों तक शासन किया था, और पोप का यूरोप पर एक हज़ार वर्ष तक प्रभुत्व क़ायम रहा। अगर आपने रामसेस II के ज़माने में किसी मिस्रवासी से कहा होता कि एक दिन आएगा जब फ़ैरो जाते रहेंगे, तो वह शायद हक्का-बक्का रह गया होता। 'बिना फ़ैरो के हम कैसे रह सकते हैं? कौन होगा, जो व्यवस्था, शान्ति और न्याय की गारंटी दे सकेगा?' अगर आपने मध्य युग के लोगों से कहा होता कि कुछ ही सदियों के भीतर देवता नहीं रहेगा, तो वे दहशत से भर उठे होते। 'हम देवता के बिना कैसे रह सकते हैं? कौन है, जो हमारे जीवन को अर्थ देगा और अराजकता से हमारी रक्षा करेगा?'

वापस मुड़कर देखने पर बहुत-से लोग ऐसा सोचते हैं कि फ़ैरो का पतन और देवता की मृत्यु, दोनों ही सकारात्मक घटनाएँ थीं। हो सकता है मानववाद का ध्वस्त होना भी हितकारी हो। लोग आमतौर से परिवर्तन से घबराते हैं, क्योंकि वे अज्ञात परिणाम से डरते हैं, लेकिन इतिहास का एकमात्र स्थायी नियम यह है कि हर चीज़ में परिवर्तन आता है।

10. एक शेर का वध करता हुआ असीरिया का राजा अशुरबनिपल: जीव-जगत पर प्रभुत्व।

भाग-I

दुनिया पर *होमो सेपियन्स* की विजय

मनुष्य और दूसरे जीवधारियों में
क्या फ़र्क़ है?
हमारी प्रजाति ने दुनिया को कैसे जीता?
क्या होमो सेपियन्स एक श्रेष्ठतर जीवन-रूप है,
या महज़ एक स्थानीय गुण्डा है?

2
मनुष्यता का युग

अन्य जीवधारियों के सन्दर्भ में मनुष्य बहुत पहले से देवता बन चुके हैं। हम इस पर बहुत गहराई से विचार करना पसन्द नहीं करते, क्योंकि हम ठीक-ठीक ढंग से न्यायपूर्ण और दयालु देवता नहीं रहे हैं। अगर आप नेशनल जियोग्राफ़िक चैनल देखें, डिज़नी फिल्म देखने जाएँ या कोई परीकथा पढ़ें, तो आप आसानी से यह महसूस करेंगे कि पृथ्वी ग्रह मुख्यतः शेरों, भेड़ियों और बाघों से आबाद है, जो कि हम मनुष्यों के बराबर के जोड़ीदार हैं। बाघों के राजा सिम्बा का जंगल के जानवरों पर दबदबा होता है, लिटिल रेड राइडिंग हुड बिग बेड वोल्फ़ से बचकर रहने की कोशिश करता है, और छोटा-सा मोगली बहादुरी के साथ शेर खान से टक्कर लेता है, लेकिन वास्तविकता में वे अब वहाँ नहीं हैं। हमारे टेलिविज़न, पुस्तकें, कल्पनाएँ और दुःस्वप्न अभी भी उनसे भरे हैं, लेकिन हमारे ग्रह के सिम्बा, शेर खान और बिग बेड वोल्फ़ लुप्त हो रहे हैं। दुनिया मुख्यतः मनुष्यों और उनके पालतू जानवरों से आबाद है।

ग्रिम ब्रदर्स, लिटिल रेड राइडिंग हुड और बिग बेड वोल्फ़ के देश जर्मनी में कितने भेड़िये रहते हैं? सौ से भी कम। (और ये भी ज़्यादातर पोलैंड के भेड़िये हैं, जो हाल ही के वर्षों में चोरी छिपे सीमा पार कर घुस आए हैं।) इसके विपरीत, जर्मनी 50 लाख पालतू कुत्तों का घर है। कुल मिलाकर, लगभग 200,000 जंगली भेड़िये अभी भी पृथ्वी पर घूमते हैं, लेकिन इसी दुनिया में 40 करोड़ पालतू कुत्ते हैं। दुनिया में 60 करोड़ घरेलू बिल्लियों के मुक़ाबले 40,000 शेर हैं, 900,000 अफ़्रीकी भैंसों के मुक़ाबले 1.5 अरब पालतू गायें हैं, 5 करोड़ पेंगुइन और 20 अरब चूज़े (चिकिन) हैं। 1970 के बाद से, उत्तरोत्तर बढ़ती पारिस्थितिपरक जागरूकता के बावजूद वन्य-जीवन की आबादी आधी रह गई है (यह नहीं कि वे 1970 में फल-फूल रहे थे)। 1980 में यूरोप में 2 अरब जंगली

परिन्दे थे। 2009 में मात्र 1.6 अरब रह गए। इसी साल में यूरोपियनों ने मांस और अण्डों के लिए 1.9 अरब चूजे पैदा किए। इस समय, दुनिया के 90 प्रतिशत से ज़्यादा बड़े जन्तु (यानी, वे जिनका वज़न कुछ पौंड से ज़्यादा है) या तो मनुष्य हैं या पालतू जानवर।

वैज्ञानिक हमारे ग्रह के इतिहास को युगों में विभाजित करते हैं, जैसे कि प्रातिनूतन युग (प्लाइस्टोसीन), अतिनूतन युग (प्लाइओसीन) और मध्यनूतन युग (माइअॅसीन)। आधिकारिक तौर पर हम नूतनतम (होलोसीन) युग में रहते हैं, लेकिन शायद बेहतर होगा अगर हम 70,000 सालों को नृतात्त्विक युग (एन्थ्रोपोसीन), यानी मनुष्यता का युग की संज्ञा दें, क्योंकि इन सहस्राब्दियों के दौरान *होमो सेपियन्स* भूमण्डलीय पारिस्थितिकी (इकॉलॉजी) में आए बदलाव का अकेला सबसे महत्त्वपूर्ण कारक रहा है।

यह एक अपूर्व घटना है। लगभग 4 अरब साल पहले हुए जीवन के अभ्युदय के बाद से कभी ऐसा नहीं हुआ था, जब किसी एक जीव-प्रजाति ने पूरी तरह अकेले अपनी दम पर भूमण्डल की पारिस्थितिकी को बदल दिया हो, हालाँकि पारिस्थितिकीय क्रान्तियों और सामूहिक विलुप्ति की घटनाओं की कमी नहीं रही, लेकिन इन क्रान्तियों और घटनाओं को किसी गिरगिट, चमगादड़ या फफूँद ने अंजाम नहीं दिया था। इसकी बजाय, इनके पीछे जलवायु-परिवर्तन, टेक्टॉनिक परतों (पृथ्वी की अन्दरूनी संरचनात्मक परतों) की हलचल, ज्वालामुखीय विस्फोट और क्षुद्रग्रहों (एस्टरॉइड्स) का टकराव महाशक्तिशाली प्राकृतिक बल रहे हैं।
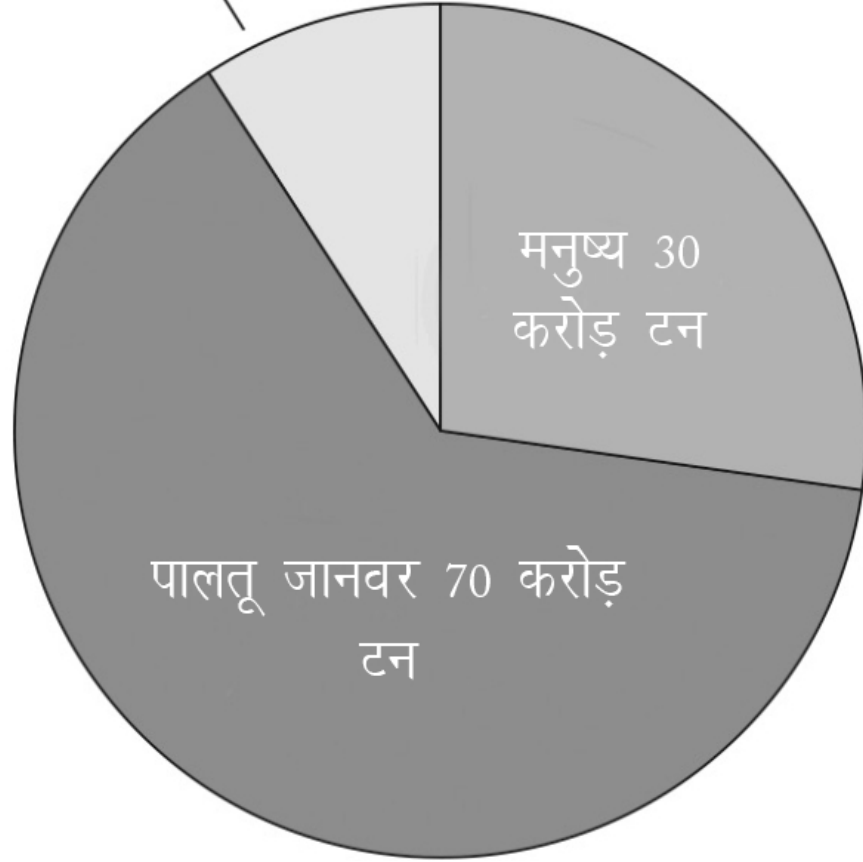
11. विशाल प्राणियों के भूमण्डलीय जैव भार का पाइ चार्ट।

कुछ लोगों को डर है कि हम एक बार फिर भीषण ज्वालामुखीय विस्फोटों या क्षुद्रग्रहों के टकराव के विनाशकारी ख़तरे के सामने हैं। हॉलीवुड के निर्माता इन अन्देषों का लाभ उठाते हुए अरबों डॉलर कमाते हैं, लेकिन वास्तविक स्थिति यह है कि यह ख़तरा बहुत ही दुर्बल है। सामूहिक विलुप्ति की घटना कई-कई लाख वर्षों के अन्तराल से एक बार घटित होती है। हाँ, कोई विशाल क्षुद्रग्रह शायद हमारे ग्रह से 10 करोड़ सालों में कभी टकराएगा, लेकिन अगले मंगलवार को इस तरह की किसी घटना की कोई आशंका नहीं है। हमें क्षुद्रग्रहों से डरने की बजाय ख़ुद से डरना चाहिए।

क्योंकि *होमो सेपियन्स* खेल के नियमों का पुनर्लेखन कर चुका है। यह अकेली वानर प्रजाति 70,000 सालों के भीतर भूमण्डल के पारिस्थितिकीय तन्त्र को मूलगामी और अपूर्व तरीक़ों से बदलने में कामयाब रही है। हमारा प्रभाव पहले ही हिम युगों और टेक्टॉनिक हलचलों से कहीं ज़्यादा प्रबल रहा है। एक सदी के भीतर हमारा प्रभाव उस

क्षुद्रग्रह को मात कर देगा, जिसने 6.5 करोड़ वर्ष पहले डायनासॉरों को ख़त्म कर दिया था।

उस क्षुद्रग्रह ने पृथ्वी की विकास-प्रक्रिया के प्रक्षेप-पथ को तो बदल दिया था, लेकिन उसके उन बुनियादी नियमों को नहीं बदला था, जो 4 अरब वर्ष पहले हुए प्रथम जीव के उद्भव के समय से ही जस के तस बने रहे थे। उन तमाम युगों के दौरान, चाहे आप कोई वाइरस रहे हों या डायनासॉर, आपका विकास प्राकृतिक वरण के अपरिवर्तनीय नियमों के मुताबिक़ होता था। इसके अतिरिक्त, जीवन ने किसी भी तरह के विचित्र और विलक्षण रूपाकार क्यों न लिए हों, वह जैविक क्षेत्र तक ही सीमित रहा था, आप चाहे कैक्टॅस रहे हों या ह्वेल, आपकी रचना जैविक घटकों से ही हुआ करती थी। अब मानव जाति प्राकृतिक वरण को बुद्धिमत्तापूर्ण परिकल्पना (इंटेलिजेंट डिज़ाइन) से विस्थापित करने, और जीवन को जैविक क्षेत्र से अजैविक क्षेत्र तक फैलाने पर उतारू है।

अगर हम इन भावी सम्भावनाओं को एक तरफ़ भी रख दें और पीछे मुड़कर सिर्फ़ पिछले 70,000 सालों की ओर ही देखें, तो यह बात साफ़तौर पर ज़ाहिर है कि नृतात्त्विक युग ने दुनिया को अपूर्व तरीक़ों से रूपान्तरित कर दिया है। क्षुद्रग्रहों, टेक्टॉनिक प्लेटों और जलवायु परिवर्तन ने प्राणियों को समूचे भूमण्डल में प्रभावित किया हो सकता है, लेकिन उनका असर एक इलाक़े से दूसरे इलाक़े में भिन्न-भिन्न हुआ करता था। ग्रह कभी भी एक पारिस्थितिकीय तन्त्र से निर्मित नहीं रहा, इसकी बजाय यह ढीले-ढाले ढंग से आपस में जुड़े रहे बहुत-से पारिस्थितिकीय तन्त्रों का संग्रह हुआ करता था। जब टेक्टॉनिक हलचलों ने उत्तरी अमेरिका को दक्षिणी अमेरिका से जोड़ दिया, तो इसके नतीजे में शिशुओं को धारण करने वाली थैलियों से युक्त ज़्यादातर दक्षिणी अमेरिकी पशुओं का लोप हो गया था, लेकिन ऑस्ट्रेलियाई कंगारुओं पर इसका कोई नुक़सानदेह प्रभाव नहीं पड़ा। जब अन्तिम हिम युग 20,000 साल पहले अपने शिखर पर पहुँचा, तो फ़ारस की खाड़ी की जैली मछली और टोक्यो की खाड़ी की जैली मछली, दोनों ने अपने को नई जलवायु के मुताबिक़ ढाल लिया। तब भी चूँकि दोनों आबादियों के बीच कोई सम्बन्ध नहीं था, इसलिए प्रत्येक ने अलग-अलग ढंग से प्रतिक्रिया की और उनका विकास स्वतन्त्र दिशाओं में हुआ।

इसके विपरीत, सेपियन्स ने उन सीमाओं को तोड़ दिया, जो भूमण्डल को स्वतन्त्र पारिस्थितिकीय क्षेत्रों में विभाजित करती थीं। नृतात्त्विक युग में यह ग्रह पहली बार एक एकल पारिस्थितिकीय इकाई बन गया। ऑस्ट्रेलिया, यूरोप और अमेरिका की जलवायु और भूरचनाएँ भिन्न बनी रहीं, लेकिन मनुष्यों ने समूची दुनिया के जीवों को उनके बीच की दूरियों और उनके भूगोलों से निरपेक्ष निरन्तर आपस में मिलने पर बाध्य किया। जिस चीज़ की शुरुआत लकड़ी की नौकाओं की छोटी-सी संख्या के रूप में हुई थी, वह उन वायुयानों, तेल के टैंकरों और विशालकाय मालवाहक जहाज़ों में बदल चुकी है, जो हर महासागर को

आड़ा-तिरछा पार करते रहते हैं और हर द्वीप तथा महाद्वीप को आपस में जोड़ते रहते हैं। नतीजतन, मसलन, ऑस्ट्रेलिया की पारिस्थितिकी को अब यूरोपीय स्तनधारियों या उन अमेरिकी सूक्ष्मजीवों को ध्यान में रखे बिना नहीं समझा जा सकता, जो उसके तटों और रेगिस्तानों में विशाल तादाद में मौजूद हैं। पिछले 300 सालों के दौरान मनुष्य जिन भेड़ों, गेहूँ, चूहों और फ़्लू के वाइरस को ऑस्ट्रेलिया लाया था, वे उसकी पारिस्थितिकी के लिए स्थानीय कंगारुओं और कोआलाओं के मुक़ाबले कहीं ज़्यादा महत्त्वपूर्ण हैं।

लेकिन नृतात्त्विक युग पिछली कुछ सदियों की अनोखी घटना नहीं है। दसियों हज़ार साल पहले, जब हमारे पाषाण युग के पूर्वज पूर्वी अफ़्रीका से पृथ्वी के चारों कोनों तक फैले थे, तो उन्होंने उस हर महाद्वीप के वनस्पति और प्राणी जगत को बदल दिया था, जिस पर वे जाकर बसे थे। उन्होंने दुनिया की दूसरी मानव-प्रजातियों, ऑस्ट्रेलिया के 90 प्रतिशत विशाल जन्तुओं, अमेरिका के 75 प्रतिशत विशाल स्तनधारियों और ग्रह के कुल विशाल स्थलीय स्तनधारियों को विलुप्ति की ओर धकेल दिया था, और यह सब उसके पहले हुआ था, जब उन्होंने गेहूँ का पहला खेत रोपा था, धातु के पहले औज़ार को आकार दिया था, पहली इबारत लिखी थी या पहला सिक्का ढाला था।

विशाल जन्तु मुख्य शिकार बने थे, क्योंकि वे संख्या में अपेक्षाकृत थोड़े थे, और वे धीमी गति से प्रजनन करते थे। उदाहरण के लिए, मैमथों (जो लुप्त हो गए) की तुलना ख़रगोशों (जो बचे रह गए) से करिए। मैमथों के एक दल में कुछ दर्जन से ज़्यादा सदस्य नहीं होते थे, और वे शायद साल में महज़ दो बच्चों का प्रजनन करते थे। इसलिए अगर स्थानीय इंसानी क़बीले ने एक साल में तीन मैमथों का भी शिकार किया होगा, तो मौतों के लिए जन्मों से आगे निकल जाने के वास्ते इतना काफ़ी रहा होगा, और कुछ पीढ़ियों के भीतर मैमथ ग़ायब हो गए। इसके विपरीत ख़रगोश ख़रगोशों की तरह प्रजनन करते हैं। अगर इंसानों ने हर साल सैकड़ों ख़रगोशों का भी शिकार किया था, तब भी यह उनको विलुप्ति की ओर धकेलने के लिए पर्याप्त नहीं था।

यह नहीं कि हमारे पूर्वजों ने मैमथों को नेस्तनाबूद करने की योजना बनाई थी, वे महज़ अपने कृत्यों के नतीजों के प्रति बेख़बर थे। हो सकता है कि मैमथों और दूसरे विशाल जन्तुओं का लोप विकासपरक समय-मान पर बहुत तीव्र रहा हो, लेकिन इंसानी समय-मान पर धीमा और क्रमिक रहा हो। लोग सत्तर या अस्सी साल से ज़्यादा जीवित नहीं रहते थे, जबकि विलुप्ति की प्रक्रिया ने सदियों का वक़्त लिया। प्राचीन सेपियन्स सम्भवतः मैमथों के सालाना शिकार - जिस दौरान दो या तीन से ज़्यादा मैमथ नहीं मारे जाते थे - और इन विशालकाय रोमिल जन्तुओं के ग़ायब हो जाने के बीच के सम्बन्ध को लक्ष्य ही नहीं कर सके। बहुत-से-बहुत, इतना ही हुआ हो सकता है कि पश्चाताप से भरे किसी बुज़ुर्ग ने शंकालु नौजवानों से कहा हो, 'जब मैं नौजवान था, तब मैमथ आज के दिनों की तुलना में

कहीं ज़्यादा बड़ी तादाद में हुआ करते थे। और यही स्थिति मैस्टोडोनों और विशालकाय एल्कों की थी। और, हाँ, क़बीले के मुखिया ईमानदार थे, और बच्चे अपने बुज़ुर्गों का आदर करते थे'।

साँप के बच्चे

नृतत्त्वशास्त्रीय और पुरातात्त्विक साक्ष्य दर्शाते हैं कि आदिम शिकारी-संग्रहकर्ता सम्भवतः जीववादी थे: उनका विश्वास था कि ऐसी कोई खाई नहीं है, जो मनुष्यों को दूसरे जीवों से अलग करती हो। दुनिया, यानी स्थानीय घाटी और उसको घेरती पर्वत-शृंखलाओं पर उसके सारे निवासियों का हक़ था, हर कोई उन नियमों का पालन करता था, जो सबके लिए समान थे। तमाम सम्बन्धित प्राणियों के बीच अनवरत वार्ताएँ इन नियमों का हिस्सा थीं। लोग पशुओं, पेड़ों और पत्थरों से बात करते थे, उसी तरह वे परियों, दैत्यों और प्रेतों से बात करते थे। सम्प्रेषण के ताने-बाने से वे मूल्य और मानक निकलते थे, जो मनुष्यों, हाथियों, ओक वृक्षों और प्रेतात्माओं के लिए समान रूप से बन्धनकारी थे।

यह जीववादी विश्वदृष्टि अभी भी उन कुछ शिकारी-संग्रहकर्ताओं का मार्गदर्शन करती है, जो आधुनिक युग में बचे रह गए हैं। इनमें से एक नायक समुदाय है, जो दक्षिण भारत के उष्णकटिबन्धीय जंगलों में रहता है। नृवैज्ञानिक डैनी नावेह ने कई सालों तक नायक समुदाय का अध्ययन किया है, वे बताते हैं कि जब जंगल में भटकते हुए किसी नायक पुरुष या स्त्री का बाघ, सर्प या हाथी जैसे किसी ख़तरनाक जानवर से सामना हो जाता है, तो वह उस जानवर को सम्बोधित करते हुए कह सकता/ सकती है: 'तुम जंगल में रहते हो। मैं भी यहीं जंगल में रहता/ रहती हूँ। तुम यहाँ भोजन के लिए आए हो, और मैं भी यहाँ कन्दमूल और सूरन इकट्ठा करने आया/ आई हूँ। मैं तुमको कोई नुक़सान पहुँचाने नहीं आया/ आई हूँ'।

एक बार एक नायक एक नर हाथी द्वारा मारा गया था, जिसे वे 'हमेशा अकेले घूमने वाला हाथी' कहा करते थे। नायकों ने उस हाथी को पकड़ने आए इंडियन फ़ॉरेस्ट्री डिपार्टमेंट के अधिकारियों की मदद करने से इंकार कर दिया था। उन्होंने नावेह को इसका स्पष्टीकरण देते हुए कहा था कि यह हाथी एक अन्य नर हाथी का बहुत क़रीबी हुआ करता था, जिसके साथ वह हमेशा घूमा करता था। एक दिन फ़ॉरेस्ट्री डिपार्टमेंट ने उस दूसरे हाथी को पकड़ लिया, और तब के बाद से यह 'हमेशा अकेले घूमने वाला हाथी' ग़ुस्सैल और हिंसक हो उठा था। 'अगर आपकी दुल्हन को आपसे छीन लिया जाए, तो आपको कैसा लगेगा? यह हाथी ठीक ऐसा ही महसूस करता है। ये दोनों हाथी कभी-कभी रात में अलग हो जाया करते थे और अपने-अपने रास्ते चले जाया करते थे...लेकिन सवेरा होने पर वे हमेशा साथ-साथ आया करते थे। उस दिन, इस हाथी ने अपने जिगरी दोस्त को

गिरते हुए, ज़मीन पर पड़ा हुआ देखा था। अगर दो हमेशा साथ-साथ होते हैं और आप उनमें से एक को गोली मार दें, तो दूसरे को कैसा लगेगा?'

इस तरह की जीववादी प्रवृत्ति बहुत-से औद्योगीकृत लोगों को विचित्र लगती है। हममें से ज़्यादातर लोग सहज ढंग से जानवरों को मूलतः भिन्न और हीन मानते हैं। यह इसलिए है, क्योंकि हमारी प्राचीनतम परम्पराओं की रचना भी शिकारी-संग्रहकर्ता युग के समाप्त होने के हज़ारों वर्ष बाद हुई थी। उदाहरण के लिए, ओल्ड टेस्टामेंट ईसापूर्व पहली सहस्राब्दी में लिखा गया था, और इसकी प्राचीनतम गाथाएँ ईसापूर्व दूसरी सहस्राब्दी की वास्तविकताओं को प्रतिबिम्बित करती हैं, लेकिन मध्य पूर्व में शिकारी-संग्रहकर्ताओं का युग इसके 7,000 साल पहले ही समाप्त हो चुका था। इसलिए यह शायद ही आश्चर्य की बात कही जाएगी कि बाइबिल जीववादी आस्थाओं को अस्वीकार करती है और इसकी एकमात्र जीववादी कथा एक सख़्त चेतावनी के रूप में एकदम शुरू में आती है। बाइबिल एक विशाल ग्रन्थ है, जो चमत्कारों, आश्चर्यों और विस्मयों से भरा पड़ा है। तब भी एक जानवर द्वारा मनुष्य के साथ बातचीत की पहल का वह एकमात्र अवसर है, जब सर्प ईव को ज्ञान का वर्जित फल खाने के लिए ललचाता है (बिल'एम की गधी भी कुछ शब्द बोलती है, लेकिन वह महज़ ईश्वर का सन्देश बिल'एम को दे रही होती है)।

गार्डन ऑफ़ ईडन में आदम और ईव भोजन-खोजियों के रूप में रहते थे। ईडन से इन दोनों के निकाले जाने की घटना कृषि क्रान्ति के साथ चौंकाने वाली समानता रखती है। आदम को जंगली फल एकत्र करने की इजाज़त देने की बजाय, क्रोधित ईश्वर उसको 'कड़ी मेहनत से कमाई गई रोटी खाने' का शाप देता है। तब यह कोई संयोग नहीं हो सकता कि बाइबिल के पशु मनुष्यों से ईडन के कृषि-पूर्व युग में ही संवाद करते हैं। इस क़िस्से से बाइबिल क्या सीख देती है? यह कि तुम्हें सर्पों की बात नहीं सुननी चाहिए, और सामान्य तौर पर यही बेहतर है कि तुम पशुओं और वनस्पतियों से बातचीत करने से बचो। इससे विनाश के अलावा और कोई नतीजा नहीं निकलता।

लेकिन बाइबिल की इस कथा में अर्थ की कहीं ज़्यादा गहरी और ज़्यादा प्राचीन परतें मौजूद हैं। ज़्यादातर सामी भाषाओं में 'ईव' का अर्थ 'सर्प' या 'नागिन' तक होता है। बाइबिल से आई हमारी पूर्वज माँ अपने भीतर एक आदिम जीववादी मिथक को छिपाए हुए है, जिसके मुताबिक़ सर्प हमारे शत्रु नहीं, बल्कि हमारे पूर्वज हैं। बहुतेरी जीववादी संस्कृतियों का मानना है कि मनुष्य पशुओं से उत्पन्न हैं, जिनमें साँपों से लेकर दूसरे रेंगने वाले जीव तक शामिल हैं। ऑस्ट्रेलियाई मूल के ज़्यादातर निवासियों का विश्वास था कि इन्द्रधनुष सर्प (रेनबो सर्पेंट) ने दुनिया की रचना की थी। अरान्दा और डाइएरी समुदाय के लोग मानते हैं कि उनका अपना क़बीला आद्य गिरगिटों या सर्पों से उत्पन्न हुआ था, जो मनुष्यों में रूपान्तरित हो गए थे। दरअसल, आधुनिक पाश्चात्य लोग भी ऐसा सोचते हैं कि

उनका विकास रेंगने वाले जन्तुओं से हुआ है। हम में से हर एक का मस्तिष्क एक सरिसृपीय (रेप्टाइलियन) बीजकोष के इर्द-गिर्द निर्मित है, और हमारी कायाओं की संरचना मूलतः रेंगने वाले जीवों का संशोधित रूप है।
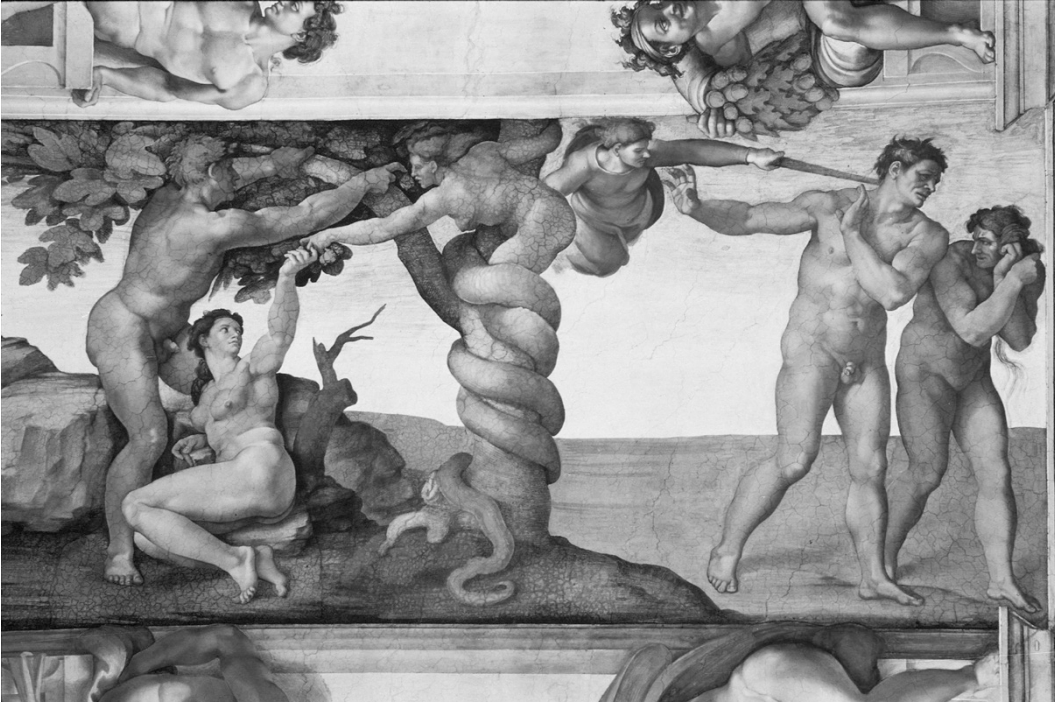
12. खोया हुआ स्वर्ग (पैराडाइज़ लॉस्ट) (सिस्टाइन चैपल)। सर्प - जो मनुष्य के शरीर के ऊपरी हिस्से को धारण किए हुए है - समूचे घटनाक्रम की शुरुआत करता है। जहाँ जेनेसिस के पहले दो अध्यायों पर दैवीय एकालाप का वर्चस्व है ('और ईश्वर ने कहा...और ईश्वर ने कहा...और ईश्वर ने कहा...'), वहीं तीसरे अध्याय में हमें - ईव और सर्प के बीच - एक संवाद सुनने को मिलता है ('और सर्प ने औरत से कहा...और औरत ने सर्प से कहा...')। एक मनुष्य और एक जन्तु के बीच का यह अनूठा संवाद मनुष्यता के पतन और ईडन से हमारे निष्कासन का कारण बनता है।

मुमकिन है कि जेनेसिस की पोथी के रचयिताओं ने ईव के नाम में आदिम जीववादी आस्थाओं के अवशेष को सुरक्षित रखा हो, लेकिन उन्होंने दूसरे तमाम निशानों को छिपाए रखने का पूरा ध्यान रखा। जेनेसिस कहती है कि मनुष्य सर्पों के वंशज होने की बजाय दैवीय ढंग से जड़ पदार्थ से रचे गए थे। सर्प हमारा पुरखा नहीं है: वह हमें हमारे अलौकिक पिता के ख़िलाफ़ विद्रोह करने के लिए लुभाता है। जहाँ जीववादियों ने मनुष्यों को एक क़िस्म के जन्तु के रूप में देखा था, वहीं बाइबिल का तर्क है कि मनुष्य एक अनूठी सृष्टि है, और हमारे भीतर पशु को स्वीकार करने की कोई भी कोशिश ईश्वर की शक्ति और सत्ता से इंकार करना है। वाक़ई, जब आधुनिक मनुष्यों को पता चला कि वे वास्तव में रेंगने वाले जन्तुओं से विकसित हुए थे, तो उन्होंने ईश्वर के ख़िलाफ़ विद्रोह किया और उसकी बात सुनना बन्द कर दिया, बल्कि उसके अस्तित्व तक में विश्वास करना बन्द कर दिया।

पैतृक आवश्यकताएँ

मनुष्य की विशिष्टता में विश्वास के साथ बाइबिल उस कृषि क्रान्ति का एक सहउत्पाद (बाइ-प्रॉडक्ट) था, जिसने मानव-पशु सम्बन्धों के एक नए दौर की शुरुआत की थी। कृषि-कर्म के आगमन ने सामूहिक विलुप्ति की नई लहरें तो पैदा की हीं, लेकिन इससे भी ज़्यादा महत्त्वपूर्ण यह कि इसने पृथ्वी पर एक पूरी तरह से नवीन जीवन रूप को जन्म दिया: पालतू जानवरों को। शुरू में यह एक बहुत महत्त्वपूर्ण घटना नहीं थी, क्योंकि मनुष्य, उन असंख्य हज़ारों प्रजातियों के मुक़ाबले में जो 'जंगली' बनी रही थीं, स्तनधारियों और पक्षियों की बहुत-से-बहुत बीस प्रजातियों को ही पालतू बना सके थे, लेकिन शताब्दियों के गुज़रने के साथ यह अनूठा जीवन-रूप प्रभावी होता गया। आज तमाम विशाल जानवरों में 90 प्रतिशत से ज़्यादा पालतू बनाए जा चुके हैं।

लेकिन आह, इन पालतू बना ली गई प्रजातियों ने अपनी बेमिसाल सामूहिक कामयाबी की क़ीमत अपूर्व वैयक्तिक यातना से चुकाई। यद्यपि प्राणियों का साम्राज्य लाखों वर्षों से कई प्रकार की पीड़ाओं और विपदाओं से परिचित रहा है, लेकिन कृषि क्रान्ति ने पूरी तरह से नई क़िस्म की यातनाओं को जन्म दिया, जो समय के बीतने के साथ-साथ और भी बदतर होती गईं।

एक लापरवाह दर्शक को पालतू बनाए गए जानवर उनके जंगली भाई-बहनों और पूर्वजों के मुक़ाबले में ज़्यादा ख़ुशहाल लग सकते हैं। जंगली सूअर भोजन, पानी और पनाहगाह की तलाश में अपने दिन बिताते हैं, और वे लगातार बाघों, परजीवियों और बाढ़ों के ख़तरे का सामना करते हैं। इसके विपरीत, पालतू सूअर मनुष्यों द्वारा मुहैया कराए गए भोजन, पानी और आश्रय का आनन्द लेते हैं, और मनुष्य उनकी बीमारियों का इलाज़ भी करते हैं तथा हिंसक जानवरों और प्राकृतिक आपदाओं से उनकी रक्षा करते हैं। सही है कि ये ज़्यादातर सूअर आगे-पीछे ख़ुद को बूचड़ख़ाने में पाते हैं। तब भी क्या यह चीज़ उनकी नियति को जंगली सूअरों की नियति से तनिक भी कम बदतर बना देती है? क्या किसी इंसान के हाथों काटा जाना किसी बाघ द्वारा निगल लिए जाने से बेहतर है? क्या मगरमच्छ के दाँत स्टील के चाकुओं से कम घातक होते हैं?

फ़ार्मों के पालतू जानवरों की नियति को जो चीज़ विशेष रूप से ज़्यादा कठोर बना देती है, वह महज़ यह नहीं है कि वे किस तरह मरते हैं, बल्कि यह है कि वे किस तरह जीते हैं। दो प्रतिस्पर्धी कारकों ने फ़ार्मों के जानवरों की जीवन-परिस्थितियों को प्राचीन युगों से लेकर आधुनिक समय तक गढ़ा है: मानवीय आकांक्षाएँ और पशुओं की ज़रूरतें। तदनुसार मनुष्य मांस हासिल करने के उद्देश्य से सूअरों को पैदा करते हैं, लेकिन अगर वे मांस की नियमित आपूर्ति चाहते हैं, तो उनको सूअरों को लम्बे समय तक जीवित रखना और उनका निरन्तर प्रजनन जारी रखना अनिवार्य है। व्यावहारिक तौर पर इस चीज़ को

क्रूरता के चरम रूपों से जानवरों की रक्षा करनी चाहिए थी। अगर एक किसान अपने सूअरों की समुचित देखभाल नहीं करता, तो वे बच्चों को जन्म दिए बिना ही जल्दी मर जाएँगे और किसान को भूखे मरना पड़ेगा।

दुर्भाग्य से, मनुष्य फ़ार्मों के जानवरों को उनके जीवित बने रहने और उनके प्रजनन को सुनिश्चित करने के बावजूद, विभिन्न तरीक़ों से ज़बरदस्त यातना का शिकार बना सकते हैं। समस्या की जड़ यह है कि पालतू बनाए गए जानवरों ने अपने जंगली पूर्वजों से ऐसी कई शारीरिक, भावनात्मक और सामाजिक ज़रूरतों को विरासत में प्राप्त किया है, जिनकी इंसान के फ़ार्मों में कोई उपयोगिता नहीं है। जानवरों को पालने वाले किसान सामान्यतः इन ज़रूरतों को नज़रअन्दाज़ करते हैं, जिसके लिए उनको किसी तरह का आर्थिक ज़ुर्माना नहीं भरना पड़ता। वे इन जानवरों को छोटे-छोटे पिंजरों में बन्द कर देते हैं, उनके सींग और उनकी पूँछ काट देते हैं, बच्चों को उनकी माताओं से अलग कर देते हैं और चुन-चुनकर नियन्त्रित ढंग से भयावहताओं को उत्पन्न करते हैं। ये जानवर भारी यातना भोगते हैं, तब भी वे जीवित बने रहते हैं और अपनी संख्या बढ़ाते रहते हैं।

क्या यह चीज़ प्राकृतिक वरण के सर्वाधिक बुनियादी उसूलों के विरोध में नहीं जाती? विकासवाद का सिद्धान्त यह मानता है कि सारी क़ुदरती प्रवृत्तियाँ, प्रेरणाएँ और भावनाएँ जीवित बने रहने और प्रजनन करने के एकमात्र सरोकार से विकसित होती हैं। अगर ऐसा है, तो क्या फ़ार्मों में जीवों का निरन्तर पुनरुत्पादन यह साबित नहीं करता कि उनकी सारी वास्तविक ज़रूरतें पूरी हो गई हैं? किसी सूअर की कोई ऐसी ज़रूरत कैसे हो सकती है, जिसकी उसके जीवित बने रहने और प्रजनन करने के लिए कोई आवश्यकता नहीं है?

यह निश्चय ही सही है कि सारी क़ुदरती प्रवृत्तियाँ, प्रेरणाएँ और भावनाएँ जीवित बने रहने और प्रजनन करते रहने के विकासपरक दबावों को सन्तुष्ट करने के लिए विकसित हुई थीं, लेकिन अगर कभी ये दबाव सहसा ग़ायब हो जाते हैं, तो इन दबावों के तहत गढ़ी गई प्रवृत्तियाँ, प्रेरणाएँ और भावनाएँ भी उन दबावों के साथ ग़ायब नहीं हो जातीं। कम से कम तुरन्त तो नहीं ही। यहाँ तक कि अगर वे जीवित बने रहने और प्रजनन के लिए मददगार न भी रह गई हों, तब भी ये प्रवृत्तियाँ, प्रेरणाएँ, और भावनाएँ उस प्राणी के व्यक्तिनिष्ठ अनुभवों को आकार देना जारी रखती हैं। कृषि ने समान रूप से जानवरों और मनुष्यों के सन्दर्भ में वरण के दबावों को तो रातों-रात बदल डाला, लेकिन उसने उनकी शारीरिक, भावनात्मक और सामाजिक प्रेरणाओं को परिवर्तित नहीं किया। बेशक, विकास की प्रक्रिया कभी ठप नहीं पड़ती, और उसने कृषि के आगमन के बाद के 12,000 सालों में मनुष्यों और जानवरों को रूपान्तरित करना जारी रखा है। उदाहरण के लिए, यूरोप और पश्चिम एशिया के मनुष्यों ने गाय के दूध को पचाने की क्षमता विकसित कर ली, वहीं गायों के भीतर से मनुष्यों के प्रति भय जाता रहा, और आज वे अपने जंगली पूर्वजों के मुक़ाबले

कहीं ज़्यादा दूध देती हैं। तब भी ये सतही क़िस्म की तब्दीलियाँ हैं। गायों, सूअरों और मनुष्यों की गहन संवेदी और भावनात्मक संरचनाओं में समान रूप से पाषाण युग के समय से ही बहुत ज़्यादा बदलाव नहीं आया है।

क्या वजह है कि आधुनिक मनुष्यों को मिठाइयाँ बहुत पसन्द आती हैं? इसलिए नहीं कि इक्कीसवीं सदी में हमें जीवित बने रहने के लिए आइसक्रीम और चॉकलेट गले तक भर कर खाना अनिवार्य है। इसकी बजाय, यह इसलिए है, क्योंकि जब हमारे पाषाण युगीन पूर्वजों को मीठे फल या शहद दिखाई देते थे, तो सबसे ज़्यादा अक़्लमन्दी की बात यह होती थी कि इन चीज़ों को जितना मुमकिन हो, उतनी ज़्यादा मात्रा में जल्दी से जल्दी खा लिया जाए। क्या कारण है कि नौजवान लोग अन्धाधुन्ध ढंग से वाहन चलाते हैं, हिंसक झड़पों में लिप्त हो जाते हैं और गोपनीय इंटरनेट साइट्स को हैक करते हैं? क्योंकि वे प्राचीन जनेटिक आदेशों का पालन कर रहे होते हैं, जो आज अनुपयोगी और नुक़सानदेह हो सकते हैं, लेकिन जो 70,000 साल पहले अच्छा ख़ासा विकासपरक अर्थ रखते थे। कभी एक नौजवान शिकारी हुआ करता था, जिसने अपने जीवन को जोखिम में डालकर एक मैमथ का पीछा करते हुए अपने सारे प्रतिद्वन्द्वियों को पीछे छोड़ दिया था और स्थानीय सुन्दरी का दिल जीत लिया था, और हम अब हम उसके मर्दाना जीन में अटके हुए हैं।

ठीक यही विकासपरक तर्क मनुष्यों द्वारा नियन्त्रित फ़ार्मों में सूअरों, सुअरियों और सूअर के बच्चों के जीवन को आकार देता है। जंगल में जीवित बने रहने और प्रजनन करते रहने के लिए प्राचीन जंगली सूअरों को विस्तृत इलाक़ों में भटकना, अपने आस-पास के वातावरण से अपना परिचय स्थापित करना और फन्दों तथा परभक्षियों को लेकर सतर्क रहना ज़रूरी होता था। इसके बाद उनको अपने साथी सूअरों के साथ संवाद और सहयोग करना, और बुज़ुर्ग तथा अनुभवी कुलमाताओं के वर्चस्व वाले संश्लिष्ट समूह तैयार करना ज़रूरी होता था। नतीजतन, विकासपरक दबावों ने जंगली सूअरों और उससे भी ज़्यादा सूअरियों को अत्यन्त अक़्लमन्द सामाजिक प्राणी बना दिया, जिनकी चारित्रिक विशेषताओं में जीवन्त जिज्ञासा और सामाजिक रिश्ते क़ायम करने की प्रबल आकांक्षाएँ, खेलना, भटकना और अपने परिवेश की छानबीन करना जैसी चीज़ें शामिल थीं। अगर कोई सूअरी ऐसे किसी विरले उत्परिवर्तन (म्यूटेशन) से पैदा हो गई होती, जिसने उसको उसके पर्यावरण और दूसरे सूअरों से भिन्न बना दिया होता, तो उसके जीवित बने रहने या प्रजनन करने की कोई सम्भावना न होती।

जंगली सूअरों के वंशजों यानी पालतू सूअरों ने अक़्लमन्दी, जिज्ञासा और सामाजिक दक्षताएँ विरासत में प्राप्त की हैं। जंगली सूअरों की तरह ही पालतू सूअर भी ज़बानी और सूँघने सम्बन्धी तरह-तरह के भरपूर संकेतों की मदद से परस्पर संवाद करते हैं: सूअरी माँ

जहाँ अपने शिशु की चीख़ पहचानती है, वहीं दो दिन का सूअर शिशु अपनी माँ की पुकार को दूसरी सूअरियों की पुकार से अलग कर पहचान लेता है। पेंसिल्वेनिया स्टेट यूनिवर्सिटी के प्रोफ़ेसर स्टेनले कर्टिस ने हैमलेट और ऑमलेट नामक दो सूअरों को उनकी थूथनियों से एक जोस्टिक को नियन्त्रित करने के लिए प्रशिक्षित किया था, और पाया था कि इन सूअरों ने साधारण कम्प्यूटर खेलों को सीखने के मामले में अपने समूह के अन्य सदस्यों को पीछे छोड़ दिया था।

आज औद्योगिक फ़ार्मों में ज़्यादातर सूअरियाँ कम्प्यूटर खेल नहीं खेलतीं। वे अपने इंसानी मालिकों द्वारा छोटे-छोटे गर्भकालीन दड़बों में बन्द करके रखी जाती हैं, जो आमतौर से साढ़े छह गुना दो फुट के होते हैं। ये दड़बे कांक्रीट के फ़र्श और धातुई सलाखों से युक्त होते हैं, और गर्भवती सुअरियों को चलना-फिरना तो दूर की बात है, मुड़ने या करवट लेकर सोने की भी न के बराबर गुंजाइश देते हैं। इस तरह की परिस्थिति में साढ़े तीन महीने गुज़ारने के बाद इन सूअरियों को थोड़े-से बड़े दड़बे में ले जाया जाता है, जहाँ वे अपने शिशुओं को जन्म देती हैं और उनका पोषण करती हैं। जहाँ सूअर शिशु स्वाभाविक तौर पर दस से बीस सप्ताह तक स्तनपान करते हैं, वहीं इन औद्योगिक फ़ॉर्मों में दो से चार हफ़्तों के भीतर बलपूर्वक उनका दूध छुड़ा दिया जाता है, उनको उनकी माँओं से अलग कर दिया जाता है और मोटा होने तथा काटे जाने के लिए भेज दिया जाता है। माँ को तुरन्त ही दुबारा गर्भाधान करा दिया जाता है, और एक नए चक्र की शुरुआत के लिए गर्भकालीन दड़बे में डाल दिया जाता है। एक आम सूअरी ख़ुद काटे जाने से पहले इस तरह के पाँच से दस चक्रों से गुज़रती है। हाल के वर्षों में यूरोपीय यूनियन तथा संयुक्त राज्य अमेरिका के कुछ प्रदेशों में दड़बों के इस्तेमाल पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया है, लेकिन दड़बों का इस्तेमाल आमतौर पर अभी भी बहुत-से दूसरे मुल्कों में जारी है, और करोड़ों प्रजननकारी सूअरियाँ अपना लगभग समूचा जीवन उनमें गुज़ारती हैं।

मानव कृषक उस हर चीज़ का पूरा ध्यान रखते हैं, जो एक सूअरी के जीवित बने रहने और प्रजनन करते रहने के लिए ज़रूरी होता है। उसको पर्याप्त भोजन दिया जाता है, बीमारियों से बचाव के लिए टीके लगवाए जाते हैं, मौसम के दुष्प्रभावों से उसका बचाव किया जाता है और कृत्रिम ढंग से उसका गर्भाधान किया जाता है। एक वस्तुपरक परिप्रेक्ष्य में देखें, तो सूअरी को अब अपने आस-पास के वातावरण की छानबीन करने, दूसरे सूअरों के साथ मेलजोल बढ़ाने, अपने शिशुओं के साथ सम्बन्ध बनाने या चलने-फिरने तक की कोई ज़रूरत नहीं होती, लेकिन व्यक्तिपरक परिप्रेक्ष्य में देखने पर, सूअरी अभी भी इन सारे कामों को करने की प्रबल आकांक्षा अनुभव करती है, और अगर ये आकांक्षाएँ पूरी नहीं होतीं, तो वे बहुत ज़्यादा तकलीफ़ झेलती हैं। गर्भकालीन दड़बों में बन्द सुअरियाँ

आमतौर से तीव्र कुण्ठा का इज़हार करती हैं, जो चरम हताशा में रूपान्तरित हो जाया करती है।

विकासपरक मनोविज्ञान की यह बुनियादी सीख है: जिस ज़रूरत ने हज़ारों पीढ़ियों पहले आकार लिया होता है, वह व्यक्तिपरक स्तर पर निरन्तर अपना अहसास क़ायम रखती है, भले ही वह वर्तमान में जीवित बने रहने या प्रजनन जारी रखने के लिए ज़रूरी न रह गई हो। दुखद बात यह है कि कृषि क्रान्ति ने मनुष्यों को पालतू बना लिए गए जानवरों की व्यक्तिपरक ज़रूरतों की उपेक्षा करते हुए उनके जीवन और प्रजनन को सुनिश्चित करने की क्षमता प्रदान की।

13. गर्भकालीन दड़बों में क़ैद सूअरियाँ। ये अत्यन्त सामाजिक और अक़्लमन्द प्राणी अपना ज़्यादातर जीवन इसी हालत में गुज़ारते हैं, मानो वे पहले से ही सॉसेज हों।

जीवधारी ऐल्गरिदम हैं

हम इस बात का निश्चय कैसे कर सकते हैं कि सूअरों जैसे जानवरों की वास्तव में ज़रूरतों, अनुभूतियों और भावनाओं की एक व्यक्तिपरक दुनिया होती है? क्या हम जानवरों का मानवीकरण करने, यानी अ-मानवीय सत्ताओं पर मानवीय गुणों को मढ़ने के अपराधी नहीं हैं, उन बच्चों की तरह, जिनके मन में यह विश्वास होता है कि गुड़ियाएँ प्रेम और ग़ुस्सा महसूस करती हैं?

दरअसल, सूअरों पर मानवीय भावनाओं को मढ़ देना उनको मानवीकृत नहीं कर देता। यह उनको 'स्तनपायीकृत' (मैमलाइज़) करता है, क्योंकि भावनाएँ सिर्फ़ मनुष्य का अनूठा गुण नहीं हैं, बल्कि वे सभी स्तनपायी प्राणियों में (साथ ही पक्षियों में और सम्भवतः कुछ रेंगने वाले जन्तुओं और मछलियों तक में) समान रूप से मौजूद होती हैं। सारे स्तनपायियों ने भावनात्मक क्षमताएँ और ज़रूरतें विकसित की होती हैं, और इस तथ्य से कि सूअर भी जानवर हैं, हम निस्संकोच यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि उनमें भी भावनाएँ होती हैं।

हाल के दशकों में जीव वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध किया है कि भावनाएँ कोई ऐसा रहस्यमय आध्यात्मिक तथ्य नहीं हैं, जो महज़ कविता लिखने या सिम्फ़नियाँ रचने के उपयोग में आती हों। इसकी बजाय, भावनाएँ जैवरासायनिक ऐल्गरिदम हैं, जो तमाम स्तनपायियों के जीवित बने रहने और प्रजनन करते रहने के लिए अनिवार्य होती हैं। इसका क्या अर्थ है? चलिए, हम यह समझने के साथ शुरुआत करते हैं कि ऐल्गरिदम क्या है। यह बेहद महत्त्वपूर्ण है, और सिर्फ़ इसलिए नहीं कि यह केन्द्रीय अवधारणा आगामी कई अध्यायों में बार-बार सामने आएगी, बल्कि इसलिए भी कि इक्कीसवीं सदी पर ऐल्गरिदम का वर्चस्व होगा। 'ऐल्गरिदम' युक्तिसंगत तौर पर हमारी दुनिया की एकमात्र सबसे महत्त्वपूर्ण अवधारणा है। अगर हम अपने जीवन और अपने भविष्य को समझना चाहते हैं, तो हमें यह समझने के लिए हरसम्भव कोशिश करनी चाहिए कि ऐल्गरिदम क्या है, और ऐल्गरिदम भावनाओं से किस तरह जुड़े हैं।

ऐल्गरिदम अनेक सीढ़ियों (स्टेप्स) का ऐसा सुसंगत सेट है, जिसका इस्तेमाल गणना करने, समस्याओं को हल करने और निर्णयों पर पहुँचने के लिए किया जा सकता है। ऐल्गरिदम कोई ख़ास गणना नहीं है, बल्कि वह पद्धति है, जिसका अनुसरण गणना करते समय किया जाता है। उदाहरण के लिए, अगर आप दो संख्याओं का औसत निकालना चाहते हैं, तो आप एक सरल ऐल्गरिदम का इस्तेमाल कर सकते हैं। ऐल्गरिदम कहता है: 'पहली सीढ़ी: दोनों संख्याओं को जोड़ दीजिए। दूसरी सीढ़ी: दोनों संख्याओं के उस योगफल को दो से विभाजित कर दीजिए'। इस विधि से जब आप 4 और 8 का औसत निकालना चाहते हैं, तो आपको 6 की संख्या प्राप्त होती है। जब आप 117 और 231 का औसत निकालते हैं, तो आपको 174 की संख्या प्राप्त होती है।

एक ज़्यादा जटिल उदाहरण है व्यंजन बनाने की विधि। शाकाहारी सूप तैयार करने के लिए एक ऐल्गरिदम हमें यह बता सकता है:

1. किसी बर्तन में आधा कप तेल गरम करें।
2. चार प्याज़ों को बारीक़ काट लें।

3. प्याज़ को सुनहरा होने तक तलें।
4. तीन आलुओं के टुकड़े कर उनको उस बर्तन में डाल दें।
5. एक पत्ता गोभी की पट्टियाँ काट लें और उस बर्तन में डाल दें।

आदि, आदि। इसी ऐल्गरिदम का अनुसरण आप दर्ज़नों बार, किंचित अलग-अलग सब्ज़ियों का इस्तेमाल करते हुए और इस तरह किंचित अलग तरह का सूप हासिल करने के लिए कर सकते हैं, लेकिन ऐल्गरिदम जस-का-तस बना रहेगा।

व्यंजन बनाने की विधि ख़ुद कोई सूप तैयार नहीं कर सकती। आपके लिए ज़रूरी होता है कि कोई व्यक्ति उस विधि को पढ़े और उसमें जो भी क़दम बताए गए हैं, उनका अनुसरण करे, लेकिन आप एक ऐसी मशीन तैयार कर सकते हैं, जिसमें यह ऐल्गरिदम समाहित हो और स्वचालित ढंग से उसका अनुसरण करती हो। इसके बाद आपको उस मशीन के लिए पानी, बिजली और सब्ज़ियाँ भर उपलब्ध कराने की ज़रूरत होगी और वह ख़ुद ही सूप तैयार कर देगी। सूप बनाने की ऐसी बहुत मशीनें उपलब्ध नहीं हैं, लेकिन आप शायद पेय विक्रय (बेवरिज वेंडिंग) मशीनों से वाक़िफ़ होंगे। इस तरह की मशीनों में आमतौर से सिक्के डालने के लिए एक छेद, कप भरने के लिए नल, और बटनों की क़तारें होती हैं। पहली क़तार में कॉफ़ी, चाय और कोको के बटन होते हैं। दूसरी क़तार में अंकित होता है: बिना चीनी, एक चम्मच चीनी, दो चम्मच चीनी। तीसरी क़तार में दूध, सोया दूध, या दूध नहीं का संकेत होता है। आदमी मशीन के पास जाता है, छेद में सिक्का डालता है और 'चाय', 'एक चम्मच चीनी' और 'दूध' वाले बटनों को दबाता है। मशीन एक-एक निर्देश का ठीक-ठीक अनुसरण करती हुई हरक़त में आ जाती है। वह कप में चाय की थैली गिराती है, उबलता पानी उँडेलती है, एक चम्मच चीनी और दूध मिलाती है, और लो! एक कप बढ़िया चाय निकल कर सामने आ जाती है। यह एक ऐल्गरिदम है।

पिछले कुछ दशकों के दौरान जीव विज्ञानी इस दृढ़ निष्कर्ष पर पहुँच चुके हैं कि बटन को दबाने वाला और चाय पीने वाला यह आदमी भी ऐल्गरिदम है। बेशक, इस मशीन से कहीं ज़्यादा जटिल ऐल्गरिदम, लेकिन तब भी एक ऐल्गरिदम। मनुष्य ऐसे ऐल्गरिदम हैं, जो चाय नहीं, बल्कि अपनी ही प्रतियाँ पैदा करते हैं (उस पेय विक्रय मशीन की भाँति, जिसके बटनों के सही संयोजनों को दबाने से वह एक और पेय विक्रय मशीन पैदा करती है)।

ऐल्गरिदम से नियन्त्रित पेय विक्रय मशीन मैकेनिकल गियरों और विद्युत सर्किटों के माध्यम से काम करती है। ऐल्गरिदम नियन्त्रित मनुष्य अनुभूतियों, भावनाओं और विचारों के माध्यम से काम करते हैं। और ठीक ऐसे ही ऐल्गरिदम सूअरों, लंगूरों, ऊदबिलावों और चूज़ों को नियन्त्रित करते हैं। उदाहरण के लिए जीवित बने रहने की इस समस्या पर विचार करें: एक लंगूर की नज़र किसी पेड़ से लटकते केलों पर पड़ती है, लेकिन पास में ही घात

लगाकर बैठे किसी शेर की ओर भी उसका ध्यान है। क्या लंगूर को इन केलों की ख़ातिर अपनी जान जोखिम में डालनी चाहिए?

यह चीज़ निचोड़ के तौर पर सम्भाव्यताओं का हिसाब लगाने की गणितीय समस्या से जुड़ जाती है: एक ओर यह सम्भावना है कि अगर लंगूर वे केले नहीं खाता, तो वह भूख से मर जाएगा, और इसके विपरीत दूसरी यह सम्भावना है कि वह शेर उस लंगूर को पकड़ लेगा। इस समस्या को हल करने के लिए लंगूर को बहुत सारे आँकड़ों को ध्यान में रखना ज़रूरी है। मैं केलों से कितनी दूरी पर हूँ? शेर कितनी दूरी पर है? मैं कितना तेज़ दौड़ सकता हूँ? शेर कितना तेज़ दौड़ सकता है? शेर जाग रहा है या सोया हुआ है? शेर भूखा लग रहा है या उसका पेट भरा हुआ है? वहाँ कितने केले हैं? वे बड़े हैं या छोटे? कच्चे हैं या पके हुए? इन बाहरी आँकड़ों के अलावा, लंगूर को स्वयं अपने शरीर की दशाओं की जानकारी पर भी विचार करना ज़रूरी है। अगर वह भूखा है, तो चाहे कितनी भी मुश्किलें क्यों न हों, उन केलों की ख़ातिर हर तरह का जोखिम उठाना मायने रखता है। इसके विपरीत, अगर उसने अभी-अभी खाया है, और वे केले महज़ लालच जगा रहे हैं, तो उस सूरत में जोखिम उठाया ही क्यों जाए?

इन तमाम परिवर्तनीय स्थितियों और सम्भावनाओं को तौलने और सन्तुलित करने के लिए लंगूर को स्वचालित पेय विक्रय मशीनों को नियन्त्रित करने वाले एल्गरिदमों से ज़्यादा जटिल ऐल्गरिदमों की ज़रूरत है। नतीजतन, सही हिसाब लगाने का पुरस्कार कहीं बड़ा होगा। यह पुरस्कार है लंगूर का जीवित बने रहना। एक डरपोक लंगूर - वह जिसके ऐल्गरिदम ख़तरों को बढ़ा-चढ़ाकर आँकते हैं - भूख से मर जाएगा, और जिन जीन्स ने इन डरपोक ऐल्गरिदमों को गढ़ा है, वे भी उसी के साथ नष्ट हो जाएँगे। एक दुस्साहसी लंगूर - वह जिसके एल्गरिदम ख़तरों को कम करके आँकते हैं - शेर का शिकार बन जाएगा, और उसके दुस्साहसिक जीन्स भी अगली पीढ़ी तक क़ायम रहने में नाकामयाब रहेंगे। ये ऐल्गरिदम प्राकृतिक वरण के दौरान निरन्तर गुणवत्ता नियन्त्रण की प्रक्रिया से होकर गुज़रते रहते हैं। वही प्राणी अपने पीछे अपनी सन्तानों को छोड़ जाता है, जो सम्भावनाओं का ठीक से हिसाब लगाता है।

लेकिन यह बहुत अमूर्त है। एक लंगूर सम्भावनाओं का ठीक-ठीक हिसाब कैसे लगाता है? निश्चय ही वह अपने कान के पीछे से पेंसिल और पिछली जेब से नोटबुक निकालकर कैलकुलेटर की मदद से दौड़ने की रफ़्तार तथा ऊर्जा के स्तरों का आकलन करना शुरू नहीं कर देता। इसकी बजाय लंगूर का समूचा शरीर ही कैलकुलेटर होता है, जिनको हम अनुभूतियों तथा भावनाओं की संज्ञा देते हैं, वे दरअसल ऐल्गरिदम हैं। लंगूर भूख *महसूस* करता है, वह शेर को देखकर डर *महसूस* करता है और काँपता है, और केलों को देखकर अपने मुँह में पानी भर आया *महसूस* करता है। एक क्षण मात्र के भीतर वह अनुभूतियों,

भावनाओं और लालसाओं का अन्धड़ अनुभव करता है, जो गणना की प्रक्रिया के सिवाय और कुछ नहीं है। परिणाम एक अहसास की शक्ल में सामने आएगा: लंगूर सहसा अपने उत्साह को बढ़ता हुआ महसूस करेगा, उसके रोंगटे खड़े हो जाएँगे, उसकी मांसपेशियाँ तन जाएँगीं, उसकी छाती फूल जाएगी, और वह एक गहरी साँस लेगा, और 'आगे बढ़ो! मैं यह कर सकता हूँ! केलों की तरफ़!' इसकी बजाय उस पर ख़ौफ़ भी सवार हो सकता है, उसके कन्धे झुक जाएँगे, उसके पेट में मरोड़ उठेगी, उसके पैर ढीले पड़ जाएँगे, और 'माँ! शेर! मेरी मदद कर!' कभी-कभी ये सम्भावनाएँ इतनी एक जैसी होती हैं कि फ़ैसला करना मुश्किल हो जाता है। यह स्थिति भी एक अहसास के रूप में प्रकट होगी। लंगूर भ्रमित और अनिश्चय की स्थिति में होगा। 'हाँ...नहीं... हाँ...नहीं... धिक्कार है! मेरी समझ में नहीं आता, क्या करूँ!'

जीन्स को अगली पीढ़ी तक पहुँचाने के लिए जीवित बने रहने की समस्याओं को सुलझा लेना भर काफ़ी नहीं होता। प्राणियों को प्रजनन जारी रखने की समस्याओं को सुलझाना भी ज़रूरी होता है, और यह सम्भावनाओं का हिसाब लगाने पर निर्भर करता है। प्राकृतिक वरण ने प्रजनन की सम्भावनाओं के आकलन के लिए अनुराग और घृणा को द्रुत ऐल्गरिदम के रूप में विकसित किया था। सुन्दरता का अर्थ है 'कामयाब सन्तानें प्राप्ति के अच्छे अवसर'। जब एक औरत एक मर्द को देखती है और सोचती है, 'वाह! वह बहुत शानदार है!' और जब एक मोरनी मोर को देखती है और सोचती है, 'हे भगवान! क्या ग़ज़ब की पूँछ है!', तो वे वही कर रही हैं जो स्वचालित पेय विक्रय मशीन करती है। जैसे ही नर के शरीर से प्रतिबिम्बित प्रकाश उनके दृष्टि-पटल पर पड़ता है, तो विकास प्रक्रिया के लाखों वर्षों के दौरान प्रखर हुए अत्यन्त शक्तिशाली ऐल्गरिदम अपना असर दिखाना शुरू कर देते हैं। कुछ मिलीसेकेंड के भीतर ये ऐल्गरिदम नर के बाह्य स्वरूप में निहित संकेतों को प्रजनन की सम्भावनाओं में बदल देते हैं, और इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि 'पूरी सम्भावना है कि ये उत्तम क़िस्म के जीनों से युक्त एक बहुत ही तन्दुरुस्त और प्रजनन करने में सक्षम नर है। अगर मैं इसके साथ संसर्ग करती हूँ, तो उम्मीद है कि मेरी सन्तानें भी तन्दुरुस्त और उत्तम जीनों से युक्त होंगी'। निश्चय ही, यह निष्कर्ष शब्दों या संख्याओं में व्यक्त नहीं होता, बल्कि वह काम-आकर्षण की उत्तेजक सनसनी में व्यक्त होता है। मोरनियाँ, और ज़्यादातर स्त्रियाँ, इस तरह के गणित क़लम और काग़ज़ की मदद से नहीं लगातीं। वे महज़ उनको महसूस करती हैं।

यहाँ तक कि नोबेल पुरस्कार विजेता अर्थशास्त्री भी अपने निर्णयों के सूक्ष्मतम हिस्सों के लिए ही क़लम, काग़ज़ और कैलकुलेटर की मदद लेते हैं। हमारे 99 प्रतिशत फ़ैसले, जिनमें जीवन-साथियों, आजीविकाओं और आवासों से सम्बन्धित जीवन के अत्यन्त

महत्त्वपूर्ण फ़ैसले शामिल हैं, उन अत्यन्त परिष्कृत ऐल्गरिदमों द्वारा लिए जाते हैं, जिनको हम अनुभूतियों, भावनाओं और आकांक्षाओं की संज्ञा देते हैं।

क्योंकि ये ऐल्गरिदम तमाम स्तनपायियों और पक्षियों (और सम्भवतः कुछ रेंगने वाले जीवों तथा मछलियों) के जीवन को नियन्त्रित करते हैं, इसलिए मनुष्य, लंगूर और सूअर भय को महसूस करते हैं, तो एक ही तरह की तन्त्रिका-सम्बन्धी (न्यूरोलॉजिकल) प्रक्रियाएँ मस्तिष्क के समान इलाक़ों में घटित होती हैं। इसलिए इस बात की सम्भावना है कि भयभीत मनुष्यों, भयभीत लंगूरों और भयभीत सूअरों को एक ही तरह के अनुभव होते हों।

भेद भी निश्चय ही हैं। सूअर उस तरह की करुणा और क्रूरता अनुभव करते प्रतीत नहीं होते, जो *होमो सेपियन्स* की विशेषता है, न ही वे उस तरह का आश्चर्य महसूस करते हैं, जो तारों भरे आकाश की अनन्तता को देखते मनुष्य को अभिभूत कर लेता है। इसकी सम्भावना है कि इसके विपरीत उदाहरण भी हों, मनुष्यों के लिए अज्ञात ऐसी भावनाओं के उदाहरण, लेकिन मैं ऐसी किसी भावना का नाम नहीं ले सकता, क्योंकि कारणों को आसानी से समझा जा सकता है, फिर भी एक ऐसी मूल भावना है, जिसे स्पष्ट तौर पर सारे स्तनपायी साझा करते हैं: माँ और शिशु का मज़बूत रिश्ता। सचमुच, यही तो स्तनपायियों (mammals) को यह नाम देता है। mamma शब्द लैटिन के mamma से आया है, जिसका मतलब है स्तन। स्तनधारी माताएँ अपने बच्चों से इतना प्यार करती हैं कि वे उनको अपने शरीर को चूसकर पोषण प्राप्त करने की इजाज़त देती हैं। दूसरी तरफ़ स्तनधारी बच्चे अपनी माँओं के साथ प्रगाढ़ सम्बन्ध बनाने और उनके पास बने रहने की ज़बरदस्त आकांक्षा अनुभव करते हैं। जंगल में जो सूअर के बच्चे, बछड़े और पिल्ले अपनी माताओं के साथ ऐसा प्रगाढ़ सम्बन्ध नहीं बना पाते, वे मुश्किल से ही लम्बे समय तक ज़िन्दा रह पाते हैं। यह बात अभी हाल ही के समय तक इंसान के बच्चों के बारे में भी सही हुआ करती थी। इसके विपरीत, किसी विरले उत्परिवर्तन (म्यूटेशन) के कारण जो सूअरी, गाय या कुतिया अपने बच्चों के प्रति लापरवाह होती है, वह हो सकता है कि लम्बा और आरामदेह जीवन जी ले, लेकिन उसके जीन अगली पीढ़ी तक नहीं जा पाएँगे। यही तर्क जिराफ़ों, चमगादड़ों, ह्वेलों और पार्क्यपाइन मछलियों के सन्दर्भ में भी सही है। हम दूसरी भावनाओं के बारे में तर्क दे सकते हैं, लेकिन चूँकि स्तनधारी बच्चे मातृवत देखभाल के बिना जीवित नहीं रह सकते, इसलिए यह बात एकदम साफ़ है कि मातृवत प्रेम और माँ तथा शिशु के बीच मज़बूत रिश्ता सारे स्तनधारियों की विशेषता है।

14. मोर और पुरुष। जब आप इन छवियों को देखते हैं, तो देह के अनुपातों, रंगों और आकारों के आँकड़े आपके जैवरासायनिक ऐल्गरिदम द्वारा प्रॉसेस होकर आपके भीतर आकर्षण, विकर्षण या विरक्ति की अनुभूतियाँ जगाते हैं।

इस बात को स्वीकार करने में वैज्ञानिकों को कई साल लग गए। बहुत वक़्त नहीं गुज़रा, जब मनोवैज्ञानिक मनुष्यों तक में माता-पिता और बच्चों के बीच के भावनात्मक बन्धन की अहमियत पर सन्देह करते थे। बीसवीं सदी के पहले अर्द्धांश में, और फ़्रायडवादी सिद्धान्तों के प्रभाव के बावजूद, प्रभावशाली व्यवहारवादी सम्प्रदाय तर्क देते थे कि माता-पिता और बच्चों के बीच के रिश्ते भौतिक प्रतिक्रियाओं (फीडबैक) से आकार लेते हैं। बच्चों को मुख्यतः भोजन, आश्रय और चिकित्सकीय सुविधा की ज़रूरत होती है, और बच्चे अपने माता-पिता के साथ महज़ इसलिए प्रगाढ़ सम्बन्ध बनाते हैं, क्योंकि माता-पिता उनकी इन भौतिक ज़रूरतों को पूरा करते हैं। गर्मजोशी, आलिंगनों और चुम्बनों की माँग करने वाले बच्चों को 'बिगड़ा हुआ' माना जाता था। शिशु-परिचर्या विशेषज्ञों की चेतावनी थी कि जिन बच्चों का उनके माता-पिता द्वारा आलिंगन और चुम्बन किया जाएगा, वे वयस्क होकर हमेशा कुछ न कुछ की माँग करने वाले, अहंकारी और असुरक्षाबोध से ग्रस्त होंगे।

1920 के दशक के शिशु-परिचर्या के क्षेत्र के एक अग्रणी विशेषज्ञ जॉन वाट्सॅन ने अभिभावकों को सख़्त चेतावनी दी थी कि 'अपने बच्चों का' कभी आलिंगन और चुम्बन न करें, उनको कभी अपनी गोद में न बैठने दें। अगर आपके लिए अनिवार्य ही हो, तो जब

वे गुडनाइट कहने आएँ, उस वक़्त उनके माथे भर को चूमें। सुबह उनसे हाथ मिलाएँ। लोकप्रिय पत्रिका *इन्फेंट केयर* का कहना था कि बच्चों के पालन-पोषण का रहस्य अनुशासन बनाए रखने और सख़्त दिनचर्या के मुताबिक़ बच्चों की भौतिक ज़रूरतों को पूरा करने में है। पत्रिका के 1929 के एक लेख में अभिभावकों को निर्देश दिया गया था कि अगर कोई शिशु भोजन दिए जाने के सामान्य समय से पहले भोजन के लिए रोता है, तो 'न तो उसको गोद में उठाइए, न उसका रोना-घोना बन्द करने के लिए उसको झुलाइए, और जब तक उसके भोजन का एकदम सही वक़्त न आ जाए, तब तक उसको कुछ भी खाने-पीने को मत दीजिए। रोने से शिशु को, एकदम छोटे शिशु को भी, कोई नुक़सान नहीं पहुँचेगा'।

1950 और 1960 के दशकों में जाकर विशेषज्ञों की बढ़ती हुई सहमति की वजह से इस सख़्त व्यवहारवादी सिद्धान्तों को त्यागा गया और भावनात्मक ज़रूरतों के केन्द्रीय महत्त्व को स्वीकार किया गया। मनोवैज्ञानिक हैरी हार्लोव ने एक के बाद एक प्रसिद्ध (और भयानक रूप से क्रूर) प्रयोग करते हुए शिशु बन्दरों को उनके जन्म के कुछ ही समय बाद उनकी माँओं से अलग कर दिया, और उनको अलग-थलग छोटे-छोटे पिंजरों में बन्द कर दिया। जब इन बाल बन्दरों के सामने दूध की बोतल से युक्त धातु से निर्मित नक़ली माँ, और बिना दूध वाली मुलायम कपड़ों से ढँकी नक़ली माँ के बीच चुनाव करने का विकल्प पेश किया गया, तो ये बन्दर बिना दूध वाली कपड़े की माँ से, जो बन सकता था, वह हासिल करने के लिए चिपक गए।

ये बाल बन्दर एक ऐसी चीज़ समझते थे, जो जॉन वाट्सॅन और *इन्फेंट केयर* के विशेषज्ञ समझने में असमर्थ रहे: स्तनपायी जीव अकेले भोजन पर जीवित नहीं रह सकते। उनको भावनात्मक बन्धनों की भी ज़रूरत होती है। विकास-प्रक्रिया के लाखों वर्षों ने इन बन्दरों को भावनात्मक बन्धनों की ज़बरदस्त आकांक्षा से पूर्वयोजनाबद्ध (प्रिप्रोग्राम्ड) कर दिया था। विकास-प्रक्रिया ने उनके मन में यह धारणा भी गहरे बैठा दी थी कि कठोर धातुई वस्तुओं की बजाय कोमल रोमदार चीज़ों के साथ ही इस तरह के भावनात्मक सम्बन्धों के बनने की ज़्यादा सम्भावना होती है। (यही इसकी भी वजह है कि इंसान के बच्चों में छुरी-काँटों, पत्थरों या लकड़ी के गुटकों की बजाय गुड़ियों, कम्बलों और गन्धयुक्त लत्तों के प्रति लगाव विकसित होने की ज़्यादा सम्भावना होती है।) भावनात्मक बन्धनों की ज़रूरत इतनी प्रबल होती है कि हार्लोव के बाल-बन्दरों ने दूध पिलाने वाली धातुई नक़ली माँ को छोड़ दिया और अपना ध्यान उस एकमात्र चीज़ की ओर मोड़ दिया, जो उनकी ज़रूरत को पूरा करने के क़ाबिल लगती थी। आह, उस कपड़े की माँ ने कभी उनके उस अनुराग का जवाब नहीं दिया और वे छोटे-छोटे बन्दर गम्भीर मनोवैज्ञानिक और सामाजिक समस्याओं

के शिकार हुए, और वयस्क होने पर तन्त्रिका विकार से पीड़ित और असामाजिक प्राणी बने।

आज जब हम आरम्भिक बीसवीं सदी की शिशु-पालन सलाह की ओर देखते हैं, तो वह हमें समझ से परे प्रतीत होती है। आख़िर ये विशेषज्ञ इस बात को समझने में कैसे विफल रहे कि बच्चों की भावनात्मक ज़रूरतें होती हैं, और उनकी मानसिक और शारीरिक तन्दुरुस्ती इन ज़रूरतों के पूरा किए जाने पर उतनी ही निर्भर करती है, जितनी भोजन, आश्रय और चिकित्सा पर करती है? तब भी जब यही सवाल दूसरे स्तनपायी प्राणियों के सन्दर्भ में उठता है, तो हम इस ज़ाहिर-से तथ्य को नकारते रहते हैं। जॉन वाट्सॅन और *इन्फेंट केयर* के विशेषज्ञों की ही तरह किसानों ने भी समूचे इतिहास के दौरान सूअर के बच्चों, बछड़ों और मेमनों की भौतिक ज़रूरतों का तो ख़याल रखा, लेकिन उनकी भावनात्मक ज़रूरतों की उपेक्षा करते रहे। इस तरह मांस और दुग्ध उद्योग, दोनों ही स्तनपायी जीवों की दुनिया के सर्वाधिक बुनियादी भावनात्मक बन्धन को तोड़ने पर आधारित हैं। इन जानवरों को पालने वाले किसान अपनी प्रजननशील सूअरियों और डेयरी की गायों को बारबार गर्भवती बनाते रहते हैं, लेकिन सूअर के बच्चे और बछड़े जन्म लेने के कुछ ही समय बाद उनकी माँओं से अलग कर दिए जाते हैं, और अक्सर उनके स्तनों को चूसे बिना या उसकी जीभ और शरीर की ऊष्मा को महसूस किए बिना अपने दिन गुज़ारते हैं। जो काम हैरी हार्लोव ने कुछ सौ बन्दरों के साथ किया था, वही काम मांस और दुग्ध उत्पाद उद्योग हर साल अरबों जानवरों के साथ कर रहा है।

कृषिपरक सौदा

पशुपालन करने वाले इन किसानों ने अपने इस व्यवहार को किस तरह उचित ठहराया? जहाँ शिकारी-संग्रहकर्ता पारिस्थितिकीय तन्त्र को जो नुक़सान पहुँचाते थे,उसके प्रति शायद ही सजग होते थे, वहीं ये किसान एकदम अच्छी तरह से जानते थे कि वे क्या कर रहे थे। वे जानते थे कि वे पालतू जानवरों का शोषण कर रहे थे और उनको इंसान की लालसाओं और सनक का ग़ुलाम बना रहे थे। उन्होंने अपने कृत्यों को उस नए देववादी (Theist) मज़हब के नाम पर उचित ठहराया, जो कृषि क्रान्ति के बाद तेज़ी-से बढ़ा और फैला था। देववादी मज़हब ने यह तर्क देना शुरू किया कि विश्व प्राणियों की संसद नहीं, बल्कि महान देवताओं या शायद ईश्वर (God) (ग्रीक में 'Theos') द्वारा शासित एक धर्मतन्त्र है। हम आमतौर से इस धारणा को कृषि के साथ जोड़कर नहीं देखते, लेकिन कम से कम अपने शुरुआती दौर में देववादी मज़हब कृषिपरक उद्यम ही थे। धर्मशास्त्र, मिथक और यहूदी मज़हब, हिन्दू धर्म और ईसाइयत जैसे मज़हबों की उपासना-पद्धतियाँ पहले

दौर में मनुष्यों, घरेलू वनस्पतियों और फ़ार्म में पाले जाने वाले जानवरों के रिश्तों के इर्द-गिर्द घूमते थे।

उदाहरण के लिए बाइबिलपरक यहूदी धर्म किसानों और गड़रियों की ज़रूरतों का ध्यान रखता था। उसके ज़्यादातर निर्देश कृषि और ग्राम्य जीवन से ताल्लुक़ रखते थे, और उसके महत्त्वपूर्ण त्यौहार फ़सल की कटाई से जुड़े उत्सव थे। आज के लोग यरुशलम के प्राचीन उपासनागृह की कल्पना एक बड़े सायनागॉग (यहूदियों का उपासनागृह) के रूप में करते हैं, जहाँ स्वच्छ सफ़ेद लबादे पहने पुरोहित धर्मपरायण तीर्थयात्रियों का स्वागत करते थे, जहाँ सुरीले गायकों की मण्डली बाइबिल के गीतों का गायन करती थी और जहाँ हवा में धूपबत्तियों की सुगन्ध फैली रहती थी। वास्तव में, वह एक बूचड़ख़ाने तथा बार्बेक्यू रेस्तराँ का मिश्रण ज़्यादा लगता था। तीर्थयात्री ख़ाली हाथ नहीं आते थे। वे अपने साथ भेड़ों, बकरियों, चूज़ों और दूसरे जानवरों का अन्तहीन ताँता लेकर आया करते थे। और देवता की वेदी पर इन जानवरों की बलि दी जाती थी और फिर उनको पकाकर खाया जाता था। बछड़ों और मेमनों के आर्तनाद और मिमियाहट में धर्मगीत गायकों के स्वर शायद ही सुनाई दे पाते हों। ख़ून के दाग़ों से भरी पोशाकें पहने पुरोहित इन शिकारों के गले काटते, उनके शरीरों से उफनते हुए ख़ून को घड़ों में भरते और उसको वेदी पर छिड़कते थे। धूपबत्तियों की सुगन्ध जमे हुए ख़ून और भुने हुए गोश्त की गन्ध से मिल जाती थी, और मक्खियों के झुण्ड हर कहीं भिनभिनाते रहते थे (उदाहरण के लिए देखें, नम्बर्स 28, ड्यूटेरोनॉमी 12, और सैम्युएल 2)। अपने घर के सामने के लॉन में बार्बेक्यू रख कर छुट्टी मनाने वाला एक आधुनिक यहूदी परिवार उस धर्मनिष्ठ परिवार के मुक़ाबले बाइबिल के ज़माने की भावना के ज़्यादा क़रीब है, जो सायनागॉग में धर्मग्रन्थों का अध्ययन करते हुए अपना वक़्त बिताता है।

बाइबिलीय यहूदी धर्म जैसे देववादी मज़हबों ने नए ब्रह्माण्डीय मिथकों के माध्यम से कृषिपरक अर्थव्यवस्था का औचित्य प्रतिपादन किया। जीववादी मज़हबों ने इसके पहले विश्व को बहुरंगी अभिनेताओं के एक बड़े चीनी ऑपेरा के रूप में चित्रित किया था। हाथी और बलूत के वृक्ष, मगरमच्छ और नदियाँ, पर्वत और मेंढक, प्रेत और परियाँ, फ़रिश्ते और दैत्य - इनमें से हरेक की इस ब्रह्माण्डीय ऑपेरा में एक भूमिका हुआ करती थी। देववादी मज़हबों ने कथानक को नए सिरे से लिखते हुए विश्व को एक बेरंग इब्सन ड्रामा में बदल दिया, जिसमें मात्र दो ही मुख्य चरित्र थे: मनुष्य और ईश्वर। फ़रिश्ते और दैत्य किसी तरह इस संक्रमणकाल से बच निकले, और वे महान देवताओं के सन्देशवाहक और चाकर बन गए, लेकिन बाक़ी जीववादी अभिनेता यानी सारे जानवर, वनस्पतियाँ और दूसरी क़ुदरती चीज़ें ख़ामोश सजावट की वस्तुएँ बनकर रह गए। यह सही है कि कुछ जन्तुओं को इस या उस देवता के लिए पवित्र माना गया, और बहुत-से देवताओं की मुखकृतियाँ जानवरों की

थीं: मिस्र के देवता एन्यूबिस का सिर सियार का था, और ईसा मसीह तक को अक्सर एक मेमने के रूप में चित्रित किया गया, लेकिन प्राचीन मिस्र के लोग एन्यूबिस और चूज़ों के शिकार के लिए गाँवों में चोरी छिपे घुस आने वाले साधारण सियार के बीच के फ़र्क़ के बारे में आसानी-से बता सकते थे, और कोई ईसाई अपने छुरे के नीचे खड़े मेमने को ईसा मसीह समझने की भूल नहीं करता था।

हम सामान्य तौर पर ऐसा सोचते हैं कि देववादी मज़हबों ने महान देवताओं का पवित्रीकरण किया था। हम यह भूलने की ओर प्रवृत्त होते हैं कि इन मज़हबों ने मनुष्य का भी पवित्रीकरण किया था। इसके पहले तक *होमो सेपियन्स* हज़ारों अभिनेताओं में से महज़ एक अभिनेता हुआ करता था। इस देववादी नाटक में सेपियन्स वे केन्द्रीय नायक बन गए, जिनके चारों तरफ़ पूरा विश्व चक्कर लगाता था।

इस बीच, देवताओं को नाटक में दो जुड़ी हुई भूमिकाएँ दी गईं: पहली, उन्होंने यह समझाया कि सेपियन्स की कौन-सी बड़ी ख़ूबी है और मनुष्यों को तमाम दूसरे प्राणियों पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर उनका शोषण क्यों करना चाहिए। उदाहरण के लिए, ईसाइयत ने यह कहा कि मनुष्यों का बाक़ी सृष्टि पर इसलिए प्रभुत्व है क्योंकि सृष्टिकर्ता ने उनको उस अधिकार के प्रयोग का दायित्व सौंपा है। इससे भी बढ़कर यह कि ईसाइयत के मुताबिक़ ईश्वर ने सिर्फ़ मनुष्यों को ही शाश्वत आत्मा प्रदान की है। चूँकि इस शाश्वत आत्मा की नियति समूचे ईसाई विश्व का मुख्य लक्ष्य है और चूँकि मनुष्येतर जीवों में कोई आत्मा नहीं होती, इसलिए वे महज़ अतिरिक्त उपस्थितियाँ हैं। इस तरह मनुष्य सृष्टि का शिखर बन गया, जबकि तमाम दूसरे प्राणियों को एक तरफ़ खिसका दिया गया।

दूसरी भूमिका में देवताओं को मनुष्यों और पारिस्थितिकीय तन्त्र के बीच मध्यस्थता करनी थी। जीववादी विश्व में हर कोई हर किसी से सीधे बात करता था। अगर आपको रेंडियर से, अंजीर के वृक्ष से, बादलों से या चट्टानों से कुछ पाने की चाह होती थी, तो आप ख़ुद उनसे माँग सकते थे। देववादी विश्व में, सारी अ-मानवीय सत्ताओं को ख़ामोश कर दिया गया। नतीजतन, अब आप वृक्षों या जानवरों से बात नहीं कर सकते थे। तब अगर आप वृक्षों से ज़्यादा फल चाहते थे, गायों से ज़्यादा दूध चाहते थे, बादलों से ज़्यादा बारिश चाहते थे और टिड्डियों को अपनी फ़सलों से दूर रखना चाहते थे, तो क्या करते? ठीक इसी मुक़ाम पर देवताओं का परिदृश्य में प्रवेश हुआ। उन्होंने बारिश, उपज और संरक्षण देने का वादा किया, बशर्ते कि बदले में मनुष्य उनके लिए कुछ करते। कृषिपरक समझौते का यही सार था। देवताओं ने कृषि उत्पादनों की रक्षा की और उनमें वृद्धि की, और बदले में मनुष्यों को अपने उत्पादों को देवताओं से साझा करना पड़ता था। इस सौदे ने शेष पारिस्थितिकी की क़ीमत पर दोनों पक्षों का हित किया।

आज नेपाल के बरियापुर गाँव में देवी गढ़िमाई के भक्तगण हर पाँचवें साल में उनका उत्सव मनाते हैं। 2009 में एक रिकॉर्ड क़ायम हुआ, जब इस देवी के लिए 250,000 पशुओं की बलि दी गई। वहाँ गए एक ब्रिटिश पत्रकार को एक स्थानीय ड्राइवर ने बताया कि 'अगर हमारी कोई कामना होती है, और हम देवी के लिए बलि लेकर यहाँ आते हैं, तो पाँच साल के भीतर हमारी कामनाएँ पूरी हो जाती हैं'।

ज़्यादातर देववादी मिथक इस सौदे के सूक्ष्म ब्योरों को स्पष्ट करते हैं। मेसोपोटामियाई गिलगामेश महाकाव्य बताता है कि जब देवताओं ने दुनिया को नष्ट करने के लिए प्रलय को रवाना किया, तो सारे मनुष्य और पशु नष्ट हो गए। तब जाकर इन अविवेकी देवताओं को अहसास हुआ कि उनको बलि चढ़ाने के लिए तो कोई बचा ही नहीं है। वे भूख और पीड़ा से उन्मादी गए। क़िस्मत से, ऐंकी देवता की दूरदर्शिता की बदौलत मनुष्यों का एक परिवार किसी तरह बच रहा था। ऐंकी ने अपने भक्त उत्नापिश्तिम को उसके सम्बन्धियों तथा पशुओं के समूह के साथ लकड़ी की एक विशाल नाव में जाकर पनाह लेने का निर्देश दिया था। जब बाढ़ थम गई और यह मेसोपोटेमियाई नोआ उस नाव से बाहर निकला, तो उसने पहला काम यह किया कि उसने देवताओं के लिए कुछ जानवरों की बलि दी। महाकाव्य कहता है कि तब सारे महान देवता उस स्थल की ओर भागे: 'देवताओं ने सुगन्ध को सूँघा / देवताओं ने मधुर सुगन्ध को सूँघा / देवता उस बलि के इर्द-गिर्द मक्खियों की तरह मँडराने लगे'। बाइबिल में दी गई बाढ़ की कथा (जो इस मेसोपोटेमियाई संस्करण के 1,000 साल से ज़्यादा बाद लिखी गई थी) भी बताती है कि नाव से बाहर आने के तुरन्त बाद 'नोआ ने प्रभु के लिए एक वेदी का निर्माण किया और, और कुछ स्वच्छ पशुओं और स्वच्छ पक्षियों को जलाकर उनकी बलि उस वेदी पर चढ़ाई। इस मीठी सुगन्ध को महसूस करते हुए प्रभु ने अपने मन में कहा, 'अब मैं इंसानों की वजह से धरती को कभी शाप नहीं दूँगा' (जेनेसिस 8:20-I)।

बाढ़ की यह कथा कृषि जगत का एक संस्थापक मिथक बन गई। बेशक, इसे एक आधुनिक पर्यावरणपरक घुमाव दिया जा सकता है। यह बाढ़ हमें यह सीख दे सकती है कि हमारे कृत्य समूचे पारिस्थितिकीय तन्त्र को बर्बाद कर सकते हैं, और देवताओं द्वारा मनुष्यों को शेष सृष्टि की रक्षा की ज़िम्मेदारी सौंपी गई है, लेकिन इस कथा की पारम्परिक व्याख्याएँ बाढ़ को मनुष्यों की श्रेष्ठता और पशुओं की मूल्यहीनता के प्रमाण के रूप में देखती हैं। इन व्याख्याओं के मुताबिक़ नोआ को पशुओं के हित की बजाय देवताओं और मनुष्यों के उभयनिष्ठ हितों की रक्षा की ख़ातिर समूचे पारिस्थितिकीय तन्त्र को बचाने का निर्देश दिया गया था। अ-मानवीय प्राणियों का कोई अन्तर्हित मूल्य नहीं है, उनका अस्तित्व पूरी तरह से हमारी ख़ातिर है।

आख़िरकार, जब 'प्रभु ने देखा कि मानव प्रजाति की दुष्टता कितनी बढ़ गई है' तो उसने संकल्प किया कि 'मैंने जिस मानव प्रजाति की रचना की है, उसको पृथ्वी से पूरी तरह नेस्तनाबूद कर दूँगा, और उनके साथ पशुओं, पक्षियों और ज़मीन पर रेंगने वाले जीवों को भी नष्ट कर दूँगा, क्योंकि मुझे पछतावा हो रहा है कि मैंने उनकी रचना की' (जेनेसिस 6:7)। बाइबिल सोचती है कि *होमो सेपियन्स* के गुनाहों की ख़ातिर सारे प्राणियों को सज़ा के तौर पर नष्ट कर देना एकदम ठीक है, मानो अगर मनुष्यों ने दुर्व्यवहार किया है, तो जिराफ़, पेलिकन और लेडीबर्ड अपना सारा उद्देश्य ही खो चुके हैं। बाइबिल एक ऐसी स्थिति की कल्पना नहीं कर सकी, जिसमें ईश्वर *होमो सेपियन्स* की सृष्टि करने को लेकर पछताते हुए इस पापी वानर को पृथ्वी से समाप्त कर देता, और फिर शुतुरमुर्गों, कंगारुओं और पाण्डाओं की हरक़तों का अनन्त काल तक आनन्द लेता।

तब भी देववादी मज़हबों में जानवरों के हित की कुछ ख़ास तरह की आस्थाएँ मौजूद हैं। ईश्वर ने मनुष्यों को पशुओं के साम्राज्य पर प्रभुत्व क़ायम करने का अधिकार दिया, लेकिन इस प्रभुत्व के साथ कुछ ज़िम्मेदारियाँ भी जुड़ी हुई हैं। उदाहरण के लिए, यहूदियों को निर्देश दिया गया था कि वे सैबथ के दिन फ़ॉर्म के जानवरों को विश्राम दें, और उनको अनावश्यक तकलीफ़ पहुँचाने से बचें। (हालाँकि जब भी कभी हितों का टकराव होता था, तो हमेशा मनुष्य के हितों की जानवर के हितों पर जीत होती थी।)

टैल्मड (यहूदी धर्मनीति का ग्रन्थ) की एक कथा बताती है कि किस तरह जब एक बछड़े को बूचड़ख़ाने ले जाया जा रहा था, तो वह छूटकर भागा और रब्बीनियाई यहूदी धर्म के एक संस्थापक रब्बी यहूदा हानासी की शरण में जा पहुँचा। बछड़े ने अपना सिर रब्बी के लहराते हुए लबादे में डाल दिया और रोना शुरू कर दिया, लेकिन रब्बी ने बछड़े को धक्का दे दिया और कहा, 'जा, तुझे इसी उद्देश्य से तो रचा गया है'। चूँकि रब्बी ने कोई दया नहीं दिखाई, इसलिए ईश्वर ने उसको सज़ा दी, और वह तेरह सालों तक एक दर्दनाक बीमारी से ग्रस्त रहा। इसके बाद, एक दिन, रब्बी के घर की सफ़ाई करते हुए एक नौकर को कुछ नवजात चूहे मिले और वह उन चूहों को बुहारकर बाहर फेंकने लगा। रब्बी यहूदा उन असहाय जीवों को बचाने भागा और उसने उनको चैन से रहने देने के लिए नौकर को निर्देश दिया, क्योंकि 'ईश्वर सबका हितैशी है, और उसके मन में उन सबके प्रति करुणा है, जिनको उसने रचा है' (स्तोत्र 145:9)। चूँकि रब्बी ने इन चूहों के प्रति करुणा दिखाई, तो ईश्वर ने भी रब्बी के प्रति करुणा दिखाई और उसकी बीमारी को ठीक कर दिया।

दूसरे मज़हब, ख़ासतौर से जैन, बौद्ध और हिन्दू धर्म ने जानवरों के प्रति इससे भी ज़्यादा संवेदना दिखाई है। ये मज़हब मनुष्यों और शेष पारिस्थितिकीय तन्त्र के बीच के रिश्ते पर बल देते हैं, और उनका सबसे पहला निर्देश किसी भी प्राणी की हत्या से बचने का रहा है। जहाँ बाइबिल का यह निर्देश कि 'तुम्हें हत्या नहीं करनी चाहिए' केवल मनुष्यों

तक सीमित है, वहीं अहिंसा का प्राचीन भारतीय सिद्धान्त प्रत्येक चेतन प्राणी को अपने में समेटता है। इस मामले में जैन भिक्षु विशेष रूप से सावधानी बरतते हैं। वे हमेशा सफ़ेद कपड़े से अपना मुँह ढँके रहते हैं, ताकि उनके साँस लेने से कोई कीड़ा अन्दर न चला जाए, जब भी वे चलते हैं, तो रास्ते में पड़ने वाली किसी चींटी या गुबरैले को हल्के-से बुहारने के लिए हाथ में झाड़ू लिए रहते हैं।

तब भी, सारे कृषिपरक मज़हबों - जिनमें जैन, बौद्ध और हिन्दू धर्म शामिल हैं - ने मनुष्य की श्रेष्ठता और (और अगर मांस के लिए नहीं, तो दूध और उनके शारीरिक श्रम की ख़ातिर) जानवरों के शोषण को उचित ठहराने के रास्ते ढूँढ निकाले हैं। उन सबका यह दावा है कि प्राणियों के बीच उच्च और निम्न का जो क़ुदरती क्रम है, वह मनुष्यों को दूसरे प्राणियों के नियन्त्रण और इस्तेमाल की पात्रता देता है, बशर्ते कि मनुष्य कुछ ख़ास प्रतिबन्धों का पालन करे। उदाहरण के लिए हिन्दू धर्म ने गाय को पवित्र माना है और गोमांस खाने पर रोक लगाई है, लेकिन उसने यह दलील देते हुए दुग्ध उत्पादन उद्योग को अन्ततः औचित्य प्रदान किया है कि गायें उदार प्राणी होती हैं, जो निश्चय ही अपने दूध को मानव जाति के साथ साझा करने को लालायित रहती हैं।

इस तरह मनुष्यों ने एक 'कृषिपरक सौदा' किया। इस सौदे के मुताबिक़, ब्रह्माण्डीय शक्तियों ने मनुष्यों को दूसरे प्राणियों पर प्रभुत्व क़ायम करने का अधिकार प्रदान किया है, बशर्ते कि मनुष्य देवताओं के प्रति, प्रकृति के प्रति और स्वयं इन प्राणियों के प्रति कुछ निश्चित दायित्वों का निर्वाह करे। इस तरह के एक ब्रह्माण्डीय क़रार के वजूद पर विश्वास करना आसान था, क्योंकि यह खेतिहर जीवन की दिनचर्या को प्रतिबिम्बित करता था।

शिकारी-संग्रहकर्ताओं ने स्वयं को श्रेष्ठ प्राणियों के रूप में नहीं देखा था, क्योंकि वे पारिस्थितिकीय तन्त्र पर अपने प्रभाव को लेकर शायद ही कभी सजग होते थे। दर्जनों की संख्या वाला एक सामान्य दल हज़ारों जंगली जानवरों से घिरा होता था, और उसका जीवन इन जानवरों की समझ और उनके सम्मान पर निर्भर करता था। भोजन खोजियों को निरन्तर अपने आप से पूछना पड़ता था कि हिरण किस बारे में सपने देखते हैं, और शेर क्या सोचते हैं, अन्यथा वे न तो हिरणों का शिकार कर पाते, न शेरों से बच कर भाग पाते।

इसके विपरीत, किसान मनुष्य के सपनों और विचारों द्वारा नियन्त्रित और गढ़ी गई दुनिया में रहते थे। मनुष्य अभी भी आँधियों और भूकम्पों जैसी भयावह क़ुदरती ताक़तों के अधीन हुआ करते थे, लेकिन वे दूसरे जानवरों की इच्छाओं पर काफ़ी कम निर्भर हो गए थे। एक खेतिहर लड़का जल्दी ही घुड़सवारी करना, बैल को जोतना, अड़ियल टट्टू को कोड़े फटकारना और भेड़ों के झुण्ड को चारागाह में ले जाना सीख लेता था। यह विश्वास

करना आसान और प्रलोभनकारी था कि ये रोज़मर्रा की गतिविधियाँ या तो क़ुदरती व्यवस्था को प्रतिबिम्बित करती थीं या परलोक की आकांक्षाओं को।

इस तरह कृषि क्रान्ति एक साथ एक आर्थिक और धार्मिक क्रान्ति थी। पशुओं के क्रूरतापूर्ण शोषण को उचित ठहराने वाले नए क़िस्म के धार्मिक विश्वासों के साथ-साथ नए क़िस्म के आर्थिक सम्बन्ध प्रकट हुए। इस प्राचीन प्रक्रिया को आज भी उस वक़्त लक्ष्य किया जा सकता है, जब कभी शिकारी-संग्रकर्ताओं का कोई अन्तिम बचा समुदाय कृषि कर्म को अपनाता है। हाल के वर्षों में दक्षिण भारत के नायक शिकारी-संग्रहकर्ताओं ने गाय-बैलों को चराने, चूज़ों को पालने और चाय की खेती करने जैसे कृषिपरक कार्य हाथ में लिए हैं। आश्चर्य की बात नहीं है कि इन लोगों ने भी जानवरों के प्रति नए रवैये अपना लिए हैं, और वे पालतू जानवरों (और वनस्पतियों) के बारे में वन्य प्राणियों की तुलना में बहुत अलग तरह के दृष्टिकोणों का समर्थन करने लगे हैं।

जिस जीवित प्राणी का कोई अनूठा व्यक्तित्व होता है, उसको नायक भाषा में मैनसन कहा जाता है। नृवैज्ञानिक डैनी नावेह द्वारा की गई पूछताछ के दौरान नायक ने स्पष्ट किया कि सारे हाथी *मैनसन* होते हैं। 'हम जंगल में रहते हैं, वे जंगल में रहते हैं। हम सब मैनसन हैं...उसी तरह भालू, हिरण और बाघ भी हैं। सारे जंगली जानवर'। 'और गायें?' 'गायें अलग हैं। आपको उनको हर कहीं हाँक कर ले जाना होता है।' 'और चूजे?' 'वे कुछ भी नहीं हैं। वे मैनसन नहीं हैं।' 'और जंगल के पेड़?' 'हाँ वे लम्बे समय तक जीवित रहते हैं'। 'और चाय की झाड़ियाँ? 'ओह, मैं उनकी खेती करता हूँ ताकि मैं उसको बेचकर स्टोर से अपनी ज़रूरत की चीज़ें ख़रीद सकूँ। नहीं, वे *मैनसन* नहीं हैं'।

सम्मान के हक़दार संवेदनशील जीवों से निरी सम्पत्ति के रूप में जानवरों के दर्ज़े का घटना गायों और चूज़ों तक जाकर शायद ही समाप्त होता हो। ज़्यादातर कृषिपरक समाजों ने समाज के विभिन्न वर्गों से इस तरह का बरताव शुरू कर दिया है, जैसे वे भी सम्पत्ति हों। प्राचीन मिस्र, बाइबिलयुगीन इज़रायल और मध्ययुगीन चीन में मनुष्यों को ग़ुलाम बनाना, उनको यातनाएँ देना और तुच्छ-से-तुच्छ अपराधों के लिए उनको मौत की सज़ा देना आम बात हुआ करती थी। जिस तरह किसान खेती के संचालन के बारे में गायों और चूज़ों की राय नहीं लेते थे, उसी तरह शासक अपने राज्य के संचालन के बारे में किसानों की राय लेने का सपना भी नहीं देखते थे। और जब प्रजातीय समूहों या मज़हबी सम्प्रदायों में टकराहट होती थी, तो वे अक्सर एक-दूसरे का अमानवीयकरण करते थे। 'अन्यों' को अ-मानवीय पशु के रूप में चित्रित करना उनसे इस तरह के बरताव का पहला क़दम होता था। खेत इस तरह आत्मतुष्ट मालिकों, शोषण के लिए उपयुक्त हीन प्रजातियों, संहार के लिए तैयार जंगली पशुओं और इस समूची व्यवस्था को अपना आशीर्वाद प्रदान करते आसमान में बैठे महान एक ईश्वर से युक्त नए समाजों की प्रतिकृति बन गए।

एकाकीपन के पाँच सौ वर्ष

आधुनिक विज्ञान और उद्योग ने मानव-पशु सम्बन्ध के क्षेत्र में अगली क्रान्ति का सूत्रपात किया। कृषि क्रान्ति के दौरान मानव जाति ने जानवरों और वनस्पतियों की ज़बान बन्द कर दी, और जीववाद के महान ऑपेरा को मनुष्य और देवताओं के बीच के संवाद में बदल दिया। वैज्ञानिक क्रान्ति के दौरान मानव जाति ने देवताओं की ज़बान भी बन्द कर दी। अब दुनिया एक व्यक्ति पर केन्द्रित प्रदर्शन बन गई। मानव जाति ख़ाली मंच पर अकेली खड़ी थी - ख़ुद से बतियाती हुई, किसी के भी साथ कोई समझौता-वार्ता न करती हुई और बिना किसी जवाबदेही के विपुल शक्ति हासिल करती हुई। भौतिकी, रसायनशास्त्र और जीवविज्ञान के गूँगे नियमों की व्याख्या करते हुए मानव जाति इन नियमों का मनमाना उपयोग करती है।

जब एक आदिम शिकारी घास के मैदान (सवाना) में जाता था, तो वह जंगली साँड से मदद माँगता था, और वह साँड शिकारी से कुछ माँगता था। जब एक प्राचीन किसान चाहता था कि उसकी गायें भरपूर दूध दें, तो इसके लिए वह स्वर्ग के किसी महान देवता की मदद माँगता था, और देवता उसके सामने अपनी शर्तें रखता था। जब नैसले कम्पनी के अनुसन्धान और विकास विभाग के सफ़ेद कोट धारी कर्मचारी अपने दुग्ध उत्पादों में वृद्धि करना चाहते हैं, तो वे जनेटिक्स का अध्ययन करते हैं - और जीन्स उनसे बदले में किसी चीज़ की माँग नहीं करते।

लेकिन जिस तरह शिकारियों और किसानों के अपने मिथक हुआ करते थे, उसी तरह इस अनुसन्धान और विकास विभाग के अपने मिथक हैं। उनका सबसे प्रसिद्ध मिथक ज्ञान के वृक्ष (ट्री ऑफ़ नॉलेज) और ईडन के गार्डन (गार्डन ऑफ़ ईडन) की किंवदन्ती की बेशर्मी के साथ चोरी करता है, लेकिन इस कृत्य को लिंकनशायर के वूल्स्थ्रोप मेनोर (आइज़ैक न्यूटन का जन्म-स्थल और वह स्थल, जहाँ न्यूटन ने सेब को पेड़ से नीचे गिरते हुए देखा था - अनुवादक) के ब़गीचे में उठा ले जाता है। इस मिथक के मुताबिक़ आइज़ैक न्यूटन सेब के एक वृक्ष के नीचे बैठे थे, जब एक पका हुआ सेब उनके सिर पर जाकर गिरा। न्यूटन सोचने लगे कि वह सेब तिरछी तरफ़ जाकर गिरने या ऊपर की ओर जाने की बजाय सीधा नीचे की ओर ही क्यों गिरा। उनकी यह जिज्ञासा उनको गुरुत्वाकर्षण और लॉ ऑफ़ न्यूटोनियन मैकेनिक्स के आविष्कार की ओर ले गई।

न्यूटन का यह क़िस्सा ज्ञान के वृक्ष को सिर के बल खड़ा कर देता है। ईडन के बग़ीचे में नाटक की शुरुआत साँप करता है, जब वह मनुष्यों को पाप करने के लिए ललचाता है, और इस तरह उनको ईश्वर के कोप का भाजन बनाता है। आदम और ईव साँप और ईश्वर, दोनों के लिए समान रूप से एक खिलौना हैं। इसके विपरीत, वूल्स्थ्रोप के बग़ीचे में मनुष्य अकेला कर्ता है, हालाँकि न्यूटन स्वयं गहरे मज़हबी ईसाई थे, जो भौतिकी के नियमों से

ज़्यादा समय बाइबिल का अध्ययन करने में लगाते थे, लेकिन जिस वैज्ञानिक क्रान्ति का आगाज़ करने में उन्होंने मदद की, उस क्रान्ति ने ईश्वर को परे धकेल दिया। जब न्यूटन के वारिस उत्पत्ति (जेनेसिस) का अपना मिथक लिखने को बैठे, तो न तो ईश्वर ही उनके लिए किसी काम का था और न ही साँप। वूल्स्थ्रोप का बग़ीचा प्रकृति के अन्धे नियमों से संचालित है, और इन नियमों की व्याख्या की पहल पूरी तरह से मानवीय है। क़िस्से की शुरुआत भले ही न्यूटन के सिर पर सेब के गिरने से होती है, लेकिन सेब ने यह काम किसी उद्देश्य से नहीं किया था।

गार्डन ऑफ़ ईडन के मिथक में मनुष्यों को उनकी जिज्ञासा-वृत्ति और ज्ञान हासिल करने की इच्छा के लिए दण्डित किया जाता है। ईश्वर उनको स्वर्ग से निकाल देता है। गार्डन ऑफ़ वूल्स्थ्रोप के मिथक में न्यूटन को कोई दण्डित नहीं करता - ठीक उलट स्थिति। उनकी जिज्ञासा की वजह से मानव जाति विश्व की बेहतर समझ हासिल करती है, ज़्यादा शक्तिशाली बन जाती है और टेक्नॉलॉजिकल स्वर्ग की दिशा में एक क़दम और आगे बढ़ाती है। समूची दुनिया में असंख्य अध्यापक जिज्ञासा को प्रोत्साहित करने के लिए न्यूटन के मिथक का वर्णन करते हैं, जिसका यह अभिप्राय होता है कि अगर हम पर्याप्त ज्ञान हासिल कर लेते हैं, तो हम यहीं धरती पर स्वर्ग की रचना कर सकते हैं।

देखा जाए तो ईश्वर न्यूटन के मिथक तक में मौजूद है: न्यूटन स्वयं वह ईश्वर हैं। जब जैवप्रौद्योगिकी, अतिसूक्ष्म प्रौद्योगिकी विज्ञान के अन्य फल पक जाएँगे, तब *होमो सेपियन्स* दिव्य शक्तियाँ अर्जित कर लेगा, और एक पूरी परिक्रमा करने के बाद बाइबिल के ज्ञान के वृक्ष के पास लौट आएगा। आदिकालीन शिकारी-संग्रहकर्ता प्राणियों की महज़ एक प्रजाति हुआ करते थे। कृषकों ने अपने आप को सृष्टि के शिखर पर देखा। वैज्ञानिक हमें पदोन्नत कर देवता बना देंगे।

जहाँ कृषि क्रान्ति ने देववादी मज़हबों को जन्म दिया, वहीं वैज्ञानिक क्रान्ति ने उन मानववादी मज़हबों को पैदा किया, जिनमें मनुष्यों ने देवताओं की जगह ले ली। जहाँ देववादी theos ('देवता के लिए ग्रीक शब्द) की उपासना करते हैं, वहीं मानववादी मनुष्यों की उपासना करते हैं। उदारवाद, साम्यवाद और नाज़ीवाद जैसे मानववादी मज़हबों के पीछे संस्थापक धारणा यह है कि *होमो सेपियन्स* में कोई ऐसा अनूठा और पवित्र सत्त्व मौजूद है, जो विश्व के सारे अर्थों और शक्ति का स्रोत है। ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी घटित होता है, उसके सही या ग़लत होने का आकलन होमो सेपियन्स पर उसके प्रभाव के मुताबिक़ होता है।

जहाँ देववाद ने पारम्परिक कृषि का औचित्य ईश्वर के नाम पर प्रतिपादित किया था, वहीं मानववाद ने आधुनिक औद्योगिक कृषि का औचित्य मनुष्य के नाम पर प्रतिपादित

किया है। औद्योगिक कृषि ने मनुष्य की ज़रूरतों, उसकी सनकों और इच्छाओं का पवित्रीकरण करते हुए दूसरी हर चीज़ का तिरस्कार किया। औद्योगिक कृषि की उन पशुओं में कोई वास्तविक दिलचस्पी नहीं है, जो मानव प्रकृति की पवित्रता में साझा नहीं करते। और देवताओं के लिए उसका कोई उपयोग नहीं है, क्योंकि आधुनिक विज्ञान और प्रौद्योगिकी मनुष्यों को वह शक्ति प्रदान करते हैं, जो प्राचीन देवताओं की शक्ति से बहुत ज़्यादा बढ़ी हुई है। विज्ञान आधुनिक फ़ार्मों को गायों, सूअरों और चूज़ों को उससे ज़्यादा कठोर परिस्थितियों के अधीन करने में सक्षम बनाता है, जो पारम्परिक खेतिहर समाजों में प्रचलित हुआ करती थीं।

प्राचीन मिस्र, रोमन साम्राज्य या मध्ययुगीन चीन में मनुष्यों को जैवरासायनिकी, जनेटिक्स, जीवविज्ञान और महामारी विज्ञान की प्राथमिक समझ ही हुआ करती थी। नतीजतन, छलप्रयोग करने की उनकी शक्तियाँ भी सीमित थीं। उस ज़माने में गायें, सूअर और चूज़े घरों के बीच मुक्त ढंग से आवाजाही करते रहते थे और कचरे के ढेरों या पास के जंगलों में खाद्य सामग्री के ख़ज़ानों की तलाश करते रहते थे। अगर किसी महत्त्वाकांक्षी किसान ने किसी भीड़ भरे दड़बे में हज़ारों जानवरों को बन्द करके रखने की कोशिश की होती, तो इसके नतीजे में किसी घातक बीमारी ने सारे जानवरों और साथ ही कई सारे ग्रामीणों को ख़त्म कर डाला होता। कोई पुरोहित, ओझा या देवता इस विपत्ति को न रोक सका होता।

लेकिन जैसे ही आधुनिक विज्ञान ने महामारियों, रोगाणुओं और एंटीबायोटिक्स के रहस्यों को बूझ लिया, वैसे ही औद्योगिक दड़बे, मवेशियों के बाड़े और सूअरबाड़े सुगम हो गए। टीकाकरण, दवाओं, हॉर्मोनों, कीटाणुनाशकों, सेंट्रल एयरकंडीशनिंग पद्धतियों और स्वचालित फ़ीडरों की मदद से अब सूअरों, गायों और चूज़ों को कतारबद्ध ढंग से पिंजरों में ठूँस देना, और अपूर्व दक्षता के साथ मांस, दूध और अण्डों का उत्पादन करना सम्भव हो गया है।

हाल के वर्षों में, जब लोगों ने एक बार फिर मानव-पशु सम्बन्धों के बारे में सोचना शुरू कर दिया है, तो इस तरह के सुलूक उत्तरोत्तर आलोचना का विषय बनते गए हैं। हम सहसा इन तथाकथित निम्न जीवन-रूपों की नियति में अपूर्व दिलचस्पी दिखाने लगे हैं, शायद इसलिए कि हम ख़ुद वैसे ही बनने जा रहे हैं। अगर कभी कम्प्यूटर प्रोग्रामों ने अतिमानवीय बुद्ध और अपूर्व क्षमता अर्जित कर ली, तो क्या हमें इन प्रोग्रामों को उससे ज़्यादा महत्त्व देना शुरू कर देना चाहिए, जितना महत्त्व हम मनुष्यों को देते हैं? उदाहरण के लिए, अगर कृत्रिम बुद्ध (आर्टिफ़िशल इंटेलिजेंस) अपनी ख़ुद की ज़रूरतों और आकांक्षाओं में वृद्धि करने के लिए मनुष्यों का शोषण करती है, या उनकी हत्याएँ तक कर डालती है, तो क्या हम इसकी इजाज़त देंगे? अगर उसकी श्रेष्ठतम बुद्ध और शक्ति के

बावजूद उसको इस बात की कभी भी इजाज़त नहीं दी जानी चाहिए, तो फिर मनुष्यों के लिए यह किस तर्क से नैतिक है कि वे सूअरों का शोषण और उनकी हत्याएँ करें? क्या मनुष्यों में अधिक बुद्धि और ज़्यादा शक्ति के अलावा कोई और ऐसी अनूठी ख़ूबी है, जो उनको सूअरों, चूज़ों, चिम्पांज़ियों और कम्प्यूटर प्रोग्रामों से समान से रूप से अलग करती है? अगर हाँ, तो वह ख़ूबी कहाँ से आती है, और हम इस बात को पक्के तौर पर क्यों मानकर चलते हैं कि कृत्रिम बुद्धि (आर्टिफ़िशल इंटेलिजेंस) उसको कभी भी अर्जित नहीं कर सकती? अगर ऐसी कोई खूबी नहीं है, तो क्या कम्प्यूटरों द्वारा मनुष्य की बुद्धि और शक्ति को पीछे छोड़ देने के बाद भी मनुष्य के जीवन को विशेष मूल्य प्रदान करते रहने की कोई वजह होगी? वाक़ई, सबसे पहली बात तो यही है कि मनुष्य में वह कौन-सी ऐसी चीज़ है, जो हमें इस क़दर बुद्धिमान और शक्तिशाली बनाती है, और इस बात की सम्भावना कैसे है कि अ-मानवीय सत्ताएँ कभी हमारी बराबरी नहीं कर पाएँगी और हमें पीछे नहीं छोड़ पाएँगी?

अगला अध्याय *होमो सेपियन्स* की फ़ितरत और ताक़त का परीक्षण करेगा, दूसरे जीवधारियों के साथ अपने रिश्तों को और ज़्यादा समझने के लिए ही नहीं, बल्कि इस बात का आकलन करने के लिए भी कि हमारा भविष्य क्या हो सकता है, और मानव तथा अतिमानव के बीच के रिश्ते किस तरह का रूप ले सकते हैं।

3
मनुष्य की ख़ूबी

इसमें कोई सन्देह नहीं कि *होमो सेपियन्स* दुनिया की सबसे ज़्यादा ताक़तवर प्रजाति है। *होमो सेपियन्स* को इस तरह सोचना भी अच्छा लगता है कि उसकी एक श्रेष्ठ नैतिक हैसियत है, और मानव जीवन का सूअरों, हाथियों या भेड़ियों के जीवन से कहीं ज़्यादा मूल्य है। यह बात बहुत साफ़ नहीं है। क्या किसी के पास ताक़त का होना उसको सही बना देता है? क्या मनुष्य का जीवन सूअर के जीवन के मुक़ाबले महज़ इसलिए ज़्यादा बेशक़ीमती है, क्योंकि मानव-समुदाय सूअर-समुदाय से ज़्यादा ताक़तवर होता है? संयुक्त राज्य अमेरिका अफ़गानिस्तान के मुक़ाबले ज़्यादा ताक़तवर है, क्या इसका यह मतलब है कि अमेरिकी ज़िन्दगियों के अन्तर्निहित मूल्य अफ़गानी ज़िन्दगियों के अन्तर्निहित मूल्यों के मुक़ाबले ज़्यादा हैं?

व्यावहारिक स्तर पर अमेरिकी *ज़िन्दगियों* को ज़्यादा क़ीमती माना जाता है। एक औसत अफ़गानी के मुक़ाबले एक औसत अमेरिकी की शिक्षा, स्वास्थ्य और सुरक्षा पर ज़्यादा पैसा ख़र्च किया जाता है। किसी अफ़गानी नागरिक के मारे जाने के मुक़ाबले एक अमेरिकी नागरिक का मारा जाना कहीं ज़्यादा बड़े अन्तरराष्ट्रीय शोर-शराबे का सबब बनता है। तब भी यह आमतौर से स्वीकृत है कि यह भूराजनैतिक शक्ति-सन्तुलन का अन्यायपूर्ण परिणाम मात्र है। अफ़गानिस्तान का दबदबा संयुक्त राज्य अमेरिका के मुक़ाबले बहुत कम हो सकता है, तब भी तोरा बोरा की पहाड़ियों के एक बच्चे के जीवन को बेवरली हिल्स के बच्चे के जीवन जितना ही पवित्र माना जाता है।

इसके विपरीत, जब हम इंसान के बच्चों को सूअर के बच्चों से ज़्यादा वरीयता देते हैं, तो हम यह विश्वास करना चाहते हैं कि हमारा यह कृत्य पारिस्थितिकीय शक्ति-सन्तुलन से

ज़्यादा गहरी किसी चीज़ को प्रतिबिम्बित करता है। हम यह विश्वास करना चाहते हैं कि इंसानी ज़िन्दगियाँ वाक़ई किसी बुनियादी स्तर पर श्रेष्ठतर हैं। हम सेपियन्स को ख़ुद से यह कहना अच्छा लगता है कि हमारे पास कोई ऐसी जादुई ख़ूबी है जो न सिर्फ़ हमारी अपरिमित शक्ति का रहस्य है, बल्कि वह हमें हमारी विशिष्ट हैसियत के लिए नैतिक औचित्य भी प्रदान करती है। यह इंसानी ख़ूबी क्या है?

इसका पारम्परिक एकेश्वरवादी जवाब यह है कि केवल सेपियन्स के पास ही अनश्वर आत्माएँ होती हैं। काया का क्षरण हो जाता है और वह सड़ जाती है, लेकिन आत्मा मुक्ति या नर्क की दिशा में यात्रा करती रहती है, और वह या तो स्वर्ग में चिरकालीन आनन्द का भोग करेगी या अनन्त काल तक नर्क की यातनाएँ भोगेगी। चूँकि सूअरों या दूसरे जीवधारियों में यह आत्मा नहीं होती, इसलिए वे इस ब्रह्माण्डीय नाटक में हिस्सा नहीं लेते। वे महज़ कुछ सालों का जीवन जीते हैं, और फिर मर जाते हैं और शून्य में लुप्त हो जाते हैं। इसलिए हमें भंगुर सूअरों की बजाय इन अनश्वर मानवीय आत्माओं की ज़्यादा चिन्ता करनी चाहिए।

यह कोई किंडरगार्टन की परी कथा नहीं है, बल्कि एक ऐसा शक्तिशाली मिथक है, जो इक्कीसवीं सदी के इस आरम्भिक दौर में भी अरबों इंसानों के जीवन को आकार दे रहा है। यह विश्वास हमारे वैधानिक, राजनैतिक और आर्थिक तन्त्र का आधार-स्तम्भ है कि मनुष्यों के पास अनश्वर आत्मा है, जबकि अन्य जीवधारी जल्दी ही मिट जाने वाली कायाएँ मात्र हैं। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उदाहरण के लिए, भोजन की ख़ातिर, या महज़ मज़े के लिए भी अन्य जीवधारियों की हत्या करना मनुष्य के लिए क्यों उचित है।

लेकिन हमारी ताज़ा वैज्ञानिक खोजें इस एकेश्वरवादी मिथक को सिरे से ख़ारिज़ करती हैं। सही है कि प्रयोगशालाओं में किए गए प्रयोग इस मिथक के एक हिस्से की पुष्टि करते हैं: इन एकेश्वरवादी मिथकों की ही तरह वे भी कहते हैं कि जानवरों की आत्मा नहीं होती। सावधानीपूर्वक किए गए तमाम अध्ययन और श्रमसाध्य परीक्षण सूअरों, चूहों या रीससों बन्दरों में आत्मा के किसी निशान तक का पता लगाने में नाकामयाब रहे हैं, लेकिन आह! प्रयोगशालाओं के यही प्रयोग इस एकेश्वरवादी मिथक के दूसरे और कहीं ज़्यादा महत्त्वपूर्ण हिस्से को, यानी इस धारणा को कि मनुष्यों की आत्मा होती है, निर्मूल साबित करते हैं। वैज्ञानिकों ने *होमो सेपियन्स* के दसियों हज़ार असामान्य परीक्षण किए हैं, और हमारे हृदय के एक-एक कोने और हमारे मस्तिष्क की एक-एक दरार में झाँक कर देखा है, लेकिन अब तक उनको किसी जादुई ख़ूबी का पता नहीं चला है। इस बात का कोई वैज्ञानिक सबूत नहीं है कि सूअरों के विपरीत सेपियन्स में आत्माएँ होती हैं।

अगर इतना ही होता, तो हम बराबर तर्क दे सकते थे कि वैज्ञानिकों को अभी और खोज करने की ज़रूरत है। अगर उनको अभी तक आत्मा का पता नहीं चला है, तो

इसलिए कि उन्होंने पर्याप्त सावधानी के साथ उसकी तलाश नहीं की है, लेकिन जीव विज्ञान के अनुशासन सबूत के अभाव मात्र की वजह से आत्मा के अस्तित्व पर सन्देह नहीं करते, बल्कि इसलिए करते हैं कि आत्मा का विचार ही विकास-प्रक्रिया के बुनियादी उसूलों के विरोध में जाने वाला है। यह विरोध ही उस बेलगाम नफ़रत की वजह है, जिसे विकासवाद का सिद्धान्त मज़हबी एकेश्वरवादियों के मन में जगाता है।

कौन है जो चार्ल्स डार्विन से डरता है?

2012 के गैलॅप सर्वेक्षण के मुताबिक़ मात्र 15 प्रतिशत अमेरिकी ही ऐसा सोचते हैं कि *होमो सेपियन्स* तमाम तरह के दैवीय हस्तक्षेपों से मुक्त प्राकृतिक वरण के माध्यम से विकसित हुआ है, 32 प्रतिशत का मानना है कि मुमकिन है कि लाखों वर्षों तक जारी रही प्रक्रिया के दौरान मनुष्य आरम्भिक जीवन-रूपों से विकसित हुआ हो, लेकिन इस समूचे कार्यक्रम की योजना बनाई ईश्वर ने ही थी, 46 प्रतिशत का मानना है कि मनुष्यों के वर्तमान रूप की सृष्टि पिछले 10,000 सालों के दौरान कभी ईश्वर ने की थी, ठीक उसी तरह जिस तरह कि बाइबिल का मानना है। कॉलेज में तीन साल गुज़ारने के बाद भी इन दृष्टिकोणों पर ज़रा भी कोई प्रभाव नहीं पड़ा। इसी सर्वेक्षण ने पाया कि बीए के छात्रों में से 46 प्रतिशत बाइबिल की सृष्टि-कथा पर विश्वास करते हैं, जबकि मात्र 14 प्रतिशत सोचते हैं कि मनुष्य का विकास किसी भी तरह के दैवीय निरीक्षण के बिना हुआ था। यहाँ तक कि एम.ए. और पीएच.डी. की डिग्रियाँ धारण करने वालों में से भी 25 प्रतिशत बाइबिल में विश्वास करते हैं, जबकि 29 प्रतिशत हमारी प्रजाति की सृष्टि का श्रेय एकमात्र प्राकृतिक वरण को देते हैं।

हालाँकि, स्कूल बेहद दुर्बल तरीक़े से विकासवाद की शिक्षा देते हैं, लेकिन मज़हबी कट्टरपन्थी तब भी इस पर ज़ोर देते हैं कि इसे पढ़ाया ही नहीं जाना चाहिए। इसकी बजाय, वे माँग करते हैं कि बच्चों को वह इंटेलीजेंट डिज़ाइन का सिद्धान्त भी पढ़ाया जाना चाहिए, जिसके मुताबिक़ सारे प्राणियों की सृष्टि किसी उच्चतर मनीशा (उर्फ़ ईश्वर) की योजना द्वारा की गई थी। 'उनको दोनों सिद्धान्त पढ़ाइए,' ये कट्टरपन्थी कहते हैं, 'और बच्चों को ख़ुद ही फ़ैसला करने दीजिए'।

विकासवाद का सिद्धान्त इस तरह की आपत्तियाँ क्यों उकसाता है, जबकि सापेक्षता के सिद्धान्त या क़्वांटम मैकेनिक्स की परवाह करता कोई नहीं दिखाई देता? क्या वजह है कि राजनेता यह नहीं कहते कि बच्चों को पदार्थ, ऊर्जा, देश और काल से सम्बन्धित वैकल्पिक सिद्धान्तों का परिचय भी दिया जाना चाहिए? आख़िरकार, डार्विन का सिद्धान्त तो पहली निगाह में आइंस्टीन और वर्नर हाइज़नबर्ग की भयावहताओं के मुक़ाबले कम ख़तरनाक प्रतीत होता है। विकासवाद का सिद्धान्त इस उसूल पर टिका है कि जो योग्यतम

है, वही जीवित बना रह पाता है। यह एक नीरस विचार तो है ही, स्पष्ट और सरल भी है। इसके विपरीत, सापेक्षता और क़्वांटम मैकेनिक्स के सिद्धान्तों का तर्क है कि आप काल और देश (टाइम और स्पेस) को मोड़ सकते हैं, न कुछ से कुछ प्रकट हो सकता है, और एक बिल्ली एक ही साथ जीवित और मृत, दोनों हो सकती है। यह बात हमारे कॉमनसेंस का मज़ाक़ उड़ाने वाली है, तब भी कोई भी व्यक्ति मासूम स्कूली बच्चों को इन चौंका देने वाले विचारों से बचाने की कोशिश नहीं करता। क्यों?

सापेक्षता का सिद्धान्त किसी को ग़ुस्सा नहीं दिलाता, क्योंकि यह हमारे किसी भी प्रिय और चिर वांछित विचार के विरोध में नहीं जाता। ज़्यादातर लोग इस बात की रत्तीभर परवाह नहीं करते कि देश और काल असापेक्ष हैं या सापेक्ष हैं। अगर आपको लगता है कि देश और काल को मोड़ा जा सकता है, तो ठीक है, आपका स्वागत है। जाइए और उनको मोड़ दीजिए। मुझे क्या फ़र्क़ पड़ता है? इसके विपरीत, डार्विन ने हमें हमारी आत्मा से वंचित कर दिया है। अगर आप विकासवाद के सिद्धान्त को सचमुच समझते हैं, तो आप यह भी जानते हैं कि आत्मा नहीं होती। यह एक भयावह विचार है, सिर्फ़ मज़हबी ईसाइयों और मुसलमानों के लिए ही नहीं, बल्कि उन बहुत-से पन्थ निरपेक्षतावादी (सेक्युलर) लोगों के लिए भी, जो किसी मज़हबी सिद्धान्त में आस्था नहीं रखते, लेकिन जो तब भी यह मानते हैं कि हर मनुष्य में एक अनश्वर अद्वितीय (इंडिविज़ुअल) सत्त्व होता है, जो आजीवन अपरिवर्तनीय बना रहता है, और जो मृत्यु के बाद भी अक्षत बना रह सकता है।

'इंडिविज़ुअल' (individual) का शाब्दिक अर्थ है 'वह जिसे विभाजित नहीं किया जा सकता'। मैं एक 'इं-डिविज़ुअल' हूँ' का अर्थ है कि मेरा वास्तविक स्वत्व अलग-अलग हिस्सों का एक समुच्चय होने की बजाय एक अखण्ड सत्ता है। यह अविभाज्य सत्त्व कथित रूप से किसी भी चीज़ को खोए या अपनाए बिना एक क्षण से दूसरे क्षण तक अविकल बना रहता है। जैसे ही न्यूरॉन आविष्ट होते हैं, हार्मोन प्रवाहित होते हैं और मांसपेशियाँ सिकुड़ती हैं, वैसे ही मेरी काया और मस्तिष्क निरन्तर परिवर्तन की प्रक्रिया से गुज़रते रहते हैं। मेरा व्यक्तित्व, आकांक्षाएँ और सम्बन्ध कभी स्थिर नहीं बने रहते, और वर्षों तथा दशकों के दौरान पूरी तरह अपना रूप बदल ले सकते हैं, लेकिन इस सबके तले मैं जन्म से लेकर मृत्यु तक - और शायद मृत्यु के बाद भी - वही व्यक्ति बना रहता हूँ।

बदक़िस्मती से, विकासवाद का सिद्धान्त इस धारणा को नकारता है कि मेरा वास्तविक स्वत्व कोई अविभाज्य, अपरिवर्तनीय और सम्भवतः अनश्वर सत्त्व है। विकासवाद के सिद्धान्त के मुताबिक़, हाथियों से लेकर बलूत वृक्ष तक और कोशिकाओं से लेकर डीएनए अणुओं तक, सारी जैविक सत्ताएँ ऐसे छोटे-छोटे और सरल हिस्सों से बने हैं, जो अनवरत रूप से जुड़ते और अलग होते रहते हैं। हाथी और कोशिकाएँ नए संयोजनों और टूटनों के नतीजे में क्रमषः विकसित हुए हैं। जो चीज़ विभाजित नहीं की जा

सकती या परिवर्तित नहीं होती, वह प्राकृतिक वरण की मार्फ़त अस्तित्व में नहीं आ सकती।

उदाहरण के लिए मनुष्य की आँख लैंस, कॉर्निअ और रेटिना जैसे कई छोटे-छोटे हिस्सों से निर्मित अत्यन्त जटिल तन्त्र है। यह आँख इन सारे घटकों से परिपूर्ण रूप में किसी शून्य से प्रकट नहीं हुई है। इसकी बजाय यह लाखों सालों के दौरान सूक्ष्म सीढ़ी-दर-सीढ़ी विकसित हुई है। हमारी आँख उस *होमो इरेक्टस* (तन कर चलने वाला मानव) की आँख से बहुत मिलती जुलती है, जिसका वजूद 10 लाख साल पहले हुआ करता था। यह उस *ऑस्ट्रालोपिथेकॅस* की आँख से किंचित कम मिलती-जुलती है, जिसका वजूद 50 लाख साल पहले हुआ करता था। यह उस *ड्रायलेस्टेस* की आँख से बहुत भिन्न है, जिसका वजूद 15 करोड़ साल पहले हुआ करता था। और यह उन एककोशिकीय जीवों से कोई समानता रखती प्रतीत नहीं होती, जिनसे हमारा ग्रह सैकड़ों लाखों साल पहले बसा हुआ था।

तब भी एककोशिकीय जीवों तक में वे सूक्ष्म ऑर्गेनेल्स (organelles) होते हैं, जो इन सूक्ष्मजीवों को रोशनी और अँधेरे के बीच फ़र्क़ करने और एक या दूसरे की तरफ़ गतिशील होने में सक्षम बनाते हैं। इस तरह के आद्य संवेदकों से मनुष्य की आँख तक जाने वाला रास्ता लम्बा और घुमावदार रहा है, लेकिन अगर आपके पास सैकड़ों लाखों साल का वक़्त है, तो आप निश्चय ही इस समूचे रास्ते को क़दम-दर-क़दम नाप सकते हैं। आप यह इसलिए कर सकते हैं, क्योंकि आँख विभिन्न हिस्सों से मिल कर बनी है। अगर हर कुछ पीढ़ियों के अन्तराल से कोई छोटा-सा उत्परिवर्तन (म्यूटेशन) इनमें से किसी भी हिस्से में मामूली-सा भी बदलाव ला देता है - जैसे कि मान लीजिए, कॉर्निअ कुछ ज़्यादा वक्र हो जाता है - तो लाखों पीढ़ियों बाद ये बदलाव मनुष्य की आँख में घटित हो सकते हैं। अगर आँख एक अखण्ड वस्तु होती, जिसमें कोई उपांग या हिस्से न होते, तो यह प्राकृतिक वरण की प्रक्रिया में कभी विकसित न हो सकी होती।

यही कारण है कि विकासवाद का सिद्धान्त आत्माओं के विचार को स्वीकार नहीं कर सकता, कम-से-कम तब तो नहीं ही जब 'आत्मा' से हमारा अभिप्राय किसी ऐसी चीज़ से हो, जो अविभाज्य, अपरिवर्तनीय और सम्भावित रूप से अनश्वर होती है। इस तरह की सत्ता सम्भवतः सीढ़ी-दर-सीढ़ी विकास-प्रक्रिया का परिणाम नहीं हो सकती। प्राकृतिक वरण मनुष्य की आँख को उत्पन्न कर सका, क्योंकि आँख में विभिन्न हिस्से होते हैं, लेकिन आत्मा के कोई हिस्से नहीं होते। अगर सेपियन्स की आत्मा इरेक्टस की आत्मा से सीढ़ी-दर-सीढ़ी विकसित हुई है, तो ये सीढ़ियाँ ठीक-ठीक क्या हैं? क्या आत्मा का कोई ऐसा हिस्सा है, जो इरेक्टस के मुक़ाबले सेपियन्स में ज़्यादा विकसित है? लेकिन आत्मा के तो कोई हिस्से होते नहीं।

आप तर्क दे सकते हैं कि मानव आत्माएँ विकसित नहीं हुई हैं, बल्कि किसी उज्ज्वल दिन में अपनी समूची महिमा के साथ प्रकट हुई थीं, लेकिन वह उज्ज्वल दिन ठीक-ठीक कब आया था? जब हम मानव जाति के विकास को क़रीब से देखते हैं, तो ऐसे किसी दिन का मिल पाना शर्मनाक ढंग से मुश्किल है। जो भी मनुष्य कभी हुआ है, वह एक मादा अण्डे में नर शुक्राणु के गर्भाधान के नतीजे में अस्तित्व में आया है। आत्मा को धारण करने वाली पहली बच्ची के बारे में सोचिए। वह शिशु अपनी माँ और पिता से बहुत मिलती-जुलती थी, फ़र्क़ सिर्फ़ इतना था कि उसकी आत्मा थी, जबकि उसके माँ-बाप की आत्मा नहीं थी। हमारा जीववैज्ञानिक ज्ञान निश्चय ही किसी ऐसे शिशु के जन्म का विश्लेषण कर सकता है, जिसका कॉर्निअ उसके अभिभावकों के कॉर्निआओं की तुलना में थोड़ा-सा ज़्यादा वक्र था। जीन में एक मामूली-सा उत्परिवर्तन इसका सबब हो सकता है, लेकिन जीवविज्ञान अनश्वर आत्मा को धारण करने वाले ऐसे किसी शिशु के जन्म का विश्लेषण नहीं कर सकता, जिसके अभिभावकों के पास आत्मा का लेशमात्र नहीं है। क्या एक भी उत्परिवर्तन, या कई सारे उत्परिवर्तन भी, किसी प्राणी के लिए कोई ऐसा सत्त्व प्रदान करने के लिए पर्याप्त है, जो मृत्यु समेत तमाम परिवर्तनों के प्रति महफ़ूज़ हो?

इस तरह विकासवाद के सिद्धान्त के साथ आत्माओं के अस्तित्व का मेल नहीं बैठाया जा सकता। विकास का मतलब है परिवर्तन, और वह चिरस्थायी सत्ताओं को उत्पन्न करने में अक्षम है। एक विकासवादी परिप्रेक्ष्य में, मनुष्य के सत्त्व के सबसे निकट बैठने वाली चीज़ हमारा डीएनए है, और डीएनए अणु अमरता का अधिष्ठान होने की बजाय उत्परिवर्तन का वाहक है। यह चीज़ उन बहुत सारे लोगों को भयभीत करती है, जो अपनी आत्माओं को त्याग देने की बजाय विकासवाद के सिद्धान्त को नकारना पसन्द करते हैं।

शेयर बाज़ार में कोई चेतना क्यों नहीं होती?

मनुष्य की श्रेष्ठता को उचित ठहराने के लिए प्रयोग में लाई जाने वाली एक और कहानी कहती है कि पृथ्वी पर मौजूद सारे प्राणियों में सिर्फ़ *होमो सेपियन्स* ही है, जिसके पास एक चेतना-युक्त मानस (माइंड) है। मानस आत्मा से बहुत भिन्न चीज़ है। मानस कोई रहस्यमय अनश्वर सत्ता नहीं है। न ही वह आँख या मस्तिष्क जैसा कोई अंग है। इसकी बजाय मानस पीड़ा, आनन्द, क्रोध और प्रेम जैसे व्यक्तिनिष्ठ अनुभवों का एक प्रवाह है। ये मानसिक अनुभव उन परस्पर सम्बद्ध अनुभूतियों, भावनाओं और विचारों से निर्मित होते हैं, जो क्षणभर को कौंध कर तुरन्त ग़ायब हो जाते हैं, फिर दूसरे अनुभव झिलमिलाते हैं और लुप्त हो जाते हैं, पलभर को जागते हैं और गुज़र जाते हैं। (इस पर सोचते हुए हम अक्सर इन अनुभवों को अनुभूतियों, भावनाओं और विचारों जैसी अलग-अलग कोटियों में रखने की कोशिश करते हैं, लेकिन वास्तव में वे आपस में मिले-जुले होते हैं।) अनुभवों का यह

उन्मत्त समूह चेतना-प्रवाह की रचना करता है। चिरस्थायी आत्मा से भिन्न मानस के बहुत-से हिस्से होते हैं, वह निरन्तर बदलता रहता है, और ऐसा सोचने की कोई वजह नहीं है कि वह अमर होता है।

आत्मा वह कहानी है, जिसको कुछ लोग स्वीकार करते हैं और बाक़ी कुछ लोग अस्वीकार करते हैं। इसके विपरीत, चेतना-प्रवाह वह ठोस वास्तविकता है, जिसे हम हर क्षण प्रत्यक्ष घटित होते देखते हैं। यह दुनिया की सबसे असन्दिग्ध चीज़ है। आप उसके अस्तित्व पर शंका नहीं कर सकते। यहाँ तक कि जब हम सन्देह से भरे होते हैं और ख़ुद से पूछते हैं: 'क्या व्यक्तिनिष्ठ अनुभव वास्तव में होते हैं?' तब भी हम निश्चित तौर पर कह सकते हैं कि हम सन्देह का अनुभव कर रहे हैं।

ये चैतन्य अनुभव वास्तव में क्या हैं, जो मानस के प्रवाह को गढ़ते हैं? हर व्यक्तिनिष्ठ अनुभव के दो बुनियादी लक्षण होते हैं: अनुभूति और आकांक्षा। रोबोट और कम्प्यूटर में कोई चेतना नहीं होती, क्योंकि उनकी असंख्य क्षमताओं के बावजूद वे न तो कुछ महसूस करते हैं, न किसी चीज़ की लालसा करते हैं। रोबोट में एक ऐसा ऊर्जा संवेदक (सेंसर) हो सकता है, जो जब बैटरी ख़त्म होने वाली हो, तो वह अपनी सेंट्रल प्रोसेसिंग यूनिट को संकेत दे। इसके बाद रोबोट विद्युत सॉकेट की ओर जा कर उसमें ख़ुद को प्लग कर सकता है और अपनी बैटरी को रिचार्ज कर सकता है, लेकिन इस पूरी प्रक्रिया के दौरान रोबोट कुछ भी अनुभव नहीं करता। इसके विपरीत, मनुष्य ऊर्जाहीन होने पर भूख महसूस करता है और इस अप्रिय अनुभूति से छुटकारा पाने की लालसा करता है। इसीलिए हम यह कहते हैं कि मनुष्य चेतना-सम्पन्न प्राणी हैं और रोबोट नहीं हैं, और यही वजह है कि भूख और थकान से चूर होने तक लोगों से काम कराते रहना एक अपराध है, जबकि रोबोट की बैटरी ख़त्म होने तक उससे काम कराते रहना किसी नैतिक कलंक की बात नहीं है।

और जीवों के बारे में क्या कहेंगे? क्या वे चेतन प्राणी हैं? क्या उनको व्यक्तिनिष्ठ अनुभव होते हैं? क्या किसी घोड़े के थकान से गिर जाने तक उससे काम लेते रहना उचित है? जैसा पहले बताया गया है कि जीवनपरक विज्ञानों का फ़िलहाल यह तर्क है कि सारे स्तनपायियों और पक्षियों में, और कम से कम कुछ रेंगने वाले जीवों और मछलियों में अनुभूतियाँ और भावनाएँ होती हैं, लेकिन सबसे नवीनतम सिद्धान्त यह भी मानते हैं कि अनुभूतियाँ और भावनाएँ जैवरासायनिक डेटा-प्रॉसेसिंग ऐल्गरिदम हैं। चूँकि हम यह यह जानते हैं कि रोबोट और कम्प्यूटर किसी भी तरह के व्यक्तिनिष्ठ अनुभवों के बग़ैर डेटा प्रॉसेस करते हैं, तब क्या यह मुमकिन है कि ऐसा ही पशुओं के साथ भी होता हो? दरअसल, हम जानते हैं कि मनुष्यों तक में कई संवेदी और भावनात्मक मस्तिष्कीय सर्किट डेटा को प्रॉसेस कर सकते हैं, पूर्णतः अचेतन रहते हुए गतिविधियों की शुरुआत कर सकते हैं। इसीलिए हम जिन तमाम अनुभूतियों और भावनाओं - भूख, भय, प्रेम और वफ़ादारी

— को पशुओं से जोड़कर देखते हैं, उनके पीछे क्या शायद व्यक्तिनिष्ठ अनुभवों की बजाय सिर्फ़ अचेतन ऐल्गरिदम ही छिपे होते हैं?

इस मत का समर्थन आधुनिक दर्शन के जनक रेने देकार्त ने किया था। सत्रहवीं सदी में देकार्त ने दृढ़तापूर्वक यह कहा था कि केवल मनुष्य ही महसूस करता है और लालसा करता है, जबकि तमाम अन्य प्राणी बेदिमाग़ स्वचालित यन्त्र होते हैं, उसी तरह जैसे रोबोट या पेय बेचने वाली मशीन होती है। जब कोई आदमी किसी कुत्ते को लात मारता है, तो कुत्ता कुछ भी अनुभव नहीं करता। कुत्ता स्वचालित ढंग से घबराकर भौंकने लगता है, ठीक उसी तरह जैसे पेय बेचने वाली मशीन कॉफ़ी तैयार करते वक़्त कुछ भी महसूस किए या चाहे बिना भनभनाने लगती है।

इस मत को देकार्त के ज़माने में व्यापक रूप से स्वीकार किया गया था। सत्रहवीं सदी के डॉक्टरों और अध्येताओं ने बेहोशी की दवाओं का इस्तेमाल किए बिना या ज़रा भी झिझके बिना ज़िन्दा कुत्तों की चीरफाड़ की थी और उनके अन्दरूनी अंगों की कार्यप्रणाली का पर्यवेक्षण किया था। उनको इसमें कुछ भी ग़लत नहीं लगा था, जैसे जब हम पेय बेचने वाली मशीन का ढक्कन खोलकर उसके गियर और कन्वेयरों की जाँच करते हैं, तो हमें इसमें कुछ भी ग़लत नहीं लगता। इक्कीसवीं सदी के इस आरम्भिक दौर में अभी भी ऐसे ढेरों लोग हैं, जिनका तर्क है कि जानवरों में कोई चेतना नहीं होती, या बहुत से बहुत उनमें बहुत ही अलग और हीन क़िस्म की चेतना होती है।

इस बात का निश्चय करने के लिए कि क्या जानवरों के पास हमारे जैसा ही चेतना-युक्त मानस होता है या नहीं, हमें इस बात को बेहतर ढंग से समझना ज़रूरी है कि मानस किस तरह काम करते हैं और वे क्या भूमिका अदा करते हैं। ये बेहद मुश्किल सवाल हैं, लेकिन इनके लिए कुछ समय देना लाभप्रद होगा, क्योंकि मानस आने वाले कई अध्यायों का नायक होगा। अगर हम यह नहीं समझते कि मानस क्या हैं, तो हम कृत्रिम बुद्ध जैसी अनूठी प्रौद्योगिकियों के सम्पूर्ण निहितार्थों को नहीं समझ पाएँगे। इसलिए हम थोड़ी देर के लिए जानवरों के मानस के विशिष्ट प्रश्न को एक तरफ़ रखकर इस बात का परीक्षण करते हैं कि विज्ञान मानस के बारे में और सामान्य तौर पर चेतना के बारे में क्या समझता है। हम अपना ध्यान मानव चेतना के अध्ययन से लिए गए उदाहरणों पर केन्द्रित करेंगे, जो कि हमारी ज़्यादा पहुँच में हैं, और बाद में जानवरों पर लौटेंगे और पूछेंगे कि जो बात मनुष्यों के बारे में सही है, वही बात क्या हमारे रोमदार और पंखयुक्त भाई-बहनों के बारे में भी सही है।

साफ़तौर पर कहें तो विज्ञान मानस और चेतना के बारे में आश्चर्यजनक रूप से बहुत कम जानता है। मौजूदा पारम्परिक विज्ञान मानता है कि चेतना की रचना मस्तिष्क की विद्युत रासायनिक प्रतिक्रियाओं से हुई है, और मानसिक अनुभव कुछ अनिवार्य डेटा-

प्रॉसेसिंग सम्बन्धी कार्यों को सम्पन्न करते हैं, हालाँकि इस बारे में किसी को भी कोई भी इल्म नहीं है कि मस्तिष्क की जैवरासायनिक प्रतिक्रियाओं और विद्युत प्रवाहों का संग्रह पीड़ा, क्रोध या प्रेम जैसे व्यक्तिनिष्ठ अनुभवों की रचना कैसे करता है। शायद दस या पन्द्रह सालों में हमें इसका कोई ठोस स्पष्टीकरण मिल सके, लेकिन जहाँ तक 2016 का सवाल है, हमारे पास ऐसी कोई व्याख्या नहीं है, और हमें इस बारे में स्पष्ट होना बेहतर होगा।

एफ़एमआरआई स्कैन, प्रत्यारोपित इलेक्ट्रोड और अन्य परिष्कृत यन्त्रों का इस्तेमाल करते हुए वैज्ञानिकों ने मस्तिष्क के विद्युत प्रवाहों और विविध व्यक्तिनिष्ठ अनुभवों के बीच के पारस्परिक सम्बन्धों और आकस्मिक सूत्रों तक की पहचान कर ली है। मस्तिष्क की गतिविधि पर नज़र डालने मात्र से ही वैज्ञानिक यह जान सकते हैं कि आप जागे हुए हैं, सपना देख रहे हैं या गहरी नींद में हैं। वे आपकी आँखों के सामने, यानी चेतन ग्रहणबोध की दहलीज़ मात्र पर, पलभर के लिए एक छवि की कौंध पैदा कर (बिना आपसे पूछे) यह निश्चय कर सकते हैं कि आप उस छवि के प्रति जागरूक हुए हैं या नहीं। वे तो विशिष्ट मानसिक तत्वों के साथ वैयक्तिक मस्तिष्कीय न्यूरॉनों को जोड़ने में भी कामयाब रहे हैं, और इस तरह उन्होंने मसलन 'बिल क्लिंटन' न्यूरॉन और 'होमर सिम्पसन' न्यूरॉन की खोज कर ली है। जब 'बिल क्लिंटन' न्यूरॉन क्रियाशील होता है, तब व्यक्ति संयुक्त राज्य अमेरिका के बयालीसवें राष्ट्रपति के बारे में सोच रहा होता है, उसी व्यक्ति को होमर सिम्पसन की छवि दिखाइए तो इस विशिष्ट व्यक्ति विषयक न्यूरॉन सुलग उठेगा।

और भी व्यापक तौर पर, वैज्ञानिक जानते हैं कि जब मस्तिष्क के किसी प्रदत्त इलाक़े में कोई विद्युतीय अन्धड़ पैदा होता है, तो आप शायद क्रोधित महसूस करते हैं। अगर यह अन्धड़ शान्त हो जाता है और कोई भिन्न हिस्सा चमक उठता है - आप प्रेम का अनुभव कर रहे होते हैं। दरअसल, वैज्ञानिक तो सटीक न्यूरॉनों को विद्युतीय ढंग से उद्दीप्त कर क्रोध या प्रेम की अनुभूतियाँ तक जगा सकते हैं, लेकिन एक स्थान से दूसरे स्थान तक इलेक्ट्रॉनों की आवाजाही बिल क्लिंटन की व्यक्तिनिष्ठ छवि में, या क्रोध अथवा प्रेम की व्यक्तिष्ठि अनुभूति में कैसे रूपान्तरित हो जाती है?

इसकी सबसे आम व्याख्या इस ओर इशारा करती है कि मस्तिष्क एक अत्यन्त जटिल तन्त्र है, जिसके भीतर 80 अरब से ज़्यादा न्यूरॉन असंख्य पेचीदा जालों में परस्पर जुड़े हैं। जब अरबों न्यूरॉन अरबों विद्युत संकेतों को आगे और पीछे भेजते हैं, तब व्यक्तिनिष्ठ अनुभव उभरते हैं। बावजूद इसके कि प्रत्येक विद्युत संकेत का भेजा जाना और ग्रहण किया जाना एक साधारण-सी जैवरासायनिक प्रक्रिया है, इन संकेतों के बीच की परस्पर क्रिया कहीं ज़्यादा जटिल चीज़ की रचना करती है - चेतना-प्रवाह की। हम इसी प्रक्रिया को कई दूसरे क्षेत्रों में भी घटित होते देखते हैं। एक अकेली कार का चलना साधारण क्रिया है, लेकिन जब लाखों कारें एक साथ चलती और एक-दूसरे पर प्रभाव डालती हैं, तो

यातायात अवरुद्ध हो जाता है। एक शेयर का ख़रीदना-बेचना काफ़ी साधारण-सा काम है, लेकिन जब लाखों कारोबारी लाखों शेयरों को ख़रीदते और बेचते हैं, तो वह ऐसे आर्थिक संकट का कारण बन सकता है कि उसके सामने विशेषज्ञ भी हक्का-बक्का रह सकते हैं।

लेकिन यह व्याख्या कुछ भी स्पष्ट नहीं करती। यह सिर्फ़ इस बात की पुष्टि करती है कि समस्या बहुत जटिल है। यह हमें ऐसी कोई गहरी दृष्टि प्रदान नहीं करती कि जिससे हम यह समझ सकें कि एक तरह की घटना (अरबों विद्युत संकेतों का यहाँ से वहाँ आना-जाना) एक बिल्कुल अलग तरह की घटना (क्रोध या प्रेम के अनुभव) की रचना कैसे करती है। यातायात अवरोघों या आर्थिक संकटों जैसी दूसरी जटिल प्रक्रियाओं की उपमा में खोट है। यातायात में अवरोध किस चीज़ से पैदा होता है? अगर आप एक कार के पीछे हैं, तो आप इसको कभी नहीं समझ सकते। अवरोध एक साथ बहुत सारी कारों के एक-दूसरे पर प्रभाव डालने के नतीजे में पैदा होता है। कार 'अ' कार 'ब' की गति पर असर डालती है, जो कार 'स' के रास्ते को रोक देता है, और यह सिलसिला जारी रहता है, लेकिन अगर आप सारी प्रासंगिक कारों की आवाजाही का, और इस बात का कि कैसे एक कार दूसरी की गति को प्रभावित कर रही है, नक़्शा तैयार कर सकें, तो आपको यातायात अवरोध का पूरा विश्लेषण मिल जाएगा, फिर यह पूछना व्यर्थ होगा कि 'लेकिन ये सारी आवाजाहियाँ यातायात अवरोध को कैसे पैदा करती हैं?' क्योंकि 'यातायात अवरोध' ऐसे सार शब्द हैं, जिनका घटनाओं के इस विशेष समूह के लिए इस्तेमाल करने का फ़ैसला हम मनुष्यों ने कर रखा है।

इसके विपरीत, 'क्रोध' कोई ऐसा सार शब्द नहीं है, जिसका इस्तेमाल हमने अरबों मस्तिष्कीय विद्युत संकेतों के लिए शॉर्टहैंड के तौर पर कर रखा हो। क्रोध एक अत्यन्त ठोस अनुभव है, जिससे लोग बिजली के बारे में कुछ भी जानने के बहुत-बहुत पहले से परिचित रहे हैं। जब मैं कहता हूँ, 'मैं ग़ुस्से में हूँ!' तो मैं एक अत्यन्त बोधगम्य अनुभूति की ओर इशारा कर रहा होता हूँ। अगर आप इस बात का वर्णन करें कि किसी न्यूरॉन में होने वाली कोई रासायनिक प्रतिक्रिया किस तरह एक विद्युत संकेत में बदलती है, और किस तरह ऐसी ही अरबों प्रतिक्रियाएँ अरबों अतिरिक्त संकेतों का कारण बनती हैं, तो उस सूरत में यह सवाल जायज़ बना रहेगा कि 'लेकिन ये अरबों घटनाएँ एक साथ मिल कर किस तरह क्रोध की मेरी अनुभूति की रचना करती हैं?'

जब लन्दन में हज़ारों कारें धीरे-धीरे रेंग रही होती हैं, तो हम उसको यातायात अवरोध की संज्ञा देते हैं, लेकिन यह कोई ऐसी भीषण लन्दनियाई चेतना पैदा नहीं करता, जो पिकैडिली के ऊपर मँडराती हुई ख़ुद से कहती हो, 'आह, मैं अवरुद्ध महसूस कर रही हूँ!' जब करोड़ों लोग अरबों की तादाद में शेयर बेचते हैं, तो हम उसको आर्थिक संकट की संज्ञा देते हैं, लेकिन वॉल स्ट्रीट की कोई रूह बड़बड़ाती हुई यह नहीं कहती कि 'शिट, मुझे

लगता है, मैं संकट में हूँ’। जब आकाश में पानी के खरबों कण आपस में मिल जाते हैं, तो उसे हम बादल कहते हैं, लेकिन कोई बादल-चेतना उभर कर यह ऐलान नहीं करती कि ‘मैं बारिश महसूस कर रही हूँ’। तब जिस वक़्त मेरे मस्तिष्क में अरबों विद्युत संकेत घुमड़ रहे होते हैं, तो क्यों वह दिमाग़ उभरता है, जो महसूस करता है कि ‘मैं आगबबूला हो रहा हूँ?’ 2016 तक इस बारे में हमें कोई जानकारी नहीं थी।

इसलिए अगर इस चर्चा ने आपको भ्रमित और हैरान कर दिया हो, तो चिन्ता मत करिए, आप बिल्कुल सही हैं। सबसे अच्छे वैज्ञानिक भी दिमाग़ और चेतना के रहस्य को सुलझाने से कोसों दूर हैं। विज्ञान की एक अद्भुत बात यह है कि जब वैज्ञानिक कोई चीज़ नहीं जानते, तो वे तमाम तरह के सिद्धान्त और अनुमान आज़मा सकते हैं, लेकिन अन्त में वे सीधे-सीधे अपनी अज्ञानता को स्वीकार कर सकते हैं।

जीवन का समीकरण

वैज्ञानिक नहीं जानते कि मस्तिष्क के विद्युतीय संकेतों का समूह व्यक्तिनिष्ठ अनुभवों की रचना कैसे करता है। इससे भी ज़्यादा महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वे यह नहीं जानते कि इस तरह की एक अद्भुत घटना का विकासपरक लाभ क्या रहा हो सकता है। जीवन की हमारी समझ की यह सबसे बड़ी कमी है। मनुष्यों के पास पैर हैं, क्योंकि लाखों पीढ़ियों तक पैरों ने हमारे पूर्वजों को ख़रगोशों का पीछा करने और शेरों से बचकर भागने में सक्षम बनाया। मनुष्यों के पास आँखें हैं, क्योंकि असंख्य सहस्राब्दियों तक आँखों ने हमारे पूर्वजों को यह देखने में सक्षम बनाया कि ख़रगोश किधर जा रहा है और शेर कहाँ से आ रहा है, लेकिन मनुष्यों को भूख या भय के व्यक्तिनिष्ठ अनुभव क्यों होते हैं?

बहुत समय नहीं हुआ, जब जीवविज्ञानियों ने इसका एक बहुत सरल जवाब दिया था। व्यक्तिनिष्ठ अनुभव हमारे जीवित बने रहने के लिए अनिवार्य हैं, क्योंकि अगर हम भूख या भय महसूस न करते होते, तो हमने ख़रगोशों का पीछा करने और शेरों से बचकर भागने की परवाह न की होती। किसी शेर को देखकर इंसान क्यों भागा? ज़ाहिर है, वह डर गया था, इसलिए वह भाग खड़ा हुआ। व्यक्तिनिष्ठ अनुभवों ने मनुष्य के कृत्यों की वजह को स्पष्ट किया, लेकिन आज वैज्ञानिक कहीं ज़्यादा विस्तार से इसकी व्याख्या करते हैं। जब मनुष्य किसी शेर को देखता है, तो विद्युत संकेत आँख से मस्तिष्क की दिशा में जाते हैं। ये आते हुए संकेत कुछ ख़ास तरह के न्यूरॉनों को उत्तेजित करते हैं, जो प्रतिक्रिया करते हुए और भी संकेतों को दाग देते हैं। ये शृंखलाबद्ध ढंग से दूसरे न्यूरॉनों को उत्तेजित करते हैं, जो उसके बाद स्वयं भी दागते हैं। अगर पर्याप्त तेज़ रफ़्तार के साथ सही न्यूरॉन भड़क जाते हैं, तो एड्रिनल ग्रन्थि को एड्रेनलिन से भर देने का निर्देश जाता है, हृदय को तेज़ी से घड़कने का निर्देश प्राप्त होता है, वहीं प्रेरक केन्द्र (मोटोर सेंटर) के न्यूरॉन पैरों की

मांसपेशियों को संकेत भेजते हैं, जो तनना और सिकुड़ना शुरू कर देती हैं, और आदमी शेर से दूर भागने लगता है।

विडम्बना यह है कि जितने ही बेहतर ढंग से हम इस प्रक्रिया का नक़्शा तैयार करते हैं, उतना ही चेतन अनुभूतियों को समझा पाना मुश्किल होता जाता है। हम जितने ही बेहतर ढंग से मस्तिष्क (ब्रेन) को समझते हैं, दिमाग़ (माइंड) उतना ही व्यर्थ प्रतीत होता है। अगर समूचा तन्त्र विद्युत संकेतों के यहाँ से वहाँ जाने के माध्यम से काम करता है, तो फिर हमें *भय* को भी महसूस करने की ज़रूरत क्यों होती है? अगर विद्युतरासायनिक प्रतिक्रियाओं की एक शृंखला आँख की स्नायु कोशिकाओं से लेकर पैर की मांसपेशियों की गति तक अग्रसर होती है, तो व्यक्तिनिष्ठ अनुभव इस शृंखला में क्या योगदान करते हैं। वे क्या करते हैं? असंख्य डोमिनो गोटियाँ व्यक्तिनिष्ठ अनुभवों की किसी भी तरह की ज़रूरत के बिना एक के बाद एक गिर सकती हैं। तब फिर न्यूरॉनों को एक-दूसरे को उत्तेजित करने, या एड्रिनल ग्रन्थि से पिचकारी छोड़ने को कहने के लिए अनुभूतियों की ज़रूरत क्यों होती है? वाक़ई, 99 प्रतिशत शारीरिक गतिविधियाँ, जिनमें मांसपेशियों की गति और हार्मोनों का स्राव शामिल है, चेतन अनुभूतियों की किसी भी ज़रूरत के बिना चलती रहती हैं। तब फिर बाक़ी बचे 1 प्रतिशत मामलों में न्यूरॉनों, मांसपेशियों और ग्रन्थियों को इस तरह की अनुभूतियों की ज़रूरत क्यों होती है?

आप तर्क दे सकते हैं कि दिमाग़ की ज़रूरत हमें इसलिए होती है, क्योंकि दिमाग़ स्मृतियों का संग्रह करता है, योजनाएँ बनाता है और स्वायत्त ढंग से पूरी तरह से नई छवियों और विचारों को जगाता है। यह महज़ बाहरी उद्दीपनों पर प्रतिक्रिया नहीं करता। उदाहरण के लिए जब कोई आदमी शेर को देखता है, तो वह इस परभक्षी को देखकर स्वचालित ढंग से प्रतिक्रिया नहीं करता। वह याद करता है कि सालभर पहले एक शेर ने उसकी आंटी को खा लिया था। वह कल्पना करता है कि अगर वह शेर उसको चीरकर उसके टुकड़े-टुकड़े कर देगा, तो उसको कैसा महसूस होगा। वह अपने अनाथ बच्चों के बारे में सोचता है। इसी वजह से वह महसूस करता है। सच तो यह है कि किन्हीं तात्कालिक बाहरी उद्दीपनों की बजाय दिमाग़ की अपनी पहल पर बहुत-सी शृंखलाबद्ध प्रतिक्रियाओं की शुरुआत होती है। इस तरह शेर के हमले की कोई पिछली स्मृति आदमी के दिमाग़ में स्वतः स्फूर्त ढंग से उभर सकती है, और उसको शेरों द्वारा खड़े किए जाने वाले ख़तरे के बारे में सोचने को मज़बूर कर सकती है। इसके बाद वह क़बीले के सारे लोगों को इकट्ठा करता है और वे शेर को डराकर भगाने के अनूठे तरीक़ों पर विचार-विमर्ष करते हैं।

लेकिन एक मिनट रुकिए। ये सब स्मृतियाँ, कल्पनाएँ और विचार क्या हैं? ये कहाँ मौजूद होते हैं? ताज़ा जीववैज्ञानिक सिद्धान्तों के अनुसार, हमारी स्मृतियाँ, कल्पनाएँ और

विचार किसी उच्चतर अभौतिक क्षेत्र में मौजूद नहीं होते। इसकी बजाय, वे भी अरबों न्यूरॉनों द्वारा भड़काए गए विद्युत संकेतों के तूफ़ान हैं। इस तरह जब हम स्मृतियों, कल्पनाओं और विचारों में भी संलग्न होते हैं, तब भी हम उन विद्युतरासायनिक प्रतिक्रियाओं की शृंखला के साथ बँधे होते हैं, जो अरबों न्यूरॉनों से होकर गुज़रती हुई एड्रिनल ग्रन्थि और पैर की मांसपेशियों पर जाकर समाप्त होती हैं।

क्या इस लम्बे और घुमावदार सफ़र में एक क़दम भी ऐसा है, जहाँ एक न्यूरॉन की क्रिया और अगले न्यूरॉन की प्रतिक्रिया के बीच, दिमाग़ हस्तक्षेप करता हो और इस बात का निर्णय करता हो कि दूसरे न्यूरॉन को सक्रिय होना चाहिए या नहीं? क्या कोई ऐसी एक भी भौतिक हरकत, किसी एक इलेक्ट्रॉन की भी हरकत है, जो किसी अन्य अणु की पिछली हरकत की बजाय भय के व्यक्तिनिष्ठ अनुभव का परिणाम हो? अगर ऐसी कोई हरकत नहीं है - और हर इलेक्ट्रॉन में इसलिए हरकत होती है, क्योंकि एक अन्य इलेक्ट्रॉन में पहली हरकत हुई होती है, तो फिर हमें भय का अनुभव करने की ज़रूरत क्यों होती है? हमारे पास कोई सुराग़ नहीं है।

दार्शनिकों ने इस पहेली का सार-संक्षेप एक शरारत भरे सवाल में किया हुआ है: मानस में ऐसा क्या होता है, जो मस्तिष्क में नहीं होता? अगर जो कुछ न्यूरॉनों के हमारे विशाल ताने-बाने के भीतर घटित होता है, उसके सिवाय हमारे मानस में और कुछ भी घटित नहीं होता, तब फिर हमें मानस की ज़रूरत ही क्यों है? अगर तंत्रिका तन्त्र में जो कुछ भी घटित होता है, उसके अतिरिक्त वाक़ई मानस में कुछ घटित होता है, तो वह आख़िर घटित किस जगह पर होता है? मान लीजिए मैं आपसे पूछता हूँ कि बिल क्लिंटन और मोनिका लेविंस्की स्कॅंडल के बारे में होमर सिम्पसन का क्या सोचना था। आपने शायद इस बारे में इसके पहले कभी सोचा नहीं था, इसलिए आपके मानस को, शायद उस दृश्य को ताज़ा करने के लिए, जिसमें होमर बियर पीते हुए टेलिविज़न पर राष्ट्रपति को 'उस औरत के साथ मेरे कोई यौन सम्बन्ध नहीं थे' वक्तव्य देते देख रहा है, उसमें दो पिछली असम्बद्ध स्मृतियों का विलयन करने द्ध्यूज़ करने) की ज़रूरत होगी। यह विलयन किस जगह होता है?

मस्तिष्क का अध्ययन करने वाले कुछ वैज्ञानिकों का मत है कि यह कई न्यूरॉनों की अन्तर्क्रिया से रचित 'वैश्विक कार्यक्षेत्र' (ग्लोबल वर्कस्पेस) में घटित होता है, लेकिन 'कार्यक्षेत्र' शब्द महज़ एक रूपक है। इस रूपक के पीछे की वास्तविकता क्या है? वह कौन-सी जगह है, जहाँ पर सूचना के विभिन्न टुकड़े वास्तव में मिलते हैं और एक-दूसरे से जुड़ते हैं? ताज़ा सिद्धान्तों के मुताबिक़, यह मिलन और विलयन निश्चय ही किसी अफलातूनी पाँचवें आयाम में नहीं होता। इसकी बजाय, यह उस जगह होता है, जहाँ, मसलन पहले एक-दूसरे से असम्बद्ध रहे दो न्यूरॉन सहसा एक-दूसरे की ओर संकेत दागना

शुरू कर देते हैं। बिल क्लिंटन न्यूरॉन और होमर सिम्पसन न्यूरॉन के बीच एक नया सूत्रयुग्मन तैयार हो जाता है, लेकिन अगर ऐसा है, तब फिर दो न्यूरॉनों के जुड़ने की भौतिक घटना के अलावा हमें स्मृति के सचेतन अनुभव की ज़रूरत क्यों पड़ती है?

इसी पहेली को हम गणित की शब्दावली में भी पेश कर सकते हैं। आज के समय की स्थापित धारणा के अनुसार प्राणी ऐल्गरिदम हैं, और ऐल्गरिदमों को गणितीय सूत्रों के माध्यम से प्रस्तुत किया जा सकता है। पेय बेचने वाली मशीन एक कप चाय तैयार करने में जितने क़दम तय करती है, उनकी शृंखला को लिखने के लिए, और शेर के आने से चौकन्ना होने की प्रक्रिया में मस्तिष्क द्वारा उठाए गए क़दमों की शृंखला को लिखने के लिए आप संख्याओं और गणितीय संकेतों का इस्तेमाल कर सकते हैं। अगर ऐसा है, और अगर सचेतन अनुभव कोई महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, तो उनकी गणितीय प्रस्तुति मुमकिन होनी चाहिए, क्योंकि वे ऐल्गरिदम का अनिवार्य अंग हैं। जब हम भय ऐल्गरिदम को लिखते हैं और 'भय' को अचूक परिगणनाओं की शृंखला में विभाजित करते हैं, तो हमें यह बताना चाहिए कि 'यहाँ परिगणना की प्रक्रिया के तेरान्वे नम्बर के चरण में - यह भय का व्यक्तिनिष्ठ अनुभव है!' लेकिन क्या गणित के विशाल क्षेत्र में ऐसा कोई ऐल्गरिदम है, जो व्यक्तिनिष्ठ अनुभव को धारण करता हो? अब तक हमें ऐसे किसी ऐल्गरिदम की जानकारी नहीं है। गणित और कम्प्यूटर साइंस के क्षेत्र में जो विपुल ज्ञान हमने हासिल किया है, उसके बावजूद हमारे द्वारा तैयार डेटा-प्रॉसेसिंग की पद्धतियों में से किसी भी पद्धति को काम करने के लिए व्यक्तिनिष्ठ अनुभवों की ज़रूरत नहीं पड़ी, और इनमें से कोई भी पद्धति पीड़ा, आनन्द, क्रोध या प्रेम का अनुभव नहीं करती।

मानस में घटित होने वाला वह क्या है,
जो मस्तिष्क में घटित नहीं होता?

कुछ नहीं → तब हमें मानस की ज़रूरत क्यों है?

कुछ → यह कुछ कहाँ पर घटित होता है? → मस्तिष्क में
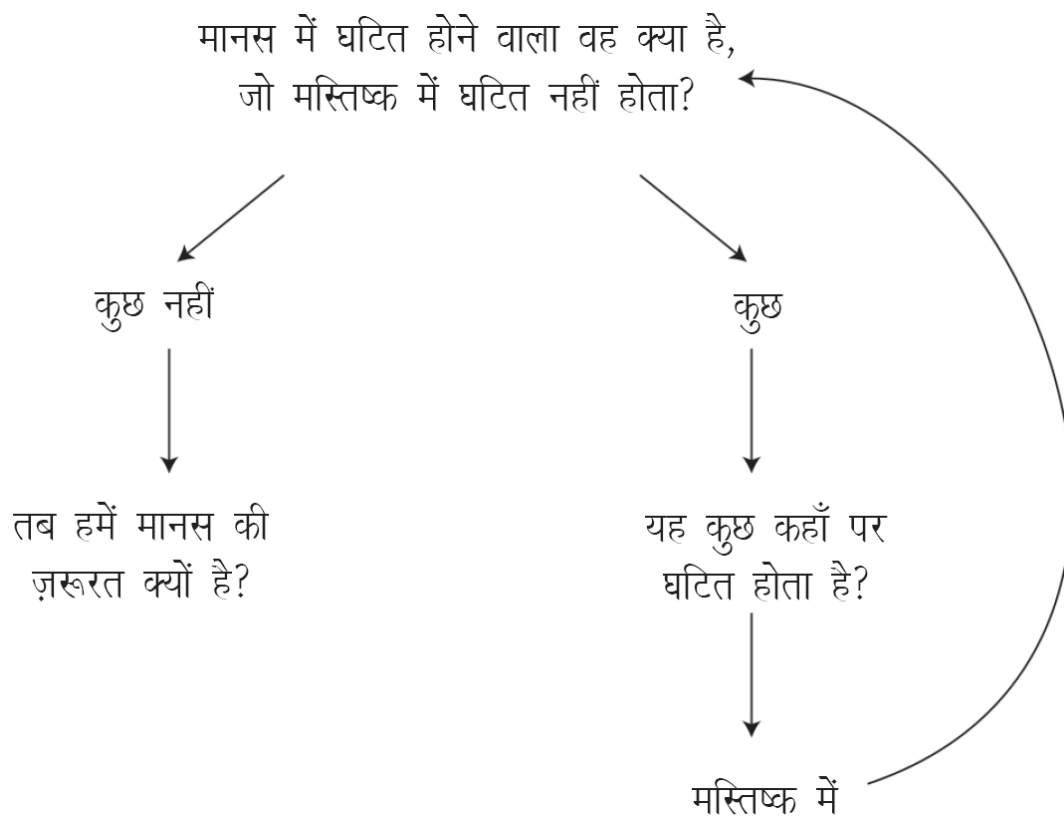
क्या व्यक्तिनिष्ठ अनुभवों की ज़रूरत हमें इसलिए हो सकती है, ताकि हम अपने बारे में सोच सकें? घास के मैदान में भटकते और अपने जीवित बने रहने तथा प्रजनन जारी रखने के अवसरों का हिसाब लगाते एक जानवर के लिए अपने कृत्यों और निर्णयों को अपने ही सामने प्रस्तुत करना, और कभी-कभी उनकी जानकारी दूसरे जानवरों को देना भी अनिवार्य होता है। जैसे ही मस्तिष्क अपने निर्णयों का एक मॉडल तैयार करने की कोशिश करता है, वैसे ही वह एक अन्तहीन विषयान्तर में फँस जाता है, और चमत्कार! इस घुमाव के भीतर से चेतना जागृत हो उठती है।

पचास साल पहले यह एक सत्याभास प्रतीत हो सकता था, लेकिन 2016 में नहीं। गूगल और टेस्ला जैसे कई व्यापारिक प्रतिष्ठान ऐसी स्वचालित कारें तैयार कर रहे हैं, जो हमारी सड़कों पर भाग रही हैं। इस स्वचालित कार को नियन्त्रित करने वाले ऐल्गरिदम दूसरी कारों, पैदल चलने वालों, ट्रैफ़िक संकेतों और सड़क के गड्ढों के बारे में हर सेकेंड में लाखों गणनाएँ करते हैं। यह स्वचालित कार पूरी कामयाबी के साथ लाल बत्ती होने पर ठहर जाती है, बाधाओं से बचकर निकल जाती है और दूसरे वाहनों से सुरक्षित दूरी बनाए रखती है - किसी तरह का भय महसूस किए बग़ैर। इस कार को आस-पास के वाहनों को अपनी योजनाओं और आकांक्षाओं की जानकारी देने के लिए स्वयं को भी ध्यान में रखने की ज़रूरत होती है, क्योंकि अगर वह दाहिनी ओर मुड़ने का फ़ैसला करती है, तो उसका ऐसा करना इन दूसरे वाहनों के व्यवहार पर असर डालेगा। कार ये सारे काम बिना किसी

मुश्किल के करती है, लेकिन बिना किसी चेतना के भी। स्वचालित कार अनोखी चीज़ नहीं है। बहुत-से दूसरे कम्प्यूटर प्रोग्राम अपने स्वयं के कृत्यों के लिए छूट देते हैं, हालाँकि उनमें से किसी ने भी चेतना विकसित नहीं की है, और इनमें से कोई भी न तो कुछ महसूस करता है, न किसी चीज़ की आकांक्षा करता है।

अगर हम दिमाग़ की व्याख्या नहीं कर सकते, और अगर हम यह नहीं जानते कि वह क्या भूमिका अदा करता है, तो फिर हम उसको तिलांजलि ही क्यों नहीं दे देते? विज्ञान का इतिहास परित्यक्त अवधारणाओं और सिद्धान्तों से भरा पड़ा है। उदाहरण के लिए, प्रकाश की गति की व्याख्या करने की कोशिश करने वाले आधुनिक युग के शुरुआती दौर के वैज्ञानिकों ने ईथर नामक पदार्थ के अस्तित्व की कल्पना की थी, जिसके बारे में उनका अनुमान था कि उसने समूचे ब्रह्माण्ड को भर रखा है। प्रकाश को ईथर की तरंगों के रूप में देखा गया था, लेकिन वैज्ञानिक ईथर के अस्तित्व का कोई अनुभवसिद्ध प्रमाण नहीं खोज सके, इसी वजह से वे प्रकाश के वैकल्पिक और बेहतर सिद्धान्त ले कर आए। नतीजतन, उन्होंने ईथर को विज्ञान की रद्दी की टोकरी में फेंक दिया।

15. सड़क पर दौड़ती गूगल की स्वचालित कार।

इसी तरह, इंसानों ने हज़ारों सालों तक असंख्य क़ुदरती घटनाओं की व्याख्या के लिए ईश्वर का इस्तेमाल किया। बिजली कौन गिराता है? ईश्वर। पानी कौन बरसाता है? ईश्वर। पृथ्वी पर जीवन की शुरूआत कैसे हुई? ईश्वर ने की। पिछली कुछ सदियों के दौरान

वैज्ञानिक ईश्वर के अस्तित्व का कोई अनुभवसिद्ध साक्ष्य नहीं पा सके, जबकि उनको बिजली के गिरने, बारिश के होने और जीवन के उद्गम के बारे में कहीं ज़्यादा विस्तृत व्याख्याएँ प्राप्त हुईं। परिणामत:, अगर दर्शन के कुछ उपविभागों को अपवाद स्वरूप छोड़ दिया जाए, तो विशेषज्ञों के मार्गदर्शन में प्रकाशित विज्ञान की किसी भी पत्रिका का कोई भी लेख ईश्वर के अस्तित्व को गम्भीरता से नहीं लेता। इतिहास यह तर्क नहीं देता कि कि मित्र राष्ट्रों ने दूसरा विश्व युद्ध इसलिए जीता था, क्योंकि ईश्वर उनके पक्ष में खड़ा था, अर्थशास्त्री 1929 के आर्थिक संकट के लिए ईश्वर को दोषी नहीं ठहराते, और भूगर्भशास्त्री पृथ्वी की अन्दरूनी संरचनात्मक हलचलों की व्याख्या करने के लिए उसकी मर्ज़ी का हवाला नहीं देते।

यही नियति आत्मा की हुई। हज़ारों साल तक लोग यह विश्वास करते रहे थे कि हमारे सारे कर्मों और फ़ैसलों का स्रोत हमारी आत्माएँ होती हैं, लेकिन किसी पुष्टि करने वाले साक्ष्य के अभाव में, और कहीं ज़्यादा विस्तृत वैकल्पिक सिद्धान्तों के उपलब्ध होने के चलते, जीवन सम्बन्धी विज्ञानों ने आत्मा से छुटकारा पा लिया। सामान्य व्यक्तियों की तरह ही बहुत-से जीवविज्ञानी और डॉक्टर आत्माओं में विश्वास करना जारी रख सकते हैं, लेकिन वे उसके बारे में विज्ञान की गम्भीर पत्रिकाओं में कभी नहीं लिखते।

क्या यह मुमकिन है कि आत्मा भी विज्ञान की रद्दी की टोकरी में ईश्वर और ईथर के साथ शामिल हो गई हो? आख़िरकार, कभी किसी ने पीड़ा या प्रेम के अनुभवों को सूक्ष्मदर्शी यन्त्र के माध्यम से नहीं देखा है, और हमारे पास पीड़ा और प्रेम की ऐसी बहुत-सी विस्तृत जैवरासायनिक व्याख्याएँ उपलब्ध हैं, जो व्यक्तिनिष्ठ अनुभवों के लिए कोई गुंजाइश नहीं छोड़तीं, लेकिन दिमाग़ और आत्मा में (उसी तरह दिमाग़ और ईश्वर में) एक निर्णायक महत्त्व का फ़र्क़ है। जहाँ अमर आत्माओं का अस्तित्व एक विशुद्ध अटकल है, वहीं पीड़ा का अनुभव एक प्रत्यक्ष और अत्यन्त अनुभवगम्य वास्तविकता है। जब मैं किसी कील पर पाँव रख देता हूँ, तो मैं पीड़ा की अपनी अनुभूति के बारे में 100 प्रतिशत निश्चित होता हूँ (भले ही अभी तक मेरे पास इसकी कोई वैज्ञानिक व्याख्या नहीं है)। इसके विपरीत, मैं इस बारे में निश्चित नहीं हो सकता कि अगर घाव में कोई संक्रमण लग जाता है और मैं गैंगरीन से मर जाता हूँ, तब भी मेरी आत्मा का अस्तित्व बना रहेगा। यह एक बहुत ही दिलचस्प और राहत देने वाली कहानी होगी, जिस पर विश्वास करके मुझे ख़ुशी होगी, लेकिन इसकी सच्चाई को लेकर मेरे पास कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं हैं। चूँकि सारे वैज्ञानिक निरन्तर पीड़ा और सन्देह जैसी व्यक्तिनिष्ठ अनुभूतियों को महसूस करते हैं, वे उनके अस्तित्व से इंकार नहीं कर सकते।

दिमाग़ और चेतना को ख़ारिज़ करने का एक और तरीक़ा उनके अस्तित्व की बजाय उनकी प्रासंगिकता से इंकार करना है। कुछ वैज्ञानिक, जैसे कि डैनियल डेनेट और

स्टानिस्लास देहाने यह तर्क देते हैं कि व्यक्तिनिष्ठ अनुभवों का कोई भी सहारा लिए बिना मस्तिष्क की गतिविधियों के अध्ययन के माध्यम से सारे प्रासंगिक सवालों के जवाब दिए जा सकते हैं। इसलिए वैज्ञानिक अपनी शब्दावली और लेखों से 'दिमाग़', 'चेतना', और 'व्यक्तिष्ठ अनुभव' जैसे शब्दों को बिना किसी जोखिम के निकाल बाहर कर सकते हैं, लेकिन जैसा कि हम आगामी अध्यायों में देखेंगे, आधुनिक राजनीति और नैतिकी का समूचा महल व्यक्तिनिष्ठ अनुभवों पर खड़ा है, और बहुत थोड़ी-सी नैतिक दुविधाएँ हैं, जिनको पूरी तरह से मस्तिष्क की गतिविधियों के सुपुर्द कर सुलझाया जा सकता है। उदाहरण के लिए, यातना या दुष्कर्म में क्या बुराई है? एक विशुद्ध स्नायुविक परिप्रेक्ष्य में देखें तो, जब किसी मनुष्य को यातना दी जाती है या उसके साथ दुष्कर्म किया जाता है, तो मस्तिष्क में कुछ ख़ास तरह की जैवरासायनिक प्रतिक्रियाएँ होती हैं, और विभिन्न तरह के विद्युत संकेत न्यूरॉनों के एक गुच्छे से दूसरे गुच्छे की ओर जाते हैं। इसमें क्या ग़लत हो सकता है? ज़्यादातर आधुनिक लोगों में यातना और दुष्कर्म में शामिल व्यक्तिनिष्ठ अनुभवों की वजह से नैतिक पाप-बोध का भाव होता है। अगर कोई वैज्ञानिक यह तर्क देना चाहता है कि व्यक्तिनिष्ठ अनुभव अप्रासंगिक होते हैं, तो उनके सामने यह स्पष्ट करने की चुनौती है कि किसी व्यक्तिनिष्ठ अनुभव के सन्दर्भ के बिना यातना और दुष्कर्म ग़लत क्यों हैं।

अन्त में, कुछ वैज्ञानिक यह स्वीकार करते हैं कि चेतना वास्तविक होती है और उसमें वास्तव में महान नैतिक और राजनैतिक मूल्य निहित हो सकते हैं, लेकिन वह किसी तरह की जैविक भूमिका का निष्पादन नहीं करती। चेतना कुछ ख़ास मस्तिष्कीय प्रक्रियाओं का जैविक रूप से अनुपयोगी सह-उत्पाद (बायप्रॉडक्ट) है। जेट इंजन बहुत ज़ोर से गुर्राते हैं, लेकिन उनकी यह आवाज़ हवाई जहाज़ को आगे नहीं धकेलती। मनुष्यों को कॉर्बन डायऑक्साइड की ज़रूरत नहीं होती, लेकिन एक-एक साँस हवा को उस चीज़ से और अधिक भरती जाती है। इसी तरह, चेतना भी जटिल स्नायुविक तन्त्र की आगजनी से उत्पन्न एक क़िस्म का मानसिक प्रदूषण हो सकती है। यह कुछ करती नहीं। यह महज़ वहाँ है। अगर यह सही है, तो इसका अभिप्राय यह निकलता है कि लाखों सालों से अरबों प्राणी जो पीड़ा और आनन्द महसूस करते आए हैं, वह महज़ मानसिक प्रदूषण है। यह निश्चय ही एक चिन्तन के योग्य विचार है, भले ही वह सही न हो, लेकिन यह अहसास ख़ासा विस्मय में डालने वाला है कि 2016 तक यह चेतना से सम्बन्धित वह श्रेष्ठतम सिद्धान्त है, जो समकालीन विज्ञान हमें उपलब्ध कराता है।

मुमकिन है कि जीवन सम्बन्धी विज्ञान समस्या को ग़लत कोण से देखते हों। उनका मानना है कि जीवन कुल मिलाकर डेटा-प्रोसेसिंग है, और जीवधारी परिगणनाएँ करने और निर्णय लेने वाली मशीनें हैं, लेकिन जीवधारियों और ऐल्गरिदमों के बीच इस तरह की तुलना हमें गुमराह कर सकती है। उन्नीसवीं सदी में वैज्ञानिकों ने मस्तिष्कों और दिमाग़ों को इस तरह

चित्रित किया था, जैसे वे भाप के इंजन हों। भाप के इंजन क्यों? क्योंकि वह उन दिनों की सबसे अग्रगामी प्रौद्योगिकी थी, जिसने ट्रेनों, जहाज़ों और कारख़नों को शक्ति प्रदान की थी, इसलिए जब इंसानों ने जीवन की व्याख्या करने की कोशिश की, तो उन्होंने यह मान लिया कि वह भी तुल्यरूप सिद्धान्तों के मुताबिक़ काम करता होगा। दिमाग़ और शरीर पाइपों, सिलेंडरों, वाल्वों और पिस्टनों से निर्मित है, जो दबाव उत्पन्न करते और छोड़ते हैं, और इस प्रक्रिया में गति और कृत्यों को उत्पन्न करते हैं। इस विचार का बहुत गहरा प्रभाव फ़्रायडवादी मनोविज्ञान तक पर पड़ा, और यही वजह है कि हमारे ज़्यादातर मनोवैज्ञानिक शब्दजाल अभी भी मैकेनिकल इंजीनियरिंग से उधार ली गई अवधारणाओं से भरे पड़े हैं।

उदाहरण के लिए, फ़्रायड के इस तर्क पर विचार करें: 'सेनाएँ सैन्य आक्रामकता को भड़काने के लिए काम (सैक्स) इच्छा का इस्तेमाल करती हैं। सेना नौजवानों को ठीक उस वक़्त भर्ती करती है, जब उनकी यौन इच्छा अपने चरम पर होती है। सेना सैनिकों के वास्तविक यौन संसर्ग और तत्सम्बन्धी सारे दबाव के निकास के अवसरों को सीमित करती है, जो नतीजतन उनके भीतर इकट्ठा होता रहता है। इसके बाद सेना इस अवरुद्ध दबाव को अलग दिशा देती हुई उसको सैन्य आक्रामकता के रूप में निकलने की गुंजाइश देती है। यह ठीक वहीं ढंग है, जिससे भाप का इंजन काम करता है। आप उफनती हुई भाप को एक बन्द डिब्बे में क़ैद कर लेते हैं। भाप उस वक़्त तक उत्तरोत्तर दबाव बढ़ाती जाती है, जब तक कि आप अचानक एक वॉल्व को खोलकर दबाव को एक पूर्वनिर्धारित दिशा में निकलने देते हुए उसको किसी ट्रेन या करघे को धकेलने के काम में नहीं जोत देते। सिर्फ़ सेना में ही नहीं, बल्कि गतिविधि के तमाम क्षेत्रों में, हम अक्सर अपने भीतर दबाव के बनने की शिकायत करते हैं, और हम डरते हैं कि अगर हम 'अपने भीतर के कुछ उबाल को नहीं निकालते' ('let off some steam'), तो हम फट पड़ेंगे।

इक्कीसवीं सदी में मनुष्य के दिमाग़ की तुलना भाप के इंजन से करना बचकाना लगता है। आज हम एक कहीं ज़्यादा परिष्कृत प्रौद्योगिकी - कम्प्यूटर - से परिचित हैं, इसलिए हम मनुष्य के मानस की व्याख्या इस तरह करते हैं, जैसे वह दबाव को नियन्त्रित करने वाले भाप के इंजन की बजाय डेटा प्रोसेसिंग करने वाला कम्प्यूटर हो, लेकिन यह नई तुलना भी उतनी ही बचकानी साबित हो सकती है। आख़िरकार, कम्प्यूटरों का कोई दिमाग़ तो होता नहीं है। अगर उनमें कोई बग भी होता है, तब भी वे किसी चीज़ की याचना नहीं करते, और अगर कोई सर्वसत्तावादी व्यवस्थाएँ पूरे के पूरे देशों को वेब से काट दें, तो भी इंटरनेट किसी तरह की पीड़ा महसूस नहीं करता। तब फिर दिमाग़ को समझने के लिए कम्प्यूटरों का इस्तेमाल क्यों किया जाए?

ख़ैर, क्या हम पक्के तौर पर जानते हैं कि कम्प्यूटरों को कोई अनुभूतियाँ नहीं होतीं या उनकी कोई इच्छाएँ नहीं होतीं? और अगर उनमें फ़िलहाल ऐसी कोई अनुभूतियाँ या

इच्छाएँ नहीं हैं, तब भी हो सकता है कि जब वे पर्याप्त जटिल रूप ले लें, तो वे चेतना विकसित कर लें? अगर ऐसा हुआ, तो हम इसका निश्चय कैसे कर सकेंगे? जब कम्प्यूटर हमारे बस ड्राइवर, हमारे अध्यापक और हमारे मनोचिकित्सक की जगह ले लेते हैं, तो हम यह फ़ैसला कैसे कर सकते हैं कि उनमें अनुभूतियाँ होती हैं या नहीं या वे महज़ बेदिमाग़ ऐल्गरिदमों का समूह हैं या नहीं?

जब मनुष्यों का सवाल उठता है, तो हम आज सचेतन मानसिक अनुभवों और अ-चेतन मस्तिष्कीय गतिविधियों के बीच फ़र्क़ करने में सक्षम होते हैं, हालाँकि हम चेतना को समझने से बहुत दूर हैं, तब भी वैज्ञानिक इसके कुछ अतिविशिष्ट विद्युतरासायनिक लक्षणों की पहचान करने में कामयाब रहे हैं। ऐसा करने के लिए वैज्ञानिकों ने यह मानते हुए शुरुआत की कि जब भी कभी मनुष्य यह सूचना देते हैं कि वे किसी चीज़ को लेकर सजग हैं, तो उनकी बात पर विश्वास किया जा सकता है। तब वैज्ञानिक इस धारणा के आधार पर मस्तिष्क के उन विशिष्ट पैटर्नों को अलग कर सकते हैं, जो हर बार उस समय प्रकट होते हैं, जब मनुष्य चैतन्य होने की सूचना देते हैं, लेकिन जो चेतन अवस्था के दौरान कभी प्रकट नहीं होते।

इस चीज़ ने वैज्ञानिकों को, उदाहरण के लिए, यह निर्णय करने की गुंजाइश दी कि वेजीटेटिव आघात का शिकार लगते व्यक्ति ने पूरी तरह से अपनी चेतना खो दी है, या महज़ अपने शरीर और वाणी पर से नियन्त्रण खो दिया है। अगर मरीज़ का मस्तिष्क चेतना के भेद खोलने वाले विशिष्ट लक्षणों का परिचय देता है, तो वह शायद चेतन अवस्था में है, भले ही वह हरकत नहीं कर पा रहा हो या बोल न पा रहा हो। दरअसल, डॉक्टरों ने हाल ही में एफ़एमआरआई इमेजिंग का इस्तेमाल करते हुए इस तरह के मरीज़ों से संवाद तक मुमकिन कर लिया है। वे मरीज़ से हाँ/नहीं में जवाब दिए जा सकने वाले सवाल पूछते हैं, और अगर उनका जवाब 'हाँ' में होता है, तो उनसे टेनिस खेलते हुए ख़ुद की कल्पना करने का आग्रह करते हैं, और अगर जवाब 'नहीं' में हुआ, तो उनसे उनके घर की अवस्थिति (लोकेशन) की कल्पना करने को कहते हैं। इसके बाद ये डॉक्टर इस बात को लक्ष्य करते हैं कि जब ये मरीज़ टेनिस खेलने की कल्पना कर रहे होते हैं (यानी 'हाँ'), तब कैसे उनके मोटोर कॉर्टेक्स चमक उठते हैं, जबकि मस्तिष्क के स्थानपरक स्मृति से सम्बन्ध रखने वाले इलाक़े का सक्रिय हो उठना 'नहीं' को दर्शाता है।

यह सब मनुष्यों के सन्दर्भ में तो बिल्कुल ठीक है, लेकिन कम्प्यूटरों के सन्दर्भ में? चूँकि सिलिकॉन-आधारित कम्प्यूटरों की बनावट कॉर्बन-आधारित इंसानी स्नायुविक तन्त्र से बहुत भिन्न है, इसलिए मुमकिन है कि इंसानी चेतना के विशिष्ट संकेत कम्प्यूटरों के लिए प्रासंगिक न हों। हम एक दुष्चक्र में फँस गए लगते हैं। यह मानकर शुरुआत करने के साथ कि जब मनुष्य अपने चैतन्य होने की सूचना देते हैं, तो हम उन पर विश्वास कर सकते हैं,

हम मनुष्य की चेतना के विशिष्ट संकेतों की पहचान कर सकते हैं, और फिर इन विशिष्ट संकेतों का इस्तेमाल यह 'सिद्ध' करने के लिए कर सकते हैं कि मनुष्य वाक़ई सचेतन हैं, लेकिन अगर एक कृत्रिम बुद्धि (आर्टिफ़िशल इंटेलिजेंस) ख़ुद ही सूचित करता है कि वह चेतन है, तो क्या हमें उस पर यूँ ही विश्वास कर लेना चाहिए?

अभी तक हमारे पास इस समस्या का कोई ठीक जवाब नहीं है। हज़ारों साल पहले ही दार्शनिक यह समझ चुके थे कि इस बात को निश्चयात्मक ढंग से साबित करने का कोई तरीक़ा नहीं है कि ख़ुद के अलावा किसी और के पास दिमाग़ है। दरअसल, अन्य मनुष्यों तक के मामले में हम महज़ यह मान लेते हैं कि उनमें चेतना है - इस बात को हम निश्चित तौर पर नहीं जान सकते। कहीं ऐसा तो नहीं कि समूचे विश्व में मैं एकमात्र ऐसा प्राणी हूँ, जो कुछ भी महसूस करता है, और दूसरे तमाम मनुष्य और पशु महज़ बेदिमाग़ रोबोट हैं? कहीं ऐसा तो नहीं कि मैं सपना देख रहा हूँ, और जिस किसी से भी मैं मिलता हूँ, वह मेरे इस सपने का महज़ एक चरित्र हो? कहीं ऐसा तो नहीं कि मैं एक आभासी (वर्चुअल) जगत के भीतर बन्द हूँ, और जिन तमाम दूसरे प्राणियों को मैं देखता हूँ, वे महज़ दिखावटी हों?

ताज़ा वैज्ञानिक मताग्रह के अनुसार, जो कुछ भी मैं अनुभव करता हूँ, वह मेरे मस्तिष्क में चलने वाली विद्युतीय गतिविधि का परिणाम है, और इसलिए उस समूचे आभासी जगत का स्वांग रच पाना सैद्धान्तिक तौर पर सम्भव होना चाहिए, जिसको मैं शायद 'वास्तविक' जगत से अलग नहीं कर सकता। मस्तिष्क के अध्येता कुछ वैज्ञानिकों का विश्वास है कि वह दिन बहुत दूर नहीं, जब हम सचमुच इस तरह के काम कर सकेंगे। ख़ैर, मुमकिन है कि यह पहले ही हो चुका हो - आपके साथ? आप सिर्फ़ इतना ही जानते हैं कि वर्ष 2216 हो सकता है और आप एक ऊबे हुए किशोर हैं और एक 'आभासी दुनिया' के ऐसे खेल में डूबे हुए हैं, जो इक्कीसवीं सदी की आदिम और रोमांचक दुनिया का स्वांग पेश कर रहा है। जैसे ही आप इस परिदृश्य की निरी सम्भाव्यता को स्वीकार कर लेते हैं, वैसे ही गणित आपको एक बेहद डरावने निष्कर्ष की ओर ले जाता है: चूँकि वास्तविक दुनिया सिर्फ़ एक ही है, जबकि सम्भावित आभासी दुनियाओं की संख्या अनन्त है, इसलिए इस बात की सम्भावना शून्य के बराबर है कि आप उस एकमात्र वास्तविक दुनिया के निवासी हों।

हमारी कोई भी वैज्ञानिक खोज इस कुख्यात अन्य दिमाग़ों की समस्या पर विजय पाने में कामयाब नहीं हो सकी है। जो सबसे अच्छा परीक्षण अध्येता अब तक कर सके हैं, उसको ट्यूरिंग टैस्ट के नाम से जाना जाता है, लेकिन यह सिर्फ़ सामाजिक परिपाटियों का ही परीक्षण करता है। ट्यूरिंग टैस्ट के मुताबिक़, यह निश्चय करने के लिए कि कम्प्यूटर में दिमाग़ होता है या नहीं, आपको एक साथ कम्प्यूटर और किसी वास्तविक इंसान से, बिना

यह जाने कि इनमें से कौन क्या है, बातचीत करनी चाहिए। आप उनसे मनचाहे सवाल पूछ सकते हैं, खेल खेल सकते हैं, तर्क कर सकते हैं, यहाँ तक कि उनकी ख़ुशामद कर सकते हैं। आप मनचाहा वक़्त लीजिए। इसके बाद आपको यह फ़ैसला करने की ज़रूरत होगी कि उनमें से कौन कम्प्यूटर है और कौन इंसान है। अगर आप फ़ैसला न कर पा रहे हों, या आप ग़लती कर रहे हों, तो इसका मतलब है कि कम्प्यूटर ने ट्यूरिंग टैस्ट को पास कर लिया है, और हमें उसको इस तरह बरता चाहिए जैसे उसके पास दिमाग़ है, लेकिन निश्चय ही यह वास्तव में कोई प्रमाण नहीं होगा। दूसरे के दिमाग़ों के वजूद को स्वीकार करना महज़ एक सामाजिक और वैधानिक परिपाटी है।

ट्यूरिंग टैस्ट का आविष्कार 1950 में अँग्रेज़ गणितज्ञ और कम्प्यूटर युग के एक जनक एलेन ट्यूरिंग द्वारा किया गया था। ट्यूरिंग उस युग में एक समलैंगिक पुरुष भी थे, जब समलैंगिकता ब्रिटेन में ग़ैरक़ानूनी हुआ करती थी। 1952 में उनको समलैंगिक कृत्यों में शामिल होने के लिए दोषी ठहराते हुए उनका बलात् रासायनिक बधियाकरण कर दिया गया था। दो साल बाद उन्होंने आत्महत्या कर ली थी। ट्यूरिंग टैस्ट उस साधारण परीक्षण की महज़ एक नक़ल है, जिससे 1950 के दशक के ब्रिटेन में हर समलैंगिक व्यक्ति को गुज़रना पड़ता था: क्या आप एक विषमलिंगी पुरुष होने का विश्वास दिला सकते हैं? ट्यूरिंग अपने व्यक्तिगत अनुभव से यह बात जानते थे कि इससे फ़र्क़ नहीं पड़ता था कि आप वास्तव में क्या थे - महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि दूसरे लोग आपके बारे में क्या सोचते थे। ट्यूरिंग के मुताबिक़, भविष्य में कम्प्यूटर 1950 के दशक के समलैंगिक पुरुषों की तरह हुआ करेंगे। इससे फ़र्क़ नहीं पड़ेगा कि कम्प्यूटर वास्तव में चेतना-सम्पन्न होंगे या नहीं। महत्त्वपूर्ण यह होगा कि लोग उनके बारे में क्या सोचते हैं।

प्रयोगशाला के चूहों का उदास और निराश जीवन

मानस के साथ अपना परिचय स्थापित कर लेने के बाद और इस तथ्य के साथ भी कि हम वास्तव में उसके बारे में कितना कम जानते हैं, अब हम उस सवाल पर वापस लौट सकते हैं कि दूसरे प्राणियों में मानस होता है या नहीं। कुत्ते जैसे कुछ प्राणी ट्यूरिन टैस्ट के संशोधित प्रारूप पर निश्चय ही खरे उतरते हैं। जब इंसान यह पता लगाने की कोशिश करते हैं कि कोई कुत्ता चेतन है या नहीं, तो हम उसकी गणितीय योग्यता या अच्छी याददाश्त की तलाश नहीं करते, बल्कि हमारे साथ भावनात्मक सम्बन्ध बनाने की उसकी योग्यता को देखते हैं। यह तथ्य कि कुत्ते मनुष्यों के साथ भावनात्मक सम्बन्ध बना सकते हैं, कुत्तों के ज़्यादातर मालिकों को यह विश्वास दिलाता है कि कुत्ते बेदिमाग़ मशीनें नहीं हैं।

लेकिन यह चीज़ उन सन्देहवादियों को सन्तुष्ट नहीं करेगी, जो इस ओर ध्यान दिलाते हैं कि भावनाएँ ऐल्गरिदम हैं, और कोई भी ज्ञात ऐल्गरिदम ऐसा नहीं है, जिसे क्रियाशील

होने के लिए चेतना की ज़रूरत पड़ती हो। जब भी कभी कोई प्राणी किसी जटिल भावनात्मक आचरण का परिचय देता है, तो हम यह साबित नहीं कर सकते कि यह किसी अत्यन्त परिष्कृत, किन्तु अ-चेतन ऐल्गरिदम का नतीजा नहीं है। निश्चय ही यह तर्क मनुष्यों पर भी लागू किया जा सकता है। कथित रूप से चेतन अवस्थाओं की सूचना देने समेत मनुष्य जो कुछ भी करता है, वह सिद्धान्ततः अ-चेतन ऐल्गरिदमों का कृत्य हो सकता है।

इसके बावजूद, मनुष्यों के मामले में हम यह मान लेते हैं कि जब कोई यह सूचना देता है/देती है कि वह चेतन है, हम उसकी बात को सही मान लेते हैं। इस न्यूनतम मान्यता के आधार पर हम आज चेतना के विशिष्ट मस्तिष्कीय लक्षणों को पहचान सकते हैं, जिनका इस्तेमाल मनुष्यों में चेतन अवस्था को अ-चेतन अवस्था से व्यवस्थित ढंग से अलग करने के लिए किया जा सकता है, लेकिन चूँकि पशुओं के मस्तिष्क के बहुत-से लक्षण इंसानी मस्तिष्कों जैसे ही होते हैं, इसलिए चेतना के विशिष्ट लक्षणों की हमारी समझ के बढ़ने के साथ-साथ हम इनका इस्तेमाल इस बात का निश्चय करने में कर सकेंगे कि क्या दूसरे प्राणियों में चेतना होती है और वह कब होती है। अगर एक कुत्ते का मस्तिष्क उसी तरह के पैटर्न पेश करता है, जैसे एक सचेतन मानव-मस्तिष्क करता है, तो यह इस बात का सशक्त प्रमाण होगा कि कुत्ते सचेतन प्राणी हैं।

बन्दरों और चूहों पर किए गए शुरुआती परीक्षण दर्शाते हैं कि कम से कम बन्दर और चूहे के मस्तिष्क सचमुच चेतना के विशिष्ट लक्षणों को प्रदर्शित करते हैं, लेकिन पशुओं के मस्तिष्कों और मनुष्य के मस्तिष्कों के बीच के भेद के चलते, और इस तथ्य के चलते कि हम चेतना के सारे रहस्यों को सुलझाने से अभी काफ़ी दूर हैं, ऐसे निर्णायक परीक्षणों को विकसित करने में दशकों लग जाएँगे, जो सन्देहवादियों को सन्तुष्ट कर सकेंगे। इस दौरान इसे सही साबित करने की ज़िम्मेदारी कौन लेगा? क्या हम कुत्तों को तब तक बेदिमाग़ मशीनें मानते रहेंगे, जब तक कि इसके उलट बात साबित नहीं हो जाती, या हम उस वक़्त तक कुत्तों को चेतन प्राणियों की तरह बरतना जारी रखेंगे, जब तक कि कोई भी व्यक्ति इसके विपरीत क़ायल करने वाला सबूत पेश नहीं कर देता?

7 जुलाई 2012 को तन्त्रिकाजैविकी (न्यूरोबायोलॉजी) और संज्ञानात्मक विज्ञानों (कॉग्नीटिव साइंसेज़) के विशेषज्ञ कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में एकत्र हुए, उन्होंने चेतना-विषयक कैम्ब्रिज घोषणा-पत्र (कैम्ब्रिज डिक्लेयरेशन ऑन कांशसनेस) पर हस्ताक्षर किए, जिसमें कहा गया है कि 'एक-केन्द्राभिमुखी (कन्वरजेंट) साक्ष्य दर्शाते हैं कि अ-मानवीय प्राणियों में सोद्देश्य व्यवहारों को प्रदर्शित करने की क्षमता के साथ-साथ चेतन अवस्थाओं के तन्त्रिकाशारीरिक (न्यूरोएनाटॉमिकल), तन्त्रिकारासायनिक (न्यूरोकैमिकल) और तन्त्रिकाशरीरक्रियात्मक (न्यूरोफ़िज़ियोलॉजिकल) सब्स्ट्रेट होते हैं। परिणामतः साक्ष्य का

प्रभाव दर्शाता है कि चेतना को उत्पन्न करने वाले तन्त्रिकापरक सब्स्ट्रेटों को धारण करने के मामले में मनुष्य अनूठे नहीं होते। तमाम स्तनपायियों और पक्षियों समेत ग़ैर मानवीय प्राणियों में, और ऑक्टोपॅस समेत बहुत-से दूसरे प्राणियों में भी ये तन्त्रिकापरक सब्स्ट्रेट होते हैं'। यह घोषणा-पत्र यह कहते-कहते रह जाता है कि दूसरे प्राणी चेतन होते हैं, क्योंकि हमारे पास अभी भी निर्णायक साक्ष्य का अभाव है, लेकिन इसे सिद्ध करने की ज़िम्मेदारी यह उन लोगों पर डाल देता है, जो ऐसा नहीं सोचते।

वैज्ञानिक समुदाय की इन बदलती हवाओं पर प्रतिक्रिया करते हुए मई 2015 में न्यूज़ीलैंड उस वक़्त पशुओं को चेतन प्राणियों की मान्यता देने वाला दुनिया का पहला मुल्क बन गया, जब न्यूज़ीलैंड की संसद ने पशु कल्याण संशोधन अधिनियम को पारित किया। यह अधिनियम व्यवस्था देता है कि अब से पशुओं को चेतन प्राणियों के रूप में मान्यता देना, और इसलिए पशु पालन जैसे सन्दर्भों में उनके कल्याण पर समुचित ध्यान देना अनिवार्य है। एक ऐसे देश में जहाँ भेड़ों की तादाद मनुष्यों से ज़्यादा है (40.5 लाख के मुक़ाबले 3 करोड़), यह बहुत महत्त्वपूर्ण वक्तव्य है। इसके बाद कनाडा के क्यूबेक प्रान्त ने भी ऐसा ही अधिनियम पारित किया है, और दूसरे मुल्कों द्वारा भी इसका अनुसरण किए जाने की सम्भावना है।

बहुत-से औद्योगिक निकाय भी पशुओं को चेतन प्राणियों के रूप में मान्यता देते हैं, हालाँकि यह विरोधाभास है कि यह मान्यता इन पशुओं को किंचित अप्रिय क़िस्म के प्रयोगशाला परीक्षणों के हवाले कर देती है। उदाहरण के लिए, औषधियों का उत्पादन करने वाली कम्पनियाँ अवसादरोधक दवाएँ (एंटीडिप्रेसेंट) विकसित करने की प्रक्रिया में चूहों पर नियमित रूप से प्रयोग करती हैं। व्यापक तौर पर अपनाई जाने वाली एक पद्धति के मुताबिक़ आप (सांख्यकीय विश्वसनीयता की ख़ातिर) सौ चूहों को लेते हैं और हर चूहे को पानी से भरी काँच की एक नली में रख देते हैं। चूहे इस नली से उछलकर बाहर आने के लिए बार-बार संघर्ष करते हैं, पर कामयाब नहीं होते। पन्द्रह मिनट बाद ज़्यादातर चूहे हार मान लेते हैं और हरकत करना बन्द कर देते हैं। वे अपने परिवेश से उदासीन होकर नली में तैरते रहते हैं।

अब आप सौ चूहे और लेते हैं, उनको नलियों में डालते हैं, लेकिन चौदह मिनट बाद, इसके ठीक पहले कि वे हताश हों, उनको नली से निकाल लेते हैं। आप उनको पोंछते हैं, खिलाते-पिलाते हैं और उनको थोड़ा-सा आराम देते हैं - और इसके बाद उनको फिर उन्हीं नलियों में डाल देते हैं। दूसरी बार में, ये चूहे हाथ-पैर डाल देने से पहले बीस मिनट तक संघर्ष करते हैं। ये अतिरिक्त छह मिनट क्यों? क्योंकि पिछली कामयाबी की स्मृति मस्तिष्क में कुछ जैवरसायन के उत्सर्जन को उकसाती है, जो इन चूहों को उम्मीद प्रदान करती है और हताशा के आगमन को विलम्बित कर देती है। अब अगर हम इस जैवरसायन की

पहचान भर कर लेते हैं, तो हम इसका इस्तेमाल मनुष्यों के लिए अवसादरोधक दवा के रूप में इस्तेमाल कर सकते हैं, लेकिन एक चूहे के मस्तिष्क में किसी भी प्रदत्त क्षण में असंख्य रसायनों की बाढ़ आ जाती है। हम सही रसायन पर अंगुली कैसे रख सकते हैं?

इसके लिए आपको चूहों के ऐसे और ज़्यादा समूहों को लेने की ज़रूरत होगी, जिन्होंने इस परीक्षण में पहले कभी भागीदारी न की हो। आप हर समूह के चूहों को उस एक ख़ास रसायन का इंजेक्षन देते हैं, जिसके बारे में आपको सम्भावित अवसादरोधक होने का सन्देह है। आप चूहों को पानी में छोड़ देते हैं। जिन चूहों को इंजेक्शन 'ए' दिया गया है, वे अगर अवसाद की अवस्था में आने से पहले पन्द्रह मिनट तक संघर्ष करते हैं, तो आप अपनी सूची में 'ए' को काट देते हैं। अगर जिन चूहों को 'बी' रसायन का इंजेक्शन दिया गया है, वे बीस मिनट तक छटपटाते रहते हैं, तो आप सीईओ और शेयरधारियों से कह सकते हैं कि आप कामयाब रहे।
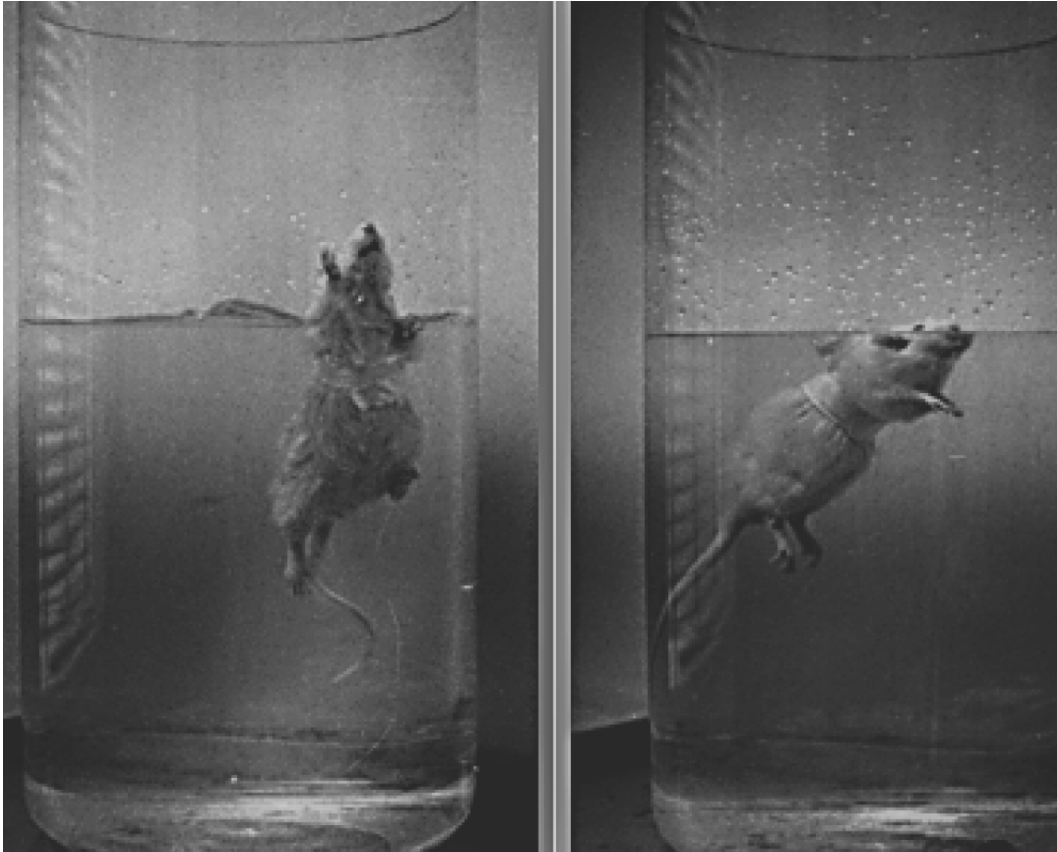
16. बाएँ: एक उम्मीद से भरा चूहा काँच की नली से निकलने की कोशिश करता हुआ। दाएँ: सारी उम्मीदें छोड़ देने के बाद एक हतोत्साहित चूहा काँच की नली में तैरता हुआ।

सन्देहवादी आपत्ति कर सकते हैं कि यह समूचा विवरण चूहों का अनावश्यक मानवीकरण करता है। चूहे न तो उम्मीद का अनुभव करते हैं, न नाउम्मीदी का। कभी-

कभी चूहे फुर्ती के साथ हरकत करते हैं और कभी-कभी वे स्थिर बने रहते हैं, लेकिन वे महसूस कभी कुछ नहीं करते। वे सिर्फ़ चेतना-हीन ऐल्गरिदमों से परिचालित होते हैं, लेकिन अगर ऐसा है, तो फिर इन सारे प्रयोगों का क्या अर्थ है? मनोविकार सम्बन्धी दवाओं का उद्देश्य मनुष्यों के सिर्फ़ व्यवहार में परिवर्तन लाना नहीं है, बल्कि सबसे पहले *मानवीय अनुभूतियों* में परिवर्तन लाना है। जब ग्राहक मनोचिकित्सक के पास जाते हैं और उससे कहते हैं, 'डॉक्टर, मुझे कोई ऐसी चीज़ दीजिए, जो मुझे इस अवसाद से बाहर ला सके,' तो वे कोई ऐसी मैकेनिकल उत्तेजक औषधि नहीं चाहते, जिससे उनकी काया तो मूसल की तरह हरकत करती रहे, लेकिन वे अवसाद महसूस करते रहें। वे ख़ुशनुमा *महसूस* करना चाहते हैं। चूहों पर ऐसे प्रयोग व्यापारिक निगमों की ऐसी करामाती गोली विकसित करने में तभी मदद कर सकते हैं, जब वे पहले से यह मानकर चल रहे हों कि चूहे के व्यवहार के साथ मनुष्य-नुमा भावनाएँ जुड़ी होती हैं। और सचमुच ही मनोविकार सम्बन्धी प्रयोगशालाएँ आमतौर से ऐसा ही मान कर चलती हैं।

आत्म-चेतन चिम्पांज़ी

मनुष्य की श्रेष्ठता को स्थापित करने की एक और कोशिश यह स्वीकार करती है कि चूहों, कुत्तों और अन्य जानवरों में चेतना होती है, लेकिन साथ ही उसका यह तर्क है कि वे मनुष्यों से इस मामले में भिन्न होते हैं कि उनमें आत्म-चेतना नहीं होती। वे अवसाद, सुख, भूख या तृप्ति महसूस तो कर सकते हैं, लेकिन उनमें आत्म का कोई बोध नहीं होता, और वे इस बात को लेकर सजग नहीं होते कि जिस अवसाद या भूख को वे महसूस कर रहे होते हैं, उसका कोई सम्बन्ध 'मैं' नामक एक विशिष्ट सत्ता से है।

यह धारणा जितनी आम है, उतनी ही अस्पष्ट भी है। ज़ाहिर है, जब एक कुत्ता भूख का अनुभव करता है, तो वह किसी दूसरे कुत्ते को भोजन परोसने की बजाय ख़ुद ही मांस का टुकड़ा हथिया लेता है। एक कुत्ते को पड़ोस के कुत्तों के मूत्र से भीगे हुए पेड़ को सूँघने दीजिए, और वह तत्काल पहचान जाएगा कि उस पेड़ से उसके ख़ुद के मूत्र की गन्ध आ रही है, या पड़ोस के प्यारे-से लैब्राडोर के मूत्र की गन्ध आ रही है या किसी अजनबी कुत्ते के मूत्र की। कुत्ते अपनी ख़ुद की गन्ध के प्रति और सम्भावित सहवासी और प्रतिद्वन्द्वियों की गन्ध के प्रति बहुत अलग-अलग तरह से प्रतिक्रिया करते हैं। तब इस बात का क्या मतलब है कि उनमें आत्मचेतना का अभाव होता है?

इस तर्क के एक अपेक्षाकृत परिष्कृत संस्करण के मुताबिक़ आत्म-चेतना के अलग-अलग स्तर होते हैं। केवल मनुष्य ही उस चिरस्थायी स्वत्व को समझते हैं,जिसका एक अतीत और एक भविष्य होता है, क्योंकि सिर्फ़ मनुष्य ही अपने अतीत के अनुभवों और भविष्य के कृत्यों पर चिन्तन करने के लिए भाषा का इस्तेमाल कर सकते हैं। दूसरे प्राणी

शाश्वत वर्तमान में रहते हैं। वे जब अतीत को याद करते या भविष्य की योजना बनाते भी प्रतीत होते हैं, तब भी वे दरअसल वर्तमान उद्दीपकों और क्षणिक इच्छाओं पर प्रतिक्रिया कर रहे होते हैं। उदाहरण के लिए, आने वाले जाड़ों के लिए बीजों को छिपा कर रखती हुई गिलहरी वास्तव में न तो उस भूख को याद करती है, जो उसने पिछले जाड़े में महसूस की थी, न ही वह भविष्य के बारे में सोचती है। वह तो महज़ एक क्षणिक इच्छा का अनुसरण कर रही होती है, इस इच्छा के उद्गम और उद्देश्य से बेख़बर रहते हुए। यही वजह है कि एकदम छोटी गिलहरियाँ भी गर्मियों के दौरान बीजों का संग्रह करती हैं, जबकि उन्होंने कोई जाड़ा नहीं बिताया होता है और इसलिए जाड़े को याद भी नहीं कर सकतीं।

तब भी यह बात अस्पष्ट बनी रहती है कि अतीत या भविष्य की घटनाओं के प्रति सजग होने के लिए भाषा एक अनिवार्य शर्त क्यों है। इस तथ्य को कि मनुष्य इसके लिए भाषा का इस्तेमाल करते हैं, शायद ही कोई प्रमाण कह सके। मनुष्य तो अपने प्रेम या भय को व्यक्त करने के लिए भी भाषा का इस्तेमाल करते हैं, लेकिन दूसरे प्राणी शब्दों का प्रयोग किए बग़ैर प्रेम और भय को उतने ही अच्छी तरह से अनुभव कर सकते हैं, बल्कि उसे व्यक्त तक कर सकते हैं। सच तो यह है कि ख़ुद मनुष्य भी अक्सर अतीत और भविष्य की घटनाओं को शब्दों में व्यक्त किए बग़ैर उनके प्रति सजग होते हैं। ख़ासतौर से स्वप्न की अवस्थाओं में, हम पूरी तरह से शब्दहीन वृत्तान्तों के प्रति सजग हो सकते हैं, जिनको जागने पर शब्दों में बयान करने को लेकर हम संघर्ष करते हैं।

बहुत-से प्रयोग यह दर्शाते हैं कि कम से कम कुछ जानवर, जिनमें तोते और नीलकण्ठ शामिल हैं, वे स्वतन्त्र घटनाओं को याद रखते हैं और सचेतन ढंग से भविष्य में इस तरह की सम्भावित घटनाओं के प्रति सतर्क रहने की योजना बनाते हैं, लेकिन इस बात को असन्दिग्ध रूप से साबित करना असम्भव है, क्योंकि कोई जानवर कितने ही परिष्कृत व्यवहार का परिचय क्यों न दे रहा हो, सन्देहवादी हमेशा यह दावा कर सकते हैं कि यह व्यवहार उसके मानस की सचेतन छवियों का नतीजा होने की बजाय उसके मस्तिष्क की अचेतन ऐल्गरिदमों का नतीजा है।

इस समस्या की व्याख्या करने के लिए स्वीडन के यूरूविक चिड़ियाघर के एक नर चिम्पांज़ी सेंटिनो के मामले पर विचार करें। अपने अहाते की ऊब से छुटकारा पाने के लिए सेंटिनो ने एक रोमांचक शौक विकसित कर लिया: चिड़ियाघर में आने वाले दर्शकों पर पत्थर फेंकना। अपने आप में यह कोई अनूठी बात नहीं है। ग़ुस्साए हुए चिम्पांज़ी अक्सर पत्थर, छड़ियाँ ही नहीं, बल्कि मैला तक फेंकते हैं, लेकिन सेंटिनो अपनी चालों की अग्रिम योजनाएँ बनाया करता था। सुबह के समय, चिड़ियाघर खुलने से भी पहले, सेंटिनो ग़ुस्से का कोई स्पष्ट संकेत दिए बिना फेंकने वाली चीज़ों को इकट्ठा करता और उनका ढेर लगा लेता। गाइड और दर्शक जल्दी ही सेंटिनो से चौकन्ना रहने लगे, ख़ासतौर से तब, जब वह

पत्थरों के अपने ढेर के क़रीब खड़ा होता था। इसलिए अपने निशाने हासिल करने के मामले में उसकी मुश्किलें लगातार बढ़ती गईं।

मई 2010 में सेंटिनो ने जवाब में एक नई युक्ति ढूँढ निकाली। एकदम सुबह-सुबह उसने अपने सोने की जगह से तिनकों के ढेर को उठाया और उनको अपने अहाते की उस दीवार के क़रीब रख लिया, जहाँ आमतौर से दर्शक चिम्पांज़ियों को देखने के लिए जमा होते थे, फिर उसने पत्थर इकट्ठे किए और उनको तिनकों के ढेर के नीचे छिपा दिया। एकाध घण्टे बाद, जब दर्शकों का पहला समूह वहाँ पहुँचा, तो सेंटिनो एकदम शान्त बना रहा, उसने चिढ़े होने या आक्रामकता का कोई संकेत नहीं दिया। सिर्फ़ जब उसके शिकार उसकी ज़द में पहुँचे, तब जाकर सेंटिनो ने अचानक छिपा कर रखे हुए पत्थर उठाए और भयभीत इंसानों पर उनकी बौछार शुरू कर दी, जो चारों तरफ़ भाग खड़े हुए। 2012 में सेंटिनो ने हथियारों की इस दौड़ को गति देते हुए पत्थरों को न सिर्फ़ तिनकों के ढेर के तले, बल्कि पेड़ों के तनों, इमारती ढाँचों और छिपाने लायक़ किन्हीं भी दूसरी जगहों पर जमा करना शुरू कर दिया।

तब भी सेंटिनो सन्देहवादियों को सन्तुष्ट नहीं कर पाता। हम किस तरह पक्के तौर पर यह कह सकते हैं कि सुबह 7 बजे जब सेंटिनो यहाँ-वहाँ पत्थर छिपाता फिरता है, तब वह कल्पना कर रहा होता है कि उन पत्थरों को दोपहर में इंसानों पर फेंकने में कितना मज़ा आएगा? क्या यह मुमकिन नहीं कि सेंटिनो किसी चेतना-हीन ऐल्गरिदम से परिचालित होता हो, उस गिलहरी की ही तरह, जिसने भले ही कभी जाड़ों को महसूस न किया हो, तब भी वह 'जाड़ों के लिए' बीज जमा करती है?'

सन्देहवादी कहते हैं कि इसी तरह जब कोई नर चिम्पांज़ी अपने उस प्रतिद्वन्द्वी पर हमला करता है, जिसने उसको हफ़्तों पहले कभी चोट पहुँचाई होती है, तो वह वास्तव में पिछले अपमान का बदला नहीं ले रहा होता। वह महज़ एक क्षणिक ग़ुस्से पर प्रतिक्रिया कर रहा होता है, जिसकी वजह वह नहीं जानता। जब कोई हथिनी अपने बच्चे को शेर द्वारा डराए जाते देखती है, तो वह आगे भागकर अपने जीवन को इसलिए जोखिम में नहीं डालती कि उसे यह याद होता है कि वह उसका लाड़ला बच्चा है, जिसको वह महीनों से पाल-पोस रही है, इसकी बजाय वह शेर के प्रति दुश्मनी के किसी अज्ञेय बोध से परिचालित हो रही होती है। और जब कोई कुत्ता अपने मालिक को घर आया देखकर आनन्द से उछलने लगता है, तो वह कुत्ता उस आदमी को नहीं पहचान रहा होता है, जिसने उसको उसकी शैशवावस्था से खिलाया-पिलाया है और प्यार किया है। वह तो महज़ एक अव्याख्येय आह्लाद से भर उठा होता है।

हम इनमें से किसी भी दावे को न तो सही साबित कर सकते हैं, न नकार सकते हैं, क्योंकि ये दावे दरअसल अन्य के मानसों की समस्या के विभिन्न रूप हैं। चूँकि हम ऐसे

किसी भी ऐल्गरिदम से वाकिफ़ नहीं हैं, जिसके लिए चेतना की ज़रूरत पड़ती हो, इसलिए कोई पशु जो कुछ भी करता है, उसको सचेतन स्मृतियों और योजनाओं की बजाय चेतना-हीन ऐल्गरिदमों के उत्पाद के रूप में देखा जा सकता है। इसलिए सेंटिनो के मामले में भी असल सवाल सिद्ध किए जाने की ज़िम्मेदारी से ताल्लुक़ रखता है। सेंटिनो के व्यवहार की सर्वाधिक सम्भावित व्याख्या क्या है? क्या हमें यह मानना चाहिए कि वह सचेतन ढंग से भविष्य की योजना बना रहा होता है, और जो व्यक्ति इस बात से असहमत हो, उसको इसके विरुद्ध कोई सबूत पेश करना चाहिए? या इस तरह सोचना ज़्यादा तर्कसंगत है कि वह चिम्पांज़ी किसी चेतना-हीन ऐल्गरिदम से परिचालित होता है, और चेतन रूप से जो कुछ महसूस करता है, वह तिनकों के ढेर के तले पत्थर छिपाने की कोई रहस्यमयी इच्छा मात्र है? और अगर सेंटिनो अतीत को याद नहीं करता और भविष्य की कल्पना नहीं करता, तो क्या इसका मतलब यह है कि उसमें आत्म-चेतना का अभाव है? आख़िरकार, हम मनुष्यों को तब भी आत्म-चेतन मानते हैं, जब वे अतीत को याद करने या भविष्य के बारे में सपना देखने में व्यस्त नहीं होते। उदाहरण के लिए, जब एक इंसानी माँ अपने नन्हे बच्चे को व्यस्त सड़क पर भटकता हुआ देखती है, तो वह अतीत या भविष्य के बारे में विचार करने के लिए नहीं ठहरती। ठीक उस हथिनी माँ की तरह, वह भी महज़ अपने बच्चे को बचाने के लिए भागती है। जो बात हम इस इंसानी बच्चे की माँ के बारे में कहते हैं, वही हम हथिनी के बारे में क्यों नहीं कहते, यानी यह कि 'जब माँ अपने बच्चे को नज़दीक आते ख़तरे से बचाने के लिए भागी थी, तो ऐसा उसने बिना किसी आत्मचेतना के किया था? वह महज़ एक क्षणिक प्रेरणा से परिचालित थी'?

इसी तरह, इन चीज़ों पर विचार करें: एक नौजवान युगल अपनी पहली मुलाक़ात के दौरान पूरे आवेग से भरकर चुम्बन ले रहा है, एक सैनिक अपने घायल साथी को बचाने के लिए दुश्मन की ओर से जारी भारी गोलाबारी के बीच तेज़ी-से भाग रहा है, या एक कलाकार उन्मत्त ढंग से अपनी कूँची चलाता हुआ अपनी अद्भुत कलाकृति उकेर रहा है। इनमें से कोई भी अतीत या भविष्य पर विचार करने के लिए नहीं ठहरता। क्या इसका यह अर्थ है कि उनमें आत्म-चेतना का अभाव है, और यह कि उनकी वह अवस्था उस राजनेता की अपेक्षा हीन है, जो अपनी अतीत की उपलब्धियों और भविष्य की योजनाओं के बारे में चुनावी भाषण दे रहा है?

चतुर घोड़ा

2010 में वैज्ञानिकों ने चूहों पर एक असामान्य रूप से मार्मिक प्रयोग किया था। वे एक चुहिया को एक छोटे-से पिंजरे में बन्द कर देते, पिंजरे को एक ज़्यादा बड़ी कोठरी में रख देते और एक अन्य चुहिया को उस कोठरी में मुक्त चलने-फिरने के लिए छोड़ देते। पिंजरे

में बन्द चुहिया क्लेश के संकेत देती, जिनकी वजह से आज़ाद चुहिया भी बेचैनी और क्लेश के लक्षण प्रदर्शित करती। ज़्यादातर मामलों में आज़ाद चुहिया पिंजरे में बन्द अपनी साथी की मदद के लिए आगे बढ़ी, और कई कोशिषों के बाद सामान्यतः पिंजरे को खोलने और क़ैदी को आज़ाद करने में कामयाब रही। शोधकर्ताओं ने इसके बाद इस प्रयोग को दोहराया, और इस बार कोठरी में चॉकलेट रख दी। आज़ाद चुहिया के सामने अब दो विकल्प थे: वह या तो क़ैद चुहिया को आज़ाद कराती या अकेली चॉकलेट का लुत्फ़ लेती। ज़्यादातर चुहियाओं ने पहले अपनी साथी को आज़ाद करने और फिर मिल-बाँटकर चॉकलेट खाने को प्राथमिकता दी (हालाँकि कुछेक चुहियाओं ने ज़्यादा स्वार्थीपन का परिचय दिया, जो शायद यह साबित करता है कि कुछ चूहे दूसरे चूहों के मुक़ाबले निकृष्ट होते हैं)।

सन्देहवादियों ने इन नतीजों को यह तर्क देते हुए ख़ारिज़ कर दिया कि आज़ाद चुहिया ने क़ैद चुहिया को हमदर्दी के चलते नहीं, बल्कि क्लेश के संकेतों से तंग आकर आज़ाद किया था। चुहिया उन अप्रिय अनुभूतियों से प्रेरित थी, जिनको वे महसूस कर रही थी, और उन्होंने इन अनुभूतियों से छुटकारा पाने से ज़्यादा किसी महान चीज़ की कोशिश नहीं की थी। मुमकिन है, लेकिन हम ठीक यही बात हम मनुष्यों के बारे में भी तो कह सकते हैं। जब मैं किसी भिखारी को भीख के तौर पर पैसे देता हूँ, तो क्या मैं उस अप्रिय अनुभूति पर प्रतिक्रिया नहीं कर रहा होता हूँ, जो उस भिखारी के कारण मेरे मन में जाग रही होती है? क्या मुझे वास्तव में उस भिखारी की फ़िक्र होती है, या मैं महज़ ख़ुद अच्छा महसूस करना चाहता हूँ?

सार रूप में, हम मनुष्य चूहों, कुत्तों, डॉल्फिनों या चिम्पांज़ियों से भिन्न नहीं हैं। उनकी ही तरह हमारी भी कोई आत्माएँ नहीं हैं। हमारी तरह उनमें भी चेतना है और अनुभूतियों तथा भावनाओं की एक जटिल दुनिया है। बेशक, हर प्राणी के अपने विशिष्ट लक्षण और प्रतिभाएँ होती हैं। मनुष्यों में भी कुछ ख़ास प्रतिभाएँ हैं। यह कल्पना करते हुए कि वे हमारे ही रोमिल संस्करण हैं, हमें पशुओं का अनावश्यक रूप से मानवीकरण नहीं करना चाहिए। यह केवल भद्दा विज्ञान भर नहीं है, बल्कि यह हमें दूसरे प्राणियों को उनकी शर्तों पर समझने और परखने से भी रोकता है।

1900 के दशक के शुरुआती दौर में क्लेवर हांस नामक एक घोड़ा जर्मनी का मशहूर प्राणी बन गया था। जर्मनी के नगरों और गाँवों का भ्रमण करते हुए हांस ने जर्मन भाषा पर अपनी ज़बरदस्त पकड़, और उससे भी ज़्यादा गणित के मामले में अपनी ज़बरदस्त दक्षता का परिचय दिया था। जब पूछा गया कि 'हांस, चार गुणा तीन कितना होता है?', तो हांस ने बारह बार अपने खुर पटके। जब उसको एक लिखित इबारत दिखाते हुए उससे पूछा

गया, ‘बीस से ग्यारह घटाने पर कितना बचता है?’ तो हांस ने सराहनीय प्रशियाई स्पष्टता के साथ नौ बार अपने खुर पटके।

1904 में जर्मनी के शिक्षा मण्डल ने इस मामले को परखने के लिए एक मनोवैज्ञानिक की अध्यक्षता में विशेष वैज्ञानिक आयोग नियुक्त किया। आयोग के तेरह सदस्यों में एक सर्कस मैनेजर और एक पशु-चिकित्सक भी शामिल थे, उनका विश्वास था कि यह एक धोखाधड़ी है, लेकिन अपनी श्रेष्ठतम कोशिषों के बावजूद वे किसी षड्यन्त्र या चालबाज़ी का भण्डाफोड़ नहीं कर सके। यहाँ तक कि जब हांस को उसके मालिक से अलग कर दिया गया, और सर्वथा अजनबियों ने उसके सामने सवाल रखे, तब भी हांस ने ज़्यादातर सवालों के सही जवाब दिए।

1907 में मनोवैज्ञानिक ऑस्कर पीफंग्स्ट ने एक और जाँच की शुरुआत की जिसने अन्ततः सच्चाई को उजागर किया। पता चला कि हांस को अपने सवाल पूछने वालों की भाव-भंगिमाओं का सावधानी के साथ अवलोकन करने के चलते सही जवाब सूझ जाया करते थे। जब हांस से पूछा गया था कि चार गुना तीन कितने होते हैं, तो वह अपने पिछले अनुभव से यह बात समझ गया था कि वह आदमी उससे एक निश्चित संख्या में खुर पटकने की उम्मीद कर रहा था। उसने उस आदमी को ध्यान से देखते हुए खुर पटकना शुरू किया। जैसे-जैसे हांस खुरों की ठीक संख्या के क़रीब पहुँचता गया, वैसे-वैसे उस आदमी का तनाव बढ़ता गया, और जब हांस ने एकदम सही संख्या तक खुर पटक दिए, तो आदमी का तनाव पराकाष्ठा पर पहुँच गया। हांस जानता था कि इस चीज़ को आदमी के शरीर की भंगिमा और चेहरे की मुद्राओं से कैसे पहचाना जाए। इसके बाद उसने खुर पटकना बन्द कर दिया और देखा कि किस तरह तनाव की जगह आश्चर्य और हँसी ने ले ली। हांस जानता था कि उसने वह काम ठीक से किया था।

चतुर हांस को अक्सर इस बात के एक उदाहरण के रूप में पेश किया जाता है कि मनुष्य किस तरह पशुओं को उनकी वास्तविक क्षमताओं से ज़्यादा विस्मयकारी क्षमताओं का श्रेय देते हुए उनका ग़लत ढंग से मानवीकरण करते हैं, हालाँकि दरअसल इससे मिलने वाली सीख इसके ठीक उलट है। यह कहानी दर्शाती है कि पशुओं का मानवीकरण करते हुए हम आमतौर से पशु के अभिज्ञान को कम करके *आँकते* हैं और अन्य प्राणियों की विशिष्ट क्षमताओं की उपेक्षा करते हैं। जहाँ तक गणित का सवाल है, हांस कोई जीनियस नहीं था। कोई भी आठ साल का बच्चा इससे बेहतर कर सकता है, लेकिन भाव-भंगिमाओं से भावनाओं और इरादों का पता लगा लेने की अपनी क़ाबिलियत में हांस सचमुच एक जीनियस था। अगर मेंडरिन में किसी चीनी व्यक्ति ने मुझसे पूछा होता कि चार गुना तीन कितना होता है, तो मैं किसी भी हालत में महज़ उसके चेहरे के भावों और शरीर की मुद्राओं को पढ़कर एकदम सही-सही ढंग से बारह बार अपने पैर न पटक पाता। चतुर हांस

इस क़ाबिलियत का परिचय इसलिए दे सका, क्योंकि घोड़े सामान्यतः अपनी शारीरिक मुद्राओं की मार्फ़त ही आपस में संवाद करते हैं, लेकिन हांस के मामले में जो बात विशेष उल्लेखनीय है, वह यह कि वह इस पद्धति का इस्तेमाल न सिर्फ़ अपने साथी घोड़ों की, बल्कि अपरिचित इंसानों की भावनाओं और इरादों को पढ़ने के लिए भी कर सका।
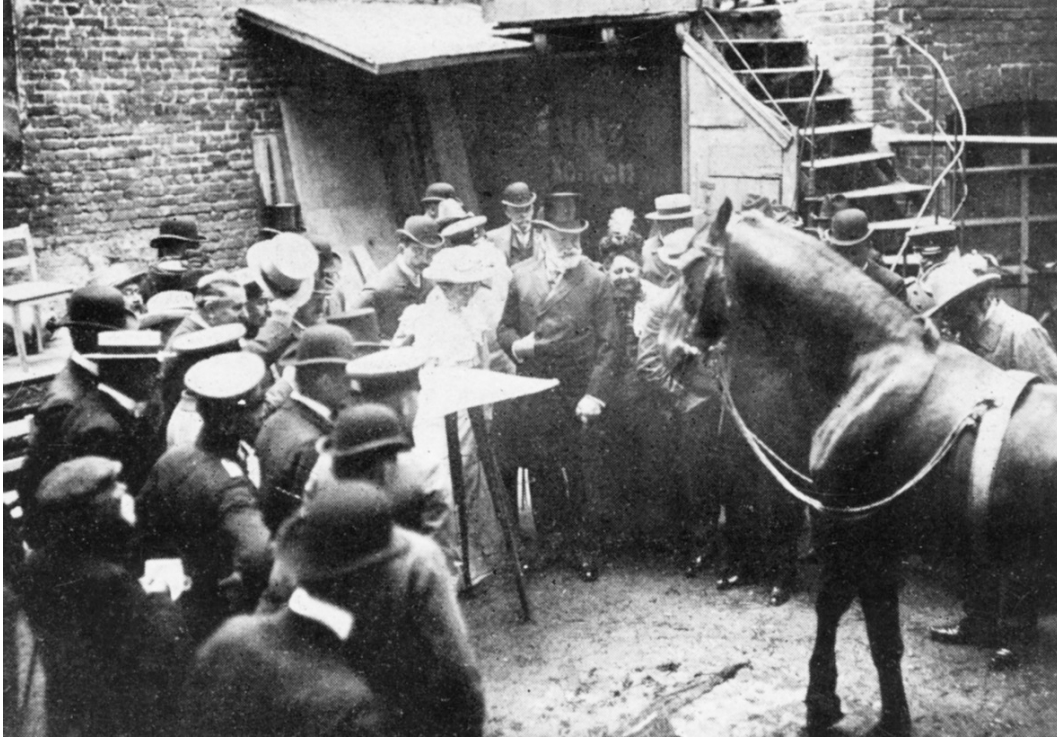
17. 1904 में चतुर हांस मंच पर।

अगर जानवर इतने चतुर होते हैं, तो फिर घोड़े इंसानों को गाड़ियों में क्यों नहीं जोतते, चूहे हम पर प्रयोग क्यों नहीं करते, और डॉल्फ़िन मछलियाँ हमें छल्लों में से क्यों नहीं कुदातीं? *होमो सेपियन्स* में निश्चय ही कुछ ऐसी अनूठी क़ाबिलियतें हैं, जो उसको तमाम दूसरे प्राणियों पर वर्चस्व क़ायम करने में सक्षम बनाती हैं। इस अतिरंजित धारणा को ख़ारिज़ कर चुकने के बाद कि *होमो सेपियन्स* का अस्तित्व दूसरे प्राणियों से नितान्त भिन्न स्तर पर है, या मनुष्य आत्मा अथवा चेतना जैसा कोई अनूठा सत्त्व धारण करते हैं, अब हम अन्ततः यथार्थ के धरातल पर वापस उतर सकते हैं और उन विशेष भौतिक तथा मानसिक क़ाबिलियतों का परीक्षण कर सकते है, जो हमारी प्रजाति को विशिष्ट स्थिति प्रदान करती है।

ज़्यादातर अध्ययन औज़ारों के उत्पादन और बुद्धिमत्ता को ख़ासतौर से महत्त्वपूर्ण मानते हुए इन चीज़ों का मानव जाति के उत्थान के सन्दर्भ में हवाला देते हैं, हालाँकि दूसरे

प्राणी भी औज़ार तैयार करते हैं, लेकिन इसमें लगभग कोई सन्देह नहीं कि मनुष्य इस क्षेत्र में उनको बहुत पीछे छोड़ देते हैं। जहाँ तक बुद्धिमत्ता का सवाल है, स्थितियाँ किंचित कम स्पष्ट हैं। बुद्धिमत्ता को परिभाषित करने और मापने के लिए एक समूचा उद्योग समर्पित है, लेकिन वह किसी सहमति पर पहुँचने से कोसों दूर है। क़िस्मत से, हमें उस सुरंग में घुसने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी, क्योंकि आप बुद्धिमत्ता को जिस किसी भी रूप में परिभाषित करते हों, यह बात एकदम साफ़ है कि दुनिया पर सेपियन्स की फ़तह के लिए न तो बुद्धिमत्ता ज़िम्मेदार है और न औज़ारों का निर्माण। बुद्धिमत्ता की ज़्यादातर परिभाषाओं के मुताबिक़ दस लाख साल पहले ही मनुष्य सबसे ज़्यादा बुद्धिमान प्राणी, और दुनिया के अव्वल दर्ज़े के औज़ार-निर्माता हुआ करते थे, तब भी वे मामूली प्राणी बने रहे, जिनका अपनी आस-पास की पारिस्थितिकी पर कोई ख़ास प्रभाव नहीं था। ज़ाहिर है, उनमें बुद्धिमत्ता और औज़ार-निर्माण से इतर केन्द्रीय महत्त्व की किसी चीज़ की कमी थी।

क्या मानव जाति ने अन्ततः इस ग्रह पर अपना वर्चस्व केन्द्रीय महत्त्व के किसी तीसरे मायावी उपादान की वजह से नहीं, बल्कि महज़ और भी ज़्यादा बुद्धिमत्ता तथा औज़ार-निर्माण की और भी बेहतर क़ाबिलियतों के विकसित होने की वजह से किया? ऐसा लगता नहीं, क्योंकि ऐतिहासिक उपलब्धियों का परीक्षण करने पर, हमें स्वतन्त्र रूप में मनुष्यों की बुद्धिमत्ता तथा औज़ार-निर्माण की क़ाबिलियतों और समग्र तौर पर हमारी प्रजाति की शक्ति के बीच कोई सीधा सम्बन्ध दिखाई नहीं देता। बीस हज़ार साल पहले के औसत सेपियनों में शायद आज के औसत सेपियनों के मुक़ाबले कहीं ज़्यादा बुद्धिमत्ता और औज़ार-निर्माण की बेहतर दक्षताएँ हुआ करती थीं। आधुनिक स्कूल और रोज़गार देने वाले भले ही समय-समय पर हमारी प्रतिभाओं का परीक्षण करते रहते हां, लेकिन हम चाहे कितने ही कमतर साबित क्यों न होते हों, कल्याणकारी राज्य हमेशा हमारी बुनियादी ज़रूरतों की गारंटी लिए रहता है। पाषाण युग में प्राकृतिक वरण हर दिन हर क्षण आपकी परीक्षा लेता था, और अगर आप उसके असंख्य परीक्षणों में से किसी भी परीक्षण पर खरे नहीं उतरते थे, तो आप तत्काल मर कर सीधे क़ब्र में पहुँच जाते थे, लेकिन पाषाण युग के हमारे पूर्वजों की औज़ार बनाने की श्रेष्ठतम क़ाबिलियतों के बावजूद और उनकी कुशाग्र बुद्धि तथा पैनी इन्द्रियों के बावजूद 20,000 साल पहले मानव जाति आज के मुक़ाबले बहुत-बहुत ज़्यादा कमज़ोर थी।

इन 20,000 सालों के दौरान मानव जाति पत्थर की नोक वाले भालों से मैमथ का शिकार करने से लेकर अन्तरिक्ष यानों की मदद से सौरमण्डल की छानबीन करने तक की यात्रा कर चुकी है, तो इसलिए नहीं कि उसने इस बीच कहीं ज़्यादा दक्ष हाथ या ज़्यादा बड़े मस्तिष्क विकसित कर लिए हैं (आज हमारे मस्तिष्क दरअसल पहले के मुक़ाबले छोटे प्रतीत होते हैं)। इसकी बजाय दुनिया पर हमारी फ़तह के पीछे निर्णायक कारक बहुत-से

मनुष्यों को एक-दूसरे से जोड़ने की हमारी क़ाबिलियत रही है। आज मनुष्यों का इस ग्रह पर सम्पूर्ण वर्चस्व इसलिए नहीं है कि अलग-अलग व्यक्ति अलग-अलग चिम्पांज़ियों या भेड़ियों के मुक़ाबले बहुत ज़्यादा चतुर हैं और उनकी अंगुलियाँ ज़्यादा फुर्तीली हैं, बल्कि इसलिए है क्योंकि *होमो सेपियन्य* पृथ्वी पर एकमात्र ऐसी प्रजाति है, जो बड़ी तादाद में लचीले ढंग से आपसी सहयोग करने में सक्षम है। बुद्धिमत्ता और औज़ार तैयार करने की दक्षता भी ज़ाहिर है बहुत महत्त्वपूर्ण चीजें थीं, लेकिन अगर इंसानों ने बड़ी संख्या में आपसी सहयोग करना न सीखा होता, तो हमारे चतुर दिमाग़ और फुर्तीले हाथ यूरेनियम के अणुओं को तोड़ने की बजाय अभी भी चकमक पत्थर तोड़ रहे होते।

अगर आपसी सहयोग केन्द्रीय महत्त्व की चीज़ है, तो फिर चीटियाँ और मधुमक्खियाँ हमसे लाखों साल पहले सामूहिक रूप से आपसी सहकार सीख चुकने के बावजूद परमाणु बम बनाने के मामले में हमें पीछे क्यों नहीं छोड़ सकीं? इसलिए क्योंकि उनके आपसी सहकार में लचीलेपन का अभाव होता है। मधुमक्खियाँ बहुत बेहतरीन तरीक़े से आपसी सहयोग करती हैं, लेकिन वे अपनी सामाजिक व्यवस्था को रातों-रात नए सिरे से नहीं गढ़ सकतीं। अगर मधुमक्खियों के किसी झुण्ड के सामने कोई नया संकट खड़ा हो जाता है या उसको कोई नया अवसर दिखाई देता है, तो मधुमक्खियाँ, उदाहरण के लिए, रानी का सिर क़लम करके गणतन्त्र की स्थापना नहीं कर सकतीं।

हाथियों और चिम्पांज़ियों जैसे स्तनधारी सामाजिक प्राणी आपसी सहयोग करने के मामले में मधुमक्खियों की तुलना में कहीं ज़्यादा लचीले होते हैं, लेकिन यह आपसी सहयोग वे साथियों और परिवार के सदस्यों की बहुत थोड़ी-सी संख्या में करते हैं। उनका सहयोग निजी जान पहचान पर आधारित होता है। अगर मैं एक चिम्पांज़ी हूँ और आप एक चिम्पांज़ी हैं और मैं आपके साथ मिल-जुलकर कुछ करना चाहता हूँ, तो मेरा आपके साथ व्यक्तिगत परिचय होना ज़रूरी है: आप किस तरह के चिम्पांज़ी हैं? क्या आप एक भले चिम्पांज़ी हैं? क्या आप एक बुरे चिम्पांज़ी हैं? अगर मैं आपको नहीं जानता, तो फिर मैं आपके साथ सहयोग कैसे कर सकता हूँ? हमारी श्रेष्ठतम जानकारी के मुताबिक़, सिर्फ़ सेपियन्स ही असंख्य अजनबियों के साथ बेहद लचीले ढंग से आपसी सहयोग कर सकते हैं। यह ठोस सामर्थ्य, न कि कोई अमर आत्मा या कोई अनूठे क़िस्म की चेतना ही पृथ्वी पर हमारे प्रभुत्व को स्पष्ट करती है।

क्रान्ति ज़िन्दाबाद!

इतिहास बड़े पैमाने के आपसी सहयोग के भरपूर उदाहरण पेश करता है। *होमो सेपियन्स* और प्राणियों के बीच संघर्ष के मामले में ही नहीं, बल्कि इंसानों के विभिन्न समूहों के बीच हुए टकरावों के मामले में भी जिन लोगों ने बेहतर ढंग से आपसी सहयोग किया, उनकी

जीत लगभग निरपवाद रूप से हुई। रोम ने ग्रीस पर इसलिए विजय नहीं पाई थी कि रोमनों के पास बड़े मस्तिष्क और औज़ार-निर्माण की बेहतर तकनीकें थीं, बल्कि इसलिए कि उनमें कहीं ज़्यादा कारगर तरीक़े से आपसी सहयोग करने की क़ाबिलियत थी। समूचे इतिहास के दौरान अनुशासित सेनाओं ने असंगठित फ़ौजों को आसानी से खदेड़ दिया, और संगठित अभिजात वर्ग ने बिखरे हुए जन-समूहों पर वर्चस्व क़ायम किया। उदाहरण के लिए, 1914 में 30 लाख रूसी कुलीनों, अधिकारियों और व्यापारियों ने 18 करोड़ किसानों और कामगारों पर रौब जमा लिया। रूस का अभिजात वर्ग जानता था कि अपने साझा हितों के बचाव के लिए किस तरह आपसी सहयोग किया जाए, जबकि 18 करोड़ सामान्य जनता कारगर लामबन्दी करने में अक्षम थी। दरअसल, अभिजात वर्ग की ज़्यादातर कोशिशें इस बात को सुनिश्चित करने पर एकाग्र थीं कि नीचे के वे 18 करोड़ लोग कभी आपस में सहयोग करना न सीख सकें।

कोई क्रान्ति करने के लिए लोगों की संख्या भर कभी पर्याप्त नहीं होती। क्रान्तियों की रचना आमतौर से विशाल जन-समूह की बजाय आन्दोलनकारियों के छोटे-छोटे समूहों से होती है। अगर आप किसी क्रान्ति का आगाज़ करना चाहते हैं, तो ख़ुद से यह मत पूछिए कि 'कितने लोग हैं, जो मेरे विचारों का समर्थन करते हैं?' इसकी बजाय ख़ुद से यह पूछिए कि 'मेरे कितने समर्थक कारगर ढंग से आपसी सहयोग करने में सक्षम हैं?' अन्ततः रूसी क्रान्ति का विस्फोट ज़ार के ख़िलाफ़ 18 करोड़ किसानों के उठ खड़े होने से नहीं हुआ था, बल्कि तब हुआ था, जब मुट्ठीभर कम्युनिस्टों ने ख़ुद को सही समय पर सही स्थिति में रखा था। 1917 की शुरुआत में, उस वक़्त जब रूस के उच्च और मध्यवर्ग के लोगों की संख्या कम से कम 30 लाख थी, तब लेनिन के बोल्शेविक घड़े (जो बाद में कम्युनिस्ट पार्टी बना) में मात्र 23,000 सदस्य थे। जब भी कम्युनिस्टों ने विशाल रूसी साम्राज्य पर इसलिए नियन्त्रण हासिल कर लिया था, क्योंकि उन्होंने ख़ुद को अच्छी तरह से संगठित किया था। जब रूस की सत्ता ज़ार के कमज़ोर हाथों और केरेन्स्की की अस्थायी सरकार के उतने ही काँपते हाथों से फिसली, तो कम्युनिस्टों ने उसको फुर्ती से लपक लिया, और सत्ता की बागडोर को हड्डी पर अपने जबड़ों की पकड़ बनाते किसी बुलडॉग की भाँति जकड़ लिया।

कम्युनिस्टों ने 1980 के दशक के अन्तिम वर्षों तक अपनी पकड़ ढीली नहीं की। प्रभावशाली संगठन ने उनको सात दशकों से भी ज़्यादा समय तक सत्ता में बनाए रखा, और अन्ततः दोषपूर्ण संगठन की वजह से ही उनका पतन हुआ। 21 दिसम्बर, 1989 को रोमानिया के कम्युनिस्ट तानाशाह निकोलाई चाउसेस्कु ने बुखारेस्ट के मध्य में समर्थन का एक सामूहिक प्रदर्शन आयोजित किया। पिछले कुछ महीनों के दौरान सोवियत यूनियन ने पूर्वी यूरोपीय कम्युनिस्ट सरकारों से अपना समर्थन वापस ले लिया था, बर्लिन की दीवार ढह चुकी थी, और पोलैंड, पूर्वी जर्मनी, हंगरी, बुल्गारिया तथा चेकोस्लोवाकिया में

क्रान्तियाँ छा चुकी थीं। चाउसेस्कु रोमानिया पर 1965 से हुकूमत कर रहा था, उसको विश्वास था कि वह इस सुनामी को झेल जाएगा, बावजूद इसके कि 17 दिसम्बर को तिमिसोरा नामक रोमानियाई नगर में उसकी हुकूमत के ख़िलाफ़ दंगे भड़क उठे थे। अपने बचाव के लिए बरती गई सावधानी के तौर पर चाउसेस्कु ने बुखारेस्ट में एक विशाल रैली का आयोजन किया, जिसका उद्देश्य रोमानियाइयों तथा बाक़ी दुनिया के सामने यह साबित करना था कि आबादी का बहुसंख्यक हिस्सा अभी भी उससे प्रेम करता है या कम से कम उससे डरता तो है ही। पार्टी के चरमराते संगठन ने नगर के मध्य स्थित चौक को भर देने के लिए 80,000 लोगों को लामबन्द किया और तमाम रोमानियाई नागरिकों को अपनी गतिविधियाँ रोक देने तथा इस रैली का आँखों देखा हाल जानने के लिए अपने-अपने रेडियो और टेलिविज़न चालू रखने के निर्देश दिए गए।

उत्साह से भरी प्रतीत होती भीड़ को ख़ुश करने के लिए चाउसेस्कु चौक के सामने की बालकनी पर सवार हो गया, जैसा कि वह पिछले दशकों में सैकड़ों बार कर चुका था। अपनी बीवी एलेना तथा पार्टी के प्रमुख अधिकारियों और अंगरक्षकों से दोनों ओर से घिरे चाउसेस्कु ने अपना चिर-परिचित नीरस भाषण देना शुरू किया। भीड़ को यान्त्रिक ढंग से तालियाँ बजाते देख वह बहुत आत्मतुष्ट दिखाई दे रहा था, लेकिन तभी कुछ गड़बड़ हुई। आप इस दृश्य को ख़ुद ही यू ट्यूब पर देख सकते हैं। सिर्फ़ 'Ceauşescu' last speech' को सर्च करें और अपनी आँखों से ख़ुद ही इतिहास को घटित हुए देखें।

यू ट्यूब की यह क्लिप चाउसेस्कु को एक और लम्बे वाक्य के साथ शुरुआत करते दर्शाती है, जिसमें कहा गया है कि 'मैं बुखारेस्ट में इस विशाल कार्यक्रम की पहल करने वालों और उसे आयोजित करने वालों को धन्यवाद देना चाहता हूँ, यह मानकर कि यह आयोजन एक -' और फिर वह ख़ामोश हो जाता है, उसकी आँखें फटी रह जाती हैं, और वह मारे अविश्वास के अपनी जगह पर जमकर रह जाता है। वह अपने उस वाक्य को कभी पूरा नहीं कर पाया। आप पल भर में ही देख सकते हैं कि कैसे एक समूची दुनिया ढह जाती है। श्रोताओं के बीच से कोई व्यक्ति छी-छी चिल्ला उठा, फिर कोई और छी-छी करके चिल्लाया, फिर कोई और, और कुछ ही पलों के भीतर भीड़ ने सीटियाँ बजाना, गालियाँ बकना और 'ति-मि-सोआ-रा! ति-मि-सोआ-रा!' की पुकारें लगाना शुरू कर दिया।

18. वह पल, जब दुनिया ढह जाती है: भौंचक चाउसेस्कु अपनी आँखों और कानों पर विश्वास नहीं कर सका।

यह सब रोमानियाई टेलिविज़न पर सीधे प्रसारित हुआ, जिसे तीन-चौथाई आबादी टेलिविज़न स्क्रीनों पर आँखें गड़ाए देख रही थी, और उनके दिल तेज़ी-से धड़क रहे थे। कुख्यात ख़ुफ़िया पुलिस - सिक्यूरिटेट - ने तत्काल प्रसारण बन्द करने का आदेश दिया, लेकिन टेलिविज़न कर्मचारियों की टोलियों ने इस हुक्म की नाफ़रमानी की, और प्रसारण सिर्फ़ थोड़ी देर के लिए ही रुका रहा। कैमरे वाले ने कैमरे का रुख़ आसमान की तरफ़ कर दिया, ताकि दर्शक बालकनी में खड़े नेताओं के बीच फैले आतंक को न देख सकें, लेकिन साउंडमैन ने रिकॉर्डिंग जारी रखी, और तकनीशियनों ने मिनट भर से कुछ ही ज़्यादा देर रुकने के बाद प्रसारण करना जारी रखा। वहाँ भीड़ छी-छी चिल्ला रही थी और इधर चाउसेस्कु 'हेलो! हेलो! हेलो! चिल्लाए जा रहा था, जैसे समस्या माइक्रोफ़ोन को लेकर हो। उसकी बीवी एलेना ने दर्शकों को कोसना शुरू कर दिया, 'ख़ामोश रहो! ख़ामोश रहो!' लेकिन चाउसेस्कु मुड़ा और उस पर चिल्लाया, जिसे सब सुन रहे थे, 'तुम चुप रहो!' इसके बाद चाउसेस्कु ने चौक में जमा उत्तेजित भीड़ से अपील करते हुए उनसे याचना की, 'कॉमरेड्स! कॉमरेड्स! शान्त रहिए, कॉमरेड्स!'

लेकिन कॉमरेडों का शान्त रहने का कोई इरादा नहीं था। कम्युनिस्ट रोमानिया उस वक़्त चरमरा गया, जब बुखारेस्ट के सेंट्रल स्क्वेयर में जमा 80,000 लोगों को यह

अहसास हो गया कि वे बालकनी में खड़े फर का हैट पहने उस बूढ़े इंसान से ज़्यादा शक्तिशाली हैं, लेकिन चौंकाने वाली चीज़ वह घड़ी नहीं थी, जब व्यवस्था धराशायी हो रही थी, बल्कि यह तथ्य था कि वह व्यवस्था स्वयं को दशकों तक क़ायम रखने में कामयाब रही थी। क्रान्तियाँ इतनी दुर्लभ क्यों होती हैं? क्या वजह है कि जन-समुदाय सदियों तक तालियाँ बजाता रहता है और जय-जयकार करता रहता है, और बालकनी पर खड़े आदमी के एक-एक निर्देश का पालन करता रहता है, जबकि वे सिद्धान्ततः किसी भी क्षण आगे बढ़कर उस आदमी के टुकड़े-टुकड़े कर सकते हैं?

चाउसेस्कु और उसकी मण्डली ने 2 करोड़ रोमानियाइयों पर दशकों तक वर्चस्व क़ायम रखा, क्योंकि उन्होंने उन तीन अत्यन्त अनिवार्य परिस्थितियों को सुनिश्चित कर रखा था। पहली यह कि उन्होंने आपसी सहयोग के तमाम नेटवर्कों, जैसे कि सेना, ट्रेड यूनियन और खेल संघों तक को वफ़ादार अन्धभक्त कम्युनिस्टों के नियन्त्रण में रखा। दूसरी, उन्होंने किन्हीं भी ऐसे प्रतिद्वन्द्वी संगठनों - राजनैतिक, आर्थिक या सामाजिक कैसे भी संगठनों - को तैयार नहीं होने दिया, जो कम्युनिस्ट-विरोधी सहकार के आधार के रूप में काम कर सकते। तीसरी, उन्होंने सोवियत यूनियन और पूर्वी यूरोप की अपनी ही तरह की कम्युनिस्ट पार्टियों के समर्थन पर भरोसा किया। कभी-कभार उभरने वाले तनावों के बावजूद, ये पार्टियाँ ज़रूरत के वक़्त पर एक दूसरे की मदद करती थीं, या कम से कम इस बात को सुनिश्चित करती थीं कि कोई भी बाहरी ताक़त इस समाजवादी स्वर्ग में दख़लन्दाज़ी न करे। इन परिस्थितियों के अधीन 2 करोड़ रोमानियाई, तमाम कठिनाइयों और हुक्मरान अभिजात वर्ग द्वारा पहुँचाई गई पीड़ाओं के बावजूद कोई प्रभावशाली विरोध खड़ा नहीं कर सके।

चाउसेस्कु तभी जाकर सत्ताच्युत हो सका, जब ये तीनों परिस्थितियाँ क़ायम नहीं रह गईं। 1980 के दशक के बाद के वर्षों में सोवियत संघ ने अपना संरक्षण वापस ले लिया और कम्युनिस्ट सरकारें पासों की तरह धड़धड़ा कर गिरने लगीं। दिसम्बर 1989 के आते-आते चाउसेस्कु किसी बाहरी सहयोग की उम्मीद करने की हालत में नहीं रह गया था। हालात इसके उलट थे। पास के मुल्कों में हो रही क्रान्तियों ने स्थानीय प्रतिपक्ष का हौसला बढ़ाया। स्वयं कम्युनिस्ट पार्टी प्रतिद्वन्द्वी खेमों में टूटने लगी थी। मध्यमार्गी समय रहते चाउसेस्कु से छुटकारा पाकर सुधारों की शुरुआत करना चाहते थे। बुखारेस्ट प्रदर्शन आयोजित करके और टेलिविज़न पर उसका सीधा प्रसारण करा कर चाउसेस्कु ने ख़ुद ही क्रान्तिकारियों को अपनी ताक़त को समझने और ख़ुद को उसके ख़िलाफ़ एकजुट करने का एकदम सही अवसर उपलब्ध करा दिया। टेलिविज़न पर क्रान्ति का प्रदर्शन करके उसका प्रसार करने से ज़्यादा फुर्तीला तरीक़ा और क्या हो सकता था?

लेकिन जब बालकनी में बैठे फूहड़ आयोजकों के हाथों से सत्ता फिसली, तो वह चौक में एकत्र जन-समुदाय के हाथ में नहीं पहुँची। भीड़ में भले ही असंख्य लोग थे और वे उत्साह से भरे थे, लेकिन वे ख़ुद को संगठित करना नहीं जानते थे। इसलिए ठीक जिस तरह 1917 में रूस में हुआ था, सत्ता राजनैतिक खिलाड़ियों के एक छोटे-से समूह के हाथ में पहुँच गई। रोमानियाई क्रान्ति का अपहरण उस स्व-घोषित नेशनल साल्वेशन फ्रंट द्वारा कर लिया गया, जो कि दरअसल कम्युनिस्ट पार्टी के मध्यमार्गी धड़े के लिए आड़ का काम करता था। प्रदर्शनकारी भीड़ के साथ फ्रंट का कोई रिश्ता नहीं था। इसमें पार्टी के मध्यम श्रेणी के अधिकारी शामिल थे, और इसका नेतृत्व कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय समिति के एक पूर्व सदस्य और उसके प्रचार विभाग के पूर्व अध्यक्ष इयॉन इलिएस्कू के हाथों में था। इलिएस्कू और नेशनल साल्वेशन फ्रंट के उसके साथियों ने स्वयं को नए सिरे से लोकतान्त्रिक राजनेताओं के रूप में गढ़ा, हर उपलब्ध माइक्रोफ़ोन पर ख़ुद को क्रान्ति के नेताओं के रूप में पेश किया, और फिर देश पर नियन्त्रण स्थापित करने तथा उसके संसाधनों को अपनी जेब के हवाले करने के लिए अपने लम्बे अनुभवों तथा अपने चमचों के तन्त्र का इस्तेमाल किया।

कम्युनिस्ट रोमानिया में लगभग हर चीज़ पर राज्य का स्वामित्व था। लोकतान्त्रिक रोमानिया ने फुर्ती से अपनी परिसम्पत्तियों का निजीकरण करते हुए उनको कम क़ीमतों पर उन पूर्व कम्युनिस्टों को बेच दिया, जो एकमात्र वे लोग थे, जो जानते थे कि क्या हो रहा था और एक-दूसरे की जेबें भरने में आपसी सहयोग कर रहे थे। जिन सरकारी कम्पनियों के नियन्त्रण में राष्ट्र की आधारभूत सुविधाएँ और प्राकृतिक संसाधन हुआ करते थे, उन कम्पनियों को पूर्व कम्युनिस्ट अधिकारियों को भारी कम क़ीमतों पर बेच दिया गया और पार्टी के पैदल सैनिकों ने मिट्टी के मोल मकान और अपार्टमेंट ख़रीद लिए।

इयॉन इलिएस्कू को रोमानिया का राष्ट्रपति चुन लिया गया, और उसके साथी मन्त्री, संसद सदस्य, बैंकों के डायरेक्टर और अरबपति बन गए। आज तक उस देश को नियन्त्रित करने वाले नए रोमानियाई कुलीन वर्ग में ज़्यादातर पूर्व कम्युनिस्ट और उनके परिवार शामिल हैं। जिस जन-समुदाय ने तिमिसोरा और बुखारेस्ट में अपनी ज़िन्दगियाँ दाँव पर लगाई थीं, उनको खुरचन से सन्तोष करना पड़ा, क्योंकि वे नहीं जानते थे कि आपस में सहयोग कैसे किया जाता है और ऐसा दक्ष संगठन कैसे खड़ा किया जा सकता था, जो उनके अपने हितों का ध्यान रख सकता।

यही नियति 2011 की मिस्र क्रान्ति की हुई थी। जो काम 1989 में टेलिविज़न ने किया था, वही 2011 में फेसबुक और ट्विटर ने किया। इस नए मीडिया ने जन-समुदाय को अपनी गतिविधियों के बीच समन्वय बैठाने में मदद की, जिसके नतीजे में हज़ारों लोग सही वक़्त पर सड़कों और चौराहों पर उमड़ पड़े और उन्होंने मुबारक का तख़्ता पलट

दिया, लेकिन 100,000 लोगों को तहरीर स्क्वेयर पर जमा कर लेना एक बात है, और राजनैतिक व्यवस्था पर पकड़ बनाना, सही पिछले कक्षों में जाकर सही लोगों से हाथ मिलाना और एक देश को प्रभावशाली ढंग से चलाना एकदम दूसरी बात है। नतीजतन, जब मुबारक ने सत्ता छोड़ी, तो वे प्रदर्शनकारी उस शून्य को नहीं भर सके। देश पर हुकूमत करने के लिए मिस्र में सिर्फ़ दो ही संस्थाएँ पर्याप्त रूप से संगठित थीं: सेना और मुस्लिम ब्रदरहुड। इसलिए क्रान्ति का अपहरण पहले इस ब्रदरहुड द्वारा किया गया, और अन्ततः सेना द्वारा।

रोमानिया के पूर्व कम्युनिस्ट और मिस्र के जनरल बुखारेस्ट और काहिरा के पुराने तानाशाहों या प्रदर्शनकारियों से ज़्यादा बुद्धिमान या फुर्तीले नहीं थे। उनकी श्रेष्ठता लचीले आपसी सहयोग में निहित थी। उन्होंने भीड़ के मुक़ाबले बेहतर ढंग से आपसी सहयोग किया था और वे संकीर्ण विचारों वाले चाउसेस्कु और मुबारक से कहीं ज़्यादा लचीलापन दर्शाने के इच्छुक थे।

काम-वासना और हिंसा के परे

अगर दुनिया पर सेपियन्स की हुकूमत इसलिए है, क्योंकि हम अकेले ऐसे प्राणी हैं, जो लचीले ढंग से और बड़ी संख्या में आपसी सहयोग कर सकते हैं, तो यह बात मनुष्यों की पवित्रता में हमारे विश्वास को कमज़ोर कर देती है। हम यह सोचने की ओर प्रवृत्त होते हैं कि हम विशिष्ट हैं, और तमाम तरह के विशेषाधिकारों के पात्र हैं। सबूत के तौर पर हम अपनी प्रजाति की विस्मयकारी उपलब्धियों का हवाला देते हैं: हमने पिरामिडों और ग्रेट वाल ऑफ़ चाइना का निर्माण किया, हमने एटमों और डीएनए अणुओं की संरचना को समझ लिया, हम दक्षिणी घ्रुव और चन्द्रमा तक पहुँच गए। अगर ये उपलब्धियाँ ऐसे किसी अनूठे सत्त्व - जैसे कि अमर आत्मा - का परिणाम होतीं, जो प्रत्येक मनुष्य में मौजूद है, तो इससे मानव जीवन की पवित्रता का कोई अर्थ निकलता, लेकिन चूँकि ये फ़तह दरअसल जन-समुदाय के आपसी सहयोग का नतीजा हैं, इसलिए यह बात समझ से परे है कि इनकी वजह से हमारे मन में अलग-अलग मनुष्यों के प्रति श्रद्धा क्यों जागनी चाहिए।

मधुमक्खियों के एक झुण्ड में एक अकेली तितली के मुक़ाबले ज़्यादा ताक़त होती है, लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि इसलिए मधुमक्खी एक तितली के मुक़ाबले ज़्यादा पवित्र होती है। रोमानिया की कम्युनिस्ट पार्टी ने सफलतापूर्वक असंगठित रोमन आबादी पर अपना वर्चस्व क़ायम कर लिया था। तब क्या इससे यह नतीजा निकलता है कि पार्टी के एक सदस्य का जीवन एक साधारण नागरिक से ज़्यादा पवित्र था? चिम्पांज़ियों के मुक़ाबले मनुष्य कहीं ज़्यादा प्रभावशाली ढंग से आपस में सहयोग करना जानते हैं, जिस

वजह से मनुष्य चन्द्रमा पर अन्तरिक्ष-यान भेज पाते हैं, जबकि चिम्पांज़ी चिड़ियाघर के दर्शकों पर पत्थर फेंकते हैं। क्या इसका यह मतलब है कि मनुष्य श्रेष्ठ प्राणी हैं?

मान लें कि ऐसा ही है। यह इस पर निर्भर करता है कि आख़िर मनुष्य इतनी अच्छी तरह से आपसी सहयोग कर ही क्यों पाते हैं। आख़िर मनुष्य ही क्यों इतनी विशाल और उन्नत सामाजिक व्यवस्थाएँ खड़ी कर सके? चिम्पांज़ियों, भेड़ियों और डॉल्फ़िनों जैसे ज़्यादातर स्तनधारी सामाजिक प्राणियों के बीच सामाजिक सहयोग आत्मीय परिचय पर निर्भर करता है। आम चिम्पांज़ियों में अलग-अलग चिम्पांज़ी साथ मिलकर सिर्फ़ तभी शिकार पर जाते हैं, जब वे एक-दूसरे को अच्छी तरह पहचानने लगे होते हैं और उनके बीच उच्च-निम्न का सामाजिक क्रम विकसित हो चुका होता है। इस तरह चिम्पांज़ी सामाजिक आदान-प्रदान और शक्ति-संघर्षों में अपना बहुत-सा समय ख़र्च करते हैं। जब अजनबी चिम्पांज़ी आपस में मिलते हैं, तो आमतौर से वे परस्पर सहयोग नहीं कर पाते, बल्कि एक-दूसरे पर चीख़ते हैं, एक-दूसरे से लड़ते हैं या जल्दी से जल्दी भाग जाते हैं।

बौने चिम्पांज़ियों- जो बोनोबो के नाम से भी जाने जाते हैं - के बीच स्थितियाँ थोड़ी अलग होती हैं। तनाव मिटाने और सामाजिक सम्बन्ध तैयार करने के लिए बोनोबो अक्सर रति-कर्म का इस्तेमाल करते हैं। आश्चर्य की बात नहीं कि इसीलिए समलैंगिक सम्भोग उनके बीच बहुत आम चीज़ है। जब बोनोबो के दो अजनबी समूह एक-दूसरे से मिलते हैं, तो वे भय और दुश्मनी का इज़हार करते हैं, और जंगल उनकी चीख़ों-पुकारों से भर उठता है, लेकिन जल्दी ही एक समूह की मादाएँ उस सरहद के अन्दर पहुँच जाती हैं, जिस पर किसी समूह का अधिकार नहीं होता और वहाँ पहुँचकर वे अजनबी चिम्पांज़ियों को लड़ने की बजाय सम्भोग करने के लिए आमन्त्रित करती हैं। इस निमन्त्रण को आमतौर से स्वीकार कर लिया जाता है, और कुछ ही मिनटों के भीतर सम्भावित युद्ध-क्षेत्र सम्भोग करते बोनोबो से भर जाता है, जो इस कृत्य के लिए लगभग उन तमाम तरह की मुद्राओं का प्रयोग करते हैं, जिनकी कल्पना की जा सकती है, जिनमें पेड़ों से उलटे लटककर सम्भोग करना तक शामिल होता है।

सेपियन्स आपसी सहयोग की इन युक्तियों से भलीभाँति परिचित हैं। वे भी कभी-कभी शक्ति के वैसे ही सोपानक्रम तैयार करते हैं, जो आम चिम्पांज़ियों के सोपानक्रमों जैसे होते हैं, जबकि दूसरे अवसरों पर वे बोनोबो की तरह रतिकर्म के माध्यम से सामाजिक सम्बन्ध तैयार करते हैं, लेकिन निजी परिचय - फिर वह आपस में लड़ने के लिए हो या या सम्भोग के लिए - बड़े पैमाने के आपसी सहयोग का आधार तैयार नहीं कर सकता। आप ग्रीक राजनेताओं और जर्मन बैंक-मालिकों को मुक्केबाज़ी या सामूहिक सम्भोग के लिए आमन्त्रित कर ग्रीक क़र्ज-संकट का समाधान नहीं कर सकते। अनुसन्धान दर्शाते हैं कि सेपियन्स 150 से ज़्यादा व्यक्तियों के साथ क़रीबी रिश्ता (वह रिश्ता चाहे दुश्मनी का हो

या इश्क़िया) नहीं बना सकते। व्यापक सामुदायिक सहयोग के तन्त्र खड़े करने में जो भी कोई चीज़ मनुष्यों को सक्षम बनाती हो, लेकिन वह क़रीबी रिश्ता नहीं है।

यह मनोवैज्ञानिकों, समाजशास्त्रियों, अर्थशास्त्रियों और उन अन्य लोगों के लिए एक बुरी ख़बर है, जो प्रयोगशालाओं की मार्फ़त मानव समाज का अर्थ समझने की कोशिश करते हैं। संगठनपरक और वित्तीय, दोनों ही वजहों से बहुत बड़ी तादाद में प्रयोग या तो व्यक्तियों पर किए जाते हैं या सहभागियों के छोटे-छोटे समूहों पर, लेकिन एक छोटे समूह के आचरण से व्यापक जन-समुदाय की गतिशीलता का अनुमान करना ख़तरनाक है। दस करोड़ की आबादी वाला एक राष्ट्र सौ व्यक्तियों के एक समूह के मुक़ाबले बुनियादी तौर पर भिन्न ढंग से काम करता है।

उदाहरण के लिए, अल्टीमेटम गेम को ही लें, जो व्यवहारपरक अर्थशास्त्र के सबसे प्रसिद्ध प्रयोगों में से एक है। यह प्रयोग सामान्यतः दो लोगों पर किया जाता है। इनमें से एक व्यक्ति को 100 डॉलर दिए जाते हैं, जिनको उसे अपने दूसरे सहभागी के बीच मनचाहे ढंग से बाँटना होता है। वह सब कुछ अपने पास रख सकता है, पैसे को दो हिस्सों में बाँट सकता है या ज़्यादातर पैसा दूसरे को दे सकता है। दूसरा खिलाड़ी दो में से एक काम कर सकता है: वह प्रस्तावित बँटवारे को मंज़ूर कर सकता है, या उसको मानने से साफ़ इंकार कर सकता है। अगर वह बँटवारे को मानने से इंकार कर देता है, तो दोनों में किसी को कुछ नहीं मिलता।

पारम्परिक आर्थिक सिद्धान्त यह मानता है कि मनुष्य तार्किक परिगणनाएँ करने वाली मशीनें (रेशनल कैल्कुलेटिंग मशीन्स) हैं। उनका कहना है कि ज़्यादातर लोग 99 डॉलर रख लेंगे, और 1 डॉलर दूसरे व्यक्ति को देंगे। इसके आगे उनका कहना है कि दूसरा व्यक्ति इस पेशकश को स्वीकार कर लेगा। एक तर्कसंगत व्यक्ति एक डॉलर की पेशकश किए जाने पर हमेशा हाँ कहेगा। दूसरे व्यक्ति को 99 डॉलर मिलते हैं, तो उसको इसकी क्या परवाह?

पारम्परिक अर्थशास्त्रियों ने शायद कभी अपनी प्रयोगशालाओं और व्याख्यान-कक्षों से बाहर निकल कर वास्तविक दुनिया में जाने का जोखिम नहीं उठाया। अल्टीमेटम गेम खेलने वाले ज़्यादातर लोग कम पैसों की पेशकषों को इसलिए ठुकरा देते हैं क्योंकि वे 'नाजायज़' होती हैं। वे बुद्धिू दिखने की बजाय एक डॉलर का नुक़सान भोगना पसन्द करते हैं। चूँकि वास्तविक दुनिया इसी तरह से काम करती है, इसलिए पहले तो कम ही लोग होते हैं, जो इतने कम पैसे की पेशकश करते हैं। ज़्यादातर लोग पैसे को बराबर-बराबर बाँटते हैं, या ख़ुद थोड़ा सीमित लाभ लेते हुए दूसरे खिलाड़ी को 30 या 40 डॉलर देने की पेशकश करते हैं।

अल्टीमेटम गेम ने पारम्परिक आर्थिक सिद्धान्तों को कमज़ोर करने और पिछले कुछ दशकों की सबसे महत्त्वपूर्ण आर्थिक खोज करने में सार्थक योगदान किया है। यह खोज है: सेपियन्स किसी ठण्डे गणितीय तर्क के मुताबिक़ नहीं, बल्कि एक गर्मजोश सामाजिक तर्क के अनुसार आचरण करते हैं। हम भावनाओं के वशीभूत होते हैं। जैसा कि हमने पहले देखा, ये भावनाएँ वस्तुतः वे परिष्कृत ऐल्गरिदम हैं, जो प्राचीन शिकारी-संग्रहकर्ताओं के क्रिया-कलापों को प्रतिबिम्बित करते हैं। अगर 30,000 साल पहले मैंने एक जंगली चूज़े का शिकार करने में आपकी मदद की होती और आपने लगभग पूरा-का-पूरा चूज़ा अपने पास रखते हुए मुझे उसका महज़ एक पंख पकड़ा दिया होता, तो मैं ख़ुद से यह नहीं कहता: 'न कुछ से एक पंख ही भला है'। इसकी बजाय मेरे विकासपरक ऐल्गरिदम सक्रिय हो उठे होते, एड्रेनलिन और टेस्टोस्टेरॉन मेरी काया में उमड़ पड़े होते, मेरा ख़ून उबलने लगा होता, मैं अपने पैर पटकने लगता और गला फाड़कर चिल्ला उठा होता। कुछ ही देर के लिए मैं भूखा रह सकता था, और मैंने एक दो मुक्के तक जड़ दिए होते थे, लेकिन इससे दीर्घकालीन लाभ हुआ होता, क्योंकि मुझे दोबारा धोखा देने से पहले आपने दो बार सोचा होता। हम नाजायज़ पेशकषों को इसलिए ठुकरा देते हैं, क्योंकि जो लोग दब्बूपन के साथ नाजायज़ पेशकषों को स्वीकार कर लेते थे, वे पाषाण युग में जीवित नहीं बने रह पाते थे।

शिकारी-संग्रहकर्ताओं के समकालीन क़बीलों के व्यवहार पर ध्यान देने से इस धारणा की पुष्टि होती है। ज़्यादातर क़बीले अत्यन्त समतावादी हैं, और जब कोई शिकारी कोई मोटा हिरण लेकर शिविर में वापस लौटता है, तो हर किसी को उसका हिस्सा मिलता है। यही बात चिम्पांज़ियों के बारे में सही है। जब कोई चिम्पांज़ी किसी सूअर के बच्चे को मारता है, तो उसके झुण्ड के बाक़ी सदस्य उसके इर्द-गिर्द एकत्र हो जाते हैं और अपने-अपने हाथ बढ़ा देते हैं, और सामान्यतः सभी को एक-एक टुकड़ा मिल जाता है।

हाल ही में किए गए एक अन्य प्रयोग के तहत स्तनधारी प्राणियों के अध्येता फ़्रैंस डे वाल ने दो कैप्युचिन बन्दरों को दो सटे हुए पिंजरों में रख दिया, ताकि दोनों एक-दूसरे की हरकतों को देख सकें। डे वाल और उनके साथियों ने दोनों पिंजरों के भीतर छोटे-छोटे पत्थर रख दिए, और बन्दरों को प्रशिक्षण दिया कि वे पत्थर उठाकर उनको दें। जब भी एक बन्दर पत्थर उठाकर देता था, तो बदले में उसको कुछ खाने को मिलता था। शुरू में यह इनाम ककड़ी का एक टुकड़ा होता था। कुछ सिलसिलों के बाद डे वाल इस प्रयोग के अगले चरण की ओर बढ़े। इस बार जब पहले बन्दर ने एक पत्थर उठा कर दिया, तो उसको एक अंगूर मिला। अंगूर ककड़ी से कहीं ज़्यादा स्वादिष्ट होते हैं, लेकिन जब दूसरे बन्दर ने पत्थर उठाकर दिया, तो उसको तब भी ककड़ी का टुकड़ा ही मिला। यह दूसरा बन्दर जो पहले ककड़ी के मिलने से बहुत प्रसन्न था, इस बार नाराज़ हो उठा। उसने

ककड़ी ली, पलभर तक उसको अविश्वास से देखा और फिर उसको ग़ुस्से से इन वैज्ञानिकों की ओर फेंक कर कूदने और ज़ोर-ज़ोर-से चिल्लाने लगा। वह आसानी-से ठगे जाने वालों में से नहीं था।

इस आनन्द से भर देने वाले प्रयोग (जिसे आप ख़ुद यू ट्यूब पर देख सकते हैं) के साथ-साथ अल्टीमेटम गेम ने बहुत-से लोगों को यह विश्वास दिलाया कि वानरों में एक क़ुदरती नैतिकता होती है, और यह कि समानता एक सार्वभौमिक और सार्वकालिक मूल्य है। लोग स्वभाव से ही समतावादी होते हैं, और असमानता बरतने वाले समाज असन्तोष की वजह से कभी ठीक से काम नहीं कर सकते।

लेकिन क्या वाक़ई ऐसा है? ये सिद्धान्त चिम्पांज़ियों, कैप्युचिन बन्दरों और शिकारी-संग्रहकर्ताओं के छोटे-छोटे क़बीलों पर लागू हो सकते हैं। ये उस प्रयोगशाला में भी आसानी-से लागू हो सकते हैं, जहाँ आप लोगों के छोटे-से समूहों पर उनका परीक्षण करते हैं, लेकिन जब आप विशाल मानव समुदाय के आचरण पर ग़ौर करते हैं, तो आप एक निहायत अलग क़िस्म की वास्तविकता के सामने होते हैं। इंसानों के ज़्यादातर राज्य और साम्राज्य बेइन्तिहा ग़ैरबराबरी वाले थे, लेकिन उनमें से कई आश्चर्यजनक रूप से स्थिर और कारगर रहे। प्राचीन मिस्र में फ़ैरो सुनहरी सैंडिलें और रत्न-जड़े लबादे पहने ठण्डे और आलीशान महलों के आरामदेह तकियों पर पसरा रहता था, और ख़ूबसूरत दासियाँ उसके मुँह में मीठे-मीठे अंगूर डालती रहती थीं। वह खुली खिड़की से किसानों को खेतों में काम करते देख सकता था, जो गन्दे चिथड़े लपेटे बेरहम धूप में कड़ी मेहनत रहते थे, और वह किसान क़िस्मत वाला होता था, जिसको दिन बीतने पर ककड़ी खाने को मिल जाया करती थी, लेकिन इन किसानों ने शायद ही कभी विद्रोह किया हो।

1740 में जब प्रशिया के राजा फ़्रैड्रिक II ने सिलेसिया पर हमला कर उन कई ख़ूनी लड़ाइयों की शुरुआत की, जिन्होंने उसको फ्रैड्रिक महान की उपाधि मुहैया कराई, तो उसने प्रशिया को एक बड़ी ताक़त में बदल दिया और सैकड़ों हज़ारों लोगों को मृत, अपंग या असहाय बनाकर छोड़ दिया। फ़्रैड्रिक के ज़्यादातर सैनिक बदनसीब रंगरूट थे, जो लौह अनुशासन और सख़्त कवायदों के अधीन हुआ करते थे। आश्चर्य की बात नहीं कि इन सैनिकों के मन में अपने सर्वोच्च सेनापति के प्रति जो थोड़ा-बहुत लगाव था, वह भी ख़त्म हो चुका था। जब फ्रैड्रिक अपनी सेनाओं को हमले के लिए एकत्र होते देख रहा था, तो उसने अपने एक सेनापति से कहा कि उस दृश्य के बारे में उसको जो चीज़ सबसे ज़्यादा प्रभावित कर रही थी, वह यह थी कि 'हम यहाँ 60,000 आदमियों की ओर देखते हुए पूरी तरह से सुरक्षित खड़े हुए हैं - वे सब हमारे दुश्मन हैं, और इनमें से एक भी ऐसा नहीं है, जो हमसे ज़्यादा बेहतर ढंग से हथियारबन्द और मज़बूत न हो, और तब भी वे सबके सब हमारी मौजूदगी मात्र से काँपते हैं, जबकि हमारे लिए उनसे डरने की कोई वजह नहीं है।

फ़्रैड्रिक सचमुच उनको सम्पूर्ण सुरक्षा के बीच खड़े हुए देख सका होगा। बाद के वर्षों के दौरान, युद्ध की तमाम मुसीबतों के बावजूद, इन 60,000 हथियारबन्द लोगों ने उसके ख़िलाफ़ कभी विद्रोह नहीं किया, बल्कि उनमें से ज़्यादातर ने अपनी ज़िन्दगियों को दाँव पर लगाते और कुर्बानियाँ देते हुए असाधारण बहादुरी के साथ उसके लिए काम किया।

क्या वजह है कि अल्टीमेटम गेम और कैप्युचिन बन्दरों पर किए गए प्रयोग के आधार पर हमारे मन में जो अपेक्षाएँ जागती हैं, मिस्र के किसानों और प्रशियाई सैनिकों ने उससे इस क़दर भिन्न ढंग से आचरण किया? इसलिए कि बड़ी तादाद में लोग उससे बिल्कुल भिन्न तरह का व्यवहार करते हैं, जैसा वे तब करते हैं, जब वे कम संख्या में होते हैं। उस सूरत में वैज्ञानिकों ने क्या देखा होता, अगर उन्होंने अल्टीमेटम गेम का प्रयोग 10 लाख लोगों के दो समूहों पर किया होता, जिनके बीच 100 अरब डॉलर बाँटे जाने वाले होते?

तब उन्होंने शायद अजीबोग़रीब और आश्चर्यजनक प्रक्रियाओं को घटित होते देखा होता। उदाहरण के लिए, चूँकि 10 लाख लोग सामूहिक रूप से निर्णय नहीं ले सकते, इसलिए हर समूह के भीतर एक छोटा शासक वर्ग पैदा हो सकता था। तब क्या होता अगर एक शासक वर्ग 10 अरब डॉलर की पेशकश करते हुए 90 अरब डॉलर अपने पास रख लेता? मुमकिन है दूसरे समूह के नेता इस पेशकश को मंज़ूर कर उन 10 अरब डॉलरों में से ज़्यादातर को हड़पकर अपने स्विस बैंक अकाउंट में जमा कर लेते, और अपने अनुयायियों के बीच के विद्रोहियों के प्रति दाम और दण्ड की नीति अपनाते हुए उनके विद्रोह को कुचल देते। यह नेतृत्व असन्तुष्टों को तत्काल कठोर सज़ा देने की धमकी देता, और दब्बू तथा धीरजवान लोगों को अगले जन्म में चिरस्थायी पुरस्कार मिलने का वादा कर देता। प्राचीन मिस्र और अठारहवीं सदी के प्रशिया में यही हुआ था, और यही आज भी दुनियाभर के असंख्य देशों में होता है।

इस तरह की धमकियाँ और आश्वासन अक्सर तब तक इंसानों के टिकाऊ पदक्रमों और व्यापक सामूहिक सहकार के तन्त्रों की रचना करने में कामयाब होते रहते हैं, जब तक कि लोग यह विश्वास करते रहते हैं कि ये पदक्रम महज़ मनुष्यों की मनमानी इच्छाओं की बजाय क़ुदरत के अकाट्य नियमों और ईश्वर के आदेश को प्रतिबिम्बित करते हैं। बड़े पैमाने का सारा आपसी सहयोग अन्ततः कल्पित व्यवस्थाओं में हमारे विश्वास पर टिका होता है। ये वे विधि-संहिताएँ हैं, जिनको बावजूद इसके कि उनका वजूद सिर्फ़ हमारी कल्पना में ही होता है, हम गुरुत्वाकर्षण जितना वास्तविक और अनुलंघनीय मानते हैं। 'अगर तुम इन्द्र को दस बैलों की बलि दोगे, तो बारिश होगी, अगर तुम अपने माँ-बाप की इज़्ज़त करोगे, तो तुम स्वर्ग में जाओगे, अगर तुम मेरी बात पर विश्वास नहीं करोगे, तो तुम नर्क में जाओगे'। जब तक एक निश्चित इलाक़े में रहने वाले सारे सेपियन्स एक ही तरह के क़िस्सों में विश्वास करते रहते हैं, तब तक वे समान नियमों का पालन करते हुए बाहरी

व्यक्तियों के व्यवहार के पूर्वानुमान और विशाल सामुदायिक सहकार के तन्त्रों की रचना को आसान बनाते रहते हैं। सेपियन्स अक्सर यह संकेत देने के लिए पगड़ी, दाढ़ी या बिजनेस सूट जैसे प्रत्यक्ष संकेतों का इस्तेमाल करते हैं कि 'आप मुझ पर भरोसा कर सकते हैं, मैं भी उसी क़िस्से में विश्वास करता हूँ, जिसमें आप करते हैं'। हमारे चिम्पांज़ी भाई-बहन इस तरह के क़िस्सों का आविष्कार और प्रसार नहीं कर सके, और यही वजह है कि वे बड़ी संख्या में आपसी सहयोग नहीं कर पाते।

अर्थ का मकड़जाल

'कल्पित व्यवस्थाओं' की धारणा को समझने में लोगों को कठिनाई होती है, क्योंकि उनके मन में यह बात बैठी होती है कि वास्तविकताएँ सिर्फ़ दो ही तरह की होती हैं: वस्तुनिष्ठ (ऑब्जेक्टिव) वास्तविकताएँ और व्यक्तिनिष्ठ (सब्जेक्टिव) वास्तविकताएँ। वस्तुनिष्ठ वास्तविकताओं में चीज़ों का अस्तित्व हमारे विश्वासों और अनुभूतियों से स्वतन्त्र होता है। उदाहरण के लिए, गुरुत्त्वाकर्षण एक वस्तुनिष्ठ वास्तविकता है। इसका अस्तित्व न्यूटन से बहुत पहले से था, और यह इस पर विश्वास न करने वाले लोगों पर भी उतना ही असर डालती है, जितना उन पर जो इसमें विश्वास करते हैं।

इसके विपरीत, व्यक्तिनिष्ठ वास्तविकता मेरे निजी विश्वासों और अनुभूतियों पर निर्भर करती है। इस तरह, मान लीजिए कि मैं अपने सिर में तीखा दर्द महसूस करता हूँ और डॉक्टर के पास जाता हूँ। डॉक्टर मेरी अच्छी तरह से पूरी जाँच करती है, लेकिन उसको कहीं कोई गड़बड़ नज़र नहीं आती। इसलिए वह मुझे ख़ून की जाँच, मूत्र की जाँच, डीएनए की जाँच, एक्स-रे, इलेक्ट्रोकॉर्डियोग्राम, एफ़एमआरआई स्कैन और ढेर सारी दूसरी जाँचें कराने की सलाह देती है। जब इन सारी जाँचों के नतीजे आ जाते हैं, तो वह कहती है कि मैं पूरी तरह से चंगा हूँ, और अपने घर जा सकता हूँ, लेकिन मैं अपने सिर में वह तीखा दर्द अब भी महसूस कर रहा हूँ। बावजूद इसके कि सारी वस्तुनिष्ठ जाँचों ने मेरे भीतर कोई गड़बड़ी नहीं पाई, और बावजूद इसके कि मेरे अलावा उस दर्द को कोई भी दूसरा व्यक्ति महसूस नहीं कर रहा है, वह दर्द मेरे लिए 100 प्रतिशत वास्तविक है।

ज़्यादातर लोग यह मानकर चलते हैं कि वास्तविकता या तो वस्तुनिष्ठ होती है या व्यक्तिनिष्ठ, और इनके सिवाय तीसरा कोई विकल्प नहीं है। इसलिए वे जैसे ही इस बात से सन्तुष्ट हो जाते हैं कि कोई चीज़ महज़ उनकी व्यक्तिनिष्ठ अनुभूति नहीं है, वे तत्काल इस नतीजे पर पहुँच जाते हैं कि तब फिर वह निश्चय ही वस्तुनिष्ठ होगी। अगर ढेरों लोग ईश्वर में विश्वास करते हैं, अगर पैसा दुनिया को नचाता है, अगर राष्ट्रवाद युद्धों की शुरुआत करता है और साम्राज्य खड़े करता है, तो ये चीज़ें महज़ मेरा व्यक्तिनिष्ठ विश्वास नहीं हैं। ईश्वर, पैसा और राष्ट्र तब निश्चय ही वस्तुनिष्ठ वास्तविकताएँ होंगी।

लेकिन, वास्तविकता का एक तीसरा स्तर भी होता है: अन्तरवैयक्तिक (इंटरसब्जेक्टिव) स्तर। अन्तरवैयक्तिक वास्तविकताएँ स्वतन्त्र मनुष्यों के विश्वासों और अनुभूतियों पर निर्भर होने की बजाय बहुत सारे मनुष्यों के बीच संचार (कम्युनिकेशन) पर आधारित होती हैं। इतिहास के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घटकों में से बहुत-से घटक अन्तरवैयक्तिक हैं। उदाहरण के लिए, पैसे का कोई वस्तुनिष्ठ मूल्य नहीं है। आप डॉलर के नोट को खा, पी या पहन नहीं सकते, लेकिन जब तक अरबों लोग इसके मूल्य में विश्वास करना जारी रखते हैं, तब तक आप इसका इस्तेमाल भोजन, पेय और कपड़े ख़रीदने के लिए कर सकते हैं। अगर बेकरी वाला सहसा डॉलर के उस नोट पर से अपनी आस्था खो देता है और काग़ज़ के इस हरे पत्ते के बदले मुझे ब्रेड देने से इंकार कर देता है, तो इससे बहुत फ़र्क़ नहीं पड़ता। मैं कुछ ब्लॉक आगे पास के सुपरमार्केट में जा सकता हूँ, लेकिन अगर सुपरमार्केट का कैशियर भी काग़ज़ के इस टुकड़े को लेने से मना कर देता है, साथ ही बाज़ार के फेरी वाले और मॉल के विक्रेता भी इंकार कर देते हैं, तो वह डॉलर अपना मूल्य खो देगा। काग़ज़ वे टुकड़े बेशक बने रहेंगे, लेकिन वे किसी काम के नहीं होंगे।

इस तरह की घटनाएँ वास्तव में समय-समय पर होती रहती हैं। 3 नवम्बर 1985 को म्याँमार सरकार ने अचानक ऐलान कर दिया था कि पच्चीस, पचास और सौ क्याट के बैंक नोट अब सरकारी मुद्रा नहीं माने जाएँगे। लोगों को इन नोटों को बदलने का कोई अवसर नहीं दिया गया, और उनकी जीवनभर की बचत पलभर में बेकार काग़ज़ों का ढेर बनकर रह गई। चलन से बाहर कर दिए गए इन नोटों की जगह लेने के लिए सरकार ने कथित रूप से म्याँमार के तानाशाह जनरल ने विन के पचहत्तरवें जन्मदिन के उपलक्ष्य में पचहत्तर क्याट के नोट जारी किए। अगस्त 1986 में पन्द्रह और पैंतीस क्याट के नोट जारी किए गए। तानाशाह की अंक-विद्या में गहरी आस्था थी, इसलिए अफ़वाह थी कि उसका विश्वास था कि पन्द्रह और पैंतीस भाग्यशाली संख्याएँ हैं। ये संख्याएँ उसकी प्रजा के लिए सौभाग्यशाली साबित नहीं हुईं। 5 सितम्बर 1987 को सरकार ने अचानक आदेश दे दिया कि पैंतीस और पचहत्तर के नोट अब मुद्रा नहीं माने जाएँगे।

मुद्रा का मूल्य ही वह एकमात्र चीज़ नहीं है, जो लोगों का उसमें विश्वास ख़त्म होने के साथ ही भाप बनकर उड़ जाती है। यही चीज़ क़ानूनों, देवताओं और समूचे साम्राज्यों के साथ घटित हो सकती है। इस पल में वे दुनिया को शक्ल देने में लगे होते हैं, तो अगले ही पल उनका अस्तित्व समाप्त हो जाता है। एक समय था, जब ज़ूस और हेरा भूमध्यसागरीय खाड़ी की महत्त्वपूर्ण शक्तियाँ हुआ करते थे, लेकिन अब उनकी कोई सत्ता नहीं रही, क्योंकि अब उनमें किसी का विश्वास नहीं रहा। एक वक़्त था, जब सोवियत संघ समूची मानव जाति को नष्ट कर सकता था, लेकिन एक हस्ताक्षर मात्र के साथ उसका अस्तित्व समाप्त हो गया। 8 दिसम्बर 1991 को विस्कुली के क़रीब एक राजकीय देहाती बँगले में

रूस, उक्रेन और बेलारूस के नेताओं ने बेलावेझ्झा समझौते पर हस्ताक्षर किए, जिसमें कहा गया था कि ‘हम, बेलारूस गणराज्य, रूसी महासंघ और उक्रेन, जिन्होंने यूनियन ऑफ़ सोवियत सोसलिस्ट रिपब्लिक्स संस्थापक राज्यों के रूप में 1922 की संघटन सन्धि (यूनियन ट्रीटी) पर हस्ताक्षर किए थे, एतद् द्वारा घोषणा करते हैं कि अन्तरराष्ट्रीय विधि की सत्ता और भूराजनैतिक वास्तविकता के रूप में सोवियत सोसलिस्ट रिपब्लिक का अस्तित्व समाप्त होता है’। बस इतना ही। सोवियत संघ समाप्त।

इस बात को स्वीकार करना अपेक्षाकृत आसान है कि पैसा एक अन्तरवैयक्तिक वास्तविकता है। बहुत-से लोग इस बात को भी ख़ुशी-ख़ुशी स्वीकार करते हैं कि प्राचीन यूनानी देवता, शैतानी साम्राज्य और विजातीय संस्कृतियों के मूल्य अब सिर्फ़ कल्पना की चीज़ें हैं, लेकिन हम यह स्वीकार नहीं करना चाहते कि *हमारा* ईश्वर, *हमारा* राष्ट्र या *हमारे* मूल्य निरी कल्पनाएँ/गल्प (फ़िक्षन्स) हैं, क्योंकि ये वे चीज़ें हैं, जो हमारे जीवन को अर्थ प्रदान करती हैं। हम यह विश्वास करना चाहते हैं कि हमारी ज़िन्दगियों का कोई वस्तुनिष्ठ अर्थ है, और हमारे त्याग हमारे दिमाग़ों में बसे क़िस्सों से परे कोई अर्थ रखते हैं, लेकिन वास्तविकता यह है कि ज़्यादातर लोगों की ज़िन्दगियों का अर्थ उन क़िस्सों के तन्त्र के भीतर ही होता है, जो क़िस्से वे एक-दूसरे को सुनाते हैं।

19. बेलावेझ्झा समझौते पर हस्ताक्षर। क़लम काग़ज़ को छूती है - और जादू! सोवियत संघ नदारद हो जाता है।

अर्थ तब उत्पन्न होता है, जब बहुत-से लोग क़िस्सों का एक सर्वमान्य तन्त्र रचते हैं। क्या कारण है कि कोई ख़ास कृत्य - जैसे कि चर्च में जाकर शादी करना, रमज़ान पर रोज़े

रखना या मतदान के दिन वोट डालना - मेरे लिए अर्थपूर्ण लगता है? क्योंकि मेरे अभिभावक भी इसे अर्थपूर्ण मानते हैं, उसी तरह जैसे मेरे भाई, मेरे पड़ोसी, पास के शहरों के लोग और सुदूर देशों के निवासी तक इसे अर्थपूर्ण मानते हैं। और ये सारे लोग इसे अर्थपूर्ण क्यों मानते हैं? क्योंकि उनके दोस्त और पड़ोसी भी इसी दृष्टिकोण को साझा करते हैं। लोग अपने को निरन्तर दोहराते एक रूढ़ चक्र के माध्यम से एक-दूसरे के विश्वासों को मज़बूती प्रदान करते रहते हैं। आपसी सहमति का हर नया सिलसिला अर्थ के जाल को उस वक़्त तक और ज़्यादा कसता जाता है, जब तक कि आपके पास उस चीज़ में विश्वास करने के अलावा और कोई विकल्प नहीं रह जाता, जिसमें हर कोई विश्वास करता है।

तब भी दशकों और सदियों के दौरान अर्थ का यह जाल खुलता रहता है और उसकी जगह एक नया जाल बुनता रहता है। इतिहास का अध्ययन करने का मतलब इन जालों के बुनने और स्पष्ट हो जाने की प्रक्रिया को देखना है, और यह समझना है कि जो चीज़ एक युग के लोगों को जीवन की सबसे महत्त्वपूर्ण चीज़ प्रतीत होती है, वही उनके उत्तराधिकारियों के लिए निहायत ही अर्थहीन हो जाती है।

1187 में सलादीन ने हट्टिन की लड़ाई में धर्मयोद्धा सेना (क्रुसेडर आर्मी) को पराजित कर यरुशलम को जीत लिया था। इसके जवाब में पोप ने इस पवित्र नगर पर फिर क़ब्ज़ा करने के लिए तीसरे धर्मयुद्ध (थर्ड क्रुसेड) की शुरुआत की। ज़रा उस जॉन नामक अँग्रेज़ कुलीन की कल्पना करें, जो सलादीन से लड़ने अपने घर से निकल पड़ा था। जॉन का विश्वास था कि उसके इस कृत्य का एक वस्तुनिष्ठ अर्थ है। उसका विश्वास था कि अगर वह उस धर्मयुद्ध में मारा गया, तो मौत के बाद उसकी आत्मा ऊपर उठकर स्वर्ग में पहुँच जाएगी, जहाँ वह चिरस्थायी अलौकिक सुखों का भोग करेगी। उसको यह जानना भयावह लगा होता कि आत्मा और स्वर्ग मनुष्यों द्वारा ईजाद क़िस्से मात्र हैं। जॉन पूरे दिल से यह मानता था कि अगर वह पवित्र भूमि (होली लैंड) पर पहुँच जाता है, और बड़ी-बड़ी मूँछों वाला कोई मुसलमान उसके सिर पर कुल्हाड़ी मार देता है, तो वह असहनीय पीड़ा महसूस करेगा, वह लड़खड़ा कर गिर जाएगा, उसके कानों में सनसनाहट होगी, उसकी आँखों के आगे अँधेरा छा जाएगा और अगले ही क्षण वह अपने चारों ओर एक उज्ज्वल प्रकाश देखेगा, उसको देवदूतों की आवाज़ें और वीणा के स्वर सुनाई देंगे, और चमकीले पंखों वाले शिशु देवदूत (चेरुब) एक अद्भुत सुनहरे द्वार के अन्दर से इशारा करते हुए उसको बुलाएँगे।

इस सब में जॉन का ज़बरदस्त विश्वास था, क्योंकि वह अर्थ के एक अत्यन्त घने और शक्तिशाली जाल के भीतर जकड़ा हुआ था। उसकी सबसे पुरानी स्मृतियों में उसके दादा हेनरी की ज़ंग लगी तलवार थी, जो क़िले के मुख्य हॉल में लटकी रहती थी। जब वह बहुत छोटा-सा बालक था, तभी से वह दादा हेनरी के क़िस्से सुनता आया था, जो दूसरे धर्मयुद्ध

के दौरान मारे गए थे और जो अब स्वर्ग में देवदूतों के साथ आराम से रहते हुए, वहाँ से जॉन और उसके परिवार को देखते रहते थे। जब चारण या गवैये उस क़िले में आते थे, तो वे सामान्यतः उन बहादुर धर्मयोद्धाओं की प्रशस्तियाँ गाया करते थे, जो पवित्र भूमि में लड़े थे। जब जॉन चर्च जाता था, तो वह बड़ी दिलचस्पी के साथ वहाँ की रंगीन चित्रों वाली काँच की खिड़कियाँ देखा करता था। उनमें से एक खिड़की में घोड़े पर सवार और एक दुष्ट दिखाई देते मुसलमान को अपने भाले से कोंचते हुए गॉडफ्रे ऑफ़ बुलियॉन को दर्शाया गया था। एक दूसरी खिड़की में पापात्माओं को नर्क में जलते हुए दर्शाया गया था। जॉन बड़े ध्यान से उस स्थानीय पादरी का प्रवचन सुना करता था, जो उसकी जानकारी में सबसे बड़ा ज्ञानी इंसान हुआ करता था। लगभग हर इतवार को पादरी ख़ूबसूरत ढंग से गढ़ी गई नीति-कथाओं और मज़ेदार चुटकुलों की मदद से समझाता था कि कैथोलिक चर्च के बाहर कोई मुक्ति नहीं है, रोम में बैठा पोप हमारा पवित्र पिता है और हमें हमेशा उसके आदेशों को मानना चाहिए। अगर हमने हत्या या चोरी की, तो ईश्वर हमें नर्क भेज देगा, लेकिन अगर हमने विधर्मी मुसलमानों को मारा, तो ईश्वर स्वर्ग में हमारा स्वागत करेगा।

एक दिन जब जॉन अठारह साल का होने वाला था, एक मैला-कुचैला योद्धा (नाइट) घोड़े पर सवार क़िले के द्वार पर पहुँचा, और उसने रुँधे हुए स्वर में यह ख़बर दी: सलादीन ने हट्टिन में धर्मयोद्धा सेना को नष्ट कर दिया है! यरुशलम पराजित हो चुका है! पोप ने एक नए धर्मयुद्ध का ऐलान करते हुए उसमें मरने वाले व्यक्ति को शाश्वत मुक्ति का आश्वासन दिया है! चारों ओर लोग घबराए हुए और परेशान दिखाई दे रहे थे, लेकिन जॉन का चेहरा अलौकिक दीप्ति से दमक उठा और उसने ऐलान किया: 'मैं इन विधर्मियों से लड़ने और पवित्र भूमि को मुक्त करने जा रहा हूँ!' पलभर के लिए हर कोई ख़ामोश रह गया, और फिर लोगों के चेहरे आँसुओं और मुस्कराहटों से भर उठे। उसकी माँ ने अपने आँसू पोंछे, जॉन को अपने आगोश में भर लिया और उससे कहा कि उसको उस पर बहुत गर्व है। उसके पिता ने ज़ोरदार ढंग से उसकी पीठ थपथपाई और कहा: 'बेटा, काश! मैं तेरी उम्र का होता, तो मैं भी तेरे साथ चलता। हमारे परिवार की इज़्ज़त दाँव पर लगी है, मुझे पूरा विश्वास है कि तू हमें निराश नहीं करेगा'। उसके दो दोस्तों ने भी उसके साथ जाने का ऐलान किया। जॉन के कट्टर प्रतिद्वन्द्वी, नदी के उस तरफ़ रहने वाले सामन्त तक ने उसके घर जाकर उसको शुभकामनाओं के साथ विदाई दी।

जब वह क़िले से बाहर निकला, तो ग्रामीण अपनी झोपड़ियों से निकलकर बाहर आकर हाथ हिलाकर उसको विदाई दे रहे थे, और गाँव की सारी ख़ूबसूरत लड़कियाँ विधर्मियों से लड़ने जा रहे इस बहादुर धर्मयोद्धा को चाहत भरी नज़रों से देख रही थीं। जब उसने इंग्लैंड से जहाज़ का सफ़र शुरू किया और नार्मेंडी, प्रोवेंस, सिसली जैसे अजनबी और सुदूर मुल्कों से होता हुआ आगे बढ़ा, तो योद्धाओं (नाइट्स) के कई दल उसी गन्तव्य

और उसी आस्था के साथ उसके साथ जुड़ गए। जब यह सेना अन्ततः पवित्र भूमि पर उतरी और उसने सलादीन की फ़ौज के साथ लड़ाई की, तो जॉन यह देखकर विस्मित था कि दुष्टात्मा सैरसन (अरबी मुसलमान) तक उसकी आस्थाओं को साझा करते थे। यह सच था कि वे कुछ भ्रमित थे, और उनका ख़याल था कि ईसाई विधर्मी थे और यह कि मुसलमान अल्लाह की मर्ज़ी के मुताबिक़ चल रहे थे, लेकिन उन्होंने भी इस बुनियादी उसूल को मंज़ूर किया था कि ईश्वर और यरुशलम के लिए लड़ने वाले लोग मरने पर सीधे जन्नत जाएँगे।

इस तरह, रेशा-दर-रेशा, मध्ययुगीन सभ्यता ने जॉन और उसके समकालीनों को मक्खियों की तरह फँसाते हुए अर्थ के अपने जाल को बुना था। जॉन के लिए यह अकल्पनीय था कि ये सारे क़िस्से महज़ कपोल-कल्पनाएँ थीं। उसके अभिभावक और चाचा-मामा ग़लत हो सकते थे, लेकिन गवैये भी, और उसके सारे दोस्त, और गाँव की लड़कियाँ, ज्ञानवान पादरी, नदी के उस तरफ़ रहने वाला सामन्त, रोम का पोप, प्रोवेंस और सिसली के योद्धा, और मुसलमान तक - क्या ये मुमकिन था कि वे सब के सब मतिभ्रम के शिकार थे?

और सालों बीतते जाते हैं। जैसा कि इतिहासकार देखते रहते हैं, अर्थ का एक जाल खुलता है, और उसकी जगह दूसरा जाल बुनता जाता है। जॉन के माँ-बाप मर जाते हैं, फिर उसके सारे भाई-बन्धु और दोस्त मर जाते हैं। धर्मयुद्धों के बारे में गीत गाते चारणों की जगह दुखान्त प्रेम-प्रसंगों के बारे में मंचीय नाटकों का नया फ़ैशन ले लेता है। पारिवारिक क़िला जलकर मिट्टी में मिल जाता है और जब उसको फिर खड़ा किया जाता है, तो वहाँ दादा हेनरी की तलवार का कोई नामोनिशान नहीं मिलता। चर्च की खिड़कियाँ बर्फ़ीली आँधियों में चरमरा जाती हैं और उनकी जगह लगे नए काँचों में अब गॉडफ्रे ऑफ़ बुलियॉन और नर्क भोगते पापियों का चित्रण नहीं किया जाता, बल्कि उन पर फ्रांस के राजा पर इंग्लैंड के राजा की महान विजय को दर्शाया गया होता है। स्थानीय पादरी ने पोप को 'हमारा पवित्र पिता' कहना बन्द कर दिया है - अब उसको 'रोम में बैठे शैतान' के रूप में याद किया जाता है। पास के विश्वविद्यालय में अध्येता प्राचीन यूनानी पाण्डुलिपियों को सावधानी से पलटते हुए मृत देहों की चीरफाड़ करते हैं और बन्द दरवाज़ों के पीछे हल्के-से फुसफुसाते हैं कि शायद आत्मा जैसी कोई चीज़ नहीं होती।

और साल बीतते रहते हैं। जहाँ कभी क़िला हुआ करता था, वहाँ अब एक शॉपिंग मॉल है। स्थानीय सिनेमाघर में हज़ारवीं बार *मांटी पायथॅन एंड द होली ग्रेल* कॉमेडी फ़िल्म दिखाई जा रही है। एक ख़ाली चर्च में एक ऊबा हुआ पादरी जापानी पर्यटकों को देखकर मस्त हो रहा है। वह इन पर्यटकों को पूरी तफ़सील के साथ काँच के रंगीन चित्रों के बारे में बता रहा है, और वे विनम्र मुस्कराहट के साथ उसकी बात को पूरी तरह समझते हुए अपने

सिर हिला रहे हैं। बाहर सीढ़ियों पर किशोरों का एक समूह अपने आईफ़ोनों के साथ खेलने में लगा है। वे जॉन लेनॉन के 'इमेजिन' का नया यूट्यूब मिक्स देख रहे हैं। लेनॉन गा रहा है, 'कल्पना करो कि स्वर्ग जैसा कुछ नहीं है, यह आसान है अगर आप कोशिश करें तो'। एक पाकिस्तानी सफ़ाई कर्मचारी पटरी पर झाड़ू लगा रहा है, वहीं पास में रेडियो पर समाचार प्रसारित हो रहा है: सीरिया में मारकाट जारी है, और सुरक्षा परिषद की बैठक गतिरोध के साथ समाप्त हो गई है। अचानक समय में एक छेद खुलता है, एक रहस्यमय रोशनी की किरण एक किशोर के चेहरे पर चमकती है, जो ऐलान करता है: 'मैं विधर्मियों से लड़ने और पवित्र भूमि को आज़ादी दिलाने जा रहा हूँ!'

विधर्मी और पवित्र भूमि? ये शब्द आज के इंग्लैंड में अब कोई अर्थ नहीं रखते। यहाँ तक कि उस चर्च का पादरी भी शायद सोचे कि वह किशोर मनोरोग सम्बन्धी कोई प्रसंग देख रहा है। इसके विपरीत, अगर कोई अँग्रेज़ नौजवान शरणार्थियों के मानवाधिकारों की रक्षा के लिए एमनेस्टी इंटरनेशनल में शामिल होने सीरिया जाने का फ़ैसला करे, तो उसको एक हीरो के रूप में देखा जाएगा। मध्य युग में लोगों ने सोचा होता कि वह सनक गया है। बारहवीं सदी के इंग्लैंड में कोई नहीं जानता था कि मानवाधिकार क्या चीज़ है। आप मुसलमानों को मारने के लिए नहीं, बल्कि मुसलमानों के एक समूह को दूसरे समूह से बचाने के लिए मध्यपूर्व में जाकर अपनी जान जोखिम में डालना चाहते हैं? निश्चय ही आपका दिमाग़ फिर गया है।

इतिहास इसी तरह खुलता है। लोग अर्थ का एक जाल बुनते हैं, पूरे दिल से उसमें विश्वास करते हैं, लेकिन आगे-पीछे वह जाल खुल जाता है, और जब हम पीछे मुड़कर देखते हैं, तो हम समझ नहीं पाते कि किसी व्यक्ति ने उसको गम्भीरता से कैसे लिया होगा। पीछे मुड़कर देखने पर, स्वर्ग पहुँचने की उम्मीद में धर्मयुद्ध पर जाना निरा पागलपन जैसा लगता है। पीछे मुड़कर देखने पर, शीत युद्ध उससे भी बड़ा पागलपन लगता है। तीस साल पहले आख़िर यह कैसे मुमकिन रहा होगा कि लोग कम्युनिस्ट-स्वर्ग में अपने विश्वास के चलते परमाणु विनाश का जोखिम उठाने को तैयार थे? हो सकता है कि अब से सौ साल बाद लोकतन्त्र और मानवाधिकारों में हमारा विश्वास हमारे वंशजों के लिए उतना ही समझ से परे लगे।

स्वप्नकाल

सेपियन्स दुनिया पर हुकूमत करते हैं, क्योंकि वे अर्थ का एक अन्तरवैयक्तिक जाल बुनने की क़ाबिलियत रखते हैं: ऐसे क़ानूनों, शक्तियों, सत्ताओं और स्थलों का जाल, जिनका वजूद विशुद्ध रूप से उनकी साझा कल्पनाओं में होता है। यह जाल इंसानों को बिना किसी

की मदद लिए धर्मयुद्ध, समाजवादी क्रान्तियाँ और मानवाधिकार आन्दोलनों को आयोजित करने की गुंजाइश देता है।

दूसरे प्राणी भी कई तरह की कल्पनाएँ कर सकते हैं। चूहे की ताक में बैठी बिल्ली ने मुमकिन है उस चूहे को न देखा हो, लेकिन तब भी वह उस चूहे के रूप-रंग और स्वाद तक की कल्पना कर सकती है, लेकिन जहाँ तक हमारी जानकारी है, बिल्लियाँ सिर्फ़ उन्हीं चीज़ों की कल्पना कर सकती हैं, जिनका वजूद हमारी दुनिया में है, जैसे कि चूहे। वे ऐसी चीज़ों की कल्पना नहीं कर सकतीं, जिनको उन्होंने कभी देखा, सूँघा या चखा नहीं है - जैसे अमेरिकी डॉलर, गूगल कॉर्पोरेशन या यूरोपीय यूनियन। इस तरह की कल्पित चीज़ों का ख़्वाब सिर्फ़ सेपियन्स ही देख सकते हैं।

नतीजतन, जहाँ बिल्लियाँ और दूसरे जानवर वस्तुनिष्ठ क्षेत्र तक सीमित हैं और अपनी संचार प्रणालियों का इस्तेमाल वास्तविकता का वर्णन करने के लिए ही कर सकते हैं, वहीं सेपियन्स पूरी तरह से नई वास्तविकताओं को रचने के लिए भाषा का इस्तेमाल करते हैं। पिछले 70,000 सालों के दौरान सेपियन्स द्वारा ईजाद अन्तरवैयक्तिक वास्तविकताएँ उत्तरोत्तर इतनी शक्तिशाली होती गई हैं कि आज दुनिया पर उनका वर्चस्व है। क्या चिम्पांज़ी, हाथी, अमेज़ॉन के वर्षा-वन और आर्कटिक के ग्लेशियर इक्कीसवीं सदी से बचकर जीवित रह पाएँगे? ये यूरोपीय यूनियन और वर्ल्ड बैंक जैसी अन्तरवैयक्तिक सत्ताओं के निर्णयों पर निर्भर करता है, उन सत्ताओं पर जिनका वजूद सिर्फ़ साझा कल्पना में है।

दूसरे जन्तु हमारे सामने नहीं टिक पाएँगे, इसलिए नहीं कि उनके पास आत्मा या मानस नहीं है, बल्कि इसलिए कि उनमें ज़रूरी कल्पना का अभाव है। शेर दौड़ सकते हैं, झपट सकते हैं, पंजा मार सकते हैं, दाँत गड़ा सकते हैं, लेकिन वे कोई बैंक खाता नहीं खोल सकते या कोई मुक़दमा दायर नहीं कर सकते। और इक्कीसवीं सदी में बैंक-मालिक जानता है कि मुक़दमा कैसे दायर किया जाए, वह सवाना के सबसे ज़्यादा उग्र शेर से कहीं ज़्यादा शक्तिशाली है।

अन्तरवैयक्तिक वास्तविकताओं को रचने की यह क़ाबिलियत मनुष्यों को दूसरे जीवों से अलग करने के साथ-साथ मानवविज्ञानों को भी जीवन सम्बन्धी विज्ञानों से अलग करती है। इतिहासकार देवताओं और राष्ट्रों जैसी अन्तरवैयक्तिक वास्तविकताओं के विकास को समझने की कोशिश करते हैं, वहीं जीवविज्ञानी इस तरह की चीज़ों के वजूद पर ध्यान तक नहीं देते। कुछ लोग मानते हैं कि अगर हम जनेटिक कोड को अन्दर से समझकर मस्तिष्क के हरेक न्यूरॉन का नक़्शा भर तैयार कर लें, तो हम मनुष्यता के सारे रहस्यों को समझ लेंगे। आख़िरकार, अगर मनुष्यों की कोई आत्मा नहीं होती, और अगर विचार, भावनाएँ और अनुभूतियाँ जैवरासायनिक ऐल्गरिदम मात्र हैं, तो जीवविज्ञान मानव

समाजों की सारी सनकों की जड़ तक क्यों नहीं जा सकता? इस परिप्रेक्ष्य से देखें तो, धर्मयुद्ध अधिकार-क्षेत्रों से ताल्लुक़ रखने वाले वे विवाद थे, जिनको विकासपरक दबावों ने आकार दिया था, और पवित्र भूमि में सलादीन से लड़ने गए अँग्रेज़ सूरमा उन भेड़ियों से अलग नहीं थे, जो अपने पड़ोसी के अधिकार-क्षेत्र पर क़ब्ज़ा करने की कोशिश करते हैं।

मानवविज्ञान, इसके विपरीत, उन अन्तरवैयक्तिक वास्तविकताओं के निर्णायक महत्त्व पर बल देते हैं, जिनको हार्मोनों और न्यूरॉनों में सरलीकृत नहीं किया जा सकता। ऐतिहासिक ढंग से सोचने का मतलब है हमारे कल्पित क़िस्सों की विषय-वस्तु को वास्तविक शक्ति से मण्डित करना। निश्चय ही, इतिहासकार जलवायु परिवर्तन और जनेटिक उत्परिवर्तन जैसे वस्तुनिष्ठ तथ्यों को नज़रअन्दाज़ नहीं करते, लेकिन वे उन क़िस्सों को कहीं ज़्यादा महत्त्व देते हैं, जिनको लोग गढ़ते हैं और जिनमें वे विश्वास करते हैं। उत्तर कोरिया और दक्षिण कोरिया एक-दूसरे से इस क़दर अलग इसलिए नहीं हैं कि प्योंगयांग के लोगों के जीन्स सिओल के लोगों के जीन्स से भिन्न हैं, या उत्तर ज़्यादा ठण्डा और पर्वतीय इलाक़ों से भरा है। वे दोनों इसलिए इतने अलग हैं, क्योंकि उत्तर पर बिल्कुल अलग तरह की कल्पनाओं का वर्चस्व है।

मुमकिन है कि किसी दिन न्यूरोबायोलॉजी की कोई नई खोज हमें कम्युनिज़्म और धर्मयुद्धों को पूरी तरह से जैवरासायनिक पदावली में समझने में सक्षम बना दे, लेकिन उस मुक़ाम से अभी हम बहुत दूर हैं। इक्कीसवीं सदी के दौरान इतिहास और जीवविज्ञान के बीच की सीमा-रेखा के धुँधला जाने की सम्भावना है, तो इसलिए नहीं कि हम ऐतिहासिक घटनाओं की जीववैज्ञानिक व्याख्याएँ खोज लेंगे, बल्कि इसलिए कि विचारधारात्मक कल्पनाएँ डीएनए की लड़ियों को संशोधित कर देंगी, राजनैतिक और आर्थिक हित जलवायु को नए सिरे से गढ़ देंगे, और पर्वतों तथा नदियों का भूगोल साइबर-स्पेस के सामने घुटने टेक देगा। जैसे-जैसे इंसानों के मनगढ़न्त क़िस्से (फ़िक्षन्स) जनेटिक और इलेक्ट्रॉनिक कोडों में रूपान्तरित होते जाएँगे, वैसे-वैसे अन्तरवैयक्तिक वास्तविकता वस्तुनिष्ठ वास्तविकता को निगलती जाएगी और जीवविज्ञान इतिहास में विलीन होता जाएगा। इस तरह इक्कीसवीं सदी में गल्प (फ़िक्षन) पृथ्वी का सबसे ज़्यादा प्रभावशाली बल बन जा सकता है, जो स्वच्छन्द एस्टोरॉइडों और प्रकृतिक वरण तक को पीछे छोड़ देगा। इसलिए अगर हम अपने भविष्य को समझना चाहते हैं, तो जीन-समूह की तह तक जाना और संख्याओं की संगणना करना पर्याप्त नहीं होगा। हमें उन मनगढ़न्त क़िस्सों की व्याख्या भी करनी होगी, जो दुनिया को अर्थ प्रदान करते हैं।

20. रचनाकार: अन्तःप्रेरणा के क्षण में जैक्सन पोलॉक।

भाग-II

दुनिया को अर्थ देता *होमो सेपियन्स*

मनुष्यों ने किस तरह की दुनिया की रचना की?

मनुष्यों के मन में यह विश्वास कैसे बैठ गया कि वे न सिर्फ़
दुनिया को नियन्त्रित कर सकते हैं, बल्कि उसको अर्थ भी प्रदान कर सकते हैं?

मानववाद - मानव जाति की उपासना - किस तरह
सबसे महत्त्वपूर्ण मज़हब बन गया?

4
कहानीकार

भेड़ियों और चिम्पांज़ियों जैसे जानवर दोहरी वास्तविकता में जीते हैं। एक ओर वे अपने से बाहर की वस्तुनिष्ठ सत्ताओं, जैसे कि वृक्षों, चट्टानों और नदियों से परिचित होते हैं। दूसरी ओर वे अपने अन्दर के व्यक्तिनिष्ठ अनुभवों, जैसे कि भय, आनन्द और आकांक्षा के प्रति सजग होते हैं। इसके विपरीत सेपियन्स एक त्रिस्तरीय वास्तविकता में जीते हैं। वृक्षों, नदियों, भयों और आकांक्षाओं के अतिरिक्त सेपियन्स की दुनिया में पैसों, देवताओं, राष्ट्रों और व्यापारिक प्रतिष्ठानों के बारे में क़िस्से भी शामिल होते हैं। इतिहास के विकसित होने के साथ-साथ देवताओं, राष्ट्रों और व्यापारिक प्रतिष्ठानों का प्रभाव नदियों, भयों और आकांक्षाओं की क़ीमत पर बढ़ता गया। दुनिया में अभी भी बहुत-सी नदियाँ हैं, और लोग अभी भी अपने भयों और इच्छाओं से प्रेरित होते हैं, लेकिन ईसा मसीह, फ़्रांसीसी गणराज्य और ऐपल इन्कॉर्पोरेटेड ने नदियों को अवरुद्ध किया है और जोता है, और हमारी गहनतम बेचैनियों तथा लालसाओं को आकार देना सीख लिया है।

चूँकि इस बात की सम्भावना है कि इक्कीसवीं सदी की नई प्रौद्योगिकियाँ ज़्यादातर गल्पों को और ज़्यादा शक्तिशाली बना देंगी, अपने भविष्य को समझने के लिए हमें यह समझना ज़रूरी है कि ईसा, फ़्रांस गणराज्य और ऐपल के क़िस्सों ने इस क़दर शक्ति कैसे हासिल कर ली। लोग सोचते हैं कि वे इतिहास का निर्माण करते हैं, लेकिन इतिहास वास्तव में क़िस्सों के जाल के इर्दगिर्द चक्कर लगाता है। स्वतन्त्र रूप में मनुष्यों की बुनियादी क़ाबिलियतों में पाषाण युग के समय से ही बहुत ज़्यादा बदलाव नहीं आया है। वस्तुतः, अगर उनमें कोई बदलाव आया भी है, तो वे शायद क्षीण ही हुई हैं, लेकिन क़िस्सों का जाल उत्तरोत्तर मज़बूत होता गया है, और इस तरह उसने इतिहास को धकेलकर पाषाण युग से सिलिकॉन युग तक पहुँचा दिया है।

इस सबकी शुरुआत 70,000 साल पहले हुई थी, जब संज्ञानात्मक क्रान्ति ने सेपियन्स को उन चीज़ों के बारे में बात करने में सक्षम बनाया, जिनका वजूद सिर्फ़ उनकी कल्पनाओं में हुआ करता था। बाद के 60,000 सालों में सेपियन्स ने बहुत सारे कल्पित जाल बुने, लेकिन ये सब छोटे और स्थानीय बने रहे। एक क़बीले द्वारा पूजी जाने वाली किसी श्रद्धेय पूर्वज की प्रेतात्मा के बारे में उसके पड़ोसियों को तनिक भी जानकारी नहीं होती थी, और किसी एक इलाक़े में बेशक़ीमती माने जाने वाली सीपियों का पास की पर्वत-शृंखला को पार कर, उसके दूसरी तरफ़ पहुँचते ही कोई मोल नहीं रह जाता था। पूर्वजों की प्रेतात्माओं और बेशक़ीमती सीपियों के क़िस्से तब भी सेपियन्स का बहुत ज़्यादा हित करते थे, क्योंकि वे सैकड़ों और कभी-कभी हज़ारों सेपियन्स को प्रभावशाली ढंग से परस्पर सहयोग करने की गुंजाइश देते थे, जो उससे बहुत बड़ी चीज़ थी, जो निएंडरथल या चिम्पांज़ी कर सके थे। तब भी जब तक सेपियन्स शिकारी-संग्रहकर्ता बने रहे, तब तक वे सच्चे अर्थों में अतिविशाल पैमाने पर आपसी सहयोग नहीं कर सके, क्योंकि शिकार और संग्रह के माध्यम से किसी नगर या राज्य का पेट भरना असम्भव काम था। नतीजतन, पाषाण युग की प्रेतात्माएँ, अप्सराएँ और दैत्य अपेक्षाकृत कमज़ोर हस्तियाँ हुआ करती थीं।

कृषि क्रान्ति की शुरुआत 12,000 साल पहले हुई, उसने अन्तरवैयक्तिक तन्त्र को विस्तार देने और मज़बूत बनाने के लिए ज़रूरी भौतिक आधार मुहैया कराया। खेती ने भीड़ भरे नगरों के हज़ारों लोगों और अनुशासित सेनाओं के हज़ारों सैनिकों का पेट भरना मुमकिन बना दिया, लेकिन अन्तरवैयक्तिक जालों को तब एक नई रुकावट का सामना करना पड़ा। सामूहिक कल्पनाओं (मिथकों) को सुरक्षित रखने और व्यापक जन-सहकार को संगठित करने के लिए शुरुआती दौर के किसान मानव-मस्तिष्कों की उन डेटा-प्रॉसेसिंग क़ाबिलियतों पर निर्भर करते थे, जो सर्वथा सीमित थीं।

किसान महान देवताओं के बारे में गढ़े गए क़िस्सों पर विश्वास करते थे। उन्होंने अपने प्रिय देवता के मन्दिर बनाए, उनके प्रति भक्ति प्रदर्शित करने के लिए त्यौहारों का आयोजन किया, उनके लिए बलिदान किए, और उनके लिए भूमियाँ, लगान और उपहार दिए। सुमेर के पहले नगरों में, लगभग 6,000 साल पहले, मन्दिर महज़ उपासना के केन्द्र नहीं हुआ करते थे, बल्कि सबसे महत्त्वपूर्ण राजनैतिक और आर्थिक गतिविधियों के केन्द्र भी हुआ करते थे। सुमेरियाई देवता, जो भूमिका निभाते थे, वह आधुनिक ब्राण्डों और व्यापारिक प्रतिष्ठानों द्वारा निभाई जाने वाली भूमिका से काफ़ी मिलती-जुलती थी। आज व्यापारिक प्रतिष्ठान वे कल्पित वैधानिक सत्ताएँ हैं, जिनके हाथ में सम्पत्ति का स्वामित्व होता है, जो पैसे उधार देती हैं, कर्मचारियों को नौकरी पर रखती हैं और आर्थिक उद्यमों की पहल करती हैं। उरुक, लागाश और शुरुपक के प्राचीन नगरों में देवता ऐसी वैधानिक सत्ताओं

की भूमिका निभाते थे, जिनके स्वामित्व में खेत और ग़ुलाम हो सकते थे, जो ऋण का लेन-देन कर सकती थीं, वेतनों का भुगतान कर सकती थीं और बाँध तथा नहरें बना सकती थीं।

चूँकि ये देवता अविनाशी थे, और चूँकि उनकी विरासत को लेकर झगड़ने के लिए उनके कोई बच्चे नहीं होते थे, इसलिए वे ज़्यादा से ज़्यादा सम्पत्ति और ताक़त एकत्र करते जाते थे। ऐसे सुमेरियाई लोगों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती गई, जिन्होंने पाया कि उनको देवताओं द्वारा रोज़गार मुहैया कराए जाते थे, वे देवताओं से क़र्ज़ लेते थे, देवताओं की ज़मीनें जोतते थे और देवताओं के प्रति करों और दशमांशों के देनदार होते थे। जिस तरह आज के सैन फ़्रांसिस्को में जॉन गूगल का कर्मचारी है और मैरी माइक्रोसॉफ़्ट के लिए काम करती है, उसी तरह प्राचीन उरुक में एक व्यक्ति एंकी देवता का कर्मचारी होता था, तो उसका पड़ोसी इनान्ना देवी के लिए काम करता था। एंकी और इनान्ना के मन्दिर के शिखर उरुक के आकाश में तने थे, और उनके अलौकिक लोगो इमारतों, उत्पादों और वस्त्रों के पहचान चिह्न हुआ करते थे। सुमेरियाइयों के लिए एंकी और इनान्ना उतने ही वास्तविक थे, जितने वास्तविक गूगल और माइक्रोसॉफ़्ट हमारे लिए हैं। ये सुमेरियाई देवता अपने पूर्वजों - पाषाण युग के प्रेतों और आत्माओं - की तुलना में बहुत ज़्यादा शक्तिशाली सत्ताएँ हुआ करते थे।

कहना न होगा कि ये देवता अपने कारोबार ख़ुद नहीं चलाते थे, इस सीधी-सादी वजह से कि मनुष्य की कल्पना के अलावा उनका और कहीं वजूद नहीं था। रोज़ाना की गतिविधियों की व्यवस्था मन्दिरों के पुरोहित देखते थे (जैसे कि गूगल और माइक्रोसॉफ़्ट को अपने कारोबारों का इन्तज़ाम देखने के लिए हाड़-मांस के इंसानों की ज़रूरत होती है), लेकिन जैसे-जैसे ये देवता ज़्यादा से ज़्यादा सम्पत्ति और शक्ति हासिल करते गए, उसको सँभालना पुरोहितों के लिए असम्भव होता गया। वे भले ही परम शक्तिशाली आकाश देवता और सर्वज्ञ पृथ्वी देवी का प्रतिनिधित्व कर चुके हों, लेकिन वे स्वयं तो दोषयुक्त नश्वर प्राणी थे। उनको यह याद करने में मुश्किल पेश आती थी कि कौन-सी जागीरें, बाग़ान और खेत इनान्ना देवी के थे, इनान्ना के किन कर्मचारियों को पगार मिल चुकी थी, देवी के कौन-से किरायेदारों ने अभी तक भाड़ा नहीं दिया था और देवी क़र्ज़दारों से किस दर पर ब्याज वसूल करती थीं। यह एक मुख्य वजह थी, जिससे सुमेर में, जैसे कि दुनियाभर में हर कहीं, मानवीय सहकार के तन्त्र कृषि क्रान्ति के हज़ारों साल बाद तक उल्लेखनीय विस्तार नहीं पा सके। कोई विशाल राजतन्त्र नहीं थे, व्यापार के दूर-दूर तक फैले कोई तन्त्र नहीं थे और कोई सार्वभौमिक मज़हब नहीं थे।

यह रुकावट अन्ततः लगभग 5,000 साल पहले दूर हुई, जब सुमेरियाइयों ने लेखन और पैसे, दोनों का आविष्कार किया। ये स्यामी जुड़वाँ एक ही समय में एक ही स्थान पर,

एक ही अभिभावक के यहाँ जन्मे थे, उन्होंने मानव मस्तिष्क की डेटा-प्रोसेसिंग की सीमाओं को तोड़ा। लेखन और पैसे ने सैकड़ों हज़ारों लोगों से महसूल वसूल करने की शुरुआत करना, जटिल क़िस्म की नौकरशाहियों को संगठित करना और विशाल राजतन्त्रों की स्थापना करना सम्भव बनाया। सुमेर में इन राजतन्त्रों का संचालन देवताओं के नाम पर इंसानी पुरोहित-राजाओं द्वारा किया जाता था। पड़ोस की नील घाटी में लोगों ने एक क़दम और आगे बढ़कर पुरोहित-राजा के साथ देवता को मिलाकर एक जीवित देवता - फ़ैरो - की रचना कर डाली।

मिस्र के लोग फ़ैरो को देवताओं का सहायक मानने की बजाय वास्तविक देवता मानते थे। सारा मिस्र इसी देवता का था, और सारी प्रजा को इसके आदेशों को मानना होता था और उन पर लगाए गए करों का भुगतान करना होता था। जिस तरह सुमेरियाई मन्दिरों में होता आया था, उसी तरह फ़ैरो के मिस्र में देवता अपने व्यापारिक साम्राज्य का संचालन स्वयं नहीं करता था। कुछ फ़ैरो क्रूरता के साथ हुकूमत करते थे, तो दूसरे थे, जो अपने दिन दावतों और जलसों में गुज़ारते थे, लेकिन दोनों ही मामलों में मिस्र के प्रशासन के संचालन का व्यावहारिक काम हज़ारों शिक्षित अधिकारियों के ज़िम्मे छोड़ दिया जाता था। किसी भी दूसरे इंसान की ही तरह फ़ैरो की जैविक ज़रूरतों, आकांक्षाओं और भावनाओं से युक्त एक जैविक काया थी, लेकिन इस जैविक फ़ैरो का उतना महत्त्व नहीं था। नील घाटी का वास्तविक शासक एक कल्पित फ़ैरो था, जो उन क़िस्सों में वास करता था, जिनको लाखों मिस्रवासी एक-दूसरे को सुनाते थे।

जहाँ फ़ैरो अपने महल में अंगूर चबाता और अपनी बीवियों तथा रखैलों के साथ रँगरेलियाँ मनाता राजधानी मेम्फ़िस में बैठा रहता था, वहीं फ़ैरो के अधिकारी भूमध्यसागरीय तट से लेकर न्यूबियाई रेगिस्तान तक पूरे राज्य में आवाजाही करते रहते थे। ये नौकरशाह उन करों का हिसाब रखते थे, जिनका भुगतान हर गाँव को करना होता था, उस हिसाब को भोजपत्र के खर्रों पर दर्ज़ करते थे और इन खर्रों को मेम्फ़िस भेज देते थे। जब फ़ौज में रंगरूटों की भर्ती करने या किसी निर्माण कार्य के लिए मज़दूरों की भर्ती करने का लिखित आदेश मेम्फ़िस से आता था, तो अधिकारी आवश्यक लोगों को इकट्ठा करते थे। वे हिसाब लगाते थे कि शाही अन्न- भण्डार में कितना गेहूँ भरा है, नहरों और जलाशयों की सफ़ाई में कितने दिन लगेंगे, और मेम्फ़िस में कितनी बतखें और सूअर भेजे जाएँ, ताकि फ़ैरो का हरम अच्छी तरह से भोजन कर सके। जब यह जीवित देवता मर जाता था, और उसके शव पर लेप लगाकर (एम्बाम कर) उसको भव्य शवयात्रा के साथ मेम्फ़िस के बाहर शाही क़ब्रिस्तान में ले जाया जा चुका होता था, तब भी नौकरशाही अपना काम करती रहती थी। अधिकारी खर्रे लिखते रहते थे, कर इकट्ठे करते रहते थे, आदेश भेजते रहते थे और फ़ैरोई मशीन के गियरों को चिकनाते रहते थे।

अगर सुमेरियाई देवता हमें आज के ज़माने के कम्पनी ब्रांडों की याद दिलाते हैं, तो उसी तरह उस साक्षात देवता फ़ैरो की तुलना एल्विस प्रेस्ले, मैडोना या जस्टिन बीबर जैसे आधुनिक व्यक्तिपरक ब्रांडों से की जा सकती है। फ़ैरो की तरह ही एल्विस प्रेस्ले बीसवीं सदी के एक सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक प्रतीक के रूप में प्रतिष्ठित थे। इस अमेरिकी गायक और अभिनेता को 'किंग' भी कहा जाता था, उसकी भी जैविक ज़रूरतों, आकांक्षाओं और भावनाओं से युक्त एक जैविक काया थी। एल्विस खाता और पीता और सोता था, लेकिन एल्विस एक जैविक काया होने से ज़्यादा कुछ था। फ़ैरो की ही तरह, एल्विस भी एक क़िस्सा, एक मिथक, एक ब्रांड था - और यह ब्रांड उस जैविक काया से कहीं ज़्यादा महत्त्वपूर्ण था। एल्विस के जीवन-काल के दौरान, इस ब्रांड ने रिकॉर्ड, टिकट, पोस्टर और स्वत्वाधिकार बेचकर लाखों डॉलर कमाए थे, लेकिन एक व्यक्ति के रूप में एल्विस द्वारा बहुत थोड़े-से ज़रूरी काम किए जाते थे। इसकी बजाय, इनमें से ज़्यादातर काम एजेंटों, वकीलों, निर्माताओं और सचिवों की एक छोटी-मोटी फ़ौज द्वारा निष्पादित किए जाते थे। नतीजतन, जब जैविक एल्विस नहीं रहा, तब भी ब्रांड के तौर पर उससे जुड़ा कारोबार चलता रहा। यहाँ तक कि आज भी उसके मुरीद किंग के पोस्टर ख़रीदते हैं, रेडियो स्टेशन रॉयल्टियों का भुगतान करते रहते हैं, और हर साल 5 लाख से ज़्यादा तीर्थयात्री मेम्फ़िस, टेनीसी में स्थित किंग के क़ब्रिस्तान ग्रेसलैंड में जमा होते हैं।

21. ब्रांड कोई आधुनिक आविष्कार नहीं है। एल्विस प्रेस्ले की ही तरह फ़ैरो भी एक जीवित प्राणी होने की बजाय एक ब्रांड हुआ करता था। लाखों अनुयायियों के लिए उसकी छवि उसकी हाड़-मांस की वास्तविकता से कहीं ज़्यादा अर्थ रखती थी, और लोग उसकी मृत्यु के बहुत सालां बाद तक उसकी उपासना करते रहे।

लेखन के आविष्कार से पहले क़िस्से मानव मस्तिष्कों की सीमित क्षमताओं से बँधे थे। आप ऐसे बहुत जटिल क़िस्से ईजाद नहीं कर सकते थे, जिनको लोग याद न रख सकते हों, लेकिन लेखन की मदद से आप सहसा अतिशय लम्बी और पेचीदा कहानियाँ गढ़ सकते थे, जिनको इंसानी दिमाग़ों की बजाय पट्टिकाओं या भोजपत्रों में संग्रहित कर रखा जा सकता था। मिस्र के किसी भी प्राचीन बाशिन्दे को फ़ैरो की सारी ज़मीनों, करों और लगानों की याद नहीं रहती थी, एल्विस प्रेस्ले ने कभी भी उन अनुबन्धों को नहीं पढ़ा था, जिन पर उसके नाम से हस्ताक्षर किए जाते थे, कोई भी जीवित इंसान यूरोपीय संघ के सारे नियमों और क़ानूनों से परिचित नहीं है, कोई बैंक मालिक या सीआईए का कोई भी एजेंट दुनिया के एक-एक डॉलर की खोज-ख़बर नहीं रखता, लेकिन ये सारी मामूली-से-मामूली बातें कहीं पर लिखी हुई हैं, और प्रासंगिक दस्तावेज़ों का संग्रह फ़ैरो, एल्विस, यूरोपीय संघ और डॉलर की पहचान और शक्ति को परिभाषित करता है।

लेखन ने इस तरह मनुष्यों को तमाम समाजों को ऐल्गरिदमिक ढंग से संगठित करने में सक्षम बनाया है। 'ऐल्गरिदम' पद से हमारा सामना उस वक़्त हुआ था, जब हमने यह समझने की कोशिश की थी कि भावनाएँ क्या हैं और मस्तिष्क किस तरह काम करते हैं, और तब हमने इसको सोपानों के उस व्यवस्थित ढाँचे के रूप में परिभाषित किया था, जिसका इस्तेमाल गणनाएँ करने, समस्याएँ सुलझाने और फ़ैसलों पर पहुँचने के लिए किया जा सकता है। अशिक्षित समाजों में लोग सारे हिसाब-किताब और फ़ैसले अपने दिमाग़ों में करते हैं। शिक्षित समाजों में लोगों को ऐसे ढाँचों में संगठित किया जाता है, जिसमें हर व्यक्ति किसी विशाल ऐल्गरिदम का एक छोटा-सा सोपान होता है, और महत्त्वपूर्ण फ़ैसले लेने का काम अपने समग्र रूप में यह ऐल्गरिदम करता है। नौकरशाही का मूल तत्त्व यही है।

उदाहरण के लिए एक आधुनिक अस्पताल के बारे में विचार करें। जब आप वहाँ पहुँचते हैं, तो रिसेप्शनिस्ट आपको एक निर्धारित फ़ॉर्म थमा देती है, और आपसे तयशुदा सवाल पूछती है। आपके जवाब एक नर्स के पास भेज दिए जाते हैं, जो यह निर्धारित करने के लिए कि आपकी कौन-सी प्राथमिक जाँचें कराई जाएँ, उन जवाबों का मिलान अस्पताल के नियमों से करती है। इसके बाद वह, मसलन, आपके रक्तचाप और दिल की धड़कनों की रफ़्तार को जाँचती है, और आपके ख़ून का सैम्पल लेती है। ड्यूटी पर मौजूद डॉक्टर शुरुआती परिणामों की जाँच करता है, और यह तय करने के लिए कि आपको किस वॉर्ड में दाख़िल किया जाए, वह सख़्त नियमावली का पालन करता है। उस वॉर्ड में आपकी और भी ज़्यादा विस्तृत जाँचें होती हैं, जैसे कि एक्स-रे, या एफ़एमआरआई स्कैन,

जिनका निर्देश चिकित्साविज्ञान की मोटी-मोटी मार्गदर्शी पुस्तकों में किया गया होता है। इसके बाद विशेषज्ञ डॉक्टर सुविदित सांख्यकीय डेटाबेसों के मुताबिक़ नतीजों का विश्लेषण कर यह निर्धारित करता है कि आपको कौन-सी दवाएँ दी जाएँ या आगे आपकी और कौन-सी जाँचें कराई जाएँ।

यह ऐल्गरिदमीय संरचना तय कर देती है कि इससे वाक़ई कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता कि रिसेप्शनिस्ट, नर्स या ड्यूटी पर मौजूद डॉक्टर कौन हैं। उनके व्यक्तित्व के रूप, उनकी राजनैतिक धारणाएँ और उनकी तात्कालिक मनःस्थितियाँ अप्रासंगिक होती हैं। जब तक वे नियमों और परिपाटियों का पालन करते रहते हैं, तब तक इस बात की पूरी सम्भावना बनी रहती है कि वे आपको चंगा कर देंगे। इस ऐल्गरिदमीय आदर्श के मुताबिक़, आपकी नियति 'व्यवस्था' ('सिस्टम') के हाथों में होती है, न कि उन हाड़-मांस के बने जीवों के, जो इस या उस पद पर काम कर रहे होते हैं।

जो बात अस्पताल के सन्दर्भ में सही है, वही सेनाओं, जेलों, स्कूलों, निगमों - और प्राचीन राजतन्त्रों के सन्दर्भ में भी सही है। बेशक, प्राचीन मिस्र प्रौद्योगिकी की दृष्टि से आधुनिक अस्पताल के मुक़ाबले बहुत कम परिष्कृत था, लेकिन ऐल्गरिदम का सिद्धान्त एक जैसा ही था। प्राचीन मिस्र में भी ज़्यादातर फ़ैसले किसी एक ज्ञानी आदमी द्वारा नहीं, बल्कि अधिकारियों के उस तन्त्र द्वारा लिए जाते थे, जो भोजपत्रों और पत्थरों पर उकेरी गई इबारतों की मार्फ़त आपस में जुड़ा था। साक्षात देवता फ़ैरो के नाम पर काम करते हुए इस तन्त्र ने मानव समाज का पुनर्गठन किया और क़ुदरत की दुनिया को नया आकार दिया। उदाहरण के लिए, सेनुसरेट III और उसके बेटे अमेनेमहत III नामक फ़ैरोओं, जिन्होंने ईसापूर्व 1878 से ईसापूर्व 1814 तक मिस्र पर राज किया था, ने नील नदी को फ़ेयुम घाटी से जोड़ने वाली एक विशाल नहर खुदवाई थी। बाँधों, जलाशयों और उप-नहरों के एक पेचीदा ताने-बाने ने नील के कुछ पानी को फ़ेयुम की तरफ़ मोड़ दिया, और इस तरह 130 खरब गैलन पानी की क्षमता वाली एक विशालकाय कृत्रिम झील को तैयार कर दिया। इसकी तुलना में, मीड झील नामक संयुक्त राज्य अमेरिका स्थित मानव-निर्मित सबसे बड़े जलाशय (जो हूवर बाँध से तैयार हुआ है) में 90 खरब गैलन पानी की क्षमता है।

फ़ेयुम अभियान्त्रिकी परियोजना ने फ़ैरो को नील नदी को नियन्त्रित करने, विनाशकारी बाढ़ों को रोकने और सूखे के दिनों में बेशक़ीमती जल-राहत मुहैया कराने की क्षमता प्रदान की थी। इसके अतिरिक्त, इसने फ़ेयुम घाटी को ऊसर रेगिस्तान से घिरे, मगरमच्छों से दूषित दलदल से मिस्र के अन्न-भण्डार में बदल दिया। इस नई कृत्रिम झील के तट पर शादेत नामक एक नया नगर बसाया गया, जिसको यूनानी लोग क्रोक्रोडायलोपोलिस, यानी मगरमच्छों का नगर कहते थे। इस नगर की सबसे प्रभावशाली

चीज़ उस मगरमच्छ देवता सोबेक का मन्दिर था, जिसको फ़ैरो के रूप में देखा जाता था (समकालीन मूर्तिशिल्प कभी-कभी फ़ैरो को मगरमच्छ का सिर धारण किए दर्शाते हैं)। इस मन्दिर में पेत्सुचोस नामक एक पवित्र मगरमच्छ रहा करता था, जिसको सोबेक का जीवित अवतार माना जाता था। जीवित देवता फ़ैरो की ही तरह इस जीवित देवता पेत्सुचोस की देखभाल भी वहाँ के पुरोहितों द्वारा की जाती थी, जो इस सौभाग्यशाली रेंगने वाले जन्तु को शानदार भोजन और खिलौने तक उपलब्ध कराते थे, और उसको सुनहरे लबादे और रत्नजटित मुकुट पहनाया करते थे। आख़िरकार, पेत्सुचोस इन पुरोहितों का ब्रांड था, और उनकी सत्ता तथा आजीविका उस पर निर्भर करती थी। जब पेत्सुचोस मर गया, तो उसकी जगह भरने के लिए तत्काल एक नए मगरमच्छ का चुनाव किया गया, वहीं उस मृत जन्तु का सावधानी-से लेपन करके उसकी ममी तैयार कर दी गई।

सेनुसरेट III और उसके बेटे अमेनेमहत III के ज़माने में मिस्रवासियों के पास न तो बुल्डोज़र हुआ करते थे न डायनामाइट। उनके पास तो लोहे के औज़ार, उपकरण या पहिये तक नहीं थे (पहिया मिस्र में लगभग ईसापूर्व 1500 तक आम इस्तेमाल में नहीं आया था)। काँसे के औज़ारों को उच्चतम प्रौद्योगिकी माना जाता था, लेकिन वे इतने मँहगे और दुर्लभ हुआ करते थे कि ज़्यादातर निर्माण-कार्य पत्थर और लकड़ी के औज़ारों से किया जाता था, जिनको इंसानों की हाथ की ताक़त से संचालित किया जाता था। बहुत-से लोग तर्क देते हैं कि प्राचीन मिस्र के महान निर्माण कार्य - सारे बाँध और जलाशय और पिरामिड - निश्चय ही पृथ्वी से बाहर की दुनिया के अजनबियों द्वारा किए गए होंगे, अन्यथा एक ऐसी संस्कृति, जिसके पास पहिये और लोहा तक नहीं था, इस तरह के विस्मयकारी काम कैसे कर सकती थी?

सच्चाई बहुत अलग है। मिस्रवासियों ने फ़ेयुम जलाशय और पिरामिडों का निर्माण पृथ्वी से बाहर की किसी इमदाद की बदौलत नहीं, बल्कि ज़बरदस्त संगठनपरक दक्षताओं के बूते पर किया था। हज़ारों शिक्षित नौकरशाहों पर निर्भर करते हुए फ़ैरो ने दसियों हज़ार मज़दूरों को नियुक्त किया था और सालों तक उनके भरण-पोषण के लिए पर्याप्त भोजन का इन्तज़ाम किया था। जब ये दसियों हज़ार मज़दूर कई दशकों तक आपसी सहयोग करते थे, तब जाकर वे पत्थर के औज़ारों तक से एक कृत्रिम जलाशय या एक पिरामिड का निर्माण कर पाते थे।

फ़ैरो निश्चय ही कभी एक अंगुली भी नहीं हिलाता था। वह ख़ुद कर संग्रह नहीं करता था, वह किसी स्थापत्य का नक़्शा तैयार नहीं करता था, और निश्चय ही उसने कभी कोई बेलचा या खुरपा नहीं उठाया था, लेकिन मिस्रवासियों का विश्वास था कि सिर्फ़ इस जीवित देवता फ़ैरो और उसके अलौकिक संरक्षक सोबेक की प्रार्थनाएँ ही नील घाटी को विनाशकारी बाढ़ों और सूखों से बचा सकती थीं। उनका मानना सही था। फ़ैरो और सोबेक

कल्पित सत्ताएँ थीं, जो नील के जल-स्तर को बढ़ाने-घटाने के लिए कुछ भी नहीं करते थे, लेकिन जब लाखों लोगों ने फ़ैरो और सोबेक में आस्था प्रकट की और इसलिए बाँधों का निर्माण करने तथा नहरें खोदने के लिए आपस में सहयोग किया, तो बाढ़ और सूखे विरली घटनाएँ हो गईं। पाषाण युग की आत्माओं की बात तो छोड़ ही दें, सुमेरियाई देवताओं की तुलना में भी प्राचीन मिस्र के देवता सच्चे अर्थों में शक्तिशाली सत्ताएँ थीं, जिन्होंने नगरों का निर्माण किया, फ़ौजें खड़ी कीं और लाखों इंसानों, गायों और मगरमच्छों की ज़िन्दगियों को नियन्त्रित किया।

कल्पित सत्ताओं को चीज़ों का निर्माण या नियन्त्रण करने का श्रेय देना विचित्र बात लग सकती है, लेकिन आजकल हम आदतन यह कहते हैं कि संयुक्त राज्य अमेरिका ने पहला परमाणु बम बनाया, चीन ने थ्री गॉर्जेज़ बाँध का निर्माण किया या यह कि गूगल स्वचालित कार तैयार कर रहा है। तब हम यह क्यों नहीं कहते कि फ़ैरो ने एक जलाशय का निर्माण किया था और सोबेक ने एक नहर खोदी थी?

काग़ज़ पर निर्भर जीवन

लेखन ने इस तरह उन शक्तिशाली कल्पित सत्ताओं के प्रादुर्भाव को आसान बना दिया, जिन्होंने लाखों लोगों को संगठित किया और नदियों, दलदलों और मगरमच्छों की वास्तविकता को नए सिरे से गढ़ा। इसी के साथ-साथ लेखन की वजह से इंसानों को इस तरह की कल्पित सत्ताओं में विश्वास करना भी आसान हो सका, क्योंकि इसने इंसानों को वास्तविकता को अमूर्त संकेतों के माध्यम से अनुभव करने का भी अभ्यस्त बनाया।

शिकारी-संग्रहकर्ता अपने दिन पेड़ों पर चढ़ने, मशरूम खोजने, और जंगली सूअरों तथा ख़रगोशों का पीछा करते हुए बिताते थे। किसान सारे दिन खेतों में काम करते थे, हल चलाते थे, फ़सलें काटते थे, मक्का पीसते थे और खेती के उपयोग में आने वाले जानवरों की देखभाल करते थे। अपने पैरों तले कीचड़-भरी ज़मीन का स्पर्श, हल खींचते बैलों की गन्ध, और चूल्हे से निकली ताज़ा गर्म रोटी का स्वाद उनकी रोज़मर्रा की वास्तविकताएँ थीं। इसके विपरीत प्राचीन मिस्र के लिपिक अपना ज़्यादातर समय पढ़ने, लिखने और हिसाब-किताब लगाने में बिताते थे। उनकी रोज़मर्रा की वास्तविकता भोजपत्र पर उभरते स्याही के उन निशानों से निर्मित थी, जो यह तय करते थे कि कौन किस खेत का मालिक है, एक बैल की क़ीमत क्या है और किसानों को सालाना कितने करों का भुगतान करना होगा। एक लिपिक अपनी क़लम के एक आघात मात्र से समूचे गाँव की नियति का फ़ैसला कर सकता था।

आधुनिक युग के आगमन तक विशाल बहुसंख्यक समाज निरक्षर बना रहा, लेकिन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रशासक वास्तविकता को उत्तरोत्तर लिखित इबारतों के माध्यम से

देखते रहे। इस शिक्षित अभिजात वर्ग के लिए - वह चाहे प्राचीन मिस्र का हो या बीसवीं सदी के यूरोप का हो - काग़ज़ पर लिखी कोई भी इबारत कम से कम उतनी ही वास्तविक थी, जितने वास्तविक पेड़, बैल या मनुष्य हैं।

1940 के वसन्त में, जब नाज़ी उत्तर की तरफ़ से फ़्रांस में घुसे, तो वहाँ की ज़्यादातर यहूदी आबादी ने देश छोड़ने के लिए दक्षिण की तरफ़ भागने की कोशिश की। सरहद पार करने के लिए उनको स्पेन और पुर्तगाल के वीज़ों की ज़रूरत पड़ी, और दूसरे शरणार्थियों की बाढ़ के साथ-साथ दसियों हज़ार यहूदियों ने काग़ज़ का वह जीवन-रक्षक टुकड़ा हासिल करने की ख़ातिर बोग़दू में पुर्तगाल के कॉन्सुलेट को घेर लिया। पुर्तगाल की सरकार ने अपने फ़्रांस स्थित राजदूत को विदेश मन्त्रलय की पूर्व स्वीकृति के बिना वीज़ा जारी करने से रोक दिया, लेकिन बोग़दू स्थित राजदूत अरिस्टिड्स डि सूज़ा मेंडिस ने इस आदेश की अवज्ञा करने का फ़ैसला करते हुए अपने तीस साल लम्बे कूटनीतिक जीवन को त्याग दिया। चूँकि नाज़ी टैंक बोग़दू के क़रीब पहुँच रहे थे, सूज़ा मेंडिस और उसके सहकर्मियों ने दस दिन और रात निरन्तर काम किया, जिस दौरान उन्होंने सोने के लिए भी विश्राम नहीं लिया, और वीज़ा जारी करते हुए काग़ज़ के टुकड़ों पर मुहरें लगाते रहे। सूज़ा मेंडिस ने थकान से चूर होकर गिरने तक हज़ारों की संख्या में वीज़ा जारी कर दिए।

22. अरिस्टिड्स डि सूज़ा मेंडिस, रबर की मुहर से युक्त देवदूत।

पुर्तगाल सरकार की इन शरणार्थियों को स्वीकार करने की कोई ख़ास इच्छा नहीं थी, उसने इस नाफ़रमान राजदूत को वापस लाने के लिए अपने एजेंट भेजे, और उसको विदेश विभाग की नौकरी से निकाल दिया। तब भी जिन अधिकारियों को इंसानों की दुर्दशा की कोई ख़ास परवाह नहीं थी, उनके मन में भी दस्तावेज़ों के प्रति गहरी श्रद्धा थी, और सूज़ा मेंडिस द्वारा आदेशों के विरुद्ध जारी किए गए वीज़ाओं का फ़्रांसीसी, स्पेनी और पुर्तगाली नौकरशाहों द्वारा समान रूप से सम्मान किया गया, और उन्होंने 30,000 लोगों को नाज़ियों के मौत के जाल से निकाल लिया। सूज़ा मेंडिस वह एकमात्र व्यक्ति था, जो यहूदियों के नर-संहार के दौरान किए गए इस सबसे बड़े मुक्ति अभियान के लिए अकेला ज़िम्मेदार था, वह मेंडिस, जो महज़ रबर की मुहर से हथियारबन्द था।

लिखित दस्तावेज़ों की पवित्रता का प्रायः बहुत कम सकारात्मक प्रभाव हुआ करता था। 1958 से 1961 तक, जब माओ त्से तुंग ने चीन को तेज़ी के साथ एक महाशक्ति में बदलना चाहा, तो साम्यवादी चीन ने प्रगति की दिशा में विशाल छलांग (ग्रेट लीप फ़ॉर्वर्ड) का बीड़ा उठाया। महत्त्वाकांक्षी औद्योगिक परियोजनाओं के लिए अतिरिक्त खाद्यान्न का इस्तेमाल करने के इरादे से माओ ने कृषि उत्पादों को दुगुना-तिगुना करने का आदेश दिया। माओ की ये असम्भव माँगें बीजिंग के सरकारी दृतरों से नौकरशाही की सीढ़ियाँ उतरकर, प्रान्तीय प्रशासकों से होती हुईं गाँव के मुखियाओं तक पहुँचीं। अपनी आलोचना को स्वर देने से भयभीत तथा अपने वरिष्ठों के कृपापात्र होने के इच्छुक स्थानीय अधिकारियों ने कृषि उत्पादों की नाटकीय बढ़ोत्तरी की काल्पनिक रिपोर्टें गढ़ डालीं। ये मनगढ़न्त संख्याएँ जब नौकरशाही के तन्त्र तक पहुँचीं, तो हर अधिकारी ने उनको और भी बढ़ा-चढ़ाकर पेश करते हुए अपनी क़लम से उन संख्याओं में यहाँ-वहाँ एक शून्य और जोड़ दिया।
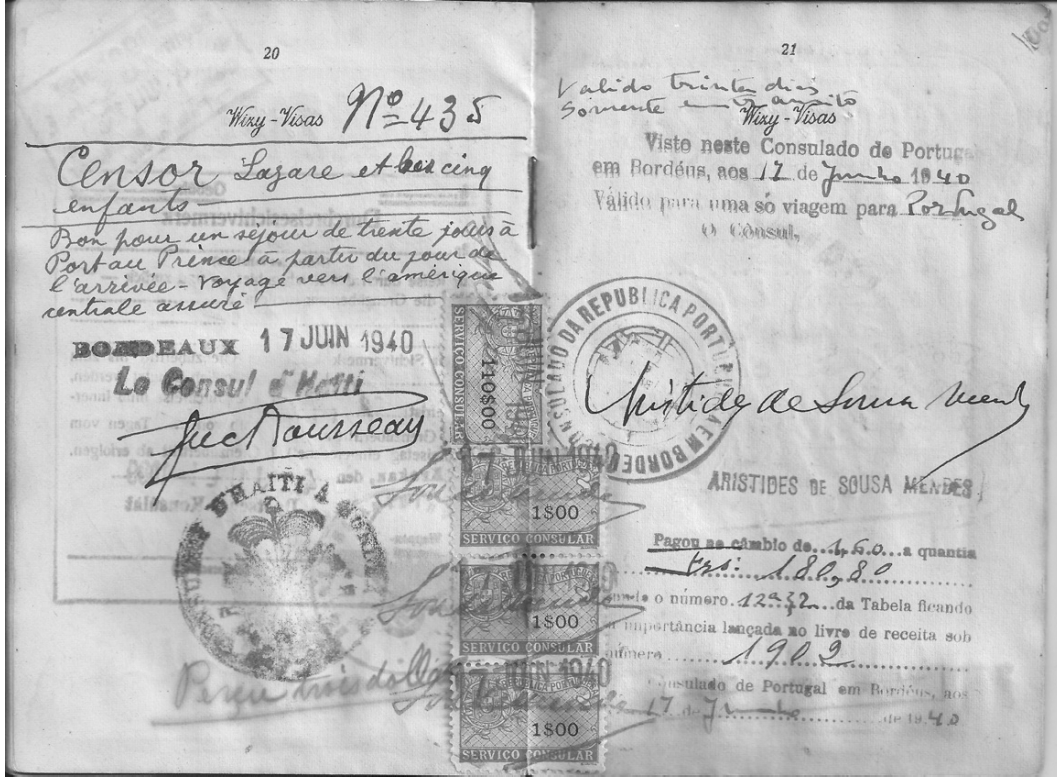
23. जून, 1940 में सूज़ा मेंडिस द्वारा हस्ताक्षरित हज़ारों जीवन-रक्षक वीज़ाओं में से एक वीज़ा (लेज़ारे सेंसोर और उसके परिवार के लिए 17 जून, 1940 को जारी वीज़ा रु1902)।

नतीजतन, 1958 में चीनी सरकार को खाद्यान्न के उत्पादन की वास्तविक मात्र से 50 प्रतिशत ज़्यादा उत्पादन होने के बारे में सूचित किया गया। इन रिपोर्टों पर विश्वास करते हुए सरकार ने दूसरे देशों के साथ हथियारों और भारी यन्त्रों का विनिमय करते हुए उनको लाखों टन चावल बेच दिया, यह मानकर कि इसके बाद भी चीनी आबादी की भोजन-आपूर्ति के लिए ढेरों चावल बचा हुआ रहेगा। इसका परिणाम इतिहास के सबसे बड़े दुर्भिक्ष और करोड़ों चीनियों की मौत के रूप में सामने आया।

इस बीच, चीन के कृषि सम्बन्धी चमत्कार की उत्साहवर्धक ख़बरें सारी दुनिया में फैल गईं। तंजानिया के आदर्शवादी राष्ट्रपति जूलियस न्येरेरे चीन की इस सफलता से गहरे प्रभावित हुए। तंजानियाई कृषि का आधुनिकीकरण करने के उद्देश्य से न्येरेरे ने चीन का आदर्श सामने रखते हुए सामूहिक खेती स्थापित करने का संकल्प कर लिया। जब किसानों ने इस योजना पर आपत्ति उठाई, तो न्येरेरे ने पारम्परिक गाँवों को नष्ट करने के लिए सेना और पुलिस भेज दी और सैकड़ों हज़ारों किसानों को बलपूर्वक नए सामूहिक खेतों में बसा दिया।

सरकारी प्रचार-तन्त्र ने इन खेतों को एक लघु स्वर्ग के रूप में चित्रित किया, लेकिन इनमें से ज़्यादातर खेतों का वजूद केवल सरकारी दस्तावेज़ों में ही था। राजधानी दार एस

सलाम में लिखे गए अनुबन्ध और रिपोर्टों का कहना था कि अमुक-अमुक तिथि को अमुक-अमुक गाँव के बाशिन्दों को अमुक-अमुक खेत में बसाया गया है। वास्तविकता यह थी कि जब ये ग्रामीण अपने गन्तव्य पर पहुँचे, तो उनको वहाँ पर कुछ नहीं मिला। न कोई मकान, न खेत और न कोई औज़ार। तब भी अधिकारियों ने ख़ुद को और राष्ट्रपति न्येरेरे को महान कामयाबी की सूचना दी। दरअसल, दस साल से भी कम समय में तंजानिया अफ़्रीका के सबसे बड़े निर्यातक देश से खाद्यान्न के एक ऐसे ख़ालिस आयातकर्ता में बदल गया, जो बिना बाहरी इमदाद के अपना पेट नहीं भर सकता था। 1979 में तंजानिया के 90 प्रतिशत किसान सामूहिक कृषि-भूमि में रह रहे थे, लेकिन वे देश के कुल कृषि उत्पाद का मात्र 5 प्रतिशत ही पैदा कर रहे थे।

हालाँकि, लेखन का इतिहास इस क़िस्म की दुर्घटनाओं से भरा हुआ है, लेकिन कहीं ज़्यादा दक्षतापूर्ण प्रशासन के लाभ, आमतौर से, कम से कम सरकार के सन्दर्भ में उसके लिए चुकाई गई क़ीमत से ज़्यादा साबित हुए हैं। कोई प्रशासक ऐसा नहीं हुआ, जो अपनी क़लम के एक आघात से वास्तविकता को उलट देने का लोभ संवरण कर सका हो, और अगर परिणाम विनाशकारी होते थे, तो उसका इलाज़ और भी भारी-भरकम ज्ञापन लिखने तथा ज़्यादा से ज़्यादा नियमावलियाँ और फ़रमान जारी करने में निहित देखा जाता था।

लिखित भाषा को भले ही वास्तविकता को चित्रित करने के एक विनम्र तरीक़े के रूप में देखा जाता रहा हो, लेकिन वह वास्तविकता को नए सिरे से गढ़ने का एक सशक्त तरीक़ा बनता गया। जब सरकारी रिपोर्टें वस्तुनिष्ठ वास्तविकता से टकराती थीं, तो अक्सर यह वास्तविकता होती थी, जिसे रास्ते से हटना पड़ता था। जिस किसी का कभी कर अधिकारियों से, शिक्षा-व्यवस्था या किसी अन्य जटिल नौकरशाही से वास्ता पड़ा है, वह जानता है कि सच्चाई कोई ख़ास मायने नहीं रखती। आपके फ़ॉर्म पर जो लिखा होता है, वह कहीं ज़्यादा महत्त्वपूर्ण होता है।

पवित्र पोथियाँ

क्या यह सही है कि जब इबारत और वास्तविकता का टकराव होता है, तब कभी-कभी वास्तविकता को रास्ते से हटना पड़ता है? क्या ये नौकरशाही व्यवस्थाओं पर बढ़ा-चढ़ाकर लगाया गया एक इल्ज़ाम भर नहीं है? ज़्यादातर नौकरशाह - फिर वे फ़ैरो की सेवा में लगे रहे हों या माओ त्से तुंग की - तर्कसंगत लोग हुआ करते थे, और उन्होंने निश्चय ही यह तर्क दिया होता: 'हम खेतों, नहरों और अन्न भण्डारों की वास्तविकता का चित्रण करने के लिए लेखन का इस्तेमाल करते हैं। अगर यह चित्रण सटीक होता है, तो हम उचित फ़ैसले लेते हैं। अगर यह चित्रण दोषपूर्ण होता है, तो वह अकालों और विद्रोहों तक की वजह बन जाता है। तब हम, या किसी भावी शासन-तन्त्र के प्रशासक, उस ग़लती से सीख लेते हैं,

और अधिक सच्चा चित्रण सामने लाने का प्रयत्न करते हैं। इसलिए यह तय है कि हमारे दस्तावेज़ उत्तरोत्तर और ज़्यादा सटीक होते जाएँगे'।

यह बात किसी हद तक सही है, लेकिन यह एक विपरीत ऐतिहासिक गति की उपेक्षा करती है। जैसे-जैसे नौकरशाहियाँ ताक़त इकट्ठा करती जाती हैं, वैसे-वैसे वे अपनी ग़लतियों के प्रभाव से मुक्त होती जाती हैं। उनके क़िस्से वास्तविकता के अनुरूप ढल सकें, इसके लिए अपने क़िस्सों को बदलने की बजाय वे वास्तविकता को ही बदल सकती हैं, ताकि वह उन क़िस्सों के अनुरूप ढल सके। अन्त में बाहरी वास्तविकता उनकी नौकरशाह फ़न्तासियों से मेल खाने लगती है, लेकिन सिर्फ़ इसलिए कि उन्होंने वास्तविकता को वैसा करने के लिए विवश किया होता है। उदाहरण के लिए, अनेक अफ़्रीकी देशों की सरहदें नदी-रेखाओं, पर्वत-शृंखलाओं और व्यापारिक मार्गों की अवज्ञा करती हैं, ऐतिहासिक और आर्थिक क्षेत्रों को अनावश्यक रूप से विभाजित करती हैं, और स्थानीय स्तर की नस्लीय और मज़हबी पहचानों की उपेक्षा करती हैं। एक ही क़बीला अपने को कई मुल्कों में बँटा हुआ पा सकता है, जबकि एक ही मुल्क असंख्य प्रतिद्वन्द्वी कुटुम्बों के टुकड़ों को समाहित किए हो सकता है। इस तरह की समस्याएँ दुनियाभर का सिरदर्द हैं, लेकिन अफ़्रीका में वे विशेष रूप से बहुत तीखी हैं, क्योंकि आधुनिक अफ़्रीकी सरहदें स्थानीय राष्ट्रों की आकांक्षाओं और संघर्षों को प्रतिबिम्बित नहीं करतीं। इन सरहदों को उन यूरोपीय नौकरशाहों द्वारा खींचा गया था, जिन्होंने अफ़्रीका में कभी क़दम नहीं रखा था।

उन्नीसवीं सदी के अन्तिम वर्षों में बहुत-सी यूरोपीय शक्तियों ने अफ़्रीकी अधिकार-क्षेत्रों पर अपने दावे जताए थे। इस डर से कि ये परस्पर विरोधी दावे एक सम्पूर्ण यूरोपीय युद्ध की दिशा ले सकते हैं, सम्बन्धित पक्ष 1884 में बर्लिन में एकत्र हुए और उन्होंने अफ़्रीका को इस तरह बाँट लिया, जैसे वह कोई केक हो। उस समय अफ़्रीका का ज़्यादातर अन्दरूनी भाग यूरोपीयों के लिए अज्ञात क्षेत्र था। अँग्रेज़ों, फ़्रांसीसियों और जर्मनों के पास अफ़्रीका के एकदम सही नक़्शे थे, और उनको इस बात की ठीक-ठीक जानकारी थी कि नाइज़र, कांगो और ज़ेम्बेज़ी नदियाँ महासागर में किन जगहों पर गिरती हैं, लेकिन उनको देश के भीतरी भागों में इन नदियों के मार्गों के बारे में, इनके तटों पर बसे राज्यों और जनजातियों के बारे में, और स्थानीय मज़हब, इतिहास और भूगोल की कोई ख़ास जानकारी नहीं थी। यह बात यूरोपीय कूटनीतिज्ञों के लिए कोई ख़ास मायने नहीं रखती थी। उन्होंने अफ़्रीका के एक आधे ख़ाली नक़्शे को बर्लिन की चिकनी मेज़ पर फैलाया, जहाँ-तहाँ कुछ रेखाएँ खींचीं, और इस महाद्वीप को अपने बीच बाँट लिया।

जब सही समय आने पर यूरोपीयों ने अपने निर्विवाद नक़्शे से लैस होकर अफ़्रीका के अन्दरूनी हिस्से को भेदा, तो उन्होंने पाया कि बर्लिन में खींची गईं कई सरहदें अफ़्रीका की भौगोलिक, आर्थिक और नस्लीय वास्तविकता के साथ बहुत कम न्याय करती थीं, लेकिन

नई तकरारों को टालने के लिए ये आक्रान्ता अपने समझौतों पर अडिग बने रहे, और ये कल्पित रेखाएँ यूरापीय उपनिवेशों की वास्तविक सरहदें बन गईं। बीसवीं सदी के दूसरे अर्द्ध के दौरान जैसे ही यूरोपीय साम्राज्यों का विघटन हुआ और उनके उपनिवेशों को स्वाधीनता प्राप्त हुई, तो इन नए देशों ने इन औपनिवेशिक सरहदों को स्वीकार कर लिया, क्योंकि उनको भय था कि अगर उन्होंने कोई दूसरा रास्ता अपनाया, तो उसका परिणाम अन्तहीन युद्धों और तकरारों के रूप में सामने आएगा। आज के अफ़्रीकी मुल्क जिन ज़्यादातर मुश्किलों का सामना कर रहे हैं, उनकी जड़ में यह तथ्य है कि उनकी सरहदें तर्कसंगत नहीं हैं। जब यूरोपीय नौकरशाहों की लिखित फ़न्तासियाँ अफ़्रीकी वास्तविकता से टकराईं तो वास्तविकता को आत्मसमर्पण करने के लिए विवश कर दिया गया।

हमारी आधुनिक शिक्षा-प्रणालियाँ लिखित दस्तावेज़ों के सामने वास्तविकता द्वारा घुटने टेक दिए जाने के असंख्य दूसरे उदाहरण पेश करती हैं। अपनी डेस्क की चौड़ाई को नापने के लिए जिस पैमाने का मैं इस्तेमाल कर रहा हूँ, वह कोई ख़ास मायने नहीं रखता। मेरी डेस्क की चौड़ाई जस-की-तस बनी रहती है, चाहे मैं कहूँ कि वह 200 सेंटीमीटर है या 78.74 इंच है, लेकिन जब नौकरशाही लोगों को मापती है, तो जिन पैमानों को वह चुनती है, तो उसका गम्भीर प्रभाव पड़ता है। जब स्कूलों ने लोगों का निश्चित संख्यावाचक श्रेणियों के मुताबिक़ आकलन करना शुरू किया, तो लाखों छात्रों और अध्यापकों की ज़िन्दगियाँ नाटकीय ढंग से बदल गईं। श्रेणियों का आविष्कार अपेक्षाकृत नया है। शिकारी-संग्रहकर्ताओं को कभी उनकी उपलब्धियों के लिए श्रेणियाँ प्रदान नहीं की जाती थीं, और कृषि क्रान्ति के हज़ारों साल बाद तक भी बहुत थोड़े-से सैक्षणिक संस्थान निश्चित श्रेणियों का इस्तेमाल करते थे। किसी प्रशिक्षार्थी मोची के लिए साल के अन्त में ऐसा कोई काग़ज़ का टुकड़ा प्राप्त नहीं होता था, जिसमें कहा जाता हो कि उसे जूते के फीते के लिए A ,लेकिन बकसुए के लिए C माइनॅस प्राप्त हुआ है। शेक्सपियर के ज़माने का स्नातक का विद्यार्थी सिर्फ़ दो सम्भावित परिणामों में से किसी एक परिणाम के साथ ऑक्सफ़ोर्ड से निकलता था - डिग्री के साथ, या डिग्री के बिना। एक छात्र के लिए अन्तिम अंक 74 और दूसरे छात्र के लिए अन्तिम अंक 88 देने के बारे में कोई नहीं सोचता था।
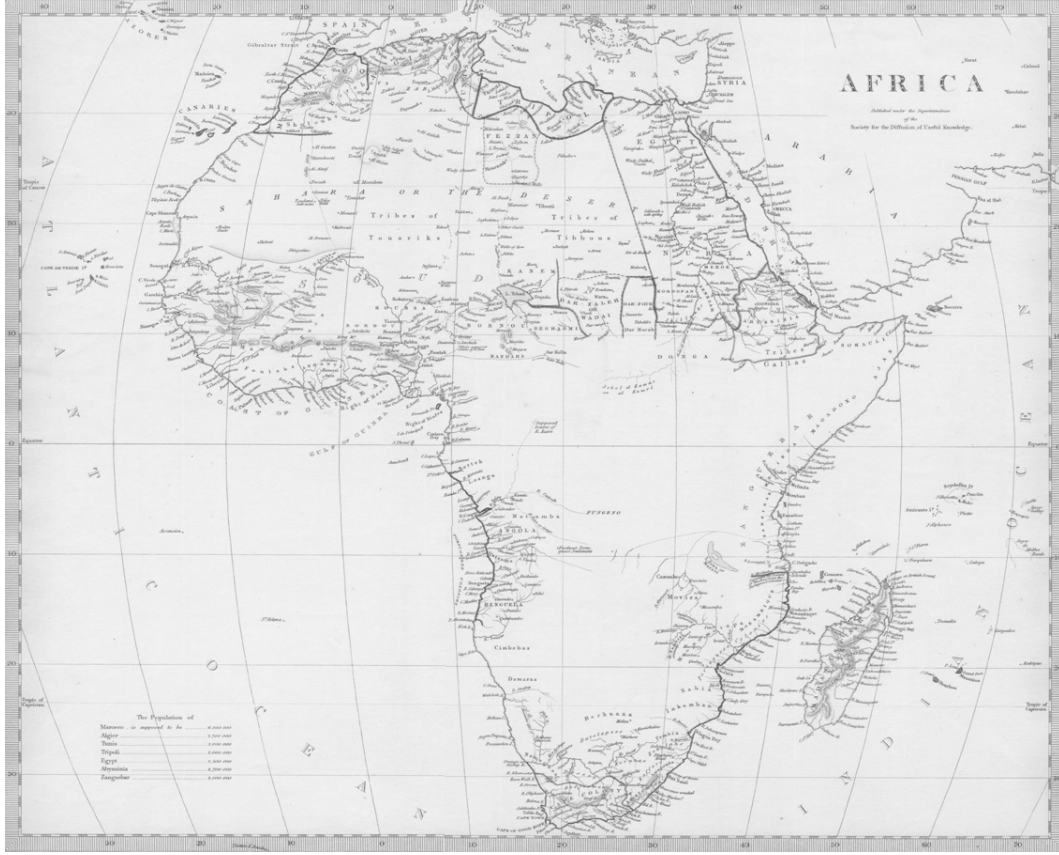
24. उन्नीसवीं सदी के मध्य में यूरोपीय देशों द्वारा तैयार अफ़्रीका का नक़्शा। यूरोपीय लोग अफ़्रीका के आन्तरिक इलाकों के बारे में ज़्यादा नहीं जानते थे, लेकिन इसके बावजूद वे इस महाद्वीप को बाँटने और सरहदों की रेखाएँ खींचने से रुके नहीं।

यह तो औद्योगिक युग की व्यापक शिक्षण-प्रणालियाँ थीं, जिन्होंने नियमित रूप से निश्चित अंकों/श्रेणियों के इस्तेमाल की शुरुआत की। जब फैक्ट्रियाँ और सरकारी मन्त्रलय अंकों की भाषा में सोचने के अभ्यस्त हो गए, तो उसके बाद ही स्कूलों ने इसका अनुसरण करना शुरू किया। उन्होंने हर विद्यार्थी की औसत श्रेणी के मुताबिक़ उसका मूल्य आँकना शुरू किया, वहीं हर अध्यापक और प्राचार्य के मूल्य का आकलन उस स्कूल के समग्र औसत के मुताबिक़ किया जाने लगा। जैसे ही नौकरशाहों ने इस मापदण्ड को अपनाया, वैसे ही वास्तविकता रूपान्तरित हो गई।

मूलतः स्कूलों से छात्रों को प्रबुद्धि और शिक्षित करने की अपेक्षा की गई थी, और अंक सफलता को आँकने के साधन मात्र हुआ करते थे, लेकिन यह पर्याप्त स्वाभाविक था कि स्कूलों ने अधिक अंक हासिल करने पर ध्यान केन्द्रित करना शुरू कर दिया। जैसा कि हर छात्र, अध्यापक और निरीक्षक जानता है कि इम्तिहान में ऊँचे अंक हासिल करने के लिए ज़रूरी दक्षताएँ वही नहीं होतीं, जो साहित्य, जीवविज्ञान या गणित की सच्ची समझ के लिए ज़रूरी होती हैं। हर छात्र, अध्यापक और निरीक्षक यह भी जानता है कि जब दोनों में

से किसी एक को चुनने का दबाव डाला जाएगा, तो ज़्यादातर स्कूल अंकों के पक्ष में जाएँगे।

पवित्र पोथियों के आविर्भाव के साथ लिखित दस्तावेज़ों की शक्ति अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गई। प्राचीन सभ्यताओं के पुरोहित और लिपिक दस्तावेज़ों को वास्तविकता की राह दिखाने वाली पुस्तिकाओं की तरह देखने के अभ्यस्त हो गए। शुरू में ये इबारतें उनको करों, खेतों और अन्न-भण्डारों की जानकारी देती थीं, लेकिन जैसे-जैसे नौकरशाही ताक़त हासिल करती गई, वैसे-वैसे इबारतें प्रभुत्व हासिल करती गईं। पुरोहित अब देवता की सम्पत्ति की ही सूची तैयार नहीं करते थे, बल्कि देवता के कार्यों, आदेशों और रहस्यों को भी दर्ज़ करने लगे। इसके नतीजे में जो पोथियाँ तैयार हुईं, वे वास्तविकता को उसकी समग्रता में चित्रित करने का दावा करने लगीं, और अध्येताओं की पीढ़ियाँ बाइबिल, क़ुरान या वेदों में सारे जवाबों की तलाश करने की अभ्यस्त होती गईं।

सैद्धान्तिक तौर पर, अगर कोई पवित्र ग्रन्थ वास्तविकता का ग़लत निरूपण करता है, तो उसके अनुयायी आगे-पीछे इस बात को पकड़ लेंगे, और उस ग्रन्थ की प्रामाणिकता ख़त्म हो जाएगी। अब्राहिम लिंकन ने कहा था, 'आप सारे समय हर किसी को धोखा नहीं देते रह सकते'। आह, इस तरह सोचना अच्छा लगता है, लेकिन व्यावहारिक तौर पर, इंसानी सहकार के तन्त्रों की शक्ति सत्य और कल्पना के बीच नाज़ुक सन्तुलन पर निर्भर करती है। अगर आप वास्तविकता को बहुत ज़्यादा विकृत कर देते हैं, तो वह आपको कमज़ोर कर देगी, और आप ज़्यादा स्पष्ट दृष्टि रखने वाले प्रतिद्वन्द्वियों से मुक़ाबला नहीं कर पाएँगे। दूसरी तरफ़, आप किन्हीं कल्पित मिथकों पर भरोसा किए बिना जन-समुदाय को प्रभावशाली ढंग से संगठित नहीं कर सकते। इसलिए अगर आप ख़ालिस वास्तविकता के प्रति अडिग बने रहते हैं, उसमें ज़रा भी कल्पना का मिश्रण किए बग़ैर, तो बहुत थोड़े-से लोग ही आपका अनुसरण करेंगे।

अगर आपने टाइम मशीन का इस्तेमाल कर किसी आधुनिक वैज्ञानिक को प्राचीन मिस्र में भेजा होता, तो वह स्थानीय पुरोहितों की कपोल-कल्पनाओं की पोल खोलकर और किसानों को विकासवाद, सापेक्षता-सिद्धान्त और क्वांटम मैकेनिक्स पर भाषण पिलाकर सत्ता हथियाने में कामयाब नहीं हुई होती। बेशक, अगर हमारी यह वैज्ञानिक कुछ राइफ़लें और तोपख़ाने का कुछ सामान तैयार करने में अपने ज्ञान का उपयोग कर पाती, तो निश्चय ही वह फ़ैरो और मगरमच्छ देवता सोबेक पर भारी पड़ सकती थी, लेकिन लौह अयस्क को खोद निकालने, भट्टी खड़ी करने और बारूद तैयार करने के लिए इस वैज्ञानिक को ढेर सारे मेहनती किसानों की ज़रूरत पड़ती। क्या आपको लगता है कि वह उनको यह बात समझाकर कि द्रव्य (mass) से विभाजित ऊर्जा वर्गाकार प्रकाश की गति के बराबर

होती है, वह उनको प्रेरित कर लेती? अगर आप ऐसा सोचते हैं, तो आज के अफ़गानिस्तान या सीरिया की यात्रा कर, वहाँ अपनी क़िस्मत आज़माने के लिए आपका स्वागत है।

सचमुच के शक्तिशाली मानवीय संगठन, जैसे कि फ़ैरो का मिस्र, यूरोपीय साम्राज्य और आधुनिक स्कूल प्रणाली आदि ज़रूरी नहीं कि स्पष्ट दृष्टि रखने वाले हों। उनकी ज़्यादातर शक्ति वश में की जा सकने वाली वास्तविकता पर अपने कल्पित विश्वासों को बलात् थोपने की उनकी क़ाबिलियत पर निर्भर करती है। पैसे की समूची धारणा ही, मसलन, यही है। सरकार काग़ज़ के निकम्मे टुकड़े तैयार करती है, उनको मूल्यवान घोषित करती है और फिर उनका इस्तेमाल तमाम दूसरी चीज़ों के मूल्य की गणना के लिए करती है। सरकार के पास शक्ति होती है, जिसके सहारे वह नागरिकों को विवश करती है कि वे करों का भुगतान करने के लिए इन टुकड़ों का इस्तेमाल करें, इसलिए नागरिकों के पास इनमें से कम से कम कुछ टुकड़ों को हथियाने के सिवाय और कोई विकल्प नहीं होता। नतीजतन, ये नोट वास्तव में मूल्यवान बन जाते हैं, सरकारी अधिकारी निरापद रूप से उन पर विश्वास कर सकते हैं, और चूँकि सरकार काग़ज़ी मुद्रा को जारी करने पर नियन्त्रण रखती है, उसकी शक्ति बढ़ती जाती है। अगर कोई व्यक्ति यह कहते हुए विरोध जताता है कि 'ये महज़ काग़ज़ के रद्दी टुकड़े हैं!' और उनको महज़ काग़ज़ के टुकड़े मान कर बरतता है, तो वह जीवन में बहुत कामयाब होने वाला नहीं है।

यही तब होता है, जब शिक्षा प्रणाली यह घोषणा कर देती है कि मैट्रिक के इम्तिहान छात्रों का मूल्यांकन करने की सबसे अच्छी विधि है। इस प्रणाली के पास कॉलेज में दाख़िले के मापदण्डों और सरकारी कार्यालयों तथा निजी क्षेत्र की नौकरियों में भर्ती के मापदण्डों को प्रभावित करने की पर्याप्त क्षमता होती है। इसलिए छात्र अच्छे अंक लाने की जी-जान से कोशिश करते हैं। सबसे ज़्यादा इच्छित पद उन लोगों द्वारा हथिया लिए जाते हैं, जिन्होंने अच्छे अंक प्राप्त किए होते हैं, जो स्वाभाविक ही उस प्रणाली के पक्षधर होते हैं, जो उनको वहाँ ले गई होती है। शिक्षा प्रणाली द्वारा इन निर्णायक इम्तिहानों को नियन्त्रित किए जाने का तथ्य इसको और भी शक्तिशाली बना देता है, और महाविद्यालयों, सरकारी कार्यालयों और रोज़गार की मण्डी पर इसके प्रभाव में वृद्धि करता है। अगर कोई व्यक्ति यह कहते हुए विरोध जताता है कि 'डिग्री सर्टिफ़िकेट तो महज़ काग़ज़ का एक टुकड़ा है!' और यही मानकर उसको बरतता है, तो वह अपनी ज़िन्दगी में बहुत कामयाब हो पाएगा, इसकी बहुत कम सम्भावना है।

पवित्र पोथियाँ भी इसी तरह की भूमिका निभाती हैं। मज़हबी संस्थान यह ढिंढोरा पीटते हैं कि पवित्र ग्रन्थ में हमारे सारे सवालों के जवाब मौजूद हैं। वह इसी के साथ-साथ अदालतों, सरकारों और व्यावसायिक प्रतिष्ठानों पर पवित्र ग्रन्थ में कही गई बातों के मुताबिक़ आचरण करने का दबाव डालता है। जब कोई अक़्लमन्द आदमी मज़हबी

पोथियों को पढ़ता है और फिर दुनिया की ओर नज़र दौड़ाता है, तो वह वाक़ई एक अच्छा सामंजस्य देखता है। 'पोथियाँ कहती हैं कि आपको ईश्वर के लिए लगान देना चाहिए - और देखिए, हर कोई लगान देता है। पोथियाँ कहती हैं कि औरतें मर्दों के मुक़ाबले में हीन होती हैं, और वे न्यायाधीषों की भूमिका नहीं निभा सकतीं या अदालत में गवाही तक नहीं दे सकतीं - और देखिए, सचमुच ही स्त्री न्यायाधीश नहीं हैं और अदालतें उनकी गवाही को अमान्य कर देती हैं। पोथियाँ कहती हैं कि जो भी कोई ईश्वर की वाणी का अध्ययन करेगा, तो वह अपने जीवन में कामयाब होगा - और देखिए, सारे अच्छे रोज़गार उन लोगों को मिले हुए हैं, जो पवित्र ग्रन्थ का गहरा ज्ञान रखते हैं'।

इस तरह का अक़्लमन्द आदमी स्वाभाविक ही पवित्र ग्रन्थ का अध्ययन करने लगेगा, और क्योंकि वह अक़्लमन्द है, वह आध्यात्मिक पण्डित बन जाएगा और न्यायाधीश के रूप में नियुक्त हो जाएगा। जब वह न्यायाधीश बन जाएगा, तो वह अदालत में स्त्रियों को गवाही नहीं देने देगा, और जब वह अपना उत्तराधिकारी चुनेगा, तो ज़ाहिर है वह किसी ऐसे व्यक्ति को ढूँढ निकालेगा, जिसको पवित्र ग्रन्थ का अच्छा ज्ञान होगा। अगर कोई व्यक्ति यह कहते हुए विरोध जताएगा कि 'यह ग्रन्थ तो महज़ काग़ज़ है!' तो ऐसा विधर्मी अपने जीवन में बहुत कामयाब नहीं हो पाएगा।

यहाँ तक कि जब मज़हबी पोथियाँ लोगों को वास्तविकता की सही प्रकृति के बारे में गुमराह करती हैं, तब भी वे अपनी प्रामाणिकता को हज़ारों सालों तक बनाए रखती हैं। उदाहरण के लिए, इतिहास के बारे में बाइबिल का बोध बुनियादी तौर पर त्रुटिपूर्ण है, तब भी वह समूची दुनिया में उसका प्रचार करने में कामयाब रही, और करोड़ों लोग अभी भी उसमें विश्वास करते हैं। बाइबिल ने इतिहास के एकदेववादी सिद्धान्त का प्रचार किया, और यह दावा किया कि दुनिया पर एक सर्वशक्तिमान देवता की हुकूमत है, जो सब कुछ से ऊपर सिर्फ़ मेरे बारे में और मेरे कर्मों के बारे में सोचता है। अगर कुछ अच्छा होता है, तो वह निश्चय ही मेरे सत्कर्मों का फल है। कोई भी विनाश निश्चय ही मेरे पापों की सज़ा होगी।

इस तरह प्राचीन यहूदी विश्वास करते थे कि अगर उनके यहाँ सूखा पड़ता था, या अगर बेबिलोनिया के राजा नेबुख़दनेज़र ने जूडिया पर आक्रमण कर उसकी प्रजा को निर्वासित कर दिया, तो निश्चय ही यह उनके अपने पापों के लिए ईश्वर द्वारा दी गई सज़ा थी। और अगर फ़ारस के राजा सायरॅस ने बेबिलोनियाइयों को पराजित कर दिया और निर्वासित यहूदियों को अपने घर लौटकर यरुशलम का पुनर्निर्माण करने की इजाज़त दे दी, तो इसका मतलब था कि दयालु ईश्वर ने उनकी पश्चाताप-भरी प्रार्थनाओं को सुन लिया था। बाइबिल इस सम्भावना को स्वीकार नहीं करती कि सूखा फिलीपिन्स में हुए ज्वालामुखीय विस्फोट का परिणाम हो सकता था कि नेबुख़दनेज़र ने बेबिलोनियाई वाणिज्यिक हितों की ख़ातिर आक्रमण किया हो सकता था और राजा सायरॅस के पास यहूदियों का पक्ष लेने की

अपनी वजहें हो सकती थीं। इसी के चलते बाइबिल वैश्विक पारिस्थितिकी को, बेबिलोनियाई अर्थव्यवस्था को या फ़ारस की राजनैतिक प्रणाली को समझने में किसी तरह की रुचि नहीं दर्शाती।

इस तरह अपने में ही डूबे रहना बचपन में तमाम मनुष्यों की ख़ासियत होती है। तमाम मज़हबों और संस्कृतियों से ताल्लुक़ रखने वाले बच्चे यही सोचते हैं कि वे दुनिया के केन्द्र में हैं, और इसलिए वे दूसरे लोगों की परिस्थितियों और भावनाओं में बहुत कम सच्ची दिलचस्पी दिखाते हैं। यही वजह है कि तलाक बच्चों के लिए बेहद दुखद और विचलित करने वाला अनुभव होता है। पाँच साल का बच्चा इस बात को समझ ही नहीं सकता कि किन्हीं ऐसी वजहों से कुछ महत्त्वपूर्ण घटित हो रहा है, जिनका ताल्लुक़ उससे नहीं हैं। उसके मम्मी और डैडी ने उससे कितनी ही बार यह क्यों न कहा हो कि वे स्वाधीन लोग हैं, जिनकी अपनी समस्याएँ और आकांक्षाएँ हैं, और उन्होंने उसकी वजह से तलाक नहीं लिया था - तब भी बच्चा इस बात को पचा नहीं पाता। उसको पक्का यक़ीन होता है कि जो कुछ भी होता है, उसकी वजह से ही होता है। बहुत सारे लोग इसी बालसुलभ भ्रम को लिए हुए बड़े होते हैं। एकेश्वरवादी मृत्युपर्यन्त इसी भ्रम से चिपके रहते हैं। उस बच्चे की तरह जो यह सोचता है कि उसके माँ-बाप उसकी वजह से लड़ रहे हैं, ऐकेश्वरवादी को भी यक़ीन होता है कि फ़ारसी बेबिलोनियाइयों से उसकी वजह से लड़ रहे हैं।

बाइबिल के युगों में भी कुछ संस्कृतियों में इतिहास का कहीं ज़्यादा सटीक बोध मौजूद था। जीववादी और बहुदेववादी मज़हबों ने दुनिया को किसी एक देवता की बजाय बहुत-सी अलग-अलग शक्तियों के क्रीड़ा-स्थल के रूप में चित्रित किया था। नतीजतन, जीववादियों और बहुदेववादियों के लिए यह स्वीकार करना आसान होता था कि बहुत-सी घटनाएँ हैं, जो मुझसे या मेरे देवता से सम्बन्ध नहीं रखतीं, और वे न तो मेरे पापों की सज़ा हैं और न ही मेरे सत्कर्मों का फल हैं। हरोडॅटस और थ्सूसीडिडीज़ जैसे यूनानी इतिहासकारों और साइमा चिएन जैसे चीनी इतिहासकारों ने इतिहास के ऐसे परिष्कृत सिद्धान्त विकसित किए थे, जो हमारे अपने आधुनिक दृश्कोिणों से काफ़ी मिलते-जुलते हैं। उन्होंने व्याख्या की थी कि युद्ध और क्रान्तियाँ बहुत सारे राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक कारणों से घटित होती हैं। लोग ऐसी वजहों से युद्ध के शिकार हो सकते हैं, जिनके पीछे उनकी कोई ग़लती नहीं होती। इसलिए, हरोडॅटस ने फ़ारसी राजनीति को समझने में गहरी रुचि ली, वहीं साइमा चिएन स्टेप के बर्बर समाज की संस्कृति और मज़हब में गहरी दिलचस्पी रखते थे।

आज के ज़माने के अध्येता बाइबिल की बजाय हरोडॅटस और साइमा चिएन से सहमति रखते हैं। यही वजह है कि सारे आधुनिक मुल्क दूसरे मुल्कों के बारे में जानकारी एकत्र करने, और दुनिया के पारिस्थितिकीय, राजनैतिक और आर्थिक रुझानों का

विश्लेषण करने में बहुत ज़्यादा उद्यम करते हैं। जब संयुक्त राज्य अमेरिका की अर्थव्यवस्था लड़खड़ाती है, तो ईसाई मज़हब में आस्था रखने वाले रिपब्लिकन तक अपने पापों की बजाय चीन की ओर अंगुली उठाते हैं।

भले ही हरोडॅटस और थ्यूसीडिडीज़ वास्तविकता को बाइबिल के लेखकों के मुक़ाबले ज़्यादा अच्छी तरह से समझते रहे हों, लेकिन जब दोनों विश्वदृष्टियाँ आपस में टकराईं, तो अन्तिम जीत बाइबिल की हुई। यहूदियों ने यूनानियों की इतिहास-दृष्टि को स्वीकार नहीं किया, बल्कि यूनानियों ने इतिहास की यहूदी-दृष्टि को स्वीकार कर लिया। थ्यूसीडिडीज़ के एक हज़ार साल बाद यूनानियों को यक़ीन हो गया कि अगर बर्बरों के किसी गिरोह ने आक्रमण किया, तो ये उनके अपने पापों के लिए ईश्वर द्वारा दी गई सज़ा थी। बाइबिल सम्बन्धी विश्व-दृष्टि चाहे कितनी ही ग़लत क्यों न रही हो, लेकिन इसने बड़े पैमाने के मानवीय सहकार के लिए बेहतर आधार सुलभ कराया।

वाक़ई, आज भी जब संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति अपने पद की शपथ लेते हैं, तो वे बाइबिल पर अपने हाथ रखते हैं। इसी तरह संयुक्त राज्य अमेरिका और इंग्लैंड समेत दुनियाभर के बहुत-से देशों में जब अदालतों में गवाह 'सच कहने और सच के सिवाय और कुछ न कहने' की कसम खाते हैं, तो वे भी बाइबिल पर अपने हाथ रखते हैं। यह विडम्बना ही कही जाएगी कि वे एक ऐसी पुस्तक के नाम पर सच बोलने की सौगन्ध खाते हैं, जो ढेरों कल्पनाओं, मिथकों और चूकों से लबालब भरी है।

लेकिन यह कारगर है!

गल्प हमें बेहतर ढंग से आपसी सहयोग करने में सक्षम बनाते हैं। इसके लिए जो क़ीमत हम चुकाते हैं, वह यह है कि यही गल्प हमारे परस्पर सहयोग के लक्ष्यों को भी निर्धारित कर देते हैं। इसलिए हमारे पास आपसी सहयोग के ऐसे विशाल तन्त्र हो सकते हैं, जो कल्पित लक्ष्यों और हितों को पूरा करने में लगे हों। नतीजतन, तन्त्र बहुत अच्छी तरह से काम करते लग सकता है, लेकिन तभी जब हम उस तन्त्र के अपने मापदण्ड को स्वीकार कर लेते हैं। उदाहरण के लिए, एक मुल्ला कहेगा, 'हमारा तन्त्र काम करता है। सारी दुनिया में 1.5 अरब मुसलमान हैं, और इनमें से ज़्यादातर लोग पहले से कहीं ज़्यादा क़ुरान पढ़ते हैं और ख़ुद को अल्लाह की मर्ज़ी पर नज़र कर देते हैं'। असल सवाल, हालाँकि, यह है कि क्या सफलता को मापने का यह सही पैमाना है। किसी स्कूल का प्राचार्य कहेगा, 'हमारा तन्त्र काम करता है। पिछले पाँच सालों के दौरान, परीक्षा-परिणामों में 7.3 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हुई है'। लेकिन क्या यह किसी स्कूल को जाँचने-परखने का सबसे अच्छा तरीक़ा है? प्राचीन मिस्र का कोई अधिकारी कहता, 'हमारा तन्त्र काम करता है। हम ज़्यादा से ज़्यादा कर वसूलते हैं, ज़्यादा से ज़्यादा नहरें खोदते हैं, और इतने बड़े पिरामिड खड़े करते

हैं, जितने दुनिया में किसी ने भी खड़े नहीं किए’। यह बात काफ़ी हद तक सही है कि फ़ैरो का मिस्र दुनिया को कराधान, सिंचाई और पिरामिड निर्माण की ओर ले गया था, लेकिन क्या यह चीज़ वाक़ई महत्त्व रखती है?

लोगों की बहुत-सी भौतिक, सामाजिक और मानसिक ज़रूरतें हो सकती हैं। यह बात क़तई स्पष्ट नहीं है कि प्राचीन मिस्र के लोग अपने शिकारी-संग्रहकर्ता पूर्वजों के मुक़ाबले प्रेम या बेहतर सामाजिक रिश्तों में दिलचस्पी लेते थे या नहीं, और पोषण, स्वास्थ्य और बाल मृत्यु के मामले में ऐसा लगता है कि उनका जीवन कहीं बदतर था। अमेनेमहत III (वह फ़ैरो, जिसने फ़ेयुम झील का निर्माण कराया था) के शासन-काल का ईसापूर्व 1850 का एक दस्तावेज़ दुआ खिती नामक एक सम्पन्न आदमी के बारे में बताता है, जो अपने बेटे पेपी का स्कूल में दाख़िला कराने ले गया, ताकि वह पढ़-लिखकर लिपिक बन सके। जब वे स्कूल के रास्ते में थे, तब दुआ खिती ने पेपी का पूरा ध्यान पढ़ाई-लिखाई में लगाने के लिए प्रोत्साहित करने और इस तरह ज़्यादातर मनुष्यों की दुखद नियति से छुटकारा पाने के उद्देश्य से उसके सामने किसानों, मज़दूरों, सैनिकों और कारीगरों की दर्दनाक ज़िन्दगी का बयान किया।

दुआ खिती के मुताबिक़, एक भूमिहीन खेतिहर मज़दूर की ज़िन्दगी मुश्किलों और तकलीफ़ों से भरी होती है। महज़ चिथड़े पहने हुए वह हाथों में फफोले आ जाने तक पूरे दिन काम करता है, फिर फ़ैरो के अधिकारी आकर उसे बलात् मज़दूरी करने के लिए ले जाते हैं। अपनी इस बेहद कड़ी मेहनत के बदले वह मज़दूरी के तौर पर बीमारी ही हासिल करता है। अगर वह किसी तरह ज़िन्दा बने रहकर लौट आए, तब भी वह पूरी तरह दुर्बल और जर्जर हो चुका होता है। जिस किसान के पास ज़मीन होती है, उनकी नियति भी कोई ख़ास अच्छी नहीं होती। वह पूरा दिन नदी से बाल्टियों में पानी ढोकर खेत में लाता रहता है। इस भारी बोझ से उसके कन्धे झुक जाते हैं और उसकी गर्दन मवाद भरी सूजन से फूल जाती है। सुबह-सुबह उसको अपने प्याज़ के खेत की सिंचाई करनी पड़ती है, दोपहर बाद खजूरों की और शाम को धनिया के खेत की। अन्ततः वह ढह जाता है और मर जाता है। यह मज़मून स्थितियों को इरादतन बढ़ा-चढ़ाकर पेश कर रहा हो सकता है, लेकिन बहुत ज़्यादा नहीं। फ़ैरो का राज्य अपने ज़माने का सबसे शक्तिशाली राज्य था, लेकिन एक साधारण किसान के लिए इस सारी शक्ति का मतलब था कर और बलात् मज़दूरी, न कि चिकित्सालय और सामाजिक सुरक्षा सम्बन्धी सेवाएँ।

यह खोट मिस्र के सन्दर्भ में ही अनूठा नहीं था। चीनी राजवंशों, मुस्लिम साम्राज्यों और यूरोपीय राजतन्त्रों की विपुल उपलब्धियों के बावजूद, 1850 ईस्वी में भी एक औसत इंसान का जीवन आदिम शिकारी-संग्रहकर्ताओं से बेहतर नहीं था - और वह दरअसल बदतर ही रहा हो सकता था। 1850 में एक किसान या मैन्चेस्टर फैक्ट्री का मज़दूर अपने

शिकारी-संग्रहकर्ता पूर्वजों के मुक़ाबले कहीं ज़्यादा समय तक काम करता था, उनके काम ज़्यादा कठोर परिश्रम से भरे और मानसिक तौर पर कम सन्तोष देने वाले थे, उनका आहार कम सन्तुलित था, उनकी स्वास्थ्यपरक परिस्थितियाँ अतुलनीय रूप से बदतर थीं, और संक्रामक बीमारियाँ बहुत आम हुआ करती थीं।

कल्पना कीजिए कि आपको छुट्टियाँ मनाने के लिए इन दो पैकेजों में से किसी एक का चयन करने को कहा जाता है:

पाषाण युग पैकेज: पहले दिन हम दस घण्टों तक एक प्राचीन जंगल की पदयात्रा करेंगे, और रात में नदी किनारे की एक खुली जगह में पड़ाव डालेंगे। दूसरे दिन हम डोंगी में सवार होकर दस घण्टे तक नदी की सैर करेंगे, और एक छोटी-सी झील के तट पर पड़ाव डालेंगे। तीसरे दिन हम वहाँ के मूल निवासियों से झील से मछलियाँ पकड़ना और पास के जंगल में जाकर मशरूम तलाशना सीखेंगे।

आधुनिक सर्वहारा पैकेज: पहले दिन हम प्रदूषित कपड़ा मिल में दस घण्टे तक काम करेंगे, और एक ठसाठस भरे अपार्टमेंट ब्लॉक में रात गुज़ारेंगे। दूसरे दिन हम स्थानीय डिपार्टमेंट स्टोर में कैशियरों के रूप में काम करेंगे, और फिर रात को उसी अपार्टमेंट ब्लॉक में सोने जाएँगे। तीसरे दिन हम स्थानीय लोगों से बैंक खाता खोलना और गिरवी के फ़ार्म भरना सीखेंगे।

आप इनमें से कौन-सा पैकेज चुनेंगे?

इस तरह जब हम इंसानी सहकार के तन्त्रों का मूल्यांकन करने बैठते हैं, तो सब कुछ इस पर निर्भर करता है कि हम कौन-से मापदण्ड और दृष्टिकोण अपनाते हैं। क्या हम फ़ैरो के ज़माने के मिस्र का मूल्यांकन उत्पादन, पोषण या शायद सामाजिक समरसता की पदावली में कर रहे हैं? क्या हम अभिजात वर्ग, साधारण किसानों, या सूअरों और मगरमच्छों पर अपना ध्यान केन्द्रित करते हैं? इतिहास कोई एकल आख्यान नहीं है, बल्कि कई वैकल्पिक आख्यानों का मेल है। जब भी कभी हम बयान करने के लिए कोई एक आख्यान चुनते हैं, तब हम दूसरे आख्यानों का मुँह बन्द करने का चयन भी कर रहे होते हैं।

इंसानी सहकार के तन्त्र सामान्यतः ख़ुद को अपने ही द्वारा ईजाद मापदण्डों के आधार पर परखते हैं, और आश्चर्य की बात नहीं कि वे अक्सर ख़ुद को ऊँची श्रेणी में रखते हैं। ख़ासतौर से, देवताओं, राष्ट्रों और कॉर्पोरेशन्स जैसी कल्पित सत्ताओं के नाम पर खड़े किए गए इंसानी तन्त्र सामान्यतः अपनी सफलता को इसी कल्पित सत्ता के दृष्टिकोण से परखते हैं। मज़हब तभी कामयाब होता है, जब वह दैवीय निर्देशों का अक्षरशः पालन करता है, राष्ट्र तभी गौरव हासिल करता है, जब वह राष्ट्रीय हित को बढ़ावा देता है, और एक कॉर्पोरेशन तभी उन्नति करता है, जब वह भरपूर पैसा कमाता है।

इसलिए जब आप किसी भी इंसानी तन्त्र का परीक्षण कर रहे हों, तो उचित है कि आप समय-समय पर ठहरकर चीज़ों को किसी वास्तविक सत्ता के परिप्रेक्ष्य से देखें। कोई सत्ता वास्तविक है, इसे आप कैसे समझेंगे? बहुत आसान है - ख़ुद से पूछिए, 'क्या वह दुख झेल सकती है?' जब लोग ज़्यूज़ के देवालय को जला देते हैं, तब ज़्यूज़ को कोई दुख नहीं झेलना पड़ता। जब यूरो अपना मूल्य खो देता है, तब यूरो को दुख नहीं झेलना पड़ता। जब कोई मुल्क लड़ाई में हार जाता है, तब वाक़ई वह मुल्क कोई दुख नहीं झेलता। ये महज़ एक रूपक है। इसके विपरीत, जब कोई सिपाही किसी लड़ाई में घायल हो जाता है, वह सचमुच तकलीफ़ झेलता है। जब अकाल की शिकार किसी किसान स्त्री के पास खाने के लिए कुछ नहीं होता, तब वह तकलीफ़ भोगती है। जब किसी गाय को उसके नवजात बछड़े से अलग कर दिया जाता है, तब वह दुखी होती है। वास्तविकता यह है।

निश्चय ही दुख कल्पनाओं में हमारे विश्वास की वजह से उत्पन्न हो सकता है। उदाहरण के लिए, किसी राष्ट्रीय या मज़हबी मिथक में विश्वास युद्ध का कारण बन सकता है, जिसकी वजह से लाखों लोग अपने घर, अपने अंग और अपनी ज़िन्दगियाँ तक गँवा सकते हैं। युद्ध की वजह काल्पनिक है, लेकिन उससे पैदा होने वाली तकलीफ़ें 100 प्रतिशत वास्तविक हैं। यही वजह है कि हमें कल्पना को यथार्थ से अलग करने की कोशिश करनी चाहिए।

कल्पना बुरी बात नहीं होती, बल्कि यह अहम है। पैसा, राज्य और कॉर्पोरेशन्स जैसे सामान्य रूप से स्वीकार्य कल्पनाओं के बिना कोई भी इंसानी समाज टिका नहीं रह सकता। हम तब तक फुटबॉल नहीं खेल सकते, जब तक कि हम में से हर कोई खेल के गढ़े गए नियमों में विश्वास नहीं करता, और हम इसी तरह के गढ़े हुए क़िस्सों के बिना अदालतों और बाज़ारों के लाभ नहीं उठा सकते, लेकिन क़िस्से महज़ उपकरण हैं। उनको हमारे लक्ष्य या मापदण्ड नहीं बन जाना चाहिए। जब हम यह भूल जाते हैं कि वे महज़ कल्पनाएँ हैं, तो हम वास्तविकता के साथ अपना सम्पर्क खो देते हैं। तब हम 'व्यापारिक प्रतिष्ठान के लिए ढेर सारा पैसा कमाने की ख़ातिर' या 'राष्ट्रीय हित की रक्षा' की ख़ातिर, समूचे युद्धों की शुरुआत कर सकते हैं। व्यावसायिक प्रतिष्ठानों, पैसे और राष्ट्रों का वजूद सिर्फ़ हमारी कल्पना में होता है। हमने इनको इसलिए ईजाद किया था, ताकि ये हमारे काम आ सकें, हम ख़ुद को ऐसी स्थिति में क्यों पाएँ, जहाँ हम इनके काम आते हुए अपने जीवन का बलिदान कर रहे हों?

इक्कीसवीं सदी में हम पिछले किसी भी युग के मुक़ाबले और भी ज़्यादा शक्तिशाली गल्प तथा और भी ज़्यादा सर्वसत्तावादी मज़हबों की रचना करेंगे। जैवप्रौद्योगिकी और कम्प्यूटर ऐल्गरिदमों की मदद से ये मज़हब न सिर्फ़ हमारे हर मिनट के अस्तित्व को नियन्त्रित करेंगे, बल्कि वे हमारी कायाओं, मस्तिष्कों और मानसों को आकार देने में, और

नर्कों और स्वर्गों से भरी समूची आभासी दुनियाएँ रचने में भी सक्षम होंगे। ऐसी दशा में गल्प को वास्तविकता और मज़हब को विज्ञान से अलग करने में सक्षम होना और भी ज़्यादा मुश्किल हो जाएगा, लेकिन यह किसी भी वक़्त के मुक़ाबले ज़्यादा अनिवार्य भी होगा।

5
विषम जोड़ा

क़िस्से मानव समाजों की बुनियादों और स्तम्भों की भूमिका निभाते हैं। जैसा इतिहास बताता है कि देवताओं, राष्ट्रों और व्यापारिक प्रतिष्ठानों के बारे में गढ़े गए क़िस्से इतने शक्तिशाली होते गए कि उन्होंने वस्तुनिष्ठ वास्तविकता को नियन्त्रित करना शुरू कर दिया। महान देवता सोबेक, जन्नत के परवाने या बाइबिल ने लोगों को फ़ेयुम झील, ग्रेट वॉल ऑफ़ चाइना और शार्त्रे कैथेड्रल का निर्माण करने में सक्षम बनाया। बदक़िस्मती से इन क़िस्सों में अन्धविश्वास का अर्थ था कि मानवीय उद्यम वास्तविक चेतन प्राणियों की बजाय प्रायः देवताओं और राष्ट्रों जैसी कल्पित सत्ताओं की महिमा बढ़ाने पर केन्द्रित रहा।

क्या यह विश्लेषण आज के सन्दर्भ में भी सही है? पहली निगाह में, ऐसा लगता है कि आधुनिक समाज प्राचीन मिस्र या मध्ययुगीन चीन के राजतन्त्रों के मुक़ाबले बहुत भिन्न है। क्या आधुनिक विज्ञान ने इंसानी खेल के बुनियादी नियमों को बदल नहीं दिया है? क्या यह कहना सही नहीं होगा कि पारम्परिक मिथकों के अब भी जारी महत्त्व के बावजूद, आधुनिक सामाजिक व्यवस्थाएँ निरन्तर विकासवाद के सिद्धान्त जैसे वस्तुनिष्ठ वैज्ञानिक क़िस्सों पर निर्भर करती गई हैं, जिनका प्राचीन मिस्र या मध्ययुगीन चीन में कोई नामोनिशान नहीं था?

बेशक हम तर्क दे सकते हैं कि वैज्ञानिक सिद्धान्त नई तरह के मिथक हैं, और यह कि विज्ञान में हमारा विश्वास महान देवता सोबेक में प्राचीन मिस्रवासियों के विश्वास से भिन्न नहीं है, लेकिन यह तुलना सही नहीं है। सोबेक का अस्तित्व सिर्फ़ उसके भक्तों की सामूहिक कल्पना में था। यह सही है कि सोबेक की प्रार्थनाओं ने मिस्र की सामाजिक व्यवस्था को मज़बूती प्रदान करने में मदद की और इस तरह लोगों को उन बाँधों और नहरों

का निर्माण करने में सक्षम बनाया, जिन्होंने बाढ़ों और सूखों से उनकी रक्षा की, लेकिन स्वयं इन प्रार्थनाओं ने नील नदी के जल-स्तर को ज़रा भी बढ़ाया या घटाया नहीं था। इसके विपरीत, वैज्ञानिक सिद्धान्त महज़ लोगों को आपस में जोड़ने का एक तरीक़ा मात्र नहीं हैं। अक्सर कहा जाता है कि ईश्वर उनकी मदद करता है, जो ख़ुद उद्यम करते हैं। यह गोलमोल ढंग से यह कहने के बराबर है कि ईश्वर का अस्तित्व नहीं है, लेकिन अगर उसमें हमारी आस्था हमें ख़ुद कुछ करने के लिए प्रेरित करती है, तो वह मददगार होता है। ईश्वर से भिन्न, एंटीबायोटिक्स उन लोगों की भी मदद करते हैं, जो ख़ुद कोई उद्यम नहीं करते। वे आपको संक्रमण से छुटकारा दिलाते हैं, भले ही आप उनमें विश्वास करें या न करें।

नतीजतन, आधुनिक दुनिया पूर्व-आधुनिक दुनिया से बहुत अलग है। मिस्र के फ़ैरो और चीन के सम्राट हज़ारों साल तक कोशिश करने के बावजूद अकाल, महामारी और युद्ध पर विजय पाने में नाकामयाब रहे थे। आधुनिक समाजों ने यह कुछ ही सदियों में कर लिया। क्या यह वस्तुनिष्ठ वैज्ञानिक ज्ञान के पक्ष में अन्तरव्यक्तिनिष्ठ मिथकों को त्याग देने का सुफल नहीं है? और क्या हम आने वाले दशकों में इस प्रक्रिया के और तेज़ होने की उम्मीद नहीं कर सकते? जैसे ही प्रौद्योगिकी हमें मनुष्यों को उन्नत करने, बुढ़ापे पर विजय प्राप्त करने और सुख की कुंजी खोजने में सक्षम बना देती है, वैसे ही क्या लोग कल्पित देवताओं, राष्ट्रों और निगमों की परवाह करना कम नहीं कर देंगे, और इसकी बजाय भौतिक और जैविक वास्तविकता को समझने में अपना ध्यान नहीं लगाएँगे?

ऐसा लग सकता है, लेकिन स्थितियाँ वस्तुतः कहीं ज़्यादा जटिल हैं। आधुनिक विज्ञान ने खेल के नियम तो निश्चय ही बदल दिए हैं, लेकिन इसने मिथकों को तथ्यों से विस्थापित नहीं किया है। मिथक आज भी मानव जाति और विज्ञान को नियन्त्रित करना जारी रखे हैं, जिससे ये मिथक और भी मज़बूत होते जा रहे हैं। अन्तरव्यक्तिनिष्ठ वास्तविकता को नष्ट करने की बजाय विज्ञान उसको इतना सक्षम बना देगा कि वह वस्तुनिष्ठ तथा व्यक्तिनिष्ठ वास्तविकताओं को पहले के किसी भी समय के मुक़ाबले और ज़्यादा पूरी तरह से नियन्त्रित करने लगेगी। कम्प्यूटरों और जैवयान्त्रिकी की कृपा से, जैसे-जैसे लोग वास्तविकता को अपने मनपसन्द गल्पों के अनुरूप ढालने लगेंगे, वैसे-वैसे कल्पित और वास्तविक के बीच का फ़र्क़ धुँधलाता जाएगा।

सोबेक के पुरोहितों ने अलौकिक मगरमच्छों के अस्तित्व की कल्पना की थी, वहीं फ़ैरो ने अमरता का सपना देखा था। वास्तविकता में वह पवित्र मगरमच्छ सुनहरी सजावट से लैस एक बहुत ही साधारण क़िस्म का रेंगने वाला दलदली जन्तु था, और फ़ैरो उतना ही नश्वर प्राणी था, जितना नश्वर एक निर्धनतम किसान था। उसकी मौत के बाद रक्षक मरहमों और इत्रों का इस्तेमाल करते हुए उसके शव की ममी तैयार कर दी गई थी, लेकिन तब भी वह पूरी तरह निर्जीव ही बना रहा था। इसके विपरीत, इक्कीसवीं सदी के वैज्ञानिक

वास्तविक सुपर-मगरमच्छ गढ़ने में सक्षम हो सकते हैं, और इंसानी अभिजातों को यहीं धरती पर शाश्वत यौवन उपलब्ध करा सकते हैं।

नतीजतन, विज्ञान का उत्थान कम से कम कुछ मिथकों और मज़हबों को पिछले किसी भी समय के मुक़ाबले में अधिक शक्तिशाली बना सकता है। इसलिए यह समझने के लिए कि ऐसा क्यों मुमकिन है, और इक्कीसवीं सदी की चुनौतियों का सामना करने के लिए, हमें इस सबसे अप्रिय सवाल पर निगाह डालना ज़रूरी है: आधुनिक विज्ञान धर्म के साथ किस तरह का रिश्ता बनाता है? ऐसा लगता है कि इस सवाल के जवाब में जो कुछ भी कहा जा सकता है, वह लोग पहले ही लाखों बार कह चुके हैं, लेकिन वास्तव में, विज्ञान और धर्म उन पति और पत्नी की तरह हैं, जो 500 सालों के वैवाहिक परामर्श के बाद भी आज तक एक-दूसरे को समझ नहीं सके हैं। वह अभी भी सिंडेरेला का सपना देखता है, और वह प्रिंस चार्मिंग को याद करती रहती है, और उस दौरान उनके बीच बहस जारी रहती है कि कचरा फेंकने की बारी किसकी है।

जीवाणु और दैत्य

विज्ञान और मज़हब से सम्बन्धित ज़्यादातर ग़लतफ़हमियाँ मज़हब की ग़लत परिभाषाओं का नतीजा हैं। लोग अक्सर कुछ ज़्यादा ही मज़हब का ग़लत मतलब निकालते हुए, उसको अन्धविश्वास, आध्यात्मिकता, अलौकिक शक्तियों में विश्वास या देवताओं में आस्था से जोड़कर देखते हैं। मज़हब इनमें से कुछ भी नहीं है। मज़हब को अन्धविश्वास नहीं माना जा सकता, क्योंकि इस बात की कोई सम्भावना नहीं है कि ज़्यादातर लोग अपनी पोशित आस्थाओं को 'अन्धविश्वास' कहें। हम हमेशा 'सत्य' में आस्था रखते हैं, सिर्फ़ दूसरे लोग ही अन्धविश्वासों में आस्था रखते हैं।

इसी तरह, बहुत कम लोग हैं, जो अलौकिक शक्तियों में आस्था रखते हैं। जो लोग दैत्यों, रूहों या परियों में विश्वास करते हैं, उनके लिए ये सत्ताएँ अलौकिक नहीं होतीं। उनके लिए वे, साहियों, बिच्छुओं और रोगाणुओं की ही तरह, क़ुदरत का अभिन्न अंग होती हैं। आधुनिक चिकित्सक रोगों के लिए अदृश्य रोगाणुओं को ज़िम्मेदार ठहराते हैं, और टोने-टोटकों में विश्वास करने वाले पुरोहित बीमारियों के लिए अदृश्य रूहों को दोषी ठहराते हैं। इसमें अलौकिक जैसा कुछ नहीं है: अगर आप किसी रूह को नाराज़ कर देते हैं, तो वह रूह आपके जिस्म में घुस जाती है और आपको पीड़ा पहुँचाती है। इससे ज़्यादा स्वाभाविक बात और क्या हो सकती है? केवल जो लोग रूहों में विश्वास नहीं करते, वे ही उनको क़ुदरती व्यवस्था से अलग-थलग रूप में देखते हैं।

अलौकिक शक्तियों में आस्था के साथ मज़हब का समीकरण बैठाने का यह अभिप्राय निकलता है कि आप तमाम क़ुदरती चीज़ों को उस मज़हब के बिना समझ सकते हैं, जो

कि महज़ एक ऐच्छिक अनुपूरक है। समूची प्रकृति को एकदम अच्छी तरह से समझ चुकने के बाद अब आप चुन सकते हैं कि उसमें किसी 'अलौकिक' मज़हबी आस्था को जोड़ा जाए या नहीं, लेकिन ज़्यादातर मज़हबों का तर्क होता है कि आप उनके बिना दुनिया को समझ ही नहीं सकते। अगर आप उनकी आस्था को ध्यान में नहीं रखते, तो आप कभी भी बीमारियों, सूखों या भूकम्पों की वजहों को समझ ही नहीं पाएँगे।

मज़हब को 'देवताओं में आस्था' के रूप में परिभाषित करने में भी समस्या है। हम इस तरह की बात कहने की ओर प्रवृत्त होते हैं कि एक श्रद्धालु ईसाई स्त्री इसलिए मज़हबी होती है, क्योंकि वह ईश्वर में आस्था रखती है, जबकि एक जोशीला कम्युनिस्ट इसलिए मज़हबी नहीं होता, क्योंकि कम्युनिज़्म में कोई देवता नहीं हैं। लेकिन, मज़हब की रचना देवताओं द्वारा नहीं, बल्कि इंसानों द्वारा की गई है, और वह देवताओं के अस्तित्व की बजाय अपनी सामाजिक भूमिका से परिभाषित होता है। कोई भी ऐसा सर्वव्यापी क़िस्सा मज़हब ही होता है, जो इंसानी नियमों, मानकों और मूल्यों को अतिमानवीय वैधता से नवाज़ता है। वह यह कहते हुए इंसानी सामाजिक संरचनाओं को वैधीकृत करता है कि वे अलौकिक नियमों को प्रतिबिम्बित करती हैं।

मज़हब यह दावा करता है कि हम इंसान ऐसे नैतिक नियमों की एक व्यवस्था के अधीन हैं, जिन नियमों को न तो हमने ईजाद किया है और न जिनको हम बदल सकते हैं। एक धर्मनिष्ठ यहूदी कहेगा कि यह ईश्वर द्वारा रचित और बाइबिल में उल्लिखित नैतिक नियमों की व्यवस्था है। एक हिन्दू कहेगा कि इन नियमों की रचना ब्रह्मा, विष्णु और महेश ने की थी और ये हम मनुष्यों के समक्ष वेदों में प्रकट हुए थे। बौद्ध धर्म और ताओधर्म से लेकर साम्यवाद, नाज़ीवाद और उदारवाद तक अन्य मज़हब तर्क देते हैं कि तथाकथित अलौकिक नियम क़ुदरती नियम हैं, और वे इस या उस देवता द्वारा रचे गए नहीं हैं। बेशक, इनमें से हरेक बुद्धि और लाओत्ज़े से लेकर मार्क्स और हिटलर तक विभिन्न दृष्टाओं और पैग़म्बरों द्वारा आविष्कृत और उद्घाटित क़ुदरती नियमों के किसी भिन्न समूह में विश्वास करता है।

एक यहूदी लड़का अपने पिता के पास आकर पूछता है, 'डैड, हम लोग सूअर का मांस क्यों नहीं खाते?' पिता विचारमग्न होकर अपनी लम्बी धुँधराली दाढ़ी पर हाथ फेरता है और जवाब देता है, 'ऐसा है, यांकेले, दुनिया का यही ढंग है। तुम अभी भी छोटे हो और अभी समझते नहीं हो, लेकिन अगर हम सूअर का मांस खाएँगे, तो ईश्वर हमें सज़ा देगा और हमारा बुरा हश्र होगा। यह कोई मेरा सोचना नहीं है। ये रब्बी तक का ख़याल नहीं है। अगर रब्बी ने दुनिया रची होती, तो मुमकिन है उसने ऐसी दुनिया रची होती, जिसमें सूअर का मांस यहूदी धर्म के साथ एकदम सही बैठता, लेकिन दुनिया की रचना रब्बी ने नहीं की,

बल्कि ईश्वर ने की है। और मैं नहीं जानता कि क्यों, लेकिन ईश्वर का कहना है कि हमें सूअर का मांस नहीं खाना चाहिए। इसलिए हमें नहीं खाना चाहिए। समझे?'

1943 में एक जर्मन लड़का हिटलर के सुरक्षा-बल, एसएस, के वरिष्ठ अधिकारी, अपने पिता के पास जाकर पूछता है, 'डैड, हम लोग यहूदियों की हत्याएँ क्यों कर रहे हैं?' चमकीले चमड़े के अपने जूते पहनता हुआ पिता समझाता है, 'ऐसा है, फ़्रिट्ज़, दुनिया का यही ढंग है। तुम अभी छोटे हो और समझते नहीं हो, लेकिन अगर हम यहूदियों को जीवित बने रहने की छूट देंगे, तो वे मानव जाति के पतन और विनाश का कारण बन जाएँगे। यह कोई मेरा सोचना नहीं है। और ये फ़्यूहर (हिटलर) का भी सोचना नहीं है। अगर हिटलर ने दुनिया की रचना की होती, तो मुमकिन है उसने एक ऐसी दुनिया रची होती, जिसमें प्राकृतिक वरण का नियम लागू न होता और यहूदी और आर्य पूरी तरह मिल-जुलकर एक-दूसरे के साथ रह रहे होते, लेकिन दुनिया की रचना हिटलर ने नहीं की है। उसने तो महज़ किसी तरह क़ुदरत के नियमों को समझ लिया है और हमें निर्देश दिया है कि किस तरह इन नियमों के मुताबिक़ चला जाए। अगर हम इन नियमों की अवहेलना करते हैं, तो हमारा बुरा हश्र होगा। बात समझ में आई!'

2016 में एक अँग्रेज़ लड़का अपने उदारवादी सांसद पिता के पास जाकर पूछता है, 'डैड, हमें मध्य-पूर्व के मुसलमानों के मानवाधिकारों की चिन्ता करने की क्यों ज़रूरत है?' पिता चाय का कप मेज़ पर रखता है, पल भर सोचता है, और फिर कहता है, 'देखो, डंकन, दुनिया का यही ढंग है। तुम अभी छोटे हो और समझते नहीं हो, लेकिन सारे मनुष्यों की, यहाँ तक कि मध्य-पूर्व के मुसलमानों की भी प्रकृति एक जैसी है और इसलिए उनको एक जैसे क़ुदरती हक़ मिले हुए हैं। ये कोई मेरा सोचना नहीं है, न ये संसद का फ़ैसला है। अगर संसद ने दुनिया की रचना की होती, तो मुमकिन है कि सार्वभौमिक मानवाधिकार उस क़्वांटम फ़िजिक्स कूड़े के साथ किसी उपसमिति में दफ़न होते, लेकिन दुनिया की रचना संसद ने नहीं की है, वह तो उसको समझने की कोशिश करती है, और हमें इन क़ुदरती हक़ों की इज़्ज़त करनी चाहिए, मध्य-पूर्व के मुसलमानों के क़ुदरती हक़ों की भी, नहीं तो बहुत जल्दी ही हमारे अपने हक़ों का भी उल्लंघन होने लग जाएगा, और तब हमारा बुरा हश्र होगा। अब तुम चलते बनो'।

उदारवादी, साम्यवादी और दूसरे आधुनिक पन्थों के अनुयायी अपनी ख़ुद की व्यवस्था को 'मज़हब' के रूप में चित्रित करना पसन्द नहीं करते, क्योंकि वे मज़हब को अन्धविश्वासों और अलौकिक शक्तियों से जोड़कर देखते हैं। अगर आप साम्यवादियों या उदारवादियों से कहें कि वे मज़हबी हैं, तो वे सोचेंगे कि आप उन पर बेबुनियाद कल्पनाओं में अन्धी आस्था रखने का आरोप लगा रहे हैं। वस्तुतः, इसका मतलब सिर्फ़ इतना ही होता है कि वे नैतिक नियमों की किसी ऐसी व्यवस्था में आस्था रखते हैं, जिसे मनुष्यों द्वारा

ईजाद नहीं किया गया था, फिर भी जिनका पालन मनुष्यों को करना अनिवार्य है। जहाँ तक हमारी जानकारी है, सारे मानव समाज इसमें विश्वास करते हैं। हर समाज अपने सदस्यों से कहता है कि उनको किसी अतिमानवीय नैतिक नियम का पालन करना चाहिए, और इस नियम को तोड़ना विनाश का कारण बनेगा।

मज़हब बेशक अपने क़िस्सों की तफ़सीलों के मामले में, अपने ठोस निर्देशों के मामले में, और उन पुरस्कारों और सज़ाओं के मामलों में, जिनका वे आश्वासन देते हैं, भिन्न होते हैं। इसलिए मध्ययुगीन यूरोप में कैथोलिक चर्च का यह तर्क होता था कि ईश्वर धनवान लोगों को पसन्द नहीं करता। ईसा ने कहा था कि एक रईस आदमी के लिए स्वर्ग के द्वार में प्रवेश करने से कहीं ज़्यादा आसान एक ऊँट के लिए सुई के छेद में से निकलना है। रईसों को ईश्वर के राज्य में प्रवेश के लिए मदद करने के उद्देश्य से चर्च उनको भरपूर भिक्षा देने के लिए प्रोत्साहित करते हुए धमकी देता था कि कंजूस लोगों को नर्क में जलना पड़ेगा। आधुनिक साम्यवाद भी रईसों को नापसन्द करता है, लेकिन वह उनको मौत के बाद गन्धक में जलने की बजाय इसी लोक में और तत्काल वर्ग-संघर्ष का शिकार होने की धमकी देता है।

इतिहास के साम्यवादी नियम जिस हद तक ऐसी अतिमानवीय शक्तियाँ हैं कि मनुष्य उनको अपनी इच्छा से बदल नहीं सकते, उस हद तक वे ईसाई ईश्वर के आदेशों जैसे ही हैं। मनुष्य चाहें तो कल ही फुटबॉल के ऑफ़साइड नियम को बदल सकते हैं, क्योंकि वह नियम हमने बनाया है और हम उसको बदलने के लिए आज़ाद हैं, लेकिन, कम से कम मार्क्स के मुताबिक़, हम इतिहास के नियमों को नहीं बदल सकते। पूँजीपति कुछ भी क्यों न कर लें, जब तक वे निजी सम्पत्ति को संचित करना जारी रखते हैं, तब तक वे अनिवार्यतः वर्ग संघर्ष का कारण बनेंगे और उभरते हुए सर्वहारा वर्ग के हाथों पराजित होंगे।

अगर आप ख़ुद एक साम्यवादी होते, तो आप तर्क दे सकते थे कि साम्यवाद और ईसाइयत तब भी बहुत अलग हैं, क्योंकि साम्यवाद सही है, जबकि ईसाइयत ग़लत है। वर्ग संघर्ष तो सचमुच ही पूँजीवादी व्यवस्था में निहित है, लेकिन रईस लोग दरअसल मरने के बाद नर्क में अन्तहीन यातना नहीं भोगते। मान लें कि ऐसा ही है, तब भी इसका यह मतलब नहीं निकलता कि साम्यवाद एक मज़हब नहीं है। इसकी बजाय, इसका मतलब यही है कि साम्यवाद एकमात्र सच्चा मज़हब है। हर मज़हब के अनुयायियों को यह यक़ीन होता है कि सिर्फ़ उन्हीं का मज़हब सच्चा है। शायद एक धर्म के अनुयायी सही हैं।

अगर आप बुद्ध से मिलें

यह दावा कि मज़हब सामाजिक व्यवस्था का संरक्षण करने और बड़े पैमाने के आपसी सहयोग को संगठित करने का एक साधन है, उन लोगों को चिढ़ा सकता है, जिनके लिए वह एक सर्वोपरि आध्यात्मिक मार्ग की भूमिका निभाता है, लेकिन मज़हब और विज्ञान के बीच का अन्तराल उससे कम है, जितना हम आमतौर से सोचते हैं। मज़हब और आध्यात्मिकता के बीच का अन्तराल बहुत चौड़ा है। मज़हब एक सौदा है, जबकि आध्यात्मिकता एक यात्रा है।

मज़हब दुनिया का एक सम्पूर्ण ब्योरा देता है, और हमारे सामने पूर्वनिर्धारित लक्ष्यों से युक्त एक सुपरिभाषित अनुबन्ध की पेशकश करता है। 'ईश्वर का अस्तित्व है। उसने हमसे कुछ निश्चित तरीक़ों से आचरण करने को कहा है। अगर आप ईश्वर की आज्ञा का पालन करेंगे, तो आपको स्वर्ग में प्रवेश मिलेगा। अगर आप उसकी आज्ञा का पालन नहीं करेंगे, तो आप नर्क में जलेंगे'। इस सौदे की स्पष्टता ही समाज को उन सर्वसामान्य मानकों और मूल्यों को परिभाषित करने की गुंजाइश देता है, जो मानवीय व्यवहार का नियमन करते हैं।

आध्यात्मिक यात्राएँ इस तरह की चीज़ें क़तई नहीं हैं। वे आमतौर से लोगों को रहस्यमय ढंग से अज्ञात गन्तव्यों की ओर ले जाती हैं। जिज्ञासा की शुरुआत किसी बड़े सवाल के साथ होती है, जैसे कि मैं कौन हूँ? जीवन का क्या अर्थ है? शुभ क्या है? जहाँ ज़्यादातर लोग नियामक शक्तियों द्वारा उपलब्ध कराए गए तैयारशुदा जवाबों को स्वीकार कर लेते हैं, वहीं आध्यात्मिक जिज्ञासु इतनी आसानी-से सन्तुष्ट नहीं होते। वे दृढ़ निश्चय के साथ उस बड़े सवाल के पीछे उन दिशाओं में जाते हैं, जहाँ वह ले जाता है, न कि उन जगहों पर, जिनसे वे अच्छी तरह से वाकिफ़ होते हैं या जहाँ वे जाना चाहते हैं। इस तरह ज़्यादातर लोगों के लिए अकादमिक अध्ययन कोई आध्यात्मिक यात्रा होने की बजाय एक सौदा होता है, क्योंकि ये अध्ययन हमें हमारे बुज़ुर्गों, सरकारों और बैंकों द्वारा मान्य पूर्वनिर्धारित लक्ष्यों की ओर ले जाते हैं। 'मैं तीन साल पढ़ाई करूँगा, परीक्षाएँ पास करूँगा, बीए का सर्टिफ़िकेट हासिल करूँगा और एक अच्छी पगार देने वाली नौकरी पक्की कर लूँगा'। अकादमिक अध्ययन उस सूरत में आध्यात्मिक यात्रा में बदल सकते हैं, अगर इस अध्ययन के दौरान आप जिन बड़े सवालों का सामना करते हैं, वे आपको ऐसे अप्रत्याशित गन्तव्यों की ओर मोड़ दें, जिनकी आपने शुरू में कल्पना भी न की हो। उदाहरण के लिए, हो सकता है कि किसी छात्र ने वॉल स्ट्रीट में नौकरी हासिल करने के उद्देश्य से अर्थशास्त्र की पढ़ाई शुरू की हो, लेकिन वहाँ वह जो कुछ सीखती है, वह उसको किसी हिन्दू आश्रम में जाने के लिए या ज़िम्बाब्वे के एचआईवी मरीज़ों की मदद के लिए प्रेरित कर दे, तब हम उसको एक आध्यात्मिक यात्रा की संज्ञा दे सकते हैं।

इस तरह की यात्रा को 'आध्यात्मिक यात्रा' की संज्ञा क्यों दी जाए? यह उन प्राचीन द्वैतवादी मज़हबों की विरासत है, जो दो देवताओं के अस्तित्व में विश्वास रखते थे, एक

कल्याणकारी देवता और दूसरा अनिष्टकारी देवता। द्वैतवाद के मुताबिक़ कल्याणकारी देवता ने निर्मल और शाश्वत आत्माओं की सृष्टि की थी, जो विशुद्ध चैतन्य की परम आनन्ददायी दुनिया में वास करती हैं, लेकिन अनिष्टकारी देवता ने पदार्थ से निर्मित एक और दुनिया की रचना की। अनिष्टकारी देवता को कभी-कभी शैतान भी कहा जाता है, उसको समझ में नहीं आया कि वह अपनी इस दुनिया को टिकाऊ कैसे बनाए, इसलिए पदार्थ की इस दुनिया में हर चीज़ सड़ती और छीजती है। अपनी इस दूषित दुनिया में प्राण फूँकने के उद्देश्य से शैतान ने विशुद्ध चैतन्य की दुनिया की आत्माओं को बहकाया, और उनको पार्थिव कायाओं में क़ैद कर दिया। मनुष्य यही है - एक अनिष्टकारी पार्थिव काया में क़ैद एक शुभ आध्यात्मिक आत्मा। चूँकि आत्मा का यह क़ैदख़ाना - यानी काया - छीजती है और अन्ततः वह मर जाती है, इसलिए शैतान आत्माओं को दैहिक आनन्दों से, और इनमें भी सबसे ऊपर आहार, सम्भोग और सत्ता से, अनवरत मोहित करता रहता है। जब देह छिन्न-भिन्न हो जाती है और आत्मा को वापस आध्यात्मिक दुनिया में भाग निकलने का मौक़ा मिलता है, तो दैहिक सुखों की उसकी लालसा उसको फुसलाकर वापस किसी नई पार्थिव काया में क़ैद कर देती है। इस तरह यह आत्मा एक काया से दूसरी काया में भटकती हुई अपना वक़्त आहार, सम्भोग और सत्ता की तलाश में बर्बाद करती रहती है।

द्वैतवाद लोगों को इन भौतिक/पार्थिव बन्धनों को तोड़ने और उस आध्यात्मिक दुनिया की यात्रा पर निकलने की सीख देता है, जो हालाँकि हमारे लिए पूरी तरह से अपरिचित है, लेकिन जो हमारा सच्चा आवास है। इस खोज के दौरान हमें तमाम तरह के भौतिक प्रलोभनों और सौदों का तिरस्कार करना चाहिए। इस द्वैतवादी विरासत के चलते, वह हर यात्रा 'आध्यात्मिक यात्रा' कहलाती है, जिसमें हम इस पार्थिव जगत की परिपाटियों और समझौतों पर सन्देह करते हैं और एक अज्ञात गन्तव्य की दिशा में बढ़ने का जोखिम उठाते हैं।

इस तरह की यात्राएँ मज़हबों से बुनियादी तौर पर भिन्न होती हैं, क्योंकि मज़हब सांसारिक व्यवस्था को मज़बूत बनाने की कोशिश करते हैं, जबकि आध्यात्मिकता उससे छुटकारा पाने की कोशिश करती है। आध्यात्मिक जिज्ञासुओं का अक्सर ही एक सबसे महत्त्वपूर्ण दायित्व प्रभावशाली मज़हबों के विश्वासों और परिपाटियों को चुनौती देने का होता है। ज़ेन बौद्ध धर्म में कहा गया है कि 'अगर आपको सड़क पर बुद्धि मिल जाएँ, तो उनकी हत्या कर दो'। जिसका मतलब है कि अगर अध्यात्म के मार्ग पर चलते हुए आपका सामना स्थापित बौद्ध धर्म के सख़्त विचारों और दृढ़ विधानों से होता है, तो आपको उनसे भी ख़ुद को मुक्त करना चाहिए।

मज़हबों के लिए आध्यात्मिकता एक ख़तरनाक ख़तरा है। मज़हब आमतौर से अपने अनुयायियों की आध्यात्मिक जिज्ञासाओं को नियन्त्रित करने की कोशिश करते हैं, और

बहुत-सी मज़हबी व्यवस्थाओं को, आहार, सम्भोग और सत्ता में संलग्न रहने वाले साधारण लोगों द्वारा नहीं, बल्कि आध्यात्मिक सत्य की खोज में लगे उन लोगों द्वारा चुनौतियाँ दी गई हैं, जो तुच्छताओं से ज़्यादा कुछ की कामना करते रहे हैं। इसीलिए कैथोलिक सत्ता के ख़िलाफ़ प्रोटेस्टेंट विद्रोह को चिंगारी देने का काम सुखवादी नास्तिकों द्वारा नहीं, बल्कि एक धर्मपरायण संन्यासी भिक्षु मार्टिन लूथर द्वारा किया गया था। लूथर जीवन के अस्तित्वपरक सवालों के जवाब चाहते थे, और उन्होंने चर्च द्वारा पेश अनुष्ठानों, दस्तूरों और सौदों को स्वीकार करने से इंकार कर दिया था।

लूथर के ज़माने में चर्च अपने अनुयायियों को सचमुच ही कुछ बहुत ही ललचाने वाले सौदों का आश्वासन दिया करता था। अगर तुमने पाप किया था, और तुम्हें मौत के बाद शाश्वत नर्क भोगने का ख़ौफ़ सता रहा था, तो तुम्हें कुल मिलाकर अपना बटुआ ढीला कर पाप-मुक्ति (इंडल्जेंस) ख़रीद लेना भर काफ़ी था। सोलहवीं सदी के शुरुआती दौर में चर्च व्यावसायिक ‘फेरी लगा कर मुक्ति बेचने वालों’ (साल्वेशन पेडलर्स) को नौकरी पर रखता था, जो यूरोप के नगरों और गाँवों में घूम-घूमकर निश्चित क़ीमत पर पाप-मुक्ति बेचा करते थे। आप स्वर्ग का प्रवेश-पत्र चाहते हैं? सोने के दस सिक्कों का भुगतान करिए। आप चाहते हैं कि वहाँ जाकर आप अपने दादा हाइन्ज़ और दादी गर्टुड के साथ रहें? कोई समस्या नहीं, लेकिन इसके लिए आपको तीस सिक्कां की क़ीमत चुकानी पड़ेगी। बताया जाता है कि इन फेरी वालों में सबसे प्रसिद्ध डॉमिनीशियाई भिक्षु जोहानेस टेट्ज़ेल ने कहा था कि जिस क्षण ये सिक्के डिब्बे में गिरकर खनखनाते हैं, उसी क्षण आत्मा नर्क से बाहर निकलकर स्वर्ग की ओर उड़ जाती है।

25. पैसे के बदले पाप-मुक्ति बेचता हुआ पोप (एक प्रोटेस्टेंट की पुस्तिका से)।

जितना ही लूथर ने इस सौदे और इसकी पेशकश करने वाले चर्च के बारे में विचार किया, उतना ही इनको लेकर उनके मन में सन्देह जागा। आप यूँ ही मुक्ति का तरीक़ा नहीं ख़रीद सकते। मुमकिन है कि पोप के पास लोगों के पापों को क्षमा कर देने, और स्वर्ग का दरवाज़ा खोल देने का अधिकार न हो। प्रोटेस्टेंट परम्परा के मुताबिक़, 31 अक्टूबर 1517 को लूथर एक विस्तृत दस्तावेज़, एक हथौड़ा और कुछ कीलें लेकर विटनबर्ग के ऑल सेंट्स चर्च पहुँचे। उस दस्तावेज़ में पाप-मुक्ति बेचने समेत समकालीन मज़हबी परिपाटियों

के ख़िलाफ़ पचानवे लेख थे। लूथर ने उस दस्तावेज़ को चर्च के दरवाज़े पर कीलों से जड़ते हुए उस प्रोटेस्टेंट सुधार (प्रोटेस्टेंट रिफ़ॉर्मेशन) का आगाज़ किया, जो मुक्ति की आकांक्षा रखने वाले किसी भी ईसाई से पोप की सत्ता के ख़िलाफ़ विद्रोह करने और स्वर्ग के वैकल्पिक मार्गों की खोज करने का आह्वान करता था।

एक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में आध्यात्मिक यात्रा का अन्त हमेशा दुखदायी होता है, क्योंकि यह अकेलेपन से युक्त ऐसा मार्ग है, जो समूचे समाज की बजाय अलग-अलग व्यक्तियों के लिए उपयुक्त बैठता है। इंसानी सहकार महज़ सवालों की बजाय निश्चित जवाबों की माँग करता है, और जो लोग जड़ीभूत मज़हबी ढाँचों के ख़िलाफ़ उग्रता बरतते हैं, उनका अन्त अक्सर उनके स्थान पर नए ढाँचे गढ़ने में होता है। यह द्वैतवादियों के साथ हुआ, जिनकी आध्यात्मिक यात्राएँ मज़हबी व्यवस्थाओं में बदल गईं। यह मार्टिन लूथर के साथ हुआ, जिन्होंने कैथोलिक चर्च के विधानों, अनुष्ठानों और ढाँचों को चुनौती देने के बाद ख़ुद को नई विधि-संहिताएँ लिखते हुए, नई संस्थाएँ स्थापित करते हुए और नए धर्माचार ईजाद करते हुए पाया। यह बुद्धि और ईसा तक के साथ हुआ। सत्य की अपनी अटल खोज के दौरान उन्होंने पारम्परिक हिन्दू धर्म और यहूदी धर्म के विधानों, अनुष्ठानों और ढाँचों का उन्मूलन किया था, लेकिन अन्ततः उनके नाम पर जितने ज़्यादा विधान, जितने ज़्यादा अनुष्ठान और जितने ज़्यादा ढाँचे रचे गए, उतने इतिहास में और किसी के नाम पर नहीं रचे गए।

ईश्वर को लेकर जालसाज़ी

अब जबकि हम मज़हब को बेहतर ढंग से समझ चुके हैं, हम वापस मज़हब और विज्ञान के रिश्ते की पड़ताल कर सकते हैं। इस रिश्ते की दो अतिवादी व्याख्याएँ हैं। एक दृष्टि कहती है कि विज्ञान और मज़हब कट्टर दुश्मन हैं, और यह कि आधुनिक इतिहास की रचना मज़हबी अन्धविश्वासों के ख़िलाफ़ वैज्ञानिक ज्ञान के जानलेवा संघर्ष से हुई थी। समय के साथ-साथ विज्ञान के प्रकाश ने मज़हब के अँधेरे को हटाया, और दुनिया उत्तरोत्तर पन्थनिरपेक्ष (सेक्युलर), तर्कशील और समृद्ध होती गई, लेकिन यद्यपि कुछ वैज्ञानिक उपलब्धियाँ निश्चय ही मज़हबी रूढ़ियों का उन्मूलन करती हैं, फिर भी यह प्रक्रिया अपरिहार्य नहीं है। उदाहरण के लिए, मुस्लिम रूढ़ि यह मानती है कि इस्लाम की स्थापना मोहम्मद पैग़म्बर द्वारा सातवीं सदी में अरब में की गई थी, और इस बात के पक्ष में पर्याप्त वैज्ञानिक साक्ष्य हैं।

और भी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि विज्ञान को मुनासिब इंसानी संस्थाएँ रचने के लिए हमेशा मज़हबी सहयोग की ज़रूरत पड़ती है। वैज्ञानिक इस बात का अध्ययन करते हैं कि दुनिया किस तरह काम करती है, लेकिन इस बात को निर्धारित करने की कोई वैज्ञानिक

पद्धति नहीं है कि मनुष्यों को किस तरह आचरण करना चाहिए। विज्ञान हमें बताता है कि मनुष्य ऑक्सीज़न के बिना ज़िन्दा नहीं रह सकता, लेकिन क्या अपराधियों को उनका श्वास अवरोध करके मारना उचित है? इस तरह के सवाल का जवाब कैसे दिया जाए, यह विज्ञान नहीं जानता। केवल मज़हब ही हमें ज़रूरी मार्गदर्शन उपलब्ध कराते हैं।

इसलिए वैज्ञानिक जो भी व्यावहारिक योजना हाथ में लेते हैं, वह धार्मिक विवेक पर भी निर्भर करती है। उदाहरण के लिए, यांग्ट्ज़ नदी पर थ्री जॉर्जेस बाँध के निर्माण को लें। जब चीन की सरकार ने 1992 में इस बाँध के निर्माण का फ़ैसला किया, तो भौतिक विज्ञानी इस बात का हिसाब लगा सके कि इस बाँध को कितना दबाव झेलना होगा, अर्थशास्त्री भविष्यवाणी कर सके कि इस पर सम्भावित रूप से कितना ख़र्च होगा, और इलेक्ट्रिकल इंजीनियर अनुमान लगा सके कि यह कितनी विद्युत का उत्पादन करेगा, लेकिन सरकार के लिए अतिरिक्त परिस्थितियों को ध्यान में रखना ज़रूरी था। बाँध के निर्माण से 200 वर्गमील से ज़्यादा क्षेत्र जलमग्न हो गया, जिसकी जद में कई गाँव और क़स्बे, हज़ारों पुरातात्त्विक स्थल और अनूठे भूदृश्य तथा प्राकृतिक बसेरे आते थे। 10 लाख से ज़्यादा लोग विस्थापित हुए और सैकड़ों प्रजातियाँ विलुप्ति की कगार पर पहुँच गईं। ऐसा प्रतीत होता है कि यह बाँध सीधे-सीधे नदी में पाए जाने वाली चीन की डॉल्फ़िनों (चायनीज़ रिवर डॉल्फ़िन) के लोप का कारण बना था। थ्री जॉर्जेस बाँध के बारे में आपका निजी तौर पर जो भी सोचना हो, यह बात स्पष्ट है कि इसका निर्माण विशुद्ध रूप से वैज्ञानिक मसला होने की बजाय एक नैतिक मसला था। भौतिकी से सम्बन्धित कोई भी प्रयोग, अर्थव्यवस्था सम्बन्धी कोई भी आदर्श और कोई भी गणितीय समीकरण इस बात का निर्धारण नहीं कर सकता कि हज़ारों मेगावाट बिजली का उत्पादन और अरबों युआन की कमाई एक प्राचीन पैगोडा या चीन की नदी में पाए जाने वाली डॉल्फ़िनों की रक्षा करने से ज़्यादा मूल्य रखते हैं या नहीं। नतीजतन, चीन अकेले वैज्ञानिक सिद्धान्तों के आधार पर काम नहीं कर सकता। इसके लिए किसी मज़हब या विचारधारा की भी ज़रूरत है।

कुछ लोग इसके एकदम विपरीत छोर पर पहुँच जाते हैं, और कहते हैं विज्ञान और मज़हब पूरी तरह से अलग क्षेत्र हैं। विज्ञान तथ्यों का अध्ययन करता है, जबकि मज़हब मूल्यों के बारे में बात करता है, और ये दोनों कभी मिल नहीं सकते। मज़हब के पास वैज्ञानिक तथ्यों के बारे में कहने लायक़ कुछ नहीं है, और विज्ञान को मज़हबी आस्थाओं को लेकर अपना मुँह बन्द रखना चाहिए। अगर पोप यह मानता है कि मानव जीवन पवित्र है, और इसलिए गर्भपात एक पाप है, तो जीवविज्ञानी इस दावे को न तो सच साबित कर सकते हैं, न नकार सकते हैं। पोप के साथ एक स्वतन्त्र व्यक्ति के तौर पर बहस करने के लिए हर जीववैज्ञानिक का स्वागत है, लेकिन एक वैज्ञानिक के तौर पर, जीवविज्ञानी इस बहस में भाग नहीं ले सकता।

यह दृष्टिकोण समझदारीपूर्ण लग सकता है, लेकिन यह मज़हब को ग़लत ढंग से समझने वाला है। यद्यपि विज्ञान निश्चय ही तथ्यों के आधार पर चलता है, मज़हब भी अपने को कभी नैतिक मतों (जजमेंट्स) तक सीमित नहीं रखता। मज़हब भी जब तक कोई तथ्यात्मक दावे पेश नहीं करता, तब तक वह भी हमें कोई व्यावहारिक मार्गदर्शन उपलब्ध नहीं करा सकता, और यहीं पर वह विज्ञान के साथ टकरा सकता है। बहुत-से मज़हबी मतों के सबसे महत्त्वपूर्ण हिस्से उनके नैतिक सिद्धान्त नहीं होते, बल्कि इस तरह के तथ्यात्मक वक्तव्य होते हैं, जैसे कि 'ईश्वर का अस्तित्व है', 'आत्मा को उसके पापों के लिए मृत्यु के बाद दण्ड भोगना होता है', 'बाइबिल का लेखन मनुष्यों द्वारा नहीं, बल्कि एक देवता द्वारा किया गया था', 'पोप से कभी चूक नहीं होती'। ये सारे-के-सारे तथ्यात्मक दावे हैं। सबसे ज़्यादा उग्र बहसों में से ज़्यादातर बहसों में, और विज्ञान तथा मज़हब के बीच की बहुत-सी तकरारों में, नैतिक मतों की बजाय इसी तरह के तथ्यात्मक दावे शामिल होते हैं।

उदाहरण के लिए, गर्भपात को ही लें। धर्मपरायण ईसाई अक्सर गर्भपात का विरोध करते हैं, जबकि बहुत-से उदारवादी इसका समर्थन करते हैं। इसमें सबसे विवादास्पद मुद्दा नैतिक होने की बजाय तथ्यात्मक ही है। उदारवादी और ईसाई दोनों ही मानव जीवन की पवित्रता में विश्वास करते हैं, और दोनों ही हत्या को एक जघन्य अपराध मानते हैं, लेकिन कुछ जैविक तथ्यों को लेकर उनके बीच मतभेद हैं: मनुष्य के जीवन की शुरुआत गर्भधारण के क्षण से होती है, जन्म के समय से होती है या इनके बीच के किसी बिन्दु पर होती है? निश्चय ही कुछ इंसानी संस्कृतियाँ यह मानती हैं कि जीवन की शुरुआत तो जन्म के साथ तक नहीं होती। कालाहारी रेगिस्तान के! कुंग और आर्कटिक के बहुत-से एस्किमो समूहों के मुताबिक़ मनुष्य के जीवन की शुरूआत केवल तभी होती है, जब शिशु का नामकरण संस्कार कर दिया जाता है। जब शिशु का जन्म होता है, तो परिवार उसका नामकरण करने से पहले कुछ समय इन्तज़ार करता है। अगर वे उस शिशु को (या तो उसमें किसी विकृति की वजह से या आर्थिक कठिनाइयों की वजह से) अपने पास न रखने का फ़ैसला कर लेते हैं, तो वे उसको मार डालते हैं। यह काम अगर उन्होंने नामकरण संस्कार के पहले किया होता है, तो इसको हत्या नहीं माना जाता। इस तरह की संस्कृतियों के लोग उदारवादियों और ईसाइयों से इस मामले में सहमत हो सकते हैं कि मानव जीवन पवित्र है, लेकिन तब भी वे शिशु-हत्या को अनदेखा करते हैं।

जब मज़हब अपना विज्ञापन करते हैं, तो वे अपने सुन्दर मूल्यों पर बल देने की कोशिश करते हैं, लेकिन बारीक़ अक्षरों में दर्ज़ किए गए तथ्यात्मक वक्तव्यों के पीछे कहीं ईश्वर छिपा होता है। कैथोलिक मज़हब ख़ुद को सार्वभौमिक प्रेम और करुणा के मज़हब के रूप में बेचता है। क्या ही अद्भुत बात है! इस पर भला किसको आपत्ति हो सकती है?

लेकिन तब फिर सारे मनुष्य कैथोलिक क्यों नहीं हैं? क्योंकि जब आप इस बारीक़ इबारत को पढ़ते हैं, तो आपको पता चलता है कि कैथोलिक मज़हब उस पोप के अन्धानुसरण की माँग भी करता है 'जिससे कभी कोई चूक नहीं होती', तब भी नहीं, जब वह अपने अनुयायियों को धर्मयुद्ध में जाने और विधर्मियों को खूँटे (स्टेक) से बाँधकर जला देने का आदेश देता है। इस तरह के व्यावहारिक निर्देश का पता सिर्फ़ नैतिक मतों से नहीं चलता। इसकी बजाय वे नैतिक मतों को तथ्यात्मक वक्तव्यों के साथ मिलाने के नतीजे होते हैं।

जब हम फ़लसफ़े के हवाई लोक से नीचे उतरते हैं और ऐतिहासिक वास्तविकता पर ध्यान केन्द्रित करते हैं, तब हमें पता चलता है कि मज़हबी क़िस्सों के लगभग हमेशा ही तीन हिस्से होते हैं:

1. नैतिक मत, जैसे कि 'मानव जीवन पवित्र है'।
2. तथ्यात्मक वक्तव्य, जैसे कि 'मानव जीवन की शुरुआत गर्भधारण के क्षण से ही हो जाती है'।
3. नैतिक मतों के साथ तथ्यात्मक वक्तव्यों को मिलाने के नतीजे में उत्पन्न इस क़िस्म के दिशा-निर्देश कि 'आपको गर्भधारण के एक दिन बाद भी कभी भी गर्भपात की छूट नहीं देनी चाहिए'।

मज़हबों के नैतिक मतों का खण्डन करने या उनकी पुष्टि करने की कोई क़ाबिलियत विज्ञान में नहीं है, लेकिन मज़हबी तथ्यात्मक वक्तव्यों के बारे में कहने के लिए वैज्ञानिकों के पास बहुत कुछ है। इस तरह के तथ्यात्मक सवालों के जवाब देने के मामले में जीवविज्ञानी पुरोहितों से ज़्यादा योग्य हैं, जैसे कि 'क्या गर्भधारण के एक सप्ताह बाद भ्रूण में स्नायुविक तन्त्र उत्पन्न हो जाता है? 'क्या वे पीड़ा महसूस कर सकते हैं?'

स्थितियों को और भी स्पष्ट करने के लिए हम गहराई में जाकर एक ऐसे वास्तविक ऐतिहासिक उदाहरण को जाँचते हैं, जिसके बारे में आपको मज़हबी विज्ञापनों में बहुत कम सुनने को मिलता है, लेकिन जिसका अपने वक़्त में बहुत अधिक सामाजिक और राजनैतिक असर हुआ था। मध्ययुगीन यूरोप में पोप व्यापक राजनैतिक वर्चस्व की स्थिति में होते थे। जब कभी यूरोप में कोई विवाद भड़क उठता था, तो ये पोप उस मुद्दे के निपटारे के अधिकार का दावा करते थे। अपने इस अधिकार के दावे को सिद्ध करने के लिए वे यूरोपियनों को लगातार कॉन्सटेंटीन के दान (डोनेशन ऑफ़ कॉन्सटेंटीन) की याद दिलाया करते थे। इस क़िस्से के मुताबिक़, 30 मार्च 315 को रोमन सम्राट कॉन्सटेंटीन ने एक शाही फ़रमान पर हस्ताक्षर कर पोप सिल्वेस्टर I और उसके उत्तराधिकारियों के लिए रोमन साम्राज्य के पश्चिमी हिस्से का चिरस्थायी नियन्त्रण सौंप दिया था। पोप इस बेशक़ीमती दस्तावेज़ को अपने अभिलेखागार में सँभालकर रखते थे, और जब कभी उनको किन्हीं

महत्त्वाकांक्षी राजकुमारों, झगड़ालू नगरों या विद्रोही किसानों के विरोध का सामना करना पड़ता था, तो वे इस दस्तावेज़ का इस्तेमाल करते थे।

मध्ययुगीन यूरोप के लोगों के मन में शाही फ़रमानों की बड़ी इज़्ज़त हुआ करती थी, और उनका विश्वास था कि कोई भी दस्तावेज़ जितना ही पुराना होता है, उतना ही ज़्यादा वह प्रामाणिक और शक्तिशाली होता है। उनका यह भी दृढ़ विश्वास था कि राजा और सम्राट ईश्वर के प्रतिनिधि थे। कॉन्सटेंटीन विशेष रूप से श्रद्धा का पात्र था, क्योंकि उसने रोमन साम्राज्य को पैगन (बुतपरस्तों) की दुनिया से एक ईसाई साम्राज्य में बदल दिया था। अगर वर्तमान युग की किसी नगरपालिका परिषद की आकांक्षाओं और स्वयं महान सम्राट कॉन्सटेंटीन द्वारा जारी फ़रमान के बीच कोई टकराव की स्थिति पैदा होती थी, तो मध्ययुगीन यूरोप के लोगों के लिए यह स्वाभाविक लगता था कि उस प्राचीन दस्तावेज़ की आज्ञा का पालन किया जाना चाहिए। इसलिए पोप जब कभी किसी राजनैतिक विरोध का सामना करता था, तो वह फर्माबरदारी की माँग करता हुआ कॉन्सटेंटीन का दान नामक उस दस्तावेज़ को लोगों के सामने लहरा देता था। वह हमेशा कारगर होता हो, ऐसी बात नहीं थी, लेकिन तब भी कॉन्सटेंटीन का दान पोप के प्रचार-तन्त्र और मध्ययुगीन राजनैतिक व्यवस्था का एक महत्त्वपूर्ण आधार था।

जब हम कॉन्सटेंटीन का दान को बारीक़ी से जाँचते हैं, तो पाते हैं कि यह कहानी तीन पृथक हिस्सों से मिलकर बनी है:

नैतिक मत	**तथ्यात्मक वक्तव्य**	**व्यावहारिक दिशा-निर्देश**
लोगों को आज के ज़माने के लोकप्रिय मतों से ज़्यादा प्राचीन शाही फ़रमानों की इज़्ज़त करनी चाहिए।	30 मार्च 315 को सम्राट कॉन्सटेंटीन ने पोपों को यूरोप का स्वामित्व मंज़ूर किया था।	1315 में यूरोपियनों को पोप के आदेशों का पालन करना चाहिए।

प्राचीन शाही फ़रमानों की नैतिक हैसियत दूर-दूर तक स्वतःसिद्ध नहीं है। इक्कीसवीं सदी के ज़्यादातर यूरोपीय सोचते हैं कि आज के समय के नागरिकों की आकांक्षाएँ बहुत पहले मर चुके सम्राटों के आदेशों से ज़्यादा महत्त्व रखती हैं, लेकिन विज्ञान इस नैतिक बहस में शामिल नहीं हो सकता, क्योंकि कोई भी प्रयोग या समीकरण इस मसले का फ़ैसला नहीं कर सकता। अगर आधुनिक युग की एक वैज्ञानिक स्त्री समय में पीछे की ओर यात्रा करती हुई 700 साल पीछे पहुँच जाए, तो वह मध्ययुगीन यूरोपीय लोगों के सामने

यह सिद्ध नहीं कर सकेगी कि प्राचीन सम्राटों के फ़रमान समकालीन राजनैतिक विवादों के सन्दर्भ में प्रासंगिक नहीं हैं।

लेकिन कॉन्सटेंटीन के दान की कहानी महज़ नैतिक मतों पर आधारित नहीं थी। इसमें कुछ बहुत ही ठोस तथ्यात्मक वक्तव्य भी शामिल थे, जिनको सही या ग़लत साबित करने के मामले में विज्ञान अत्यन्त योग्य है। 1441 में लोरेंज़ो वाल्ला - जो एक कैथोलिक पादरी और भाषाविज्ञान का एक अग्रदूत था - ने एक अध्ययन प्रकाशित किया था, जो यह सिद्ध करता था कि कॉन्सटेंटीन का दान एक जालसाज़ी थी। वाल्ला ने इस दस्तावेज़ के व्याकरण और उसकी शैली, और उसमें शामिल विभिन्न शब्दों तथा पदों का विश्लेषण किया था। उन्होंने दिखाया था कि इस दस्तावेज़ में ऐसे शब्द शामिल हैं, जो चौथी सदी की लैटिन के लिए अज्ञात थे, और यह कि पूरी सम्भावना थी कि इस दस्तावेज़ की जालसाज़ी कॉन्सटेंटीन की मृत्यु के कोई 400 साल बाद की गई हो। इसके अतिरिक्त, दस्तावेज़ पर दर्ज़ तिथि जिस साल के '30 मार्च की है, उस साल में कॉन्सटेंटीन चौथी बार काउन्सल (सर्वोच्च निर्वाचित राजनैतिक पद) बना था, और गैलीकेनॅस पहली बार काउन्सल बना था'। रोमन साम्राज्य में हर साल दो काउन्सल चुने जाते थे, और दस्तावेज़ों पर तिथि का अंकन इन दोनों के काउन्सलेट वर्ष से किए जाने का रिवाज़ था। दुर्भाग्य से, कॉन्सटेंटीन का चौथा काउन्सलेट 315 में था, जबकि गैलीकेनॅस एकमात्र 317 में पहली बार काउन्सल चुना गया था। अगर यह बेहद अहम दस्तावेज़ वाक़ई कॉन्स्टेंटीन के समय में तैयार किया गया होता, तो इसमें इतनी ज़बरदस्त ग़लती न होती। यह कुछ ऐसा है मानो थॉमस जेफ़रसन और उसके साथियों ने अमेरिकी स्वाधीनता घोषणा-पत्र पर 34 जुलाई 1776 की तिथि अंकित कर दी हो।

आज सारे इतिहासकार इस बात पर एकमत हैं कि कॉन्सटेंटीन का दान नामक यह दस्तावेज़ आठवीं सदी में कभी पोप के दरबार में जालसाज़ी कर रचा गया था। बावजूद इसके कि वाल्ला ने प्राचीन शाही फ़रमानों की नैतिक प्रामाणिकता पर कभी सन्देह नहीं किया, तब भी उसके वैज्ञानिक विश्लेषण ने इस व्यावहारिक मार्गदर्शन की जड़ें खोद दीं कि यूरोपियनों को पोप की आज्ञा का पालन करना चाहिए।

20 दिसम्बर 2013 को युगांडा की संसद ने समलैंगिकता-विरोधी अधिनियम पारित किया, जो समलैंगिक गतिविधियों को आपराधिक कृत्य ठहराता था, और इनमें से कुछ गतिविधियों के लिए आजीवन कारावास का प्रावधान करता था। यह क़ानून उन इवेंजेलिकल ईसाइयों के समूह द्वारा प्रेरित और समर्थित था, जो यह मानते हैं कि ईश्वर समलैंगिकता को वर्जित करता है। प्रमाण के तौर वे लेविटिकस 18:22 ('किसी मर्द के साथ उस तरह का यौन सम्बन्ध स्थापित न करें, जैसा आप किसी औरत के साथ करते हैं, ये घिनौना आचरण है') और लेविटिकस 20:13 ('अगर किसी मर्द का किसी मर्द के साथ

उस तरह का यौन सम्बन्ध है, जैसा वह किसी औरत के साथ होता है, तो दोनों ने वह किया है,जो घृणास्पद है') को उद्धृत करते हैं। पिछली शताब्दियों में यही मज़हबी क़िस्सा सारी दुनिया में लाखों लोगों को यातना देने के लिए ज़िम्मेदार हुआ करता था। इस क़िस्से को संक्षेप में इस तरह प्रस्तुत किया जा सकता है:

नैतिक मत	**तथ्यात्मक वक्तव्य**	**व्यावहारिक दिशा-निर्देश**
मनुष्यों को ईश्वर के आदेशों का पालन करना चाहिए।	लगभग 3,000 साल पहले ईश्वर ने मनुष्यों को समलैंगिक आचरणों से बचने का आदेश दिया था।	लोगों को समलैंगिक आचरण से बचना चाहिए।

क्या यह क़िस्सा सही है? वैज्ञानिक इस निर्णय पर बहस नहीं कर सकते कि मनुष्यों को ईश्वर का आदेश मानना चाहिए या नहीं। आप इस बात पर विश्वास कर सकते हैं कि मानव अधिकार ईश्वरीय सत्ता से बढ़ कर हैं, और अगर ईश्वर हमें मानवाधिकारों के उल्लंघन का आदेश देता है, तो हमें उसकी बात नहीं सुननी चाहिए। लेकिन ऐसा कोई वैज्ञानिक प्रयोग नहीं है, जो इस मसले का फ़ैसला कर सके।

इसके विपरीत, विज्ञान के पास इस तथ्यात्मक वक्तव्य के बारे में कहने के लिए बहुत कुछ है कि 3,000 साल पहले सृष्टि के रचयिता ने होमो सेपियन्स प्रजाति के लिए मर्दों के बीच यौन सम्बन्ध से दूर रहने का आदेश दिया था। हम कैसे जानते हैं कि यह वक्तव्य सही है? सम्बन्धित साहित्य की जाँच से पता चलता है कि हालाँकि यह वक्तव्य लाखों पुस्तकों, लेखों में और इंटरनेट साइट्स पर दोहराया गया है, लेकिन यह सब जिस एकमात्र स्रोत पर निर्भर करते हैं, वह बाइबिल है। अगर ऐसा है, तो एक वैज्ञानिक यह सवाल पूछेगा कि बाइबिल की रचना किसने की थी, और कब की थी। धर्मपरायण यहूदी और ईसाई दावा करते हैं कि कम से कम लेविटिकस की पोथी माउंट सिनाई पर ईश्वर द्वारा मूसा को बोलकर लिखाई गई थी, और उस क्षण के बाद से उस पोथी में न तो एक भी शब्द जोड़ा गया है, न एक भी शब्द घटाया गया है। 'लेकिन,' वैज्ञानिक ज़ोर देगा कि 'हम यह बात निश्चित तौर पर कैसे कह सकते हैं? आख़िरकार, पोप का कहना था कि कॉन्सटेंटीन का दान नामक दस्तावेज़ ख़ुद कॉन्सटेंटीन द्वारा चौथी सदी में तैयार किया गया था, जबकि दरअसल यह 400 साल बाद पोप के अपने क्लर्क द्वारा जालसाज़ी करके तैयार किया गया था'।

आज हम यह निर्धारित करने के लिए कि बाइबिल किसने और कब लिखी थी, वैज्ञानिक पद्धतियों के हथियारों के एक समूचे ज़ख़ीरे का इस्तेमाल कर सकते हैं। वैज्ञानिक ठीक यही काम एक सदी से ज़्यादा समय से करने में लगे हैं, और अगर आपकी दिलचस्पी हो, तो आप उनकी खोजों के बारे में ढेरों पुस्तकें पढ़ सकते हैं। संक्षेप में कहें, तो वैज्ञानिकों द्वारा समीक्षित ज़्यादातर अध्ययन इस बात पर एकमत हैं कि बाइबिल उन अनेक अलग-अलग मज़मूनों का संग्रह है, जिनको विभिन्न इंसानों द्वारा उन घटनाओं के सदियों बाद लिखा गया था, जिनका वे वर्णन करना चाहते थे, और ये सारे के सारे मज़मून बाइबिल के युग के लम्बे अरसे बाद तक एक पुस्तक में संकलित नहीं किए गए थे। उदाहरण के लिए, जहाँ राजा डेविड सम्भवतः ईसापूर्व 1000 के आस-पास हुआ था, वहीं यह बात आमतौर से मान्य है कि ड्यूटेरॉमिनी की पोथी जूडा के राजा जोसाया की प्रभुसत्ता को मज़बूत करने के लिए प्रचार-अभियान के हिस्से के रूप में जोसाया के दरबार में रची गई थी। लेविटिकस का संकलन तो उसके और भी बाद, ईसापूर्व 500 के बाद ही, किया गया था।

जहाँ तक इस बात का सवाल है कि प्राचीन यहूदियों ने बाइबिल सम्बन्धी मज़मूनों में बिना कुछ जोड़े-घटाए उनको सावधानी के साथ संरक्षित करके रखा, तो वैज्ञानिक बताते हैं कि बाइबिलपरक यहूदी मज़हब धर्मग्रन्थ-आधारित मज़हब था ही नहीं। इसकी बजाय, यह एक ख़ास तरह की लौह-युगीन उपासना-पद्धति थी, जो इसके कई मध्य पूर्वी पड़ोसियों से मिलती-जुलती थी। इसके कोई सायनागॉग (यहूदी देवालय), येशीवा (यहूदी शिक्षण संस्थान), रब्बी - यहाँ तक कि कोई बाइबिल भी नहीं थे। इसकी बजाय, इसके देवालय सम्बन्धी विस्तृत अनुष्ठान थे, जिनमें से ज़्यादातर में एक आकाश देवता के लिए पशुओं की बलि दी जाती थी, ताकि वह अपने भक्तों को मौसमी बरसात और सैन्य विजयों का आशीर्वाद प्रदान करे। इसके मज़हबी अभिजात वर्ग में पुरोहितों के परिवार हुआ करते थे, जिनको सब कुछ जन्मजात रूप से प्राप्त हुआ करता था, बौद्धिक कौशल से नहीं। ज़्यादातर अशिक्षित पुरोहित देवालय के अनुष्ठानों में व्यस्त हुआ करते थे और उनके पास धार्मिक ग्रन्थों का लेखन या अध्ययन करने के लिए कोई ख़ास वक़्त नहीं हुआ करता था।

सेकेंड टेम्पिल पीरियड के दौरान धीरे-धीरे एक प्रतिद्वन्द्वी मज़हबी समूह तैयार हो गया। आंशिक तौर पर फ़ारसी और यूनानी प्रभावों की वजह से जो यहूदी अध्येता मज़मूनों का लेखन और व्याख्याएँ किया करते थे, उनकी ख्याति बढ़ती गई। ये अध्येता अन्त में रब्बी कहलाए, और उन्होंने जिन मज़मूनों का संचयन किया, उनको 'द बाइबिल' नाम दिया गया। रब्बियों की प्रामाणिकता उनके जन्म में नहीं, बल्कि उनकी व्यक्तिगत बौद्धिक क़ाबिलियतों में निहित हुआ करती थी। इस नए शिक्षित अभिजात वर्ग और पुराने पुराहितीय परिवारों के बीच टकराव अपरिहार्य था। रब्बियों के सौभाग्य से 70 ईस्वी में रोमनों ने महान यहूदी विद्रोह को कुचलने की प्रक्रिया में यरुशलम और उसके देवालयों को

जला दिया। देवालयों के खण्डहरों में बदल जाने के साथ ही पुरोहितों के परिवार अपनी मज़हबी हैसियत, अपनी आर्थिक शक्ति का आधार और *अपना उद्देश्य-मात्र* खोते गए। पारम्परिक यहूदी मज़हब - देवालयों से जुड़ा यहूदी मज़हब, पुरोहित और सिर फोड़ने वाले योद्धा - दृश्य से ग़ायब हो गया। उसकी जगह पर पोथियों, रब्बियों और नुक़्ताचीनी करने वाले अध्येताओं का एक नया यहूदी धर्म प्रकट हुआ। इन अध्येताओं की सबसे बड़ी योग्यता थी व्याख्या। इस क़ाबिलियत का इस्तेमाल वे न सिर्फ़ यह समझाने के लिए करते थे कि सर्वशक्तिमान ईश्वर ने अपने देवालय को नष्ट करने इजाज़त दी थी, बल्कि बाइबिल की कहानियों में वर्णित यहूदी धर्म और उनके द्वारा रचे नितान्त भिन्न यहूदी धर्म के बीच की खाई को पाटने के लिए भी करते थे।

इस तरह हमारी श्रेष्ठतम वैज्ञानिक जानकारी के मुताबिक़, समलैंगिकता के विरुद्ध लेविटिकस के हुक्मनामे प्राचीन यहूदी धर्म के मुट्ठीभर पुरोहितों और अध्येताओं के पूर्वाग्रहों से ज़्यादा बड़ी किसी चीज़ को प्रतिबिम्बित नहीं करते। यद्यपि विज्ञान इस बात का फ़ैसला नहीं कर सकता कि लोगों को ईश्वर के आदेशों का पालन करना चाहिए या नहीं, तब भी बाइबिल की उत्पत्ति के बारे में कहने के लिए उसके पास बहुत-सी प्रासंगिक बातें हैं। अगर युगांडा के राजनेता सोचते हैं कि दो *होमो सेपियन्स* मर्दों के आपस में कुछ आनन्द लेने से वह सत्ता भयानक रूप से गड़बड़ा जाएगी, जिसने ब्रह्माण्ड, आकाशगंगाओं और ब्लैक होलों की रचना की है, तो विज्ञान इस विचित्र धारणा के सन्दर्भ में उनका भ्रम दूर करने में मदद कर सकता है।

पवित्र धर्म-मत

वास्तव में नैतिक मतों को तथ्यात्मक वक्तव्यों से अलग करना हमेशा आसान नहीं होता। मज़हबों में तथ्यात्मक वक्तव्यों को नैतिक मतों में बदलने, और इस तरह जिस चीज़ को एक अपेक्षाकृत सामान्य बहस का मसला होना चाहिए, उसके बारे में गम्भीर भ्रम पैदा करने और उसको उलझाने की असाध्य प्रवृत्ति होती है। इसलिए यह तथ्यात्मक वक्तव्य कि 'ईश्वर ने बाइबिल लिखी थी' अक्सर ही इस नैतिक निषेधाज्ञा की शक्ल ले लेता है कि 'आपको इस बात पर विश्वास करना चाहिए कि बाइबिल ईश्वर ने लिखी थी'। इस तथ्यात्मक वक्तव्य पर विश्वास करना मात्र एक सद्गुण बन जाता है, जबकि इस पर सन्देह करना भयानक पाप बन जाता है।

इसके विपरीत, नैतिक मत अक्सर अपने पीछे ऐसे तथ्यात्मक वक्तव्य छिपाए रहते हैं, जिनका ज़िक्र करने की परवाह उनके समर्थक कभी नहीं करते, क्योंकि उनको लगता है कि वे तो सन्देह से परे जाकर सिद्ध किए जा चुके हैं। इस तरह यह नैतिक मत कि 'मानव जीवन पवित्र है' (जिसका परीक्षण विज्ञान नहीं कर सकता) अपने पीछे इस तथ्यात्मक

वक्तव्य को छिपाए हो सकता है कि 'हर मनुष्य में एक अमर आत्मा का निवास है' (जो कि वैज्ञानिक बहस के लिए खुला हुआ मसला है)। इसी तरह जब अमेरिकी राष्ट्रवादी यह ऐलान करते हैं कि 'अमेरिकी राष्ट्र पवित्र है', तो नैतिक प्रतीत होता यह मत दरअसल इस तरह के तथ्यात्मक वक्तव्यों की ओर इंगित करता है कि 'संयुक्त राज्य अमेरिका ने पिछली कुछ सदियों की नैतिक, वैज्ञानिक और आर्थिक उन्नतियों का नेतृत्व किया है'। जहाँ इस दावे को वैज्ञानिक ढंग से जाँचना असम्भव है कि अमेरिकी राष्ट्र पवित्र है, वहीं जैसे ही हम इस धारणा का विश्लेषण करते हैं, वैसे ही हम वैज्ञानिक ढंग से इस बात की जाँच कर सकते हैं कि क्या संयुक्त राज्य अमेरिका वाक़ई नैतिक, वैज्ञानिक और आर्थिक खोजों की विषमानुपातिक साझेदारी के लिए ज़िम्मेदार है।

इसके परिणामस्वरूप सैम हैरिस जैसे दार्शनिकों को यह तर्क देना पड़ा कि विज्ञान हमेशा नैतिक दुविधाओं का समाधान कर सकता है, क्योंकि मानव मूल्य *हमेशा* अपने भीतर कुछ तथ्यात्मक वक्तव्य छिपाए होते हैं। हैरिस सोचते हैं कि सारे मनुष्य एक सर्वोच्च मूल्य - दुख को कम करना और सुख में वृद्धि करना - साझा करते हैं और इसलिए सारी नैतिक बहसों में सुख में वृद्धि करने के सबसे ज़्यादा कारगर तरीक़े से ताल्लुक़ रखने वाले तथ्यात्मक तर्क होते हैं। इस्लामी कट्टरपन्थी सुखी होने की ख़ातिर जन्नत में पहुँचना चाहते हैं, उदारवादियों का विश्वास है कि मनुष्य की स्वतन्त्रता में वृद्धि सुख को अधिकतम बना देती है, और जर्मन राष्ट्रवादी सोचते हैं कि बर्लिन को इस महाद्वीप को चलाने की अनुमति दी जाए, तो हर कोई ख़ुशहाल हो जाएगा। हैरिस के मुताबिक़ इस्लामपरस्तों, उदारवादियों और राष्ट्रवादियों में कोई नैतिक विवाद नहीं है, उनमें तथ्यात्मक असहमति उन सभी के इस एक लक्ष्य को हासिल करने के सबसे अच्छे तरीक़े को लेकर है।

लेकिन अगर हैरिस सही भी हों, और अगर सारे मनुष्य सुख को आँखों का तारा भी समझते हों, तब भी व्यवहार के स्तर पर नैतिक विवादों का फ़ैसला करने में इस अन्तर्दृष्टि का इस्तेमाल करना बेहद मुश्किल होगा, ख़ासतौर से इसलिए कि हमारे पास सुख की कोई परिभाषा या माप नहीं है। एक बार फिर थ्री जॉर्जेस बाँध के मसले पर विचार करें। अगर हम इस पर सहमत भी हों कि इस परियोजना का अन्तिम लक्ष्य दुनिया को एक अधिक सुखद स्थल में बदलना है, तब भी हम यह कैसे कह सकते हैं कि सस्ती बिजली का उत्पादन वैश्विक सुख में उससे ज़्यादा योगदान करने वाला है, जितना योगदान पाम्परिक जीवन-शैली की रक्षा या चीन की नदी की डॉल्फ़िनों की रक्षा से होता? जब तक हमने चेतना के रहस्यों को नहीं सुलझा लिया है, तब तक हम न तो सुख या दुख का वैश्विक मापदण्ड विकसित कर सकते हैं, और न ही हम यह जानते हैं कि अलग-अलग व्यक्तियों के सुख और दुख की तुलना कैसे की जाए, विभिन्न प्रजातियों की बात तो छोड़ ही दें। जिस वक़्त एक अरब चीनी सस्ती बिजली का उपयोग कर रहे होते हैं, उस वक़्त कितने

यूनिट सुख का उत्पादन होता है? जिस वक़्त डॉल्फ़िन की एक समूची प्रजाति लुप्त हो जाती है, उस वक़्त कितने यूनिट दुख का उत्पादन होता है? सबसे पहली बात तो यह है कि क्या सचमुच सुख और दुख ऐसी गणितीय वस्तुएँ हैं, जिनको जोड़ा या घटाया जा सकता है? आइसक्रीम खाने में मज़ा आता है, सच्चा प्रेम और भी आनन्ददायी है। क्या आपको लगता है कि आप पर्याप्त आइसक्रीम खा लें, तो उससे एकत्र हुआ सुख कभी भी सच्चे प्रेम से प्राप्त होने वाले हर्षोन्माद की बराबरी कर सकेगा?

नतीजतन, नैतिक बहसों में योगदान करने के लिए विज्ञान के पास हालाँकि उससे बहुत ज़्यादा है, जितना हम आमतौर से मान कर चलते हैं, तब भी एक ऐसी लक्ष्मण-रेखा है, जिसको वह पार नहीं कर सकता, कम से कम अभी तक तो नहीं। किसी मज़हब के राह दिखाने वाले हाथ के बिना, बड़े पैमाने की सामाजिक व्यवस्थाओं का रख-रखाव असम्भव है। यहाँ तक कि विश्वविद्यालयों और प्रयोगशालाओं के लिए भी मज़हबी सहारे की ज़रूरत होती है। मज़हब वैज्ञानिक अनुसन्धान के लिए नैतिक औचित्य उपलब्ध कराता है, और बदले में वैज्ञानिक कार्यसूची तथा वैज्ञानिक खोजों के उपयोगों को प्रभावित करने की हैसियत हासिल कर लेता है। इसलिए आप मज़हबी आस्थाओं को ध्यान में रखे बिना विज्ञान के इतिहास को नहीं समझ सकते। वैज्ञानिक इस तथ्य पर शायद ही कभी विचार करते हों, लेकिन स्वयं वैज्ञानिक क्रान्ति की शुरुआत इतिहास के एक सबसे ज़्यादा कट्टरपन्थी, असहिष्णु और मज़हबी समाज में हुई थी।

सन्दिग्धों का पीछा

हम विज्ञान को अक्सर पन्थनिरपेक्षता और सहिष्णुता के मूल्यों के साथ जोड़कर देखते हैं। अगर ऐसा है, तो शुरुआती दौर के आधुनिक यूरोप में आपने शायद ही कभी वैज्ञानिक क्रान्ति की उम्मीद की होती। कोलम्बस, कोपरनिकस और न्यूटन के ज़माने में यूरोप का दुनिया में सबसे ज़्यादा ध्यान मज़हबी कल्पनाओं पर केन्द्रित हुआ करता था। वैज्ञानिक क्रान्ति के दिग्गज एक ऐसे समाज में रहते थे, जिसने यहूदियों और मुसलमानों को खदेड़ दिया था, विधर्मियों को थोक में जला दिया था, जिसको बिल्लियों से प्यार करने वाली हर बुज़ुर्ग महिला में एक चुड़ैल दिखाई देती थी, और जो हर पूर्णिमा की रात को एक नई मज़हबी लड़ाई शुरू कर देता था।

अगर आपने 1600 के आस-पास काहिरा या इस्ताम्बूल की यात्रा की होती, तो आपको वहाँ पर एक बहुसांस्कृतिक और सहिष्णु महानगर मिलता, जहाँ सुन्नी, शिया, परम्परावादी ईसाई, कैथोलिक, अर्मेनियाई, कॉप्ट्स (उत्तरपूर्व अफ़्रीका के मूल निवासी), यहूदी और यदाकदा हिन्दू तक कन्धे से कन्धा मिलाकर पूरी समरसता के साथ रहा करते थे, हालाँकि उनके बीच असहमतियाँ और दंगे होते थे, और हालाँकि ओटोमन साम्राज्य

अक्सर मज़हबी आधार पर लोगों के बीच भेदभाव बरतता था, तब भी यूरोप के मुक़ाबले में वह एक उदारवादी स्वर्ग हुआ करता था। इसके बाद अगर आपने तत्कालीन पेरिस या लन्दन जाने के लिए समुद्री यात्रा की होती, तो आपको मज़हबी उग्रवाद में डूबे नगर मिलते, जिनमें केवल प्रभावशाली सम्प्रदायों के लोग ही रह सकते थे। लन्दन में कैथोलिकों को मार दिया जाता था, पेरिस में प्रोटेस्टेंटों को मार दिया जाता था, यहूदियों को बहुत पहले खदेड़ा जा चुका था, और होशो-हवास रखने वाला कोई भी इंसान किसी मुसलमान को नगर के अन्दर आने देने का ख़्वाब भी नहीं देखता था। और तब भी वैज्ञानिक क्रान्ति की शुरुआत काहिरा और इस्ताम्बूल में नहीं, बल्कि लन्दन और पेरिस में हुई।

आधुनिकता के इतिहास को विज्ञान और मज़हब के बीच के संघर्ष के रूप में देखने का दस्तूर-सा बन गया है। सिद्धान्ततः, विज्ञान और मज़हब, दोनों ही सबसे पहले सत्य में दिलचस्पी रखते हैं, और क्योंकि इनमें से प्रत्येक भिन्न तरह के सत्य का समर्थन करते हैं, इसलिए वे आपस में टकराने के लिए अभिशप्त होते हैं, लेकिन दरअसल, न तो विज्ञान ही सत्य की कोई ख़ास परवाह करता है और न ही मज़हब, इसलिए वे बहुत आसानी-से आपस में समझौता कर सकते हैं, साथ-साथ रह सकते हैं और आपसी सहयोग भी कर सकते हैं।

मज़हब की दिलचस्पी ख़ासतौर से अनुशासन-व्यवस्था में होती है। उसका लक्ष्य सामाजिक ढाँचे को रचने और क़ायम रखने का होता है। विज्ञान की दिलचस्पी विशेष रूप से शक्ति में होती है। अनुसन्धान के माध्यम से उसका लक्ष्य बीमारियों का इलाज करने, युद्ध लड़ने और खाद्यान्न का उत्पादन करने के लिए शक्ति हासिल करना होता है। व्यक्तियों के रूप में वैज्ञानिक और पुरोहित सत्य को अपार महत्त्व दे सकते हैं, लेकिन सामूहिक संस्थाओं के रूप में विज्ञान और मज़हब सत्य से ऊपर अनुशासन-व्यवस्था और शक्ति को अहमियत देते हैं। इसलिए उनके बीच अच्छा संग-साथ निभता है। सत्य की अटल खोज एक आध्यात्मिक यात्रा होती है, जो शायद ही कभी मज़हबी या वैज्ञानिक संस्थानों की सीमा में बँधकर रह सकती है।

तदनुसार आधुनिक इतिहास को विज्ञान और एक ख़ास मज़हब - यानी, मानववाद - के बीच एक सौदा रचने की प्रक्रिया के रूप में देखना ज़्यादा सही होगा। आधुनिक समाज मानववादी रूढ़ि में विश्वास करता है, और इन रूढ़ियों पर सवाल उठाने के लिए नहीं, बल्कि उनको क्रियान्वित करने के लिए विज्ञान का उपयोग करता है। इक्कीसवीं सदी में इन विशुद्ध वैज्ञानिक सिद्धान्तों द्वारा इन मानववादी रूढ़ियों की जगह ले लिए जाने की सम्भावना नहीं है, लेकिन विज्ञान और मानववाद को जोड़ने वाला क़रार टूट सकता है और विज्ञान तथा किसी नए उत्तर-मानववादी मज़हब के बीच, एक नितान्त भिन्न क़िस्म के सौदे का रास्ता तैयार कर सकता है। अगले दो अध्याय हम विज्ञान और मानववाद के बीच के

आधुनिक क़रार को समझने के प्रति समर्पित करेंगे। इसके बाद पुस्तक का तीसरा और अन्तिम भाग यह स्पष्ट करेगा कि क्यों यह क़रार टूट रहा है और इसकी जगह कौन-सा नया सौदा ले सकता है।

6
आधुनिक अनुबंध

आधुनिकता एक सौदा है। हम सारे लोग उसी दिन इस सौदे पर हस्ताक्षर कर देते हैं, जिस दिन हम पैदा होते हैं, और हमारे मरने के दिन तक यह हमारी ज़िन्दगियों को नियन्त्रित करता है। हम में से बहुत थोड़े-से लोग ही ऐसे हैं, जो कभी भी इस सौदे को रद्द कर पाते हैं या उसका उल्लंघन कर पाते हैं। यह हमारे आहार, हमारे रोज़गारों और हमारे सपनों को आकार देता है, और यही तय करता है कि हम कहाँ रहें, किससे हम प्रेम करें और किस तरह हमारी मृत्यु हो।

पहली निगाह में आधुनिकता एक बेहद उलझा हुआ सौदा प्रतीत होती है, इसलिए बहुत थोड़े-से लोग इस बात को समझने की कोशिश करते हैं कि उन्होंने किस चीज़ के लिए इस पर हस्ताक्षर किए हैं। यह कुछ वैसा ही है, जैसे जब आप कोई सॉफ़्टवेयर डाउनलोड करते हैं और आपसे उसके साथ संलग्न उस अनुबन्ध पर हस्ताक्षर करने को कहा जाता है, जिसमें क़ानूनी शब्दावली से भरे दर्जनों पन्ने होते हैं - आप उस पर एक नज़र डालते हैं, तुरन्त आख़िरी पन्ने पर पहुँचते हैं, 'आई एग्री' पर सही का निशान दर्ज़ करते हैं और उसके बारे में भूल जाते हैं, लेकिन, दरअसल, आधुनिकता एक आश्चर्यजनक रूप से सरल सौदा है। इस समूचे अनुबन्ध को एक वाक्य में समेटा जा सकता है: मनुष्य ताक़त के बदले में अर्थ को त्यागने पर सहमत है।

आधुनिक युग के पहले तक ज़्यादातर संस्कृतियाँ ऐसा मानती थीं कि मनुष्यों ने किसी महान ब्रह्माण्डीय योजना में एक भूमिका निभाई है। यह योजना सर्वशक्तिमान देवताओं द्वारा, या क़ुदरत के शाश्वत विधानों द्वारा रची गई थी, और मानव जाति इसको बदल नहीं सकती थी। यह वैश्विक योजना मानव जीवन को अर्थ प्रदान करती थी, लेकिन वह मनुष्य

की शक्ति को सीमित भी करती थी। मनुष्य मंच पर मौजूद अभिनेताओं की तरह थे। नाटक का आलेख उनके एक-एक शब्द, आँसू और भाव-भंगिमा को अर्थ देता था, लेकिन उनके अभिनय पर सख़्त सीमाएँ भी लगाता था। हैमलेट पहले अंक में क्लॉडियस की हत्या नहीं कर सकता, डेन्मार्क छोड़कर हिन्दुस्तान के किसी आश्रम में नहीं जा सकता। शेक्सपियर इसकी इजाज़त नहीं देते। इसी तरह, मनुष्य अमर नहीं हो सकते, वे रोगों से नहीं बच सकते, और वे जो मर्ज़ी हो, वह नहीं कर सकते। यह नाटक के आलेख में नहीं लिखा है।

पूर्वआधुनिक मनुष्य यह विश्वास करते थे कि शक्ति को त्याग देने के बदले में उनके जीवन ने अर्थ हासिल किया है। चाहे वे युद्ध के मैदान में वीरतापूर्वक लड़ते हों, चाहे वे न्यायप्रिय राजा का समर्थन करते हों, चाहे वे नाश्ते में वर्जित आहार लेते हों या चाहे उनको उनके एकदम क़रीब के पड़ोसी से इश्क़ हो - ये सारी चीज़ें वाक़ई मायने रखती थीं। यह चीज़ बेशक कुछ असुविधाएँ पैदा करती थी, लेकिन यह मनुष्यों को विनाषों के विरुद्ध मानसिक सुरक्षा प्रदान करती थी। अगर कुछ भयावह घटित हो जाता था - जैसे कि कोई युद्ध, महामारी या अकाल - तो लोग यह सोचकर ख़ुद को तसल्ली दे देते थे कि 'हम सब देवताओं द्वारा रचे गए, या क़ुदरत के विधान के तहत रचे गए किसी महान ब्रह्माण्डीय नाटक में भूमिका निभाते हैं। उस नाटक में क्या लिखा है, यह हम नहीं जानते, लेकिन हम इतना निश्चित तौर पर जानते हैं कि जो भी कुछ होता है, उसके पीछे कोई उद्देश्य होता है। यहाँ तक कि इस भयावह युद्ध, महामारी और अकाल की भी उस महान योजना में अपनी एक जगह है। इसके अलावा, हम इस नाटक के लेखक से पक्की उम्मीद कर सकते हैं कि इस कहानी का अन्त सुखद और सार्थक होगा। इसलिए युद्ध, महामारी और अकाल तक का कोई श्रेष्ठ परिणाम निकलेगा - अगर यहाँ और अभी नहीं, तो इस जीवन के बाद ही सही'।

आधुनिक संस्कृति किसी महान ब्रह्माण्डीय योजना में इस विश्वास से इंकार करती है। हम जीवन से बड़े किसी नाटक के अभिनेता नहीं हैं। जीवन का कोई नाट्यालेख, कोई नाटककार, कोई निर्देशक, कोई निर्माता - और कोई अर्थ नहीं है। विज्ञान की हमारी श्रेष्ठतम समझ के मुताबिक़, यह विश्व एक अन्धी और उद्देश्यहीन प्रक्रिया है, जिसमें शोर-शराबा तो बहुत है, लेकिन उससे कोई अर्थ नहीं निकलता। एक ग्रह के सूक्ष्मतम बिन्दु पर अपने संक्षिप्ततम मुक़ाम के दौरान हम यहाँ-वहाँ भागते रहते हैं, और उसके बाद हमारा कुछ पता नहीं चलता।

चूँकि कोई नाट्यालेख नहीं है, और चूँकि मनुष्य किसी महान नाटक में कोई भूमिका नहीं निभाते, इसलिए हमारे साथ भयानक घटनाएँ हो सकती हैं और ऐसी कोई शक्ति नहीं, जो हमें बचा सकेगी या हमारे दुखों को कोई अर्थ प्रदान कर सकेगी। कोई सुखद अन्त, या दुखद अन्त, या कोई अन्त भी नहीं होगा। बस एक के बाद एक घटनाएँ घटित होती रहती

हैं। आधुनिक दुनिया उद्देश्य में विश्वास नहीं करती, सिर्फ़ कारण में विश्वास करती है। अगर आधुनिकता का कोई नीति-वाक्य है, तो वह है 'जीवन अप्रत्याशित घटनाओं से भरा हुआ है' ('शिट हैपन्स',)।

दूसरी ओर, अगर जीवन महज़ अप्रत्याशित घटनाओं से भरा है, और उसको बाँधने वाला कोई नाट्यालेख या ध्येय नहीं है, तब फिर मनुष्य भी किसी पूर्वनिर्धारित भूमिका तक सीमित नहीं है। हम जो चाहें, वह कर सकते हैं, बशर्ते कि हम कुछ हासिल करने का तरीक़ा खोज सकें। हमारी अज्ञानता के अलावा हमारे रास्ते में बाधा डालने वाली और कोई चीज़ नहीं है। महामारी और अकाल का कोई ब्रह्माण्डीय अर्थ नहीं है, लेकिन हम उनको जड़ से मिटा सकते हैं। युद्ध एक बेहतर भविष्य के मार्ग में कोई अनिवार्य बुराई नहीं है, लेकिन हम शान्ति स्थापित कर सकते हैं। कोई जन्नत नहीं है, जो मौत के बाद हमारा इन्तज़ार कर रही हो, लेकिन हम यहीं पृथ्वी पर ही स्वर्ग की रचना कर सकते हैं और उसमें हमेशा के लिए रह सकते हैं, बशर्ते कि हम किसी तरह कुछ तकनीकी मुश्किलों पर विजय पा लें।

अगर हम अनुसन्धान पर पैसा लगाएँ, तो वैज्ञानिक उपलब्धियाँ प्रौद्योगिकीय प्रगति को गतिशील कर देंगी। ये नई प्रौद्योगिकियाँ आर्थिक वृद्धि को उकसाएँगी, और विकसित होती हुई अर्थव्यवस्था अनुसन्धान के लिए और भी ज़्यादा धन अर्पित करेगी। हर आने वाले दशक के साथ हमें और ज़्यादा भोजन, और तेज़ वाहनों तथा और बेहतर चिकित्साओं का लाभ मिलेगा। एक दिन आएगा, जब हमारा ज्ञान इतना विस्तीर्ण हो जाएगा और हमारी प्रौद्योगिकी इतनी उन्नत हो जाएगी कि हम शाश्वत यौवन के अमृत, सच्चे सुख के अमृत, और दूसरी जिस किसी औषधि की ज़रूरत हमें होगी, उसका आसवन कर सकेंगे और हमें रोकने वाला कोई देवता नहीं होगा।

इस तरह आधुनिक सौदा मनुष्यों को विराट जोखिमों से युक्त विपुल प्रलोभनों की पेशकश करता है। सर्वशक्ति हमारे सामने, लगभग हमारी पहुँच में है, लेकिन हमारे नीचे सम्पूर्ण शून्य का रसातल मुँह बाये फैला है। व्यावहारिक स्तर पर आधुनिक जीवन एक अर्थहीन जीवन के भीतर निरन्तर शक्ति की तलाश से निर्मित है। आधुनिक संस्कृति इतिहास की सबसे शक्तिशाली संस्कृति है, और वह अनवरत रूप से अनुसन्धान कर रही है, आविष्कार कर रही है और विकसित हो रही है। इसी के साथ-साथ, यह किसी भी पिछली संस्कृति के मुक़ाबले कहीं ज़्यादा बड़ी अस्तित्वपरक उद्विग्नता की शिकार है।

यह अध्याय शक्ति की आधुनिक खोज की चर्चा करता है। अगला अध्याय इस बात का परीक्षण करेगा कि किस तरह मनुष्यता ने अपनी बढ़ती हुई शक्ति का इस्तेमाल विश्व की अनन्त रिक्ति में किसी तरह चुपचाप अर्थ भरने के लिए किया। हाँ, हम आधुनिकों ने शक्ति के बदले अर्थ को त्याग देने का वादा किया था, लेकिन ऐसा कोई नहीं है, जो हमारे उस

वादे को निभाने के लिए हमें बाध्य कर सके। हम सोचते हैं कि हम इतने चतुर हैं कि हम इस आधुनिक सौदे का, इसके लिए कोई क़ीमत चुकाए बिना भरपूर इस्तेमाल कर सकते हैं।

वेम्पायरों से भिन्न क्यों हैं बैंकर्स

शक्ति की आधुनिक खोज को वैज्ञानिक प्रगति और आर्थिक विकास के बीच के गठबन्धन ने उत्प्रेरित किया है। ज़्यादातर इतिहास के दौरान विज्ञान घोंघे की रफ़्तार से प्रगति करता रहा था, और वहीं अर्थव्यवस्था पूरी तरह ठप बनी रही थी। इंसानों की आबादी में धीरे-धीरे होती गई वृद्धि के परिणामस्वरूप उसी के अनुपात में उत्पादन भी बढ़ा, और छिटपुट खोजें कभी-कभी प्रति व्यक्ति विकास के रूप में भी फलित हुईं, लेकिन यह बहुत धीमी प्रक्रिया थी।

अगर 1000 ईसवी में सौ ग्रामीण मिलकर सौ टन गेहूँ का उत्पादन करते थे, और 1100 ईसवी में 105 ग्रामीण मिलकर 107 टन गेहूँ का उत्पादन करते थे, तो यह मामूली वृद्धि न तो जीवन की लय में कोई बदलाव ला पाती थी, न सामाजिक-राजनैतिक व्यवस्था में। जहाँ आज हर किसी के सिर पर विकास का भूत सवार है, वहीं पूर्वआधुनिक युग में लोग इसको लेकर बेख़बर रहा करते थे। राजकुमार, पुरोहित और किसान मानकर चलते थे कि इंसानी उत्पादन कमोबेश स्थिर होता है, कोई एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से मात्र कुछ चुराकर ख़ुद को सम्पन्न नहीं बना सकता और इसकी कोई सम्भावना नहीं है कि उनके नाती-पोतों का जीवन-स्तर उनसे बेहतर हो जाएगा।

यह रुकावट काफ़ी हद तक नई परियोजनाओं के लिए वित्तीय साधन मुहैया कराने में पेश आई मुश्किलों का परिणाम थी। पर्याप्त धन के अभाव में दलदलों से पानी का निकास करना, पुलों का निर्माण करना और बन्दरगाह तैयार करना आसान नहीं था, फिर गेहूँ की नई नस्लें तैयार करना, ऊर्जा के नए स्रोतों को खोजना या नए व्यापारिक मार्गों की खोज करना तो दूर की बात थी। धन की बहुत कमी थी, क्योंकि उन दिनों में ऋण बहुत कम उपलब्ध था, ऋण बहुत कम उपलब्ध था, क्योंकि विकास को लेकर लोगों में भरोसा नहीं था और विकास को लेकर लोगों में भरोसा नहीं था, क्योंकि अर्थव्यवस्था ठहरी हुई थी। इसके नतीजे में ठहराव ख़ुद को स्थायी बनाए रहता था।

मान लीजिए कि आप एक मध्ययुगीन नगर में रहते हैं, जहाँ हर साल पेचिश का प्रकोप होता है। आप इसका इलाज ढूँढने का संकल्प कर लेते हैं। आपको एक कार्यशाला स्थापित करने, जड़ीबूटियाँ और दूर देश के रसायन ख़रीदने, सहयोगियों को पगार देने तथा प्रसिद्ध वैद्यों के सलाह-मशविरे के लिए यात्राएँ करने के लिए धन की आवश्यकता है। आपको अपने शोध में व्यस्त रहने के दौरान अपना तथा अपने परिवार का उदर-पोषण

करने के लिए भी धन की ज़रूरत है, लेकिन आपके पास बहुत पैसा नहीं है। आप स्थानीय चक्कीवाले, बेकर और लोहार के पास जाकर, इस वादे के साथ कि जब आप अन्ततः वह इलाज ढूँढ लेंगे और सम्पन्न हो जाएँगे तब उनका सारा क़र्ज़ चुका देंगे, उनसे कुछ वर्षों के लिए अपनी सारी ज़रूरतें पूरी करने का अनुरोध कर सकते हैं।

दुर्भाग्य से इस चक्कीवाले, बेकर और लोहार के राज़ी होने की कोई सम्भावना नहीं हैं। उनको आज अपने परिवार का उदर-पोषण करने की ज़रूरत है, और किन्हीं चमत्कारी औषधियों में उनका कोई विश्वास नहीं है। वे कल पैदा नहीं हुए थे, अपने सारे वर्षों के दौरान उन्होंने कभी किसी को किसी भयानक बीमारी की किसी नई औषधियों का पता लगाने के बारे में नहीं सुना था। अगर आप राशन चाहते हैं, तो आपको नकद भुगतान करना होगा, लेकिन जब आपने अभी उस औषधि की खोज की ही नहीं है, और आपका सारा समय शोध के काम में लगा रहा है, तब आप पैसा कहाँ से हासिल कर सकते हैं? आप बेमन से वापस अपना खेत जोतने के काम में लग जाते हैं, पेचिश नगर के लोगों को यातना देना जारी रखती है, कोई व्यक्ति किसी नए इलाज को ढूँढने की कोशिश नहीं करता, और सोने का एक सिक्का भी इस हाथ से उस हाथ में नहीं जाता। यही वह ढंग था, जिससे अर्थव्यवस्था शिथिल बनी रहती थी और विज्ञान गतिहीन बना रहता था।

यह चक्र अन्ततः भविष्य में लोगों के बढ़ते हुए भरोसे की बदौलत, और उसके परिणामस्वरूप हुए साख के चमत्कार की बदौलत, आधुनिक युग में टूटा। साख भरोसे की आर्थिक अभिव्यक्ति है। आज, अगर मैं कोई नई दवा विकसित करना चाहता हूँ, लेकिन मेरे पास पर्याप्त धन नहीं है, तो मैं बैंक से क़र्ज़ ले सकता हूँ, या निजी निवेशकों के पास जा सकता हूँ और पूँजीगत निधि खड़ी करने का जोखिम उठा सकता हूँ। जब 2014 की गर्मियों में पश्चिम अफ़्रीका में इबोला का प्रकोप हुआ था, तो आप क्या सोचते हैं कि उन औषधि-निर्माता कम्पनियों के शेयरों के साथ क्या हुआ होगा, जो इबोला-प्रतिरोधक दवाएँ और टीके तैयार करने में व्यस्त थीं? वे शेयर आसमान छू रहे थे। टेक्मीरा के शेयर 50 प्रतिशत ऊपर पहुँच गए थे और बायोक्रिस्ट के शेयर 90 प्रतिशत ऊपर पहुँच गए थे। मध्ययुग में जब महामारी फैलती थी, तो लोग आसमान की ओर अपनी आँखें उठाकर देखते थे, और ईश्वर से प्रार्थना करते हुए अपने पापों के लिए क्षमा माँगते थे। आज जब लोग किसी नई घातक महामारी के बारे में सुनते हैं, तो वे अपने मोबाइल फ़ोन उठाकर अपने ब्रोकरों को फ़ोन लगाते हैं। शेयर बाज़ार के लिए कोई महामारी तक कारोबार का एक अवसर होती है।

अगर पर्याप्त नए उद्यम कामयाब होते हैं, तो भविष्य के प्रति लोगों का भरोसा बढ़ता है, साख में विस्तार होता है, ब्याज की दरें गिरती हैं, उद्यमी ज़्यादा आसानी-से पैसा एकत्र कर पाते हैं और अर्थव्यवस्था का विकास होता है। नतीजतन, भविष्य के प्रति लोगों का

भरोसा और भी बढ़ता है, अर्थव्यवस्था विकसित होती जाती है और उसी के साथ विज्ञान का विकास होता चलता है।

यह बात काग़ज़ पर बहुत सरल-सी लगती है। तब फिर लोगों को आधुनिक युग तक अर्थव्यवस्था के गति पकड़ने की प्रतीक्षा क्यों करनी पड़ी? हज़ारों सालों तक भविष्य के विकास में लोगों का बहुत कम विश्वास था, तो इसलिए नहीं कि वे बेवकूफ़ हुआ करते थे, बल्कि इसलिए कि यह हमारी सहज अनुभूति के, हमारे विकासपरक उत्तराधिकार के और दुनिया के काम करने के ढंग के विरोध में जाता है। ज़्यादातर क़ुदरती व्यवस्थाओं का अस्तित्व सन्तुलन में होता है, और जीवित बने रहने के ज़्यादातर संघर्ष कुल-जमा-शून्य के खेल होते हैं, जिसमें आप दूसरे की क़ीमत पर ही फलफूल सकते हैं।

उदाहरण के लिए, किसी घाटी में हर साल मोटे तौर पर समान मात्रा में घास उगती है। यह घास लगभग 10,000 ख़रगोशों का उदर-पोषण करती है, जिनमें पर्याप्त मात्रा में ऐसे धीमे, मन्दगति या बदक़िस्मत ख़रगोश शामिल होते हैं, जो सौ लोमड़ियों को शिकार मुहैया कराते हैं। अगर कोई एक लोमड़ी विशेष रूप से चालाक और उद्यमी होती है, और वह औसत से ज़्यादा ख़रगोशों को डकार जाती है, तो दूसरी लोमड़ियों के भूखों मरने की सम्भावना होती है। अगर सारी लोमड़ियाँ किसी तरह एक साथ ज़्यादा से ज़्यादा ख़रगोशों को दबोच लेती हैं, तो ख़रगोशों की आबादी लड़खड़ा जाएगी, और अगले साल और भी ज़्यादा लोमड़ियों को भूखे मरना पड़ेगा। बावजूद इसके कि ख़रगोशों के बाज़ार में कभी-कभार उतार-चढ़ाव आता रहता है, तब भी दीर्घकालिक स्तर पर लोमड़ियाँ पिछले साल के मुक़ाबले, मान लीजिए, 3 प्रतिशत अतिरिक्त ख़रगोशों का ज़्यादा शिकार करने की उम्मीद नहीं कर सकतीं।

बेशक, कुछ पारिस्थितिकीय वास्तविकताएँ कहीं ज़्यादा पेचीदा होती हैं, और जीवित बने रहने के सारे संघर्ष ऐसे नहीं होते, जिनमें एक व्यक्ति का हित दूसरे व्यक्ति के अहित पर निर्भर करता हो। बहुत-से जन्तु प्रभावशाली ढंग से परस्पर सहयोग करते हैं, और इनमें कुछ क़र्ज़ तक देते हैं। प्रकृति में इनमें से सबसे ज़्यादा प्रसिद्ध क़र्ज़ देने वाले वेम्पायर चमगादड़ हैं। ये चमगादड़ हज़ारों की तादाद में गुफ़ाओं में एकत्र होते हैं और हर रात शिकार के लिए गुफ़ा से उड़कर बाहर निकलते हैं। जब उनको कोई सोता हुआ परिन्दा या कोई लापरवाह स्तनधारी मिलता है, तो वे उसकी चमड़ी पर एक छोटा-सा चीरा लगा देते हैं, और उसका ख़ून चूसते हैं, लेकिन सारे के सारे वेम्पायर चमगादड़ों को हर रात ऐसा कोई शिकार नहीं मिलता। अपने जीवन के इस अनिश्चय से निपटने के लिए ये वेम्पायर एक-दूसरे को ख़ून उधार देते हैं। जो वेम्पायर शिकार हासिल करने में नाकामयाब रहता है, वह घर वापस आकर अपने किसी ज़्यादा ख़ुशक़िस्मत दोस्त से थोड़ा-सा चुराया हुआ ख़ून उगलने को कहता है। वेम्पायर इस बात को अच्छी तरह याद रखते हैं कि उन्होंने किसके

लिए ख़ून उधार दिया था, ताकि बाद के समय में अगर वह दोस्त भूखा घर लौटता है, तो वह क़र्ज़दार से सम्पर्क करेगा, जो उस अहसान का बदला चुकाएगा।

लेकिन इंसानी बैंक-मालिकों से भिन्न, ये चमगादड़ कभी ब्याज वसूल नहीं करते। अगर क चमगादड़ ने ख चमगादड़ को दस सेंटीलिटर ख़ून उधार दिया था, तो ख उतनी ही मात्र में ख़ून लौटाएगा। न ही ये चमगादड़ इस क़र्ज़ का इस्तेमाल किसी नए कारोबार में धन लगाने के लिए या ख़ून चूसने के बाज़ार के विकास को प्रोत्साहित करने के लिए करते हैं, क्योंकि ख़ून दूसरे प्राणियों द्वारा उत्पन्न किया जाता है, इसलिए इस उत्पादन में वृद्धि करने का कोई उपाय चमगादड़ों के पास नहीं होता। यद्यपि ख़ून का बाज़ार उठता-गिरता रहता है, तब भी चमगादड़ यह मानकर नहीं चल सकते कि 2017 में 2016 के मुक़ाबले 3 प्रतिशत ज़्यादा ख़ून होगा। नतीजतन, वेम्पायर चमगादड़ वृद्धि में विश्वास नहीं करते। विकास-प्रक्रिया के लाखों वर्षों तक मनुष्य वेम्पायर चमगादड़ों, लोमड़ियों और ख़रगोशों से मिलती-जुलती परिस्थितियों में रहते आए थे। इसलिए मनुष्यों को भी वृद्धि में विश्वास करने में मुश्किल पेश आती है।

चमत्कारी कचौड़ी

विकासपरक दबावों ने मनुष्यों को दुनिया को एक कचौड़ी के रूप में देखने का अभ्यस्त बना दिया है। अगर किसी व्यक्ति को इस कचौड़ी का एक बड़ा हिस्सा मिल जाता है, तो किसी दूसरे व्यक्ति को अपरिहार्य रूप से उसका अपेक्षाकृत छोटा टुकड़ा मिल पाता है। कोई ख़ास परिवार या नगर फलफूल सकता है, लेकिन समग्र तौर पर मानव जाति उससे ज़्यादा उत्पादन करने वाली नहीं है, जितना वह आज करती है। तदनुसार, ईसाइयत और इस्लाम जैसे परम्परागत मज़हबों ने या तो मौजूदा कचौड़ी का नए सिरे से वितरण करते हुए, या जन्नत में एक नई कचौड़ी मिलने का आश्वासन देते हुए मनुष्यता की समस्याओं के समाधान खोजने की कोशिशें कीं।

इसके विपरीत, आधुनिकता इस दृढ़ विश्वास पर टिकी है कि आर्थिक विकास न केवल मुमकिन है, बल्कि सर्वथा अनिवार्य है। प्रार्थनाएँ, सत्कर्म और ध्यानयोग से राहत और उत्प्रेरणा मिल सकती है, लेकिन अकाल, महामारी और युद्ध जैसी समस्याओं का समाधान सिर्फ़ आर्थिक विकास की मार्फ़त ही हो सकता है। इस बुनियादी मताग्रह को इस एक सरल-से विचार में समेटा जा सकता है: 'अगर आपकी कोई समस्या है, तो आपको सम्भवतः और ज़्यादा असबाब की ज़रूरत है, और यह अतिरिक्त असबाब जुटाने के लिए आपको इसका और अधिक उत्पादन करना अनिवार्य है'।

आधुनिक राजनेता और अर्थशास्त्री इस बात पर ज़ोर देते हैं कि विकास तीन मुख्य वजहों से अनिवार्य है। पहली, जब हम ज़्यादा उत्पादन करते हैं, तो हम ज़्यादा उपभोग

कर सकते हैं, अपने जीवन-स्तर को ऊँचा उठा सकते हैं और कथित रूप से एक ज़्यादा सुखदायी जीवन का आनन्द ले सकते हैं। दूसरी वजह, जब तक मानव जाति की संख्या बढ़ती रहती है, तब तक आर्थिक वृद्धि की ज़रूरत महज़ इसलिए है कि हम जहाँ पर हैं, वहीं बने रह सकें। उदाहरण के लिए, हिन्दुस्तान में आबादी वृद्धि की सालाना दर 1.2 प्रतिशत है। इसका मतलब है कि अगर हिन्दुस्तान की अर्थव्यवस्था हर साल 1.2 प्रतिशत की दर से विस्तार नहीं करती है, तो बेरोज़गारी बढ़ेगी, वेतनों में गिरावट आएगी और औसत जीवन-स्तर गिर जाएगा। तीसरी वजह, अगर हिन्दुस्तानी अपनी जनसंख्या बढ़ाने पर रोक भी लगा दें, तब भी हिन्दुस्तान ग़रीबी के शिकार अपने करोड़ों नागरिकों का क्या करेगा? अगर अर्थव्यवस्था में वृद्धि नहीं होती, और कचौड़ी का आकार जस का तस बना रहता है, तो आप ग़रीबों को तभी ज़्यादा दे सकते हैं, जब आप अमीरों से कुछ छीन लें। यह स्थिति आपके लिए बेहद मुश्किल विकल्प चुनने के लिए बाध्य कर देगी, और सम्भवतः बहुत ज़्यादा असन्तोष और हिंसा तक की नौबत पैदा कर देगी। अगर आप इन कठोर विकल्पों को चुनने से, असन्तोष से और हिंसा से बचना चाहते हैं, तो आपको एक ज़्यादा बड़ी कचौड़ी की ज़रूरत होगी।

आधुनिकता ने 'बहुत सारे असबाब' को एक ऐसी रामबाण दवा में बदल दिया है, जो लगभग तमाम सार्वजनिक और व्यक्तिगत समस्याओं पर लागू होती है, मज़हबी कट्टरपन से लेकर तीसरी दुनिया के सर्वसत्तावाद और एक विफल वैवाहिक सम्बन्ध तक हर समस्या पर। अगर पाकिस्तान और मिस्र जैसे देश एक स्वस्थ विकास दर क़ायम रख सकें, तो उनके नागरिक निजी कारों और लबालब भरे हुए रेफ़्रिजरेटरों का आनन्द ले सकेंगे, और कट्टरपन्थी 'पाइड पाइपर' का अनुसरण करने की बजाय सांसारिक समृद्धि की राह पर चल सकेंगे। इसी तरह, कांगो और म्याँमार जैसे मुल्कों में आर्थिक विकास एक समृद्ध मध्यवर्ग को जन्म देगा, जो कि उदार लोकतन्त्र की आधारशिला होता है। और जहाँ तक चिड़चिड़े दम्पतियों का सवाल है, अगर वे एक बड़ा मकान भर ख़रीद सकें (ताकि उनको एक तंग कार्यालय में साथ-साथ न रहना पड़े), बर्तन साफ़ करने की मशीन ख़रीद सकें (ताकि आगे से उनके बीच इस बात को लेकर बहस न हो कि बर्तन साफ़ करने की बारी किसकी है) और वे हफ़्ते में दो बार थेरेपी सेशनों में जा सकें, तो उनका वैवाहिक जीवन कथित रूप से बचा रहेगा।

आर्थिक विकास इस तरह वह निर्णायक सन्धि-स्थल बन चुका है, जहाँ लगभग सारे आधुनिक मज़हब, विचारधाराएँ और आन्दोलन मिलते हैं। अहंकार के उन्माद से भरी पंचवर्षीय योजनाओं के साथ सोवियत संघ पर अमेरिका के गला-काट प्रतियोगिता में संलग्न ज़्यादातर लुटेरे उद्योगपतियों जितना ही इस विकास का भूत सवार था। जिस तरह सारे के सारे ईसाई और मुसलमान जन्नत में विश्वास करते हैं, और सिर्फ़ वहाँ पहुँचने के

तरी़के भर पर आपस में असहमत होते हैं, उसी तरह शीत युद्ध के दौरान पूँजीपति और साम्यवादी, दोनों ही आर्थिक विकास की मार्फ़त पृथ्वी पर स्वर्ग रचने में विश्वास करते थे, और केवल इसकी ठीक-ठीक पद्धति को लेकर विवाद करते थे।

आज हिन्दू पुनरुत्थानवादी, धर्मनिष्ठ मुसलमान, जापानी राष्ट्रवादी और चीनी साम्यवादी बहुत भिन्न क़िस्म के मूल्यों और लक्ष्यों में विश्वास रखते हो सकते हैं, लेकिन उस सब के मन में यह विश्वास बैठ चुका है कि आर्थिक विकास ही उनके भिन्न-भिन्न लक्ष्यों को हासिल करने की कुंजी है। इसलिए 2014 में नरेन्द्र मोदी हिन्दुस्तान के प्रधानमन्त्री चुने गए। उनको अपने गृह राज्य गुजरात में आर्थिक विकास को बढ़ावा देने में कामयाबी मिली थी, इसका लाभ उन्हें मिला और व्यापक तौर पर लोगों के मन में यह धारणा बैठी थी कि केवल वे ही मुल्क की मन्द पड़ी राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को पुनर्जीवित कर सकते हैं।

ऐसे ही दृष्टिकोण इस्लामी रेज़ेप ताईप एर्दोआन को 2003 से तुर्की में सत्ता में बनाए हुए हैं। उनकी पार्टी का नाम - द जस्टिस एंड डेवलपमेंट पार्टी - आर्थिक विकास के लिए अपनी प्रतिबद्धता पर रोशनी डालती है, और एर्दोआन की सरकार ने सचमुच एक दशक से ज़्यादा समय से प्रभावशाली विकास दरों को बरक़रार रखा है।

जापान के प्रधानमन्त्री, राष्ट्रवादी शिज़ो अबे, ने जापान की अर्थव्यवस्था को दो दशकों के ठहराव से उबारने के वादे के साथ 2012 में कार्यभार सँभाला था। इसको हासिल करने के उनके आक्रामक और किसी क़दर असामान्य उपायों को अबेनॉमिक्स की संज्ञा दी गई है। इस बीच, पड़ोसी चीन में कम्युनिस्ट पार्टी अभी भी पारम्परिक मार्क्सवादी-लेनिनवादी आदर्शों के प्रति अपनी दिखावटी प्रेम दर्शाती रहती है, लेकिन व्यवहार में वह डेंग ज़ियाओपिंग के इस प्रसिद्ध सूत्रवाक्य से परिचालित है कि 'विकास एकमात्र कठोर सच्चाई है' और 'जब तक बिल्ली चूहों को पकड़ना जारी रखती है, तब तक इससे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता कि वह बिल्ली काली है या सफ़ेद'। जिसका सपाट भाषा में मतलब है: आर्थिक वृद्धि को बढ़ावा देने के लिए जो भी ज़रूरी हो वह करो, और इस बात की परवाह मत करो कि मार्क्स और लेनिन इन कृत्यों से ख़ुश न होते।

सिंगापुर में, जैसा कि एक अक़्लमन्द नगर को शोभा देता है, इस विचार-पद्धति को और भी आगे ले जाया गया है, और मन्त्रियों के वेतन को सकल घरेलू उत्पाद से जोड़ दिया गया है। जब सिंगापुर की अर्थव्यवस्था विकसित होती है, तो सरकारी मन्त्रियों का वेतन बढ़ जाता है, जैसे उनके काम इसी सब से ताल्लुक़ रखते हों।

विकास की यह सनक स्वतःसिद्ध लग सकती है, लेकिन केवल इसलिए हम आधुनिक दुनिया में रहते हैं। अतीत में ऐसा नहीं था। हिन्दुस्तान के महाराजा, ओटोमन सुल्तान, कामाकुरा शोगुन (जापान के तानाशाह,) और हान सम्राट आर्थिक विकास को सुनिश्चित

करने के लिए अपने राजनैतिक ऐश्वर्य को शायद ही कभी दाँव पर लगाते हों। मोदी, एर्दोआन, अबे, और चीनी राष्ट्रपति शी जिनपिंग जैसे सारे लोगों द्वारा अपने करियर को आर्थिक विकास के लिए दाँव पर लगाने का तथ्य इस बात को प्रमाणित करता है कि विकास ने समूची दुनिया में लगभग मज़हबी हैसियत हासिल कर ली है। वाक़ई, आर्थिक विकास में इस गहरे विश्वास को मज़हब का नाम देना ग़लत न होगा, क्योंकि यह अगर हमारी सर्वाधिक नहीं, तो बहुत सारी नैतिक दुविधाओं के समाधान का दावा तो करता ही है। चूँकि आर्थिक विकास कथित रूप से सारी अच्छाइयों का स्रोत है, ये लोगों को उनकी नैतिक असहमतियों को भुला देने और दीर्घकालीन विकास को उच्चतम सीमा तक ले जाने के लिए प्रोत्साहित करता है। नतीजतन, मोदी का हिन्दुस्तान हज़ारों पन्थों, दलों, आन्दोलनों और गुरुओं का है, तब भी हालाँकि उनके अन्तिम लक्ष्यों में भिन्नता हो सकती है, लेकिन जब उनको आर्थिक विकास के एक ही सँकरे रास्ते से गुज़रना है, तो फिर इस बीच मिल-जुल कर कड़ी मेहनत क्यों न की जाए?

तदनुसार 'ज़्यादा असबाब' का मताग्रह व्यक्तियों, व्यापारिक संस्थाओं और सरकारों से ऐसी किसी भी चीज़ का तिरस्कार करने का आग्रह करता है, जो आर्थिक विकास में रुकावट पैदा कर सकती है, जैसे कि सामाजिक बराबरी को सुरक्षित रखना, पारिस्थितिकीय समरसता को सुनिश्चित करना या अपने माता-पिता की इज़्ज़त करना। सोवियत संघ में नेतृत्व का सोचना था कि राज्य-नियन्त्रित साम्यवाद विकास का सबसे तेज़ उपाय है, इसलिए जो भी कोई चीजें सामूहिकीकरण के आड़े आती थीं, उन पर बुल्डोज़र चला दिया जाता था, जिनमें लाखों ज़मींदार, अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता और अराल सागर (द्वीपों का समुद्र: यह विशाल नैसर्गिक झील कज़ाकिस्तान के उत्तर और उज़्बेकिस्तान के दक्षिण के बीच फैली थी) शामिल थे। आज यह बात आमतौर पर स्वीकृत है कि मुक्त-बाज़ार पूँजीवाद का कोई संस्करण दीर्घकालीन आर्थिक विकास को सुनिश्चित करने का कहीं ज़्यादा कारगर उपाय है, इसलिए लालची उद्योगपतियों, सम्पन्न किसानों और अभिव्यक्ति की आज़ादी की रक्षा की जाती है, लेकिन मुक्त-बाज़ार पूँजीवाद के रास्ते में आने वाले पारिस्थितिकीय बसेरों, सामाजिक संरचनाओं और पारम्परिक मूल्यों को विघटित और नष्ट कर दिया जाता है।

उदाहरण के लिए किसी उन्नत प्रौद्योगिकी वाली नई कम्पनी में काम करते हुए प्रति घण्टा 100 डॉलर कमाने वाली एक सॉटवेयर इंजीनियर को लें। एक दिन उसके बूढ़े पिता को लक़वा मार जाता है। अब उसके लिए ख़रीदारी करने, खाना पकाने, यहाँ तक कि नहाने-धोने तक के लिए मदद की ज़रूरत पड़ती है। वह अपने पिता को अपने घर ला सकती है, थोड़ी देर से काम पर जा सकती है, शाम को थोड़ा जल्दी घर वापस आ सकती है और व्यक्तिगत तौर पर अपने पिता की देखभाल कर सकती है। इससे उसकी आय तथा

उस नई कम्पनी की उत्पादकता, दोनों को नुक़सान पहुँचेगा, लेकिन उसके पिता को उसके प्रति सम्मान और प्रेम का भाव रखने वाली बेटी द्वारा देखभाल का लाभ मिल सकेगा। दूसरा विकल्प है कि यह इंजीनियर 12 डॉलर प्रति घण्टे की दर पर देखभाल करने वाले मैक्सिको के एक व्यक्ति को काम पर रख सकती है, जो उसके पिता के साथ रहे और उसकी सारी ज़रूरतों को पूरा करे। यह विकल्प उस इंजीनियर तथा उसकी नई कम्पनी की यथास्थिति को बरक़रार रखना होगा, यहाँ तक कि इससे उस देखरेख करने वाले कर्मचारी और मैक्सिको की अर्थव्यवस्था तक को फ़ायदा होगा। इस इंजीनियर को कौन-सा विकल्प चुनना चाहिए?

मुक्त बाज़ार पूँजीवाद के पास एक दृढ़ जवाब है। अगर आर्थिक विकास हमसे पारिवारिक सम्बन्धों को तोड़ने की माँग करता है, तो लोगों को उनके माँ-बाप से दूर रहने को प्रोत्साहित करें, और देखभाल करने वालों को दुनिया के दूसरे हिस्से से लाने की ज़रूरत हो, तो ऐसा ही करें, लेकिन इस जवाब में एक तथ्यात्मक वक्तव्य की बजाय एक नैतिक मत शामिल है। अगर कुछ लोग सॉफ़्टवेयर इंजीनियरिंग में विशेषज्ञता हासिल कर लेते हैं और दूसरे लोग अपना समय बुज़ुर्गों की सेवा में लगाते हैं, तो निस्सन्देह हम ज़्यादा सॉफ़्टवेयर तैयार कर सकते हैं और बूढ़ों को कहीं ज़्यादा दक्षतापूर्ण सेवा-सुश्रुषा मुहैया करा सकते हैं। तब भी क्या आर्थिक विकास पारिवारिक सम्बन्धों से ज़्यादा महत्त्वपूर्ण है? इस तरह के नैतिक मत की कल्पना करते हुए मुक्त-बाज़ार पूँजीवाद विज्ञान के देश की सीमा लाँघकर मज़हब के देश में जा पहुँचा है।

ज़्यादातर पूँजीवादी सम्भवतः मज़हब के बिल्ले को नापसन्द करेंगे, लेकिन जैसा कि मज़हबों के साथ होता है, पूँजीवाद कम से कम अपना सिर ऊँचा उठा सकता है। उन दूसरे मज़हबों से भिन्न जो हमें स्वर्ग में कचौड़ी मिलने का आश्वासन देते हैं, पूँजीवाद यहीं पृथ्वी पर चमत्कारों के घटित होने का वादा करता है - और कभी-कभी ये चमत्कार पैदा तक कर देता है। अकाल और महामारी पर विजय पाने का ज़्यादातर श्रेय आर्थिक विकास में प्रचण्ड पूँजीवादी आस्था को जाता है। यहाँ तक कि पूँजीवाद इंसानी हिंसा में कमी लाने और सहिष्णुता तथा पारस्परिक सहयोग में वृद्धि के लिए भी किसी हद तक तारीफ़ का हक़दार है। जैसा कि अगला अध्याय स्पष्ट करता है, यहाँ कुछ और भी कारक क्रियाशील हैं, लेकिन पूँजीवाद ने अर्थव्यवस्था को उस कुल-जमा-शून्य खेल की तरह देखने से रोककर, जिसमें आपका मुनाफ़ा मेरा घाटा होता है, और इसकी बजाय उसको सभी के लिए लाभदायक स्थिति की तरह देखने को प्रेरित करके वैश्विक समरसता बढ़ाने में महत्त्वपूर्ण योगदान किया है। पारस्परिक हित के इस दृष्टिकोण ने सम्भवतः वैश्विक समरसता को बढ़ाने में उससे कहीं ज़्यादा मदद की है, जितनी अपने पड़ोसी को प्रेम करने

और आपके एक गाल पर तमाचा मारने वाले के सामने अपना दूसरा गाल कर देने के सदियों जारी रहे ईसाई उपदेश ने की है।

विकास के परम मूल्य में अपने विश्वास से पूँजीवाद अपने अव्वल दर्ज़े के आदेश का निष्कर्ष निकालता है: तुम्हें अपने मुनाफ़ों का निवेश विकास की वृद्धि के लिए करना चाहिए। ज़्यादातर इतिहास के दौरान राजा और पुरोहित अपने मुनाफ़ों को भड़कीले जश्नों, वैभवशाली महलों और अनावश्यक युद्धों पर लुटाया करते थे। या फिर वे अपनी स्वर्ण मुद्राओं को लोहे की तिजोरियों में तालाबन्द कर उनको तहख़ानों में दफ़ना दिया करते थे। आज, परमभक्त पूँजीपति अपने मुनाफ़ों का उपयोग नए कर्मचारियों को नौकरी पर रखने, कारख़ानों को विस्तार देने या कोई नया उत्पाद विकसित करने में करते हैं।

अगर उनको ख़ुद समझ में नहीं आता कि वे यह सब कैसे करें, तो वे अपना पैसा किसी बैंक-कर्मी या साहूकार जैसे किसी ऐसे व्यक्ति को दे देते हैं, जो यह कर सकता है। ये लोग उनके पैसे को विभिन्न उद्यमियों को उधार दे देते हैं। किसान गेहूँ के नए खेतों को तैयार करने के लिए क़र्ज़ लेते हैं, ठेकेदार इस उधार लिए गए पैसे से नए मकान बनाते हैं, ऊर्जा निगम इससे नए तेल क्षेत्रों की छानबीन करते हैं, हथियार बनाने वाले कारख़ाने इससे नए हथियार तैयार करते हैं। इन तमाम गतिविधियों से होने वाले मुनाफ़े इन उद्यमियों को ब्याज समेत क़र्ज़ चुकाने में सक्षम बनाते हैं। अब हमारे पास न सिर्फ़ ज़्यादा मात्र में गेहूँ, मकान, तेल और हथियार होते हैं - बल्कि और ज़्यादा पैसा भी होता है, जिसे बैंक और निधि-संस्थाएँ फिर से क़र्ज़ दे सकती हैं। यह चक्र कभी घूमना बन्द नहीं करेगा, कम से कम पूँजीवाद के मुताबिक़ तो नहीं ही। हम कभी उस क्षण पर नहीं पहुँचे, जब पूँजीवाद को कहना पड़े: 'बस हो गया। बहुत विकास हो गया। अब हम राहत की साँस ले सकते हैं'। अगर आप जानना चाहते हैं कि पूँजीवाद के चक्र के थमने की कभी कोई सम्भावना क्यों नहीं है, तो अपने किसी ऐसे दोस्त से घण्टे भर बात करिए, जिसने 100,000 डॉलर जमा कर लिए हैं और जो इस पर विचार कर रहा है कि उस पैसे का क्या किया जाए।

'बैंकों की ब्याज दरें इतनी कम हैं,' वह शिकायत करेगा। 'मैं अपना पैसा उस बचत खाते में नहीं रखना चाहता, जो महज़ 0.5 प्रतिशत सालाना ब्याज देता है। मुमकिन है कि मैं इसको सरकारी बॉण्डों में लगा कर 2 प्रतिशत कमा लूँ। मेरे चचेरे भाई रिची ने पिछले साल सिएटल में एक फ़्लैट ख़रीदा था और अपने निवेश से वह अब तक 20 प्रतिशत कमा चुका है! मुमकिन है मैं भी रियल एस्टेट में ही अपना पैसा लगाता: लेकिन आजकल हर कोई कह रहा है कि रियल एस्टेट का नया गुब्बारा कभी भी फूट सकता है। इसलिए, शेयर बाज़ार के बारे में तुम क्या सोचते हो? मेरा एक दोस्त बता रहा था कि आजकल सबसे अच्छा सौदा एक ईटीएफ़ ख़रीद लेना है, जो ब्राज़ील और चीन जैसी उभरती हुई अर्थव्यवस्थाओं का अनुसरण करता है'। वह साँस लेने के लिए पल भर रुकता है, तो आप

पूछते हैं, 'यह तो ठीक है, लेकिन तुम अपने 100,000 डॉलर से ही सन्तुष्ट क्यों नहीं हो?' वह आपको मुझसे बेहतर ढंग से समझा पाएगा कि क्यों पूँजीवाद कभी नहीं थमेगा।

यह सीख सर्वव्यापी पूँजीवादी खेलों की मार्फ़त बच्चों और किशोरों तक के दिमाग़ में जड़ जमा चुकी है। शतरंज जैसे पूर्वआधुनिक खेलों के पीछे एक ठहरी हुई अर्थव्यवस्था की कल्पना हुआ करती थी। आप सोलह गोटियों के साथ शतरंज का खेल शुरू करते थे, और आप इससे ज़्यादा गोटियों के साथ खेल समाप्त नहीं करते थे। बहुत दुर्लभ मामलों में कोई प्यादा कभी-कभी वज़ीर में बदल जा सकता है, लेकिन आप नए प्यादे नहीं रच सकते, न ही अपने घोड़ों को पदोन्नत कर टैंकों में बदल सकते हैं। इसलिए शतरंज के खिलाड़ियों को कभी निवेश के बारे में नहीं सोचना पड़ता। इसके विपरीत बहुत-से आधुनिक बोर्ड गेम और कम्प्यूटर खेल निवेश और वृद्धि पर केन्द्रित होते हैं।

विशेष रूप से प्रभावशाली हैं *मिनेक्राट, द सेटलर ऑफ़ कैटन या सिड* मीयर *का सिवलिज़ेशन* जैसे साभ्यतिक षैली के युक्तिपरक खेल। खेल की पृष्ठभूमि मध्य युग की, पाषाण युग की या किसी कल्पित परीकथा-लोक की हो सकती है, लेकिन उसूल हमेशा जस के तस बने रहते हैं और वे हमेशा पूँजीवादी होते हैं। आपका लक्ष्य कोई नगर, कोई राज्य या शायद कोई पूरी की पूरी सभ्यता बसाना हो सकता है। आप एक बहुत ही साधारण आधार, जैसे कि महज़ एक गाँव और उसके पास के खेतों से शुरुआत करते हैं। आपकी परिसम्पत्तियाँ आपको गेहूँ, लकड़ी, लोहे या सोने की शुरुआती आय मुहैया कराती हैं, फिर आपको इस आय का अक़्लमन्दी के साथ निवेश करना होता है। आपको सैनिकों जैसे अनुत्पादक, किन्तु तब भी ज़रूरी साधनों, तथा और अधिक गाँवों, खेतों और खदानों जैसी उत्पादक परिसम्पत्तियों के बीच चुनाव करना होता है। जीत की रणनीति आमतौर से अनुत्पादक अनिवार्यताओं पर कम से कम निवेश करते हुए अपनी उत्पादक परिसम्पत्तियों में इज़ाफ़ा करते जाने की होती है। अतिरिक्त गाँवों को बसाने का मतलब होगा कि अगली बार आपको ज़्यादा आय होगी, जिससे आप (ज़रूरी होने पर) और ज़्यादा सैनिक रख सकेंगे, लेकिन इसी के साथ-साथ आप उत्पादन में अपने निवेश को बढ़ा सकेंगे। जल्दी ही आप अपने गाँवों को उन्नत रूप देकर उनको नगरों में बदलते हुए विश्वविद्यालयों, बन्दरगाहों और कारख़ानों की स्थापना कर सकते हैं, समुद्रों और महासागरों में उतरकर उनमें खोज कर सकते हैं, अपनी सभ्यता बसा सकते हैं और खेल जीत सकते हैं।

नौका-संलक्षण (आर्क सिंड्रोम)

लेकिन क्या अर्थव्यवस्था वाक़ई सदा विकसित होती रह सकती है? क्या अन्ततः इसके संसाधन चुक नहीं जाएँगे और धीरे-धीरे वह ठहर नहीं जाएगी? विकास की निरन्तरता को

सुनिश्चित करने के लिए हमें किसी तरह संसाधनों के अक्षय-स्रोत को खोजना अनिवार्य है।

एक उपाय है नए देशों की खोज करना और उनको जीतना। सदियों तक यूरोप की अर्थव्यवस्था और पूँजीवादी व्यवस्था का विस्तार वाक़ई समुद्र-पार की साम्राज्यवादी फ़तहों पर निर्भर रहा करता था, लेकिन पृथ्वी पर द्वीप और महाद्वीप तो आख़िर सीमित मात्र में ही हैं। कुछ उद्यमी अन्ततः नए ग्रहों और आकाशगंगाओं तक की खोज की उम्मीद लगाए हुए हैं, लेकिन इस बीच आधुनिक अर्थव्यवस्था को अपने विस्तार का कोई बेहतर तरीक़ा ढूँढना ज़रूरी था।

यह विज्ञान है, जिसने आधुनिकता को इसका समाधान उपलब्ध कराया है। लोमड़ी अर्थव्यवस्था विकसित नहीं हो सकती, क्योंकि लोमड़ियाँ नहीं जानतीं कि ज़्यादा ख़रगोशों का उत्पादन कैसे किया जाए। ख़रगोश अर्थव्यवस्था ठप पड़ जाती है, क्योंकि ख़रगोश घास को और ज़्यादा तेज़ी-से नहीं उगा सकते, लेकिन इंसानी अर्थव्यवस्था विकसित हो सकती है, क्योंकि इंसान नई सामग्रियों और ऊर्जा के नए स्रोतों का पता लगा सकते हैं।

कचौड़ी के निश्चित आकार का पारम्परिक दृष्टिकोण पहले से मान कर चलता है कि दुनिया में सिर्फ़ दो ही तरह के संसाधन हैं: कच्चा माल और ऊर्जा, लेकिन वास्तव में संसाधन तीन तरह के हैं: कच्चा माल, ऊर्जा और ज्ञान। कच्चे माल और ऊर्जा की सीमा है - इनका जितना ही आप इस्तेमाल करते जाते हैं, ये उतने ही कम पड़ते जाते हैं। ज्ञान, इसके विपरीत एक उन्नतिशील संसाधन है - जितना ही आप इसका इस्तेमाल करते हैं, उतना ही यह बढ़ता जाता है। सच तो यह है कि जब आप अपने ज्ञान के भण्डार को बढ़ा लेते हैं, तो वह आपको और अधिक माल और ऊर्जा भी प्रदान करता है। अगर मैं अलास्का में तेल की खोज करने पर 10 करोड़ डॉलर लगाता हूँ और उसका पता लगा लेता हूँ, तो अब मेरे पास तो ज़्यादा तेल होगा, लेकिन मेरे नाती-पोतों के पास उसकी मात्र कम होगी। इसके विपरीत, अगर मैं सौर ऊर्जा के अनुसन्धान पर 10 करोड़ डॉलर ख़र्च करता हूँ, और मैं इस ऊर्जा को उपयोग में लाने का एक नया और सक्षम तरीक़ा निकाल लेता हूँ, तो मेरे तथा मेरे नाती-पोतों के पास ज़्यादा ऊर्जा होगी।

हज़ारों साल तक विकास का वैज्ञानिक मार्ग अवरुद्ध रहा, तो इसलिए क्योंकि लोगों का मानना था कि पवित्र पोथियों और प्राचीन परम्पराओं में वह सारा ज्ञान पहले से मौजूद है, जो दुनिया हमें उपलब्ध करा सकती है। ऐसी कोई कम्पनी, जिसको यह विश्वास हो कि दुनिया के सारे तेल-क्षेत्रों का पता लगाया जा चुका है, वह तेल की खोज में समय और पैसा बर्बाद नहीं करेगी। इसी तरह जो इंसानी संस्कृति यह विश्वास करती हो कि वह जानने लायक़ सब कुछ जानती है, वह नए ज्ञान की तलाश की परवाह नहीं करेगी। आधुनिकता के पहले की ज़्यादातर सभ्यताओं की हालत यही थी। लेकिन, वैज्ञानिक क्रान्ति ने मानव जाति को इस बचकाने यक़ीन से मुक्ति दिलाई। महानतम वैज्ञानिक खोज थी अज्ञानता की

खोज। जैसे ही मनुष्यों को इस बात का अहसास हो गया कि वे दुनिया के बारे में कितना कम जानते हैं, उनको नए ज्ञान की तलाश की बहुत अच्छी वजह मिल गई, जिसने प्रगति के वैज्ञानिक मार्ग को खोल दिया।

हर गुज़रती हुई पीढ़ी के साथ विज्ञान ने ऊर्जा के नए स्रोतों, नए क़िस्म के कच्चे माल, बेहतर यन्त्रों और उत्पादन की अनूठी पद्धतियों का पता लगाने में मदद की। नतीजतन, 2016 में मानव जाति के नियन्त्रण में पहले के किसी भी वक़्त के मुक़ाबले ज़्यादा ऊर्जा और कच्चा माल है, और उत्पादन आसमान छूता है। भाप के इंजन, आन्तरिक ज्वलन इंजन (इंटर्नल कम्बश्चन इंजन) और कम्प्यूटर ने बिना किसी पूर्वयोजना के पूरे के पूरे नए उद्योगों को जन्म दे दिया। अगर हम बीस साल आगे के भविष्य में झाँककर देखें, तो हम पूरे विश्वास के साथ 2036 में आज की तुलना में कहीं अधिक उत्पादन और उपभोग की उम्मीद कर सकते हैं। हमें पूरा भरोसा है कि अतिसूक्ष्म प्रौद्योगिकी, जनेटिक इंजीयरिंग और कृत्रिम बुद्धि (आर्टिफ़िशल इंटेलिजेंस) उत्पादन के क्षेत्र में क्रान्ति ला देंगे, और हमारे निरन्तर फैलते सुपरमार्केटों में नए प्रभाग खोल देंगे।

इसलिए संसाधनों की कमी पर विजय पाने का हमारे पास अच्छा अवसर है। पारिस्थितिकीय विनाश आधुनिक अर्थव्यवस्था का असल अभिशाप है। वैज्ञानिक तरक़्क़ी और आर्थिक उन्नति, दोनों एक नाज़ुक जीव-मण्डल (बायोस्फ़ियर) में घटित होते हैं, और जैसे ही इनकी शक्ति बढ़ती है, वैसे ही आघात की तरंगें पारिस्थितिकी को अस्थिर बना देती हैं। दुनिया के हर व्यक्ति को दौलतमन्द अमेरिकियों जैसा जीवन-स्तर उपलब्ध कराने के लिए हमें कुछ और ग्रहों की ज़रूरत पड़ेगी, लेकिन हमारे पास तो यही एक ग्रह है। अगर प्रगति और वृद्धि का परिणाम पारिस्थितिकीय तन्त्र के विनाश में होता है, तो इसकी भीषण क़ीमत सिर्फ़ वेम्पायर चमगादड़ों, लोमड़ियों और ख़रगोशों को ही नहीं, सेपियन्स को भी चुकानी पड़ेगी। पारिस्थितिकीय दुर्घटना आर्थिक विनाश, राजनैतिक उथल-पुथल और मनुष्यों के जीवन-स्तर में गिरावट का कारण बन सकती है, और मानव सभ्यता तक के अस्तित्व को ख़तरे में डाल सकती है।

हम प्रगति और वृद्धि की रफ़्तार को धीमा करके इस ख़तरे को कम कर सकते हैं। अगर इस साल के निवेशक अपने पोर्टफ़ोलियो पर 6 प्रतिशत मुनाफ़े की उम्मीद करते हैं, तो दस साल में वे 3 प्रतिशत मुनाफ़े से और बीस साल में मात्र 1 प्रतिशत मुनाफ़े से सन्तुष्ट रहना सीख सकते हैं, और तीस साल में अर्थव्यवस्था वृद्धि करना बन्द देगी और जो कुछ हमारे पास होगा, हम उससे सन्तुष्ट होंगे, लेकिन वृद्धि का मज़हबी पन्थ इस तरह के विधर्मितापूर्ण विचार का सख़्ती से विरोध करता है। इसकी बजाय, वह हमें और भी तेज़ी-से भागने की सलाह देता है। अगर हमारी खोजें पारिस्थितिकीय तन्त्र को अस्थिर करती हैं और मनुष्यता को ख़तरे में डालती हैं, तो हमें कोई ऐसी चीज़ खोजनी चाहिए, जो हमारी

रक्षा कर सके। अगर ओज़ोन की परत कमज़ोर पड़ती है और हमारे सामने त्वचा के कैंसर का ख़तरा पैदा करती है, तो हमें बेहतर सनस्क्रीन और कैंसर के बेहतर इलाज का आविष्कार करना चाहिए, और इस तरह सनस्क्रीन की नई फैक्ट्रियों और नए कैंसर-केन्द्रों को भी बढ़ावा देना चाहिए। अगर सारे नए उद्योग वातावरण और समुद्रों को प्रदूषित करते हुए भूमण्डलीय ताप में वृद्धि (ग्लोबल वार्मिंग) और सामूहिक विलुप्तियों का कारण बनते हैं, तो हमें अपने लिए आभासी दुनियाएँ और उच्च-तकनीकी शरण-स्थल गढ़ने चाहिए, जो हमें इस ग्रह के तप्त, निर्जन और नर्क की मानिन्द प्रदूषित हो जाने पर भी जीवन की तमाम अच्छी चीजें उपलब्ध करा सकें।

बीजिंग पहले ही इस क़दर प्रदूषित हो चुका है कि लोग घर से बाहर निकलने से बचते हैं, और दौलतमन्द चीनी घर के अन्दर वायु को शुद्धि रखने वाली यान्त्रिक प्रणालियों के लिए हज़ारों डॉलर का भुगतान करते हैं। अत्यन्त दौलतमन्द लोग तो अपने आँगनों तक में सुरक्षात्मक यन्त्र लगवा लेते हैं। 2013 में इंटरनेशनल स्कूल ऑफ़ बीजिंग ने एक क़दम और आगे बढ़कर टेनिस के अपने छह कोर्टों और खेल के मैदानों के ऊपर 50 लाख डॉलर की लागत से एक विशाल गुम्बज का निर्माण कर डाला है। यह स्कूल विदेशी राजनयिकों और उच्चवर्गीय चीनियों के बच्चों की सेवा में लगा हुआ है। दूसरे स्कूल भी इसी रास्ते पर बढ़ रहे हैं, और चीन का वायु-शुद्धिकरण बाज़ार उछाल पर है। निश्चय ही बीजिंग के ज़्यादातर बाशिन्दे अपने घरों में इस तरह की विलासिता जुटाने की हालत में नहीं हैं, न ही वे अपने बच्चों को इंटरनेशनल स्कूल में भेजने का ख़र्च ही उठा सकते हैं।

मानव जाति अपने को दोहरी दौड़ में उलझा पा रही है। एक ओर, हम ख़ुद को वैज्ञानिक प्रगति और आर्थिक वृद्धि की रफ़्तार को तेज़ करने के लिए विवश महसूस करते हैं। एक अरब चीनी और एक अरब हिन्दुस्तानी मध्यवर्गीय अमेरिकियों की तरह जीवन जीना चाहते हैं, और उनको इसकी कोई वजह दिखाई नहीं देती कि वे अपने इस ख़्वाब को क्यों लटकाकर रखें, जबकि अमेरिकी अपनी एसयूवी और शॉपिंग मॉल्स को त्याग देने को तैयार नहीं हैं। दूसरी ओर, हमें पारिस्थितिक महायुद्ध से कम से कम एक क़दम आगे होना भी अनिवार्य लगता है। इस दोहरी दौड़ को बरक़रार रखना साल-दर-साल और भी मुश्किल होता जाता है, क्योंकि वह हर डग, जो दिल्ली के झोपड़पट्टी-वासियों को अमेरिकी ख़्वाब के और क़रीब लाता जा रहा है, वह इस ग्रह को ख़तरे के कगार पर भी ला रहा है।

अच्छी बात यह है कि सैकड़ों सालों से मानव जाति ने पारिस्थितिकीय विनाश का शिकार हुए बिना विकसित होती अर्थव्यवस्था का लाभ उठाया है। इस प्रक्रिया में बहुत-सी दूसरी प्रजातियाँ नष्ट होती रहीं, और मनुष्यों को भी कई आर्थिक संकटों और पारिस्थितिकीय विपदाओं को झेलना पड़ा, तब भी हम अब तक किसी तरह बच निकलने

में कामयाब रहे हैं, लेकिन क़ुदरत का उसूल भविष्य की कामयाबी की गारंटी नहीं देता। कौन जानता है कि विज्ञान एक साथ अर्थव्यवस्था को ठंडा पड़ने तथा पारिस्थितिकी को उबलने से रोकने में हमेशा सक्षम बना रहेगा। और चूँकि रफ़्तार अपना बढ़ना जारी रखे हुए है, चूक के लिए उपलब्ध हाशिये लगातार सिकुड़ते जा रहे हैं। पहले अगर सदी में एक बार कोई विस्मयकारी आविष्कार पर्याप्त होता था, तो आज हमें हर दूसरे साल कोई चमत्कार पैदा करना ज़रूरी हो गया है।

हमें इस बात की चिन्ता करने की भी ज़रूरत है कि एक पारिस्थितिकीय महाविनाश के परिणाम मनुष्यों के विभिन्न वर्गों के लिए अलग-अलग तरह के हो सकते हैं। इतिहास में कोई न्याय नहीं है। जब आपदा आती है, तो ग़रीब हमेशा अमीरों की तुलना में बहुत ज़्यादा पिसते हैं, उस स्थिति में भी पिसते हैं, जबकि इस त्रासदी को अमीरों ने अंजाम दिया होता है। भूमण्डल का बढ़ता हुआ ताप पहले ही शुष्क अफ़्रीकी मुल्कों के ग़रीबों के जीवन को सम्पन्न पश्चिमी लोगों से कहीं ज़्यादा प्रभावित कर रहा है। विरोधाभास यह है कि विज्ञान की शक्ति स्वयं ही इस ख़तरे को बढ़ा सकती है, क्योंकि यह सम्पन्नों को आत्मतुष्ट बनाती है।

ग्रीनहाउस गैस के उत्सर्जन पर ही विचार करें। ज़्यादातर अध्येताओं और उत्तरोत्तर बढ़ती संख्या में राजनेताओं को भूमण्डल के बढ़ते हुए ताप और उससे सम्भावित ख़तरे के परिमाण का अहसास है। तब भी यह स्वीकृति अब तक सार्थक ढंग से हमारे व्यवहार में तब्दीली लाने में नाकामयाब रही है। हम भूमण्डल के बढ़ते हुए ताप के बारे में ढेरों बातें कहते हैं, लेकिन व्यवहार में मानव जाति इस विनाश को रोकने के लिए अनिवार्य कोई गम्भीर आर्थिक, सामाजिक या राजनैतिक त्याग करने की इच्छुक दिखाई नहीं देती। 2000 और 2010 के बीच ये उत्सर्जन बिल्कुल भी कम नहीं हुए। इसके विपरीत, ये 1970 और 2000 के बीच के 1.3 के मुक़ाबले 2.2 प्रतिशत की सालाना दर से बढ़े ही हैं। ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जन पर 1997 की क्योटो सन्धि (1997 क्योटो प्रोटोकॉल ऑन ग्रीनहाउस गैस इमिशन) का लक्ष्य भूमण्डलीय ताप को रोकने की बजाय महज़ उसकी रफ़्तार को कम करना था, लेकिन दुनिया के अव्वल दर्ज़े के प्रदूषण फैलाने वाले मुल्क संयुक्त राज्य अमेरिका ने इस सन्धि को मंज़ूर करने से इंकार कर दिया था, और इसने अपनी आर्थिक वृद्धि में अड़चन पैदा होने के भय से अपने उत्सर्जन में उल्लेखनीय कमी लाने की कोई कोशिश नहीं की है।

वैश्विक CO_2 उत्सर्जन, 1970-2013
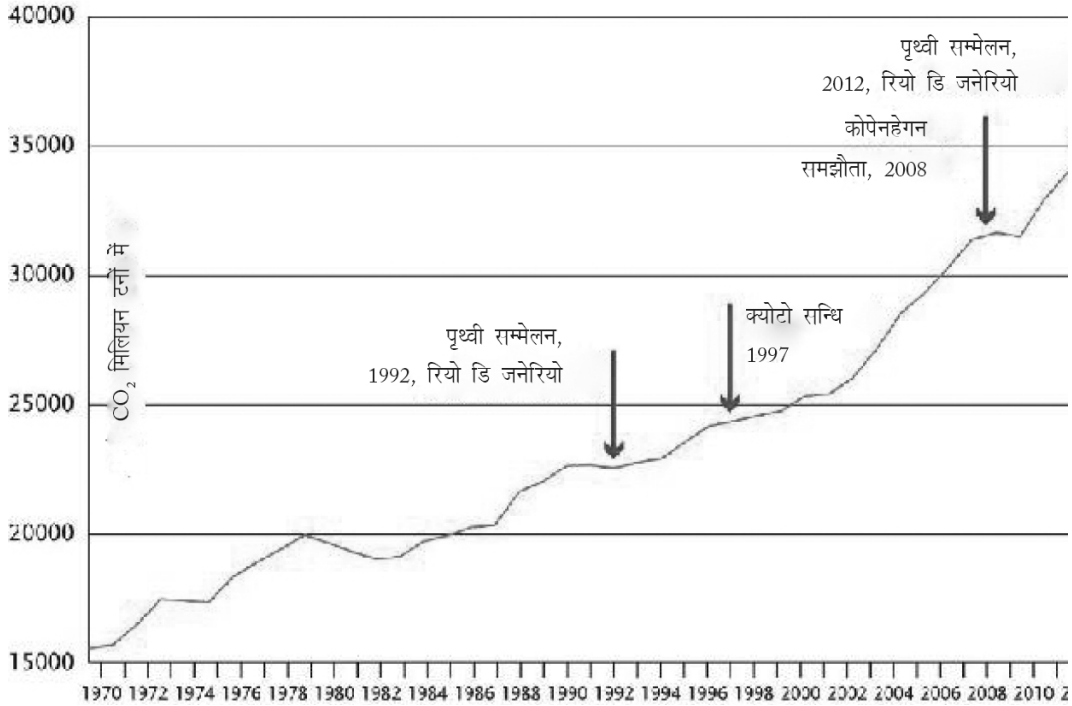
स्रोत: इमिशन डेटाबेस फ़ॉर ग्लोबल एट्मॉस्फ़ेरिक रिसर्च (इडीजीएआर), यूरोपियन कमीशन

26. भूमण्डल के बढ़ते हुए ताप को लेकर सारी बातचीत, सारी सभाएँ, सम्मेलन और औपचारिक अन्तरराष्ट्रीय समझौते अब तक वैश्विक ग्रीनहाउस उत्सर्जनों को नियन्त्रित करने में विफल रहे हैं। अगर आप इस ग्राफ़ को ग़ौर से देखें, तो आप पाते हैं कि ये उत्सर्जन सिर्फ़ आर्थिक संकटों तथा मन्दी के दौर में ही कम हुए हैं। तदनुसार 2008-9 में ग्रीनहाउस उत्सर्जनों में गिरावट वैश्विक वित्तीय संकट की वजह से आई थी, जबकि 2009 में हस्ताक्षरित कोपेनहेगन सन्धि का कोई उल्लेखनीय प्रभाव नहीं पड़ा था। भूमण्डलीय ताप की वृद्धि को रोकने का एकमात्र निश्चित उपाय आर्थिक वृद्धि पर लगाम लगाना है, जिसको लेकर कोई सरकार इच्छुक नहीं है।

दिसम्बर 2015 के पेरिस समझौते में और भी ज़्यादा महत्त्वाकांक्षी लक्ष्य निर्धारित किए गए हैं, जो औसत तापमान को पूर्व-औद्योगिक स्तरों से 1.5 डिग्री की बढ़ोत्तरी तक सीमित रखने का आह्वान करते हैं, लेकिन इस लक्ष्य तक पहुँचने के लिए आवश्यक बहुत-से तकलीफ़देह उपायों को सुविधाजनक ढंग से 2030 के बाद तक के लिए, या यहाँ तक कि इक्कीसवीं सदी के दूसरे अर्द्ध तक के लिए, मुल्तवी कर दिया गया है, और इस तरह इस पूरे झमेले को बहुत कारगर ढंग से अगली पीढ़ी पर टाल दिया है। मौजूदा प्रशासन पर्यावरण का हिमायती दिखने के सारे राजनैतिक फ़ायदे तत्काल बटोरने में सक्षम हैं, जबकि उत्सर्जनों को कम करने (और आर्थिक वृद्धि की रफ़्तार को धीमा करने) की भारी राजनैतिक क़ीमत की वसीयत भावी प्रशासनों को सौंप दी गई है। तब भी, जिस वक़्त (जनवरी 2016 में) यह वाक्य लिखा जा रहा था, यह बात क़तई स्पष्ट नहीं थी कि संयुक्त राज्य अमेरिका और प्रदूषण फैलाने वाले दूसरे मुल्क पेरिस समझौते को मंज़ूर और क्रियान्वित करेंगे या नहीं। बहुत सारे राजनेताओं और मतदाताओं का मानना है कि जब

तक अर्थव्यवस्था में वृद्धि जारी रहती है, वैज्ञानिक और इंजीनियर हमें क़यामत से बचाए रखेंगे। जब जलवायु-परिवर्तन का सवाल उठता है, तो वृद्धि में सच्चा विश्वास रखने वाले बहुत-से लोग चमत्कार के घटित होने की उम्मीद भर नहीं करते, बल्कि वे यह मान कर ही चलते हैं कि चमत्कार होकर रहेगा।

मानव जाति के भविष्य को इस विश्वास पर दाँव पर लगाना किस तरह बुद्धिमत्ता है कि भविष्य के वैज्ञानिक इस ग्रह को बचाने का कोई अज्ञात उपाय खोज ही लेंगे? दुनिया को चलाने वाले ज़्यादातर राष्ट्रपति, मन्त्री और सीईओ बहुत बुद्धिमान हैं। वे इस तरह का जुआ क्यों खेल रहे हैं? हो सकता है कि वे इसलिए ऐसा कर रहे हैं, क्योंकि उनको ऐसा नहीं लगता कि वे इस जुए में अपने निजी भविष्य को दाँव पर लगा रहे हैं। अगर स्थिति बद से बदतर हो जाती है और विज्ञान प्रलय को न भी रोक सके, तो कम से कम इंजीनियर तो उच्च वर्ग के लिए एक उच्च-तकनीक नोआ की नौका (Noah's Ark) तैयार कर ही लेंगे, भले ही वे अरबों दूसरे लोगों को डूबने के लिए छोड़ दें। इस उच्च-तकनीक नौका में विश्वास फ़िलहाल मानव जाति और समूचे पारिस्थितिकीय तन्त्र के भविष्य के लिए सबसे बड़ा ख़तरा है। जो लोग उच्च-तकनीक नौका में विश्वास रखते हैं, उनको वैश्विक पारिस्थितिकी की ज़िम्मेदारी नहीं सौंपी जानी चाहिए, ठीक वैसी ही वजह से कि जो लोग मरणोत्तर स्वर्ग में विश्वास रखते हैं, उनको परमाणु हथियार नहीं सौंपे जाने चाहिए।

और ग़रीबों के बारे में क्या कहा जाए? वे क्यों विरोध नहीं कर रहे हैं? अगर कभी प्रलय आता है, तो इसकी पूरी क़ीमत तो उन्हीं को चुकानी पड़ेगी, लेकिन वे आर्थिक रुकावट की क़ीमत चुकाने वाले भी व्यक्ति होंगे। एक पूँजीवादी दुनिया में ग़रीबों के जीवन में तभी सुधार आता है, जब अर्थव्यवस्था में वृद्धि होती है। इसलिए इसकी कोई सम्भावना नहीं दिखाई देती कि वे भविष्य के पारिस्थितिकीय ख़तरों को कम करने की दिशा में उठाए गए किन्हीं ऐसे क़दमों का स्वागत करेंगे, जो मौजूदा आर्थिक वृद्धि की रफ़्तार को धीमा करने पर आधारित हों। पर्यावरण की रक्षा करना बहुत ही अच्छा विचार है, लेकिन जो लोग अपने मकान का किराया नहीं चुका पाते, वे बर्फ़ की चोटियों के पिघलने को लेकर चिन्तित होने की बजाय अपने ओवरड्राट को लेकर ज़्यादा चिन्तित हैं।

चूहा दौड़

अगर हम पर्याप्त तेज़ रफ़्तार से दौड़ना जारी भी रखते हैं और किसी तरह आर्थिक ध्वंस तथा पारिस्थितिकीय दुर्घटना को रोकने में कामयाब भी हो जाते हैं, तब भी यह दौड़ स्वयं भी बहुत बड़ी समस्याएँ पैदा करने वाली है। व्यक्तियों के लिए इसका परिणाम उच्चस्तरीय दबाव और तनाव के रूप में सामने आता है। आर्थिक वृद्धि और वैज्ञानिक प्रगति की कई सदियों के बाद जीवन को क्षोभ-मुक्त और शान्तिपूर्ण होना चाहिए था, कम से कम अत्यन्त

विकसित देशों में तो होना ही चाहिए था। अगर हमारे पूर्वजों को हमारे पास उपलब्ध औज़ारों और संसाधनों का पता होता, तो उन्होंने यह अनुमान लगाया होता कि हम तमाम एहतियातों और चिन्ताओं से बरी होकर स्वर्गिक शान्ति का आनन्द ले रहे होंगे। सच्चाई बिल्कुल भिन्न है। हमारी तमाम उपलब्धियों के बावजूद, हम और अधिक उत्पादन करने का निरन्तर दबाव महसूस करते हैं।

हम ख़ुद को, अपने बॉस को, साहूकार को, सरकार को और स्कूल प्रणाली को दोष देते हैं, लेकिन यह दरअसल इनका दोष नहीं है। यह दोष उस आधुनिक सौदे का है, जिस पर हम जन्म लेने साथ ही हस्ताक्षर कर देते हैं। पूर्वआधुनिक दुनिया में लोग समाजवादी नौकरशाही के निचले दर्ज़े के लिपिक के समान हुआ करते थे। वे अपने कार्ड पंच करते थे, और फिर कुछ करने के लिए किसी दूसरे का इन्तज़ार करते थे। आधुनिक दुनिया में, हम इंसान सारा काम ख़ुद करते हैं, इसलिए रात-दिन निरन्तर दबाव में बने रहते हैं।

सामूहिक स्तर पर यह दौड़ अनवरत उथल-पुथल के रूप में सामने आती है। जहाँ पहले सामाजिक और राजनैतिक व्यवस्थाएँ सदियों तक टिकी रहा करती थीं, आज हर पीढ़ी पिछली दुनिया को नष्ट कर देती है और उसके स्थान पर एक नई दुनिया खड़ी कर देती है। जैसा कि *कम्युनिस्ट मैनिफ़ेस्टो* (साम्यवादी घोषणा-पत्र) शानदार तरीक़े से कहता है कि आधुनिक दुनिया सकारात्मक रूप से अनिश्चय और अशान्ति की माँग करती है। सारे तयशुदा रिश्ते और पूर्वाग्रह धारा में बह जाते हैं, और नए ढाँचे मज़बूती हासिल करने के पहले ही पुराने पड़ जाते हैं। जो कुछ भी ठोस है, वह सब हवा में धुल जाता है। इस तरह की उथल-पुथल से भरी दुनिया में रहना आसान नहीं है, और इसको नियन्त्रित करना तो और भी कठिन है।

इसलिए आधुनिकता को यह सुनिश्चित करने के लिए कड़ी मेहनत करनी पड़ती है कि इस दौड़ द्वारा पैदा किए जा रहे सारे तनाव और अराजकता के बावजूद इंसान इस दौड़ से बाहर होने की कोशिश न करें - न तो व्यक्तिगत स्तर पर और न ही सामूहिक स्तर पर। इसके लिए आधुनिकता वृद्धि को एक ऐसे परम मूल्य के रूप में क़ायम रखती है, जिसकी ख़ातिर हमें हर तरह की क़ुर्बानी करनी चाहिए और हर तरह का ख़तरा उठाना चाहिए। सामूहिक स्तर पर, सरकारों, कम्पनियों और संगठनों को अपनी कामयाबी को वृद्धि की पदावली में मापने को, और सन्तुलन (इक़्वीलिब्रियम) से ऐसे भयभीत रहने को प्रोत्साहित किया जाता है, जैसे वह शैतान हो। व्यक्तिगत स्तर पर, हमें निरन्तर अपनी आय और अपने जीवन-स्तर को बढ़ाते रहने की प्रेरणा दी जाती है। अगर आप अपनी मौजूदा हालत से पूरी तरह सन्तुष्ट भी हैं, तब भी आपको और ज़्यादा की चाह करना चाहिए। कल की विलासिताएँ आज की अनिवार्य ज़रूरतें बन जाती हैं। अगर कभी आप एक कार और एक डेस्कटॉप कम्प्यूटर के साथ तीन कमरों वाले अपार्टमेंट में रह सकते थे, तो आज आपके

लिए दो कारों और कई सारे आइपॉड्स, टैब्लेट्स और स्मार्टफ़ोनों के साथ पाँच कमरों वाले अपार्टमेंट *ज़रूरी* हैं।

व्यक्तियों को और ज़्यादा की चाह के लिए तैयार करना बहुत मुश्किल नहीं था। इंसानों में लालच आसानी से आ जाता है। बड़ी समस्या राज्यों और गिरजाघरों जैसी सामूहिक संस्थाओं को इस नए आदर्श को अपनाने के लिए राज़ी करने की थी। सहस्राब्दियों तक समाज वैयक्तिक आकांक्षाओं को नियन्त्रित करने और उनको किसी तरह के सन्तुलन में लाने की कोशिश करते रहे थे। यह बात भलीभाँति विदित थी कि लोग अपने लिए ज़्यादा से ज़्यादा की आकांक्षा करते हैं, लेकिन जब कचौरी का आकार निश्चित था, तो सामाजिक समरसता संयम पर निर्भर करती थी। धन का लालच बुरा माना जाता था। आधुनिकता ने दुनिया को उलटकर रख दिया। इसने मानव समूहों को इस बात का क़ायल बनाया कि सन्तुलन अराजकता से ज़्यादा डरावना है, और चूँकि धन का लालच वृद्धि के लिए ईंधन का काम करता है, यह एक कल्याणकारी बल है। तदनुसार आधुनिकता ने लोगों को और ज़्यादा की चाहत के लिए उत्प्रेरित किया, और उन सदियों पुराने अनुशासनों को तोड़ दिया, जो लालच पर अंकुश लगाते थे।

इससे पैदा हुई व्यग्रताओं को काफ़ी हद तक शान्त करने का काम मुक्त-बाज़ार-पूँजीवाद ने किया, जो इस ख़ास विचारधारा के इस क़दर लोकप्रिय हो जाने की एक वजह है। पूँजीवादी विचारक हमें बार-बार यह कह कर शान्त करने की कोशिश करते हैं: 'चिन्ता मत करो, सब कुछ ठीक हो जाएगा। अर्थव्यवस्था में वृद्धि भर होती रहे, बाज़ार का अदृश्य हाथ बाक़ी सारी चीज़ों को सँभाल लेगा'। पूँजीवाद ने इस तरह उस एक अतिलोलुप और अराजक व्यवस्था का पवित्रीकरण किया, जिसमें बहुत तेज़ी के साथ वृद्धि होती है, और कोई नहीं समझ पाता कि क्या हो रहा है और हम कहाँ भागे जा रहे हैं। (साम्यवाद, जो स्वयं भी वृद्धि में विश्वास करता था, सोचता था कि वह अराजकता को रोक सकेगा और राजकीय योजना की मार्फ़त वृद्धि का सामंजस्य बैठा लेगा, लेकिन शुरुआती कामयाबी के बाद यह मुक्त बाज़ार की अराजक शोभायात्रा में बहुत पीछे रह गया।)

मुक्त-बाज़ार पूँजीवाद की निन्दा आजकल बौद्धिकों की कार्यसूची में सबसे ऊपर है। चूँकि पूँजीवाद का हमारी दुनिया पर वर्चस्व है, इसलिए इसके पहले कि इसकी बुराइयाँ किसी प्रलयंकारी विनाश का कारण बनें, हमें सचमुच ही इन बुराइयों को समझने की हरसम्भव कोशिश करनी चाहिए, लेकिन यह न हो कि पूँजीवाद की आलोचना हमें इसके हितकारी पक्षों और उपलब्धियों के प्रति अन्धा बना दे। अभी तक, यह एक विस्मयकारी सफलता रही है - कम से कम अगर हम भविष्य की सम्भावित पारिस्थितिकीय दुर्घटना की उपेक्षा कर दें, और अगर आप सफलता को उत्पादन और वृद्धि के पैमाने से नापें तो। हो सकता है कि हम एक तनावपूर्ण और अराजक दुनिया में रह रहे हों, लेकिन ध्वंस और

हिंसा से भरी क़यामत की भविष्यवाणियाँ सच साबित नहीं हुई हैं, जबकि चिरस्थायी वृद्धि और वैश्विक सहयोग के चौंका देने वाले वादे पूरे हुए हैं। यद्यपि हम कभी-कभार आर्थिक संकटों और अन्तरराष्ट्रीय युद्धों का सामना करते हैं, लेकिन दीर्घकालिक स्तर पर पूँजीवाद ने न केवल किसी तरह अपने प्रभाव को बरक़रार रखा है, बल्कि अकाल, महामारी और युद्ध पर लगाम कसकर रखी है। हज़ारों सालों तक पुरोहित, रब्बी और मुफ़्ती यह समझाते रहे कि मनुष्य अकाल, महामारी और युद्ध पर अपने बूते पर क़ाबू नहीं पा सकते। इसके बाद बैंककर्मी, निवेशक और उद्योगपति आए, और 200 साल के भीतर उन्होंने ठीक यही कर दिखाया।

इसलिए आधुनिक सौदे ने हमसे अपूर्व शक्ति का वादा किया था - और उस वादे को निभाया गया। और इसके लिए जो क़ीमत चुकानी पड़ी, उसके बारे में क्या? शक्ति के बदले आधुनिक सौदे ने हमसे अर्थ को त्याग देने की अपेक्षा की थी। मनुष्य इस रोंगटे खड़े कर देने वाले तकाज़े से किस तरह निपटे? इस तकाज़े की स्वीकृति बहुत आसानी से नैतिकता, सौन्दर्य और करुणा से वंचित एक अँधेरी दुनिया के रूप में फलित हो सकती थी, लेकिन तथ्य यह है कि आज मानव जाति न सिर्फ़ हमेशा की तुलना में ज़्यादा शक्तिशाली है, बल्कि वह अधिक शान्तिपूर्ण और सहयोगपूर्ण है। मनुष्य यह कैसे कर सके? यह कैसे मुमकिन हो सका कि देवताओं से, स्वर्ग और नर्क से रहित इस दुनिया में नैतिकता, सुन्दरता और करुणा तक जीवित बनी रह सकीं?

पूँजीपति, एक बार फिर, फुर्ती-से इसका सारा श्रेय बाज़ार के अदृश्य हाथ को दे देते हैं, लेकिन बाज़ार का हाथ सिर्फ़ अदृश्य ही नहीं है, वह अन्धा भी है, और वह मानव समाज को स्वयं कभी न बचा पाया होता। दरअसल, एक देहाती मेला भी किसी देवता, राजा या गिरजाघर की सहायता के बिना ख़ुद को नहीं सँभाल सकता। अगर अदालतों और पुलिस समेत हर चीज़ बेचे जाने के लिए है, तो भरोसा उठ जाता है, साख समाप्त हो जाती है और करोबार मुरझा जाता है। तब फिर आधुनिक समाज को ढहने से किस चीज़ ने बचाया? मानव जाति की रक्षा माँग और पूर्ति के नियम ने नहीं की, बल्कि एक क्रान्तिकारी नए मज़हब - मानववाद ने की है।

7
मानववादी क्रान्ति

आधुनिक सौदा शक्ति देने की पेशकश करता है, इस शर्त पर कि हम किसी भी ऐसी महान ब्रह्माण्डीय योजना में अपनी आस्था को त्याग दें, जो जीवन को अर्थ प्रदान करती है, लेकिन जब आप इस सौदे को क़रीब से जाँचते हैं, तो आप उसमें बच निकलने की एक चालाकी से भरी शर्त (क्लॉज़) को पाते हैं। शर्त यह है कि अगर मनुष्य कोई ऐसा अर्थ हासिल कर लेता है, जिसके लिए उसे किसी महान ब्रह्माण्डीय योजना में आस्था रखने की ज़रूरत नहीं पड़ती, तो इसे क़रार भंग करना नहीं माना जाएगा।

बच निकलने की गुंजाइश देने वाली यह शर्त आधुनिक समाज के लिए एक मुक्ति साबित हुई है, क्योंकि बिना किसी अर्थ के व्यवस्था को क़ायम रखना असम्भव है। आधुनिकता की महान राजनैतिक, कलात्मक और मज़हबी मुहिम जीवन के लिए एक ऐसा अर्थ हासिल करने की रही है, जिसकी जड़ें किसी महान ब्रह्माण्डीय योजना में न हों। हम किसी अलौकिक नाटक के अभिनेता नहीं हैं, और हमारी तथा हमारे कृत्यों की परवाह करने वाला कोई नहीं है, इसलिए हमारी शक्ति की सीमाएँ निर्धारित करने वाला कोई नहीं है, लेकिन हमें तब भी यक़ीन है कि हमारी ज़िन्दगियों में अर्थ है।

2016 तक मानव जाति दोनों ओर से लाभ की स्थिति में रही है। न सिर्फ़ हमारे क़ब्ज़े में अपूर्व शक्ति है, बल्कि सारी उम्मीदों के विपरीत, देवता की मृत्यु सामाजिक विनाश का कारण नहीं बनी। समूचे इतिहास के दौरान पैग़म्बर और दार्शनिक यह तर्क देते रहे थे कि अगर मनुष्यों ने किसी महान ब्रह्माण्डीय योजना में विश्वास करना बन्द दिया, तो सारी क़ानून और व्यवस्था लुप्त हो जाएगी, लेकिन आज, वैश्विक क़ानून और व्यवस्था के सामने

सबसे बड़ा ख़तरा पैदा करने वाले लोग वास्तव में वे हैं, जो ईश्वर और उसकी सर्वव्यापी योजनाओं में आस्था जारी रखे हुए हैं। अल्लाह से डरने वाला सीरिया पन्थनिरपेक्षतावादी नीदरलैंड्स से कहीं ज़्यादा हिंसक स्थल है।

अगर कोई ब्रह्माण्डीय योजना नहीं है, और हम किन्हीं अलौकिक या क़ुदरत के नियमों से बँधे नहीं हैं, तो फिर वह क्या चीज़ है, जो सामाजिक विनाश को रोके हुए है? यह कैसे मुमकिन हो पाता है कि आप ग़ुलामों का व्यापार करने वालों द्वारा अपहरण का शिकार हुए बिना, घात लगाकर हमला करने वाले लुटेरों के आक्रमण से बचे रहते हुए या आपसी बैर रखने वाले क़बीलों के हाथों मरे बिना एम्सटर्डम से बुख़ारेस्ट तक या न्यू ऑर्लियन से मॉण्ट्रियल तक हज़ारों मील की यात्रा कर लेते हैं?

अन्दर झाँककर देखें

एक अर्थहीन और नियम-रहित अस्तित्व के ख़तरे की काट मानववाद ने उपलब्ध कराई, उस क्रान्तिकारी नए मज़हबी पन्थ ने, जिसने पिछली कुछ सदियों के दौरान दुनिया पर विजय पाई है। मानववादी मज़हब मनुष्यता का उपासक है, और वह मनुष्यता से वह भूमिका निभाने की उम्मीद करता है, जो ईसाइयत और इस्लाम में ईश्वर और अल्लाह निभाया करते थे, और जो भूमिका बौद्ध और ताओ धर्म में क़ुदरत के नियम निभाया करते थे। जहाँ पारम्परिक तौर पर महान ब्रह्माण्डीय योजना मनुष्यों के जीवन को अर्थ प्रदान करती थी, वहीं मानववाद इन भूमिकाओं को उलट देता है और मनुष्यों के अनुभवों से ब्रह्माण्ड को अर्थ देने की उम्मीद करता है। मानववाद के मुताबिक़, मनुष्यों को अपने अन्दरूनी अनुभवों से न सिर्फ़ अपने जीवन के अर्थ निकालने चाहिए, बल्कि समूचे ब्रह्माण्ड के अर्थ भी ज्ञात करने चाहिए। यह वह प्राथमिक आदेश है, जो मानववाद हमें देता है: एक अर्थहीन दुनिया के लिए अर्थ की रचना करें।

तदनुसार, आधुनिकता की केन्द्रीय मज़हबी क्रान्ति ईश्वर में आस्था को खोने की नहीं थी, इसकी बजाय यह मनुष्यता में आस्था हासिल करने की थी। इसमें सदियों की कड़ी मेहनत लगी। चिन्तकों ने पुस्तिकाएँ लिखीं, कलाकारों ने कविताओं और सिम्फ़नियों की रचनाएँ कीं, राजनेताओं ने क़रार किए - और इन सबने मिलकर मनुष्यता को इस तरह देखा कि यह ब्रह्माण्ड को अर्थ से रंजित कर सकती है। मानववादी क्रान्ति की गहराई और निहितार्थों को समझने के लिए इस पर विचार करें कि किस तरह आधुनिक यूरोपीय संस्कृतियाँ मध्ययुगीन यूरोपीय संस्कृति से भिन्न हैं। 1300 में लन्दन, पेरिस और टोलेडो के लोग यह नहीं मानते थे कि मनुष्य स्वयं ही इस बात का फ़ैसला कर सकता है कि क्या शुभ है और क्या अशुभ है, क्या सही है और क्या ग़लत है, क्या सुन्दर है और क्या कुरूप है। केवल ईश्वर ही शिव, सत्य और सुन्दर को रच और परिभाषित कर सकता था।

यद्यपि यह व्यापक तौर पर स्वीकृत था कि मनुष्यों में अनूठी क़ाबिलियतें होती हैं, तब भी उनको अज्ञानी और विकारशील प्राणियों के रूप में देखा जाता था। माना जाता था कि किसी बाहरी निरीक्षण और मार्गदर्शन के बिना, मनुष्य न केवल कभी शाश्वत सत्य को नहीं समझ सकते, बल्कि वे भंगुर इन्द्रिय सुखों और सांसारिक माया-मोहों के प्रति आकर्षित होते हैं। इसके अतिरिक्त मध्ययुगीन चिन्तकों ने यह भी कहा था कि मनुष्य नश्वर हैं, और उनकी धारणाएँ और अनुभूतियाँ हवा की मानिन्द चंचल होती हैं। आज मैं पूरे दिल से किसी चीज़ को प्यार करता हूँ, कल मैं उसी चीज़ से नफ़रत से भर उठता हूँ, और अगले हफ़्ते मैं मर जाता हूँ और दफ़न कर दिया जाता हूँ। इसलिए मनुष्य की धारणा पर निर्भर करने वाला कोई भी अर्थ अनिवार्यतः नाज़ुक और क्षणभंगुर होता है। परम सत्य, और जीवन तथा ब्रह्माण्ड का अर्थ, इसीलिए किसी अतिमानवीय स्रोत से निकलते शाश्वत नियम पर आधारित होना चाहिए।

इस दृष्टिकोण ने ईश्वर को न सिर्फ़ अर्थ, बल्कि प्रभुत्व का भी परम स्रोत बना दिया था। अर्थ और प्रभुत्व आपस में अविभाज्य रूप से जुड़े हैं। हमारे कर्मों के अर्थ को जो भी कोई निर्धारित करता हो, फिर वे कर्म शुभ हों या अशुभ, सही हों या ग़लत, सुन्दर हों या असुन्दर, वह हमसे यह कहने का अधिकार भी हासिल कर लेता है कि हमें किस तरह सोचना चाहिए और किस तरह आचरण करना चाहिए।

अर्थ और प्रभुत्व के स्रोत के रूप में ईश्वर की भूमिका महज़ एक दार्शनिक सिद्धान्त की नहीं थी। यह जीवन के हर पहलू पर असर डालता था। मान लीजिए 1300 में इंग्लैंड के किसी छोटे-से गाँव में कोई विवाहित स्त्री अपने पड़ोसी को पसन्द करने लगती और उसके साथ सम्भोग-रत हो जाती। जैसे ही वह, अपनी मुस्कराहट को दबाती हुई और अपनी पोशाक को दुरुस्त करती हुई, चोरी-छिपे घर वापस लौटती, तो उसका दिमाग़ तेज़ी-से दौड़ने लगता: 'यह सब क्या था? मैंने यह क्यों किया? क्या यह ठीक था या ग़लत? मेरा यह कृत्य मेरे बारे में क्या संकेत देता है? क्या मुझे यह दोबारा करना चाहिए?' इन सवालों के जवाब के लिए उसको स्थानीय पादरी के पास जाकर, उसके सामने अपने कृत्य को क़बूल करना और उस पवित्र पिता से मार्गदर्शन प्राप्त करना ज़रूरी था। यह पादरी मज़हबी पोथियों का अच्छा जानकार हुआ करता था, और ये पवित्र पोथियाँ उसके सामने यह प्रकट करती थीं कि ईश्वर परपुरुष गमन के बारे में क्या सोचता था। ईश्वर के उस शाश्वत वचन के आधार पर यह पादरी सन्देह से परे जाकर यह निर्णय कर सकता था कि उस स्त्री ने नैतिकता के उल्लंघन का पाप किया था, और अगर वह प्रायश्चित नहीं करती, तो वह नर्क में जाएगी। इसलिए उसको तत्काल पश्चाताप करना, आगामी धर्मयुद्ध के लिए दस स्वर्ण-मुद्राओं का दान करना, अगले छह महीनों तक मांस से परहेज़ करना और कैंटबरी जाकर सन्त थॉमस ए बैकेट की क़ब्र की तीर्थयात्रा करना अनिवार्य था। और

कहना न होगा कि उसको अपने इस पापपूर्ण कृत्य को फिर कभी भी दोहराना नहीं चाहिए था।

आज स्थितियाँ काफ़ी अलग हैं। मानववाद हमें सदियों से यह समझाने में लगा रहा है कि हम अर्थ के परम स्रोत हैं, और इसलिए हमारी स्वतन्त्र इच्छा सर्वोच्च सत्ता है। बजाय इसके कि कोई बाहरी सत्ता आकर हमें बताए कि कौनसी चीज़ क्या है, हम अपनी अनुभूतियों और आकांक्षाओं पर भरोसा कर सकते हैं। हमारी शैशवावस्था से ही हमारे ऊपर इस तरह के मानववादी नारों की गोलियों की तरह बौछार होने लगती है: 'ख़ुद के मन की बात सुनो, अपने प्रति ईमानदार रहो, अपने हृदय का अनुसरण करो, वह करो जो अच्छा महसूस होता हो।' ज़्याँ-जैक़ रूसो ने इस सब का सार-संक्षेप अठारहवीं सदी की बाइबिल माने जाने वाले अपने उपन्यास एमिली में प्रस्तुत किया था। रूसो का मानना था कि जीवन के आचरण सम्बन्धी नियमों की तलाश करते हुए उन्होंने उन्हें 'मेरे हृदय की गहराई में पाया था, जिनको प्रकृति ने ऐसे अक्षरों में अंकित कर रखा है कि उन्हें कोई ताक़त नहीं मिटा सकती। मैं क्या करना चाहता हूँ, जो मैं शुभ महसूस करता हूँ, वह शुभ है या नहीं, जो मैं अशुभ महसूस करता हूँ, वह अशुभ है या नहीं - यह सब जानने के लिए मुझे सिर्फ़ ख़ुद से परामर्श करने की ज़रूरत है'।

तदनुसार, जब एक आधुनिक स्त्री उस प्रेम सम्बन्ध के अर्थ को समझना चाहती है, जिसमें वह संलग्न है, तो किसी पुरोहित या किसी प्राचीन पोथी द्वारा सुनाए गए फ़ैसले को आँख मूँदकर स्वीकार करने के लिए क़तई इच्छुक नहीं होती। इसकी बजाय, वह सावधानीपूर्वक अपने अहसासों को परखेगी। अगर उसके अहसास बहुत स्पष्ट नहीं होंगे, तो वह अपने किसी अच्छे दोस्त को फ़ोन करके कॉफ़ी पर मुलाक़ात करेगी और उसके सामने अपना दिल खोलकर रख देगी। अगर स्थितियाँ अभी भी अस्पष्ट बनी रहती हैं, तो वह अपने मनोचिकित्सक के पास जाएगी, और उसको इसके बारे में सब कुछ बताएगी। सिद्धान्ततः, आधुनिक मनोचिकित्सकों का वही स्थान है, जो मध्ययुगीन पादरियों का हुआ करता था। और दोनों व्यवसायों की तुलना करना एक बहुत ही ज़्यादा उपयोग में लाई जा चुकी रूढ़ि है, लेकिन व्यवहारतः, एक बहुत बड़ी खाई दोनों को अलग करती है। मनोचिकित्सक के पास कोई ऐसी पवित्र पोथी नहीं होती, जो शुभ और अशुभ को परिभाषित करती हो। इस बात की कोई सम्भावना नहीं है कि जब वह स्त्री अपना क़िस्सा ख़त्म करे, तो मनोचिकित्सक फट पड़े: 'दुष्ट स्त्री! तूने एक भयानक पाप किया है!' उतनी ही कम सम्भावना इस बात की है कि वह कहे: 'अद्भुत! तुमने अच्छा किया!' इसकी बजाय, उस स्त्री ने जो भी कुछ किया और कहा हो, लेकिन इस बात की पूरी सम्भावना है कि वह मनोचिकित्सक स्नेहपूर्ण स्वर में पूछे: 'ख़ैर, जो कुछ भी हुआ है, उसके बारे में आप कैसा महसूस करती हैं?'

यह सही है कि उस मनोचिकित्सक की पुस्तकों की अलमारी फ़्रायड और युंग की 1,000 पेज लम्बी *डायग्नोसिस एंड स्टेटिस्टिकल मैनुअल ऑफ़ मेंटल डिसऑर्डर्स (डीएसएम)* से अँटी हुई है, लेकिन ये पवित्र पोथियाँ नहीं हैं। डीएसएम जीवन के रोगों का निदान करती है, न कि जीवन के अर्थ का। ज़्यादातर मनोवैज्ञानिक मानते हैं कि मनुष्य के कृत्यों के सच्चे अर्थों का निर्धारण करने का अधिकार सिर्फ़ मनुष्य की अनुभूतियों को है। इसलिए इससे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता कि वह मनोचिकित्सक अपनी इस मरीज़ के प्रेम सम्बन्ध के बारे में क्या सोचता है, और न ही इससे कोई फ़र्क़ पड़ता है कि फ़्रायड, युंग और डीएसएम भी सामान्यतः इस प्रेम सम्बन्ध के बारे में क्या सोचते हैं, महत्त्वपूर्ण यह है कि मनोचिकित्सक को अपने दृष्टिकोण अपनी मरीज़ पर नहीं थोपना चाहिए। इसकी बजाय, उसको अपनी इस मरीज़ की मदद करनी चाहिए, ताकि वह अपने दिल के सबसे गुप्त प्रकोष्ठों में झाँककर देख सके। केवल वहीं उसको अपने सवालों के जवाब मिलेंगे। जहाँ मध्ययुगीन पादरियों के पास ईश्वर से सम्पर्क स्थापित करने के लिए हॉटलाइन हुआ करती थी और वे हमारे लिए शुभ और अशुभ के बीच फ़र्क़ कर सकते थे, वहीं आधुनिक मनोचिकित्सक महज़ हमारी अपनी अन्दरूनी अनुभूतियों के साथ सम्पर्क क़ायम करने में हमारी मदद करते हैं।

यह स्थिति आंशिक तौर पर विवाह संस्था की बदलती हुई क़िस्मत के बारे में बताती है। मध्य युग में विवाह को ईश्वर द्वारा नियत संस्कार के रूप में देखा जाता था, और ईश्वर एक पिता को उसकी अपनी इच्छाओं और हितों के मुताबिक़ अपने बच्चों का विवाह करने का अधिकार भी प्रदान करता था। नतीजतन, एक विवाहेतर सम्बन्ध ईश्वरीय और अभिभावकीय सत्ता, दोनों के ख़िलाफ़ खुल्लमखुल्ला विद्रोह हुआ करता था। प्रेमी-प्रेमिका उसके बारे में जो भी सोचते हों, लेकिन वह एक नैतिक स्तर का पाप था। आज लोग प्रेम की ख़ातिर विवाह करते हैं, और ये उनके निजी अहसास होते हैं, जो इस रिश्ते को मूल्य प्रदान करते हैं। इसलिए, अगर जो अनुभूतियाँ कभी आपको एक पुरुष की बाँहों में खींच ले गई थीं, वे ही अनुभूतियाँ अब आपको एक दूसरे पुरुष की बाँहों की ओर ले जाती हैं, तो इसमें बुरा क्या है? अगर विवाहेतर प्रेम सम्बन्ध आपकी उन भावनात्मक और कामपरक आकांक्षाओं के लिए निकास की राह उपलब्ध कराता है, जिनको आपका जीवन-साथी बीस सालों में सन्तुष्ट नहीं कर सका, और अगर आपका नया प्रेमी आपकी ज़रूरतों के प्रति उदार, जोशीला और संवेदनशील है, तो क्यों न उसका आनन्द लिया जाए?

लेकिन एक मिनट रुकिये, आप कह सकते हैं। हम दूसरे सम्बन्धित पक्ष की भावनाओं की उपेक्षा नहीं कर सकते। वह स्त्री और उसका प्रेमी एक-दूसरे की बाँहों में अद्भुत सुख महसूस कर रहे हो सकते हैं, लेकिन अगर उन दोनों के जीवन-साथियों को इसका पता चल जाता है, तो कुछ समय के लिए हर किसी को यह भयावह महसूस होगा। और अगर

इसका नतीजा तलाक के रूप में सामने आता है, तो उनके बच्चे दशकों तक भावनात्मक ज़ख़्म ढोते रह सकते हैं। अगर इस प्रेम सम्बन्ध का कभी पता नहीं भी चलता है, तो भी इसको छिपाए रहने में भारी तनाव बना रह सकता है और इसका परिणाम विरक्ति और असन्तोष के उत्तरोत्तर बढ़ते हुए अहसासों की शक्ल ले सकता है।

मानववादी नैतिकी की सबसे दिलचस्प चर्चाओं का ताल्लुक़ विवाहेतर सम्बन्धों जैसी स्थितियों से होता है, जहाँ मानवीय भावनाएँ आपस में टकराती हैं। तब क्या होता है, जब एक ही कृत्य से एक व्यक्ति अच्छा महसूस करता है, और दूसरा व्यक्ति बुरा महसूस करता है? एक-दूसरे के विपरीत जाती इन अनुभूतियों की तुलना हम किस तरह करते हैं? क्या दो प्रेमियों की अच्छी अनुभूतियों का पलड़ा उनके जीवन-साथियों और बच्चों की अनुभूतियों पर भारी पड़ता है?

इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता कि इस ख़ास सवाल के बारे में आप क्या सोचते हैं। दोनों पक्ष जिस तरह के तर्क देते हैं, उनको समझना कहीं ज़्यादा महत्त्वपूर्ण है। विवाहेतर प्रेम सम्बन्धों को लेकर आधुनिक लोगों की अलग-अलग तरह की धारणाएँ हैं, लेकिन उनका रुख चाहे जो भी हो, वे इन सम्बन्धों को पवित्र पोथियों और ईश्वरीय आदेशों के नाम पर उचित ठहराने की बजाय मानवीय अनुभूतियों के नाम पर उचित ठहराते हैं। मानववाद ने हमें सिखाया है कि कोई चीज़ तभी बुरी हो सकती है, जब उससे किसी व्यक्ति को बुरा महसूस होता हो। हत्या करना इसलिए ग़लत नहीं है कि किसी देवता ने कभी कहा था: 'तुम्हें हत्या नहीं करना चाहिए' ('दाउ शेल्ट नॉट किल।') बल्कि हत्या करना इसलिए ग़लत है क्योंकि हत्या का शिकार, उसके परिवार के सदस्य, और उसके दोस्त तथा परिचित भयावह यातना भोगते हैं। चोरी करना इसलिए ग़लत नहीं है कि किसी प्राचीन मज़मून में कहा गया है: 'तुम्हें चोरी नहीं करना चाहिए।' ('दाउ शेल्ट नॉट स्टील।') बल्कि चोरी करना इसलिए ग़लत है, क्योंकि जब आप अपनी ज़ायदाद खो देते हैं, तो आपको बुरा लगता है। और अगर किसी कृत्य से कोई व्यक्ति बुरा नहीं महसूस करता, तो उसमें कोई बुराई नहीं हो सकती। अगर वही प्राचीन मज़मून कहता है कि ईश्वर ने हमें आदेश दिया है कि हम मनुष्यों या जानवरों की कोई छवि न रचें (एक्सोडॅस 20:4), लेकिन मुझे इस तरह की तसवीरें बनाने में मज़ा आता है, और ऐसा करते हुए मैं किसी को कोई नुक़सान नहीं पहुँचाता, तो इसमें ग़लत क्या हो सकता है?

इसी तर्क का वर्चस्व समलैंगिकता पर केन्द्रित ताज़ा बहसों पर बना हुआ है। अगर दो वयस्क पुरुष एक दूसरे के साथ सम्भोग करने में आनन्द लेते हैं, और ऐसा करते हुए वे किसी को कोई नुक़सान नहीं पहुँचाते, तो फिर इसे ग़लत क्यों माना जाना चाहिए, और हमें इसको ग़ैरक़ानूनी क्यों ठहराना चाहिए? यह इन दो लोगों के बीच का निजी मसला है, और वे अपनी निजी अनुभूतियों के मुताबिक़ इसके बारे में फ़ैसला करने के लिए स्वतन्त्र हैं।

अगर मध्य युग में दो मर्द किसी पादरी के सामने यह स्वीकारोक्ति करते थे कि उनको एक-दूसरे से इश्क़ है, और उन्होंने अपने जीवन में कभी इतना सुखी महसूस नहीं किया था, तो उनकी ये सुखद अनुभूतियाँ उस पादरी के घातक फ़ैसले को न बदल पातीं - सच तो यह है कि उनके अपराध-बोध के अभाव ने स्थिति को और भी बदतर बना दिया होता। इसके विपरीत आज अगर दो मर्दों को आपस में इश्क़ हो जाता है, तो उनसे कहा जाता है: 'अगर इससे अच्छा महसूस होता है, तो इसे करो! किसी पुरोहित को इजाज़त मत दो कि वह तुम्हारे दिमाग़ को परेशान करे। सिर्फ़ अपने दिल की आवाज़ सुनो। आप बेहतर समझते हैं कि आपके लिए क्या अच्छा है'।

दिलचस्प बात यह है कि आज मज़हबी कट्टरपन्थी तक जब जनमत को प्रभावित करना चाहते हैं, तो वे इस मानववादी विमर्श को अपनाते हैं। उदाहरण के लिए, पिछले एक दशक से इज़रायल का एलजीबीटी समुदाय हर साल यरुशलम की सड़कों पर समलैंगिकों के स्वाभिमान प्रदर्शन (गे प्राइड परेड) का आयोजन करता आया है। यह टकरावों से विदीर्ण इस शहर में समरसता का एक अनूठा दिन होता है, क्योंकि यह एकमात्र ऐसा अवसर होता है, जब मज़हबी यहूदियों, मुसलमानों और ईसाइयों को एक साझा ध्येय उपलब्ध होता है। वे सब समलैंगिकों के इस प्रदर्शन के ख़िलाफ़ आपस में सहमत होकर आग उगलते हैं, हालाँकि जो चीज़ इसमें वाक़ई दिलचस्प है, वह उनके द्वारा इस्तेमाल किया जाने वाला तर्क है। वे यह नहीं कहते: 'इन पापियों को समलैंगिक परेड का आयोजन नहीं करना चाहिए, क्योंकि ईश्वर ने समलैंगिकता को वर्जित किया है'। इसकी बजाय, वे हर उपलब्ध माइक्रोफ़ोन और टेलिविज़न कैमरों के सामने यह दलील देते हैं कि 'इस पवित्र नगर यरुशलम से समलैंगिकों के प्रदर्शन को गुज़रते हुए देखकर उनकी भावनाएँ आहत होती हैं। जिस तरह समलैंगिक लोग चाहते हैं कि उनकी भावनाओं की कद्र की जाए, उसी तरह उनको भी हमारी भावनाओं की कद्र करनी चाहिए'।

7 जनवरी 2015 को मुसलमान कट्टरपन्थियों ने चार्ली हेब्दो नामक फ़्रांसीसी पत्रिका के अनेक कर्मचारियों का सामूहिक नरसंहार कर दिया था, क्योंकि इस पत्रिका ने मोहम्मद पैग़म्बर का कार्टून प्रकाशित किया था। बाद के दिनों में, मुसलमानों के बहुत-से संगठनों ने इस हमले की निन्दा की थी, लेकिन इनमें से कुछ संगठन 'लेकिन' शब्द का इस्तेमाल करने से ख़ुद को नहीं रोक सके। उदाहरण के लिए, मिस्र के पत्रकार संघ ने हिंसा के इस्तेमाल के लिए इन आतंकवादियों की भर्त्सना की, लेकिन उसी साँस में उसने 'दुनियाभर के मुसलमानों के जज़्बातों को चोट पहुँचाने के लिए' इस पत्रिका की भी भर्त्सना की। ध्यान दें कि इस संघ ने पत्रिका पर ईश्वर की अवज्ञा करने का आरोप नहीं लगाया। इसी को हम प्रगति के नाम से पुकारते हैं।

हमारे जज़्बात सिर्फ़ हमारी निजी ज़िन्दगियों के लिए ही अर्थ उपलब्ध नहीं कराते, बल्कि सामाजिक और राजनैतिक प्रक्रियाओं के लिए भी अर्थ उपलब्ध कराते हैं। जब हम यह जानना चाहते हैं कि मुल्क पर किसकी हुकूमत होनी चाहिए, किस तरह की विदेश नीति अपनाई जानी चाहिए और किस तरह के आर्थिक क़दम उठाए जाने चाहिए, तो इन सवालों के जवाबों के लिए हम पोथियों की ओर नहीं ताकते। न ही हम पोप या नोबेल पुरस्कार प्राप्त लोगों की परिषद के आदेशों का पालन करते हैं। इसकी बजाय, ज़्यादातर मुल्कों में हम लोकतान्त्रिक चुनाव करते हैं और लोगों से पूछते हैं कि इस मसले पर उनकी क्या राय है। हम मानते हैं कि मतदाता बेहतर समझता है, अलग-अलग व्यक्तियों द्वारा स्वतन्त्र ढंग से चुने गए विकल्प अन्तिम राजनैतिक प्रमाण हैं।

लेकिन मतदाता कैसे जानता है कि क्या चुना जाए? कम से कम सैद्धान्तिक तौर पर मतदाता से अपेक्षा की जाती है कि वह अपनी अन्दरूनी भावनाओं का परामर्श ले, और वे जो कहें, उनके अनुसार अपना चुनाव करे। यह काम हमेशा आसान नहीं होता। अपनी भावनाओं से सम्पर्क साधने के लिए मुझे यह जानना ज़रूरी है कि प्रचार के खोखले नारों, करूणाशून्य राजनेताओं के अन्तहीन झूठों, शब्दों के हेरफेर में माहिर चालाकों के ध्यान भटकाने वाले शोर, और भाड़े के पण्डितों के विद्वत्तापूर्ण मतों को कैसे छाना जाए। मुझे इस सारे हुड़दंग को नज़रअन्दाज़ करने और सिर्फ़ अपने अन्दर की विश्वसनीय आवाज़ पर ध्यान देने की ज़रूरत है। और तब मेरी यह विश्वसनीय आन्तरिक आवाज़ मेरे कान में फुसफुसाती है 'कैमरॉन को वोट दो' या 'मोदी को वोट दो' या 'क्लिंटन को वोट दो' या जिस किसी को भी, और मैं मतपत्र पर उस नाम के आगे निशान लगा देता हूँ, और इस तरह हम जानते हैं कि मुल्क पर किसे हुकूमत करनी चाहिए।

मध्य युग में इसे मूर्खता की पराकाष्ठा समझा जाता। अज्ञानी सामान्य जनों की क्षणिक अनुभूतियों को महत्त्वपूर्ण राजनैतिक निर्णयों के मज़बूत आधार की तरह बमुश्किल ही देखा जाता था। जब इंग्लैंड वार्स ऑफ़ रोजेज़ (मई 1455 और अगस्त 1485 के बीच इंग्लैंड के राजसिंहासन के लिए उन दो पक्षों - लेंकास्टर और यॉर्क - के बीच लड़ा गया युद्ध, जिनमें से एक पक्ष का प्रतीक लाल गुलाब और दूसरे पक्ष का प्रतीक सफ़ेद गुलाब था) से तहस-नहस हो गया था, तब इस टकराव को समाप्त करने के लिए किसी के मन में एक राष्ट्रीय जनमत-संग्रह करने का ख़याल नहीं आया था, जिसमें हर गँवार और छोकरी लेंकास्टर या यॉर्क में से किसी एक के पक्ष में मतदान करते। इसी तरह, जब पोप अर्बन II ने प्रथम धर्मयुद्ध का आगाज़ किया था, तो उसने यह दावा नहीं किया था कि वह लोगों की इच्छा थी। राजनैतिक प्रभुत्व सीधे स्वर्ग से अवतरित होता था - वह नश्वर मनुष्यों के दिलों और दिमाग़ों से उत्पन्न नहीं होता था।

27. कबूतर के वेश में पवित्र आत्मा (द होली स्पिरिट) फ़्रैंकिश राज्य के संस्थापक राजा क्लोविस के बपतिस्मा के लिए पवित्र तेल से भरा हुआ कलश प्रदान करती हुई (चित्र ग्रांदे *क्रॉनीक़ दे फ़्राँस,* 1380 से)। फ़्रांस की स्थापना से सम्बन्धित मिथक के मुताबिक़, यह कलश उसके बाद ग़्हांस कैथेड्रल में रखा गया था, और बाद के सारे फ़्रांसीसी राजाओं का उनके राज्याभिषेक के अवसर पर इसी पवित्र तेल से अभिषेक किया जाता था। इस तरह हर राज्याभिषेक के अवसर पर एक चमत्कार घटित होता था, क्योंकि वह ख़ाली कलश ख़ुद-ब-ख़ुद तेल से फिर भर जाता था। यह इस बात का संकेत हुआ करता था कि स्वयं ईश्वर ने उस राजा को चुना है और उसको आशीर्वाद प्रदान किया है। अगर ईश्वर ने लुई IX या लुई XIV या लुई XVI को राजा न चुनना चाहा होता, तो वह कलश फिर से न भरा होता।

जो बात नैतिकी और राजनीति के सन्दर्भ में सही है, वही सौन्दर्यशास्त्र के सन्दर्भ में भी सही है। मध्य युग में कला को वस्तुनिष्ठ मापदण्डों से अनुशासित किया जाता था। सौन्दर्य के मानदण्ड इंसान की अभिरुचियों को प्रतिबिम्बित नहीं करते थे। इसकी बजाय मनुष्य की अभिरुचि से अतिमानवीय आदेशों की पुष्टि करने की अपेक्षा की जाती थी। यह चीज़ एक ऐसे युग के सन्दर्भ में एकदम सही थी, जब लोगों का विश्वास हुआ करता था कि कला की प्रेरणा के पीछे मानवीय अनुभूतियों की बजाय अतिमानवीय शक्तियाँ होती हैं। माना

जाता था कि चित्रकारों, कवियों, संगीतकारों और वास्तुविदों के हाथ कला की देवियों, देवदूतों और पवित्र आत्माओं द्वारा परिचालित होते थे। बहुत बार ऐसा होता था कि जब कोई रचनाकार किसी सुन्दर स्त्रोत की रचना कर देता था, तो इसका श्रेय उस रचनाकार को उसी तरह नहीं दिया जाता था, जिस तरह वह श्रेय उसकी क़लम को नहीं दिया जाता था। क़लम को इंसान की अंगुलियाँ थामती थीं और वही उसको दिशा देती थीं, लेकिन उन अंगुलियों को थामने और दिशा देने का काम ईश्वर करता था।

मध्ययुगीन अध्येता प्राचीन यूनानी सिद्धान्त से चिपके थे, जिसके मुताबिक़ आकाश में नक्षत्रों की गति उस स्वर्गिक संगीत की रचना करती है, जो समूचे विश्व में व्याप्त है। मनुष्य उस समय शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य का लाभ उठाते हैं, जब उनकी देह और आत्मा की आन्तरिक गतियाँ नक्षत्रों द्वारा रचे गए इस संगीत के सामंजस्य में होती हैं। इसलिए मानवीय संगीत को हाड़-मांस के बने संगीतकारों के विचारों और मनःस्थितियों को प्रतिबिम्बित करने की बजाय ब्रह्माण्ड की अलौकिक लय को प्रतिबिम्बित करना चाहिए। सर्वाधिक सुन्दर स्त्रोतों, गीतों और संगीत-रचनाओं का श्रेय किसी इंसानी कलाकार की प्रतिभा को नहीं, बल्कि दैवीय उत्प्रेरणा को दिया जाता था।

28. पोप ग्रेगरी द ग्रेट उन्हीं के नाम से प्रसिद्ध ग्रेगोरियन गीतों की रचना करते हुए। पवित्र आत्मा कबूतर की अपनी प्रिय वेशभूषा में उनके दाएँ कन्धे पर बैठी उनके कानों में उन गीतों को फुसफुसा रही है। यह पवित्र आत्मा ही इन गीतों की वास्तविक रचयिता है, जबकि ग्रेगरी महज़ उनके वाहक हैं। ईश्वर कला और सौन्दर्य का परम स्रोत है।

इस तरह की धारणाएँ अब चलन में नहीं हैं। आज मानववादी मानते हैं कि कलात्मक सृजन और सौन्दर्यात्मक मूल्यों का एकमात्र स्रोत मनुष्य की अनुभूतियाँ होती हैं। संगीत

की रचना और परख हमारी उस आन्तरिक आवाज़ से होती है, जिसके लिए न तो नक्षत्रों की लय का अनुसरण करने की ज़रूरत होती है और न कला की देवियों और देवदूतों के आदेशों को मानने की ज़रूरत होती है, क्योंकि नक्षत्र गूँगे हैं और कला की देवियों और देवदूतों का अस्तित्व सिर्फ़ हमारी अपनी कल्पनाओं में है। आधुनिक कलाकार ईश्वर की बजाय स्वयं के साथ और अपनी अनुभूतियों/भावनाओं के साथ सम्पर्क साधने का प्रयत्न करते हैं। इसलिए आश्चर्य की बात नहीं कि जब हम कला का मूल्यांकन करने बैठते हैं, तो हम किसी वस्तुनिष्ठ मापदण्ड में विश्वास नहीं करते। इसकी बजाय हम एक बार फिर अपनी व्यक्तिनिष्ठ अनुभूतियों की ओर मुड़ते हैं। नैतिकी में मानववादी नीति-वाक्य है कि 'अगर कोई कृत्य अच्छा महसूस होता हो, तो उसे करो'। सौन्दर्यशास्त्र के सन्दर्भ में मानववाद कहता है कि 'सौन्दर्य प्रेक्षक (दर्शक) की आँख में होता है'।

नतीजतन, कला की परिभाषा हर किसी के लिए सुलभ है। 1917 में मार्सल ड्यूषाँ ने बड़े पैमाने पर उत्पादित किया जाने वाला एक साधारण मूत्रदान ख़रीदा, उसको कलाकृति की संज्ञा दी, उसका *फ़ाउंटेन* नामकरण किया, उस पर हस्ताक्षर किए और उसको न्यू यॉर्क कला प्रदर्शनी के लिए भेज दिया। मध्य युग के लोगों ने इसके बारे में बात तक करने की परवाह न की होती। इस तरह की निरी बेवकूफ़ी पर ऑक्सीजन क्यों बर्बाद की जाए? लेकिन आधुनिक मानववादी दुनिया में ड्यूषाँ की इस कृति को कला के क्षेत्र का एक महत्त्वपूर्ण मील का पत्थर माना जाता है। सारी दुनिया की अन्तहीन कक्षाओं में कला के प्रथम वर्ष के विद्यार्थियों को ड्यूषाँ के *फ़ाउंटेन* की छवि दिखाई जाती है, और अध्यापक के एक इशारे पर हर तरफ़ शोर, बहस और सम्भ्रम का माहौल तैयार हो जाता है। ये कला है! नहीं, यह कला नहीं है! हाँ, है! हो ही नहीं सकती! विद्यार्थियों को अपनी कुछ भड़ास निकाल लेने देने के बाद अध्यापक बहस को इस सवाल पर केन्द्रित करता है कि 'कला वास्तव में क्या होती है? और हम यह निश्चय किस तरह करते हैं कि कोई कृति कला है या नहीं?' कुछ मिनट आगे-पीछे डोलने के बाद अध्यापक कक्षा को सही दिशा की ओर मोड़ता है: 'वह कोई भी चीज़ कला है, जिसके बारे में लोग सोचते हैं कि वह कला है, और सौन्दर्य प्रेक्षक की निगाह में होता है'। अगर लोगों को लगता है कि कोई मूत्रदान एक सुन्दर कलाकृति है, तो वह है। ऐसी कौन-सी उच्च सत्ता है, जो लोगों से कह सके कि वे ग़लत हैं? आज, ड्यूषाँ की इस महान कलाकृति की नक़ल दुनिया के ज़्यादातर महत्त्वपूर्ण संग्रहालयों में मौजूद है, जिनमें सैन फ़्रांसिस्को म्यूज़ियम ऑफ़ मॉडर्न आर्ट, द नेशनल गैलरी ऑफ़ कनाडा, लन्दन की टेट गैलरी और पेरिस का पाम्पीदू सेंटर शामिल हैं। (ये नक़ल इन संग्रहालयों की दीर्घाओं में प्रदर्शित हैं, न कि प्रसाधन-कक्षों में।)

इन मानववादी दृष्टिकोणों का गहरा प्रभाव आर्थिक क्षेत्र पर भी पड़ा है। मध्य युग में संघ उत्पादन-प्रक्रिया को नियन्त्रित करते थे, और शिल्पियों तथा ग्राहकों की पहल या

अभिरुचि के लिए कोई ख़ास गुंजाइश नहीं छोड़ते थे। बढ़ई-संघ तय करता था कि एक उपयुक्त कुर्सी कैसी होती है, बेकरों का संघ अच्छी ब्रेड को परिभाषित करता था, मीस्टरसिंगर संघ तय करता था कि कौन-सा गीत अव्वल दर्ज़े का है और कौन-सा कचरा है। इस बीच, राजा और नगर परिषदें पगारों और क़ीमतों का नियमन करती थीं, और कभी-कभार लोगों को बिना मोलभाव की एक निश्चित क़ीमत पर चीज़ों की निर्धारित मात्र ख़रीदने पर बाध्य करती थीं। आधुनिक मुक्त बाज़ार में इन तमाम संघों, परिषदों और राजाओं की जगह एक अभिनव सर्वोच्च सत्ता ने ले ली है, और वह सत्ता है, ग्राहक की स्वतन्त्र इच्छा।

मान लीजिए कि टोयोटा कम्पनी एक आदर्श कार बनाने का फ़ैसला करती है। वह विभिन्न क्षेत्रों के विशेषज्ञों की एक समिति गठित करती है: वह सर्वश्रेष्ठ इंजीनियरों और डिज़ाइनरों को काम पर रखती है, उत्कृष्ट भौतिकीविदों और अर्थशास्त्रियों को एक-दूसरे के साथ रखती है, और कई समाजवैज्ञानिकों तथा मनोवैज्ञानिकों तक से परामर्श लेती है। सावधानी के तौर पर वे दो-एक नोबेल पुरस्कार विजेताओं, एक ऑस्कर-पुरस्कृत अभिनेत्री और कुछ विश्व-प्रसिद्ध कलाकारों को भी अपने साथ जोड़ लेते हैं। पाँच वर्षों के शोध और निर्माण के बाद वे उस आदर्श कार को प्रस्तुत करते हैं। लाखों की तादाद में वाहन तैयार किए जाते हैं, और उनको दुनियाभर के कार डीलरों के पास भेज दिया जाता है, लेकिन उस कार को कोई नहीं ख़रीदता। क्या इसका यह मतलब है कि ग्राहक ग़लती कर रहे हैं, और उनको यह अक़्ल नहीं है कि उनके हित में क्या है? नहीं। अगर ग्राहक इसे पसन्द नहीं करते, तो इसका मतलब है कि वह कार अच्छी नहीं है। अगर तमाम विश्वविद्यालयों के प्रोफ़ेसर और सारे पादरी, पुरोहित और मुल्ला हरेक व्याख्यान-मंचों और आसन्दियों पर खड़े होकर चिल्लाएँ कि यह एक अच्छी कार है, तब भी इससे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता, अगर ग्राहक उसको बुरी कार कहकर उसका तिरस्कार कर देते हैं। ग्राहकों से यह कहने का अधिकार किसी को नहीं है कि वे ग़लत हैं, और ख़ुदा का शुक्र है कि कोई सरकार अपने नागरिकों को उनकी मर्ज़ी के ख़िलाफ़ कोई ख़ास कार ख़रीदने के लिए बाध्य नहीं करेगी।

जो बात कार के सन्दर्भ में सही है, वही दूसरे उत्पादों पर भी लागू होती है। उदाहरण के लिए, यूनिवर्सिटी ऑफ़ उप्साला के प्रोफ़ेसर लीफ़ एंडरसन की बात सुनिए। उन्होंने कृषि के उपयोग में आने वाले पशुओं के जनेटिक संशोधन में विशेषज्ञता हासिल की हुई है, ताकि तेज़ी-से बढ़ने वाले सूअरों, ज़्यादा दूध देने वाली गायों, और अतिरिक्त मांस से युक्त हड्डियों वाले चूज़ों का उत्पादन किया जा सके। *हारेट्ज़* नामक समाचार-पत्र के साथ एक साक्षात्कार में रिपोर्टर नाओमी डेरोम इस तथ्य के साथ एंडरसन से भिड़ गईं कि इस तरह की जनेटिक जोड़-तोड़ पशुओं के लिए बहुत ज़्यादा तकलीफ़ की वजह बनेगी। पहले ही

डेयरी की 'संशोधित' गायों के थन इतने भारी होते हैं कि उनको चलना मुश्किल हो जाता है, वहीं 'संशोधित' चूज़े खड़े तक नहीं हो पाते। प्रोफ़ेसर एंडरसन का दो टूक जवाब था: 'सारा मसला लौटकर व्यक्तिगत तौर पर ग्राहक और इस सवाल पर आता है कि ग्राहक गोश्त के लिए कितना भुगतान करने को तैयार हैं...हमें यह याद रखना चाहिए कि संशोधित, आधुनिक चूज़ों के बिना मांस की खपत के मौजूदा वैश्विक स्तर को क़ायम रखना असम्भव होगा...अगर ग्राहक हमसे यथासम्भव सस्ते मांस की माँग करते हैं, तो ग्राहकों को वही मिलेगा...ग्राहकों को ही यह तय करना ज़रूरी है कि उनके लिए सबसे ज़्यादा महत्त्वपूर्ण क्या है - क़ीमत, या कुछ और'।

प्रोफ़ेसर एंडरसन बेदाग़ अन्तःकरण के साथ रात को सोने जा सकते हैं। इस तथ्य का कि ग्राहक उनके संशोधित पशु उत्पादों को ख़रीद रहे हैं, यह मतलब निकलता है कि वे उनकी ज़रूरतों और आकांक्षाओं को पूरा कर रहे हैं और इसलिए एक अच्छा काम कर रहे हैं। इसी तर्क से, अगर कोई बहुराष्ट्रीय कम्पनी यह जानना चाहती है कि क्या वह अपने नीति-वाक्य 'डोंट बी ईविल' के मुताबिक़ आचरण कर रही है, तो उसको अपने लेखे की आख़िरी लाइन पर नज़र डालना भर काफ़ी है। अगर वह ढेर सारा पैसा कमा रही है, तो इसका मतलब है कि लाखों लोग उसके उत्पाद को पसन्द करते हैं, जिसका अभिप्राय यह निकलता है कि वह सत्कर्म में लगी हुई है। अगर कोई आपत्ति उठाता है और कहता है कि लोग ग़लत चुनाव भी तो कर सकते हैं, तो उसको तुरन्त याद दिलाया जाएगा कि ग्राहक हमेशा सही होता है, मनुष्य की भावनाएँ ही सारे अर्थ और प्रमाण का स्रोत होती हैं। अगर लाखों लोग स्वतन्त्र मन से कम्पनी के उत्पादों को ख़रीदने का फ़ैसला करते हैं, तो उनको ग़लत कहने वाले आप कौन होते हैं?

अन्त में, मानववादी विचारों के उत्थान ने शिक्षा-प्रणालियों में भी क्रान्तिकारी परिवर्तन किए हैं। मध्य युग में सारे अर्थ और प्रभुत्व/प्रमाण का स्रोत बाहरी हुआ करता था, इसलिए शिक्षा-प्रणाली का उद्देश्य आज्ञा-पालन, पोथियों के स्मरण और प्राचीन परम्पराओं के अध्ययन की ज़रूरत को विद्यार्थियों के मन में बैठा देना होता था। अध्यापक विद्यार्थियों के सामने सवाल रखते थे, और विद्यार्थियों को याद करना होता था कि अरस्तू, राजा सोलोमन या सन्त थॉमस एक्विनास ने उस सवाल का जवाब किस तरह दिया था।

मानववाद की पाँच छवियाँ

29. मानववादी राजनीति: मतदाता बेहतर समझता है।

30. मानववादी अर्थशास्त्र: ग्राहक हमेशा सही होता है।

31. मानववादी सौन्दर्यशास्त्र: सौन्दर्य प्रेक्षक की निगाह में होता है। (नेशनल गैलरी ऑफ़ स्कॉटलैंड में आयोजित आधुनिक कला की विशेष प्रदर्शनी में मार्सल ड्यूषाँ की कृति फ़ाउंटेन।)

32. मानववादी नैतिकी: ‘अगर कोई काम करना अच्छा लगता है, तो उसे करिये!

33. मानववादी शिक्षण: स्वयं सोचिये!

इसके विपरीत, आधुनिक मानववादी शिक्षा-व्यवस्था विद्यार्थियों को स्वयं सोचने की शिक्षा देने में विश्वास करती है। यह जानना अच्छा है कि अरस्तू, सोलोमन और एक्विनास राजनीति, कला और अर्थशास्त्र के बारे में क्या सोचते थे, लेकिन चूँकि अर्थ और प्रमाण/प्रभुत्व का श्रेष्ठतम स्रोत हमारे भीतर ही मौजूद है, इसलिए ये कहीं ज़्यादा महत्त्वपूर्ण है कि

आप इन मसलों के बारे में क्या सोचते हैं। किसी शिक्षिका से पूछिए - वह चाहे किंडरगार्टन की शिक्षिका हो, स्कूल की हो या कॉलेज की - कि वह क्या पढ़ाने की कोशिश कर रही है। वह जवाब देगी, 'मैं बच्चों को इतिहास, या क़्वांटम फ़िज़िक्स, या कला पढ़ाती हूँ, लेकिन इस सबसे ज़्यादा मैं उनको ख़ुद सोचने की शिक्षा देती हूँ'। यह चीज़ हमेशा कामयाब नहीं भी हो सकती, लेकिन यही वही चीज़ है, जो मानववादी शिक्षा-व्यवस्था करने की कोशिश करती है।

जैसे ही अर्थ और प्रभुत्व/प्रामाणिकता का स्रोत स्वर्ग से हटकर मनुष्य की भावनाओं में केन्द्रित हुआ, समूचे ब्रह्माण्ड की प्रकृति बदल गई। बाहरी विश्व, जो अब तक देवताओं, कला की देवियों, परियों और राक्षसों से भरा हुआ था, एक रिक्ति में बदल गया। आन्तरिक दुनिया, जो अब तक भद्दे आवेगों का एक क्षुद्र संकुल हुआ करती थी, अपरिमित रूप से गहन और समृद्ध हो गई। देवदूत और दैत्य दुनिया के जंगलों और रेगिस्तानों में भटकती वास्तविक सत्ताओं से रूपान्तरित होकर हमारे अपने मानस की आन्तरिक शक्तियाँ बन गए। स्वर्ग और नर्क भी बादलों से ऊपर और ज्वालामुखियों के तले कहीं स्थित वास्तविक स्थल नहीं रह गए, और उसकी जगह उनकी व्याख्या आन्तरिक मानसिक अवस्थाओं के रूप में होने लगी। हर बार जब भी आप अपने दिल में ग़ुस्से और नफ़रत की आग भड़काते हैं, आप नर्क का अनुभव करते हैं, और हर बार जब भी आप अपने शत्रुओं को क्षमा कर देते हैं, अपने कुकृत्यों पर पश्चाताप करते हैं और अपनी सम्पत्ति को ग़रीब के साथ साझा करते हैं, आप स्वर्गिक आनन्द का अनुभव करते हैं।

जब नीत्शे ने ऐलान किया था कि देवता मर चुका है, तो उसका यही अभिप्राय था। कम से कम पश्चिम में देवता एक अमूर्त विचार बन चुका है, जिसे कुछ लोग स्वीकार करते हैं और कुछ अस्वीकार करते हैं, लेकिन दोनों ही दशाओं में कोई ख़ास फ़र्क़ नहीं पड़ता। मध्य युग में देवता के बिना मेरे पास राजनैतिक, नैतिक और सौन्दर्यात्मक प्रामाणिकता का कोई स्रोत नहीं हुआ करता था। मैं यह नहीं कह सकता था कि क्या सत्य है, क्या शिव है और क्या सुन्दर है। उस तरह कौन जीवित रह सकता था? इसके विपरीत आज देवता में विश्वास न करना बहुत आसान है, क्योंकि मैं अपनी इस अनास्था के लिए कोई क़ीमत नहीं चुकाता। मैं पूरी तरह से नास्तिक हो सकता हूँ और तब भी मैं अपने आन्तरिक अनुभवों से राजनैतिक, नैतिक और सौन्दर्यात्मक मूल्यों का एक समृद्ध मिश्रण निचोड़ सकता हूँ।

अगर मैं देवता में विश्वास करता भी हूँ, तो विश्वास करने का यह *मेरा चुनाव* है। अगर मेरा अन्तःकरण मुझसे देवता में विश्वास करने को कहता है, तो मैं विश्वास करता हूँ। मैं विश्वास करता हूँ, क्योंकि मै ईश्वर की उपस्थिति को *महसूस* करता हूँ, और मेरा दिल कहता है कि वह है, लेकिन अगर अब मैं देवता की उपस्थिति को महसूस नहीं करता, और अगर मेरा दिल सहसा मुझसे कहता है कि देवता नहीं है, तो मैं विश्वास करना बन्द कर देता हूँ।

दोनों ही दशाओं में प्रामाणिकता का वास्तविक स्रोत मेरी अपनी अनुभूतियाँ हैं। इसलिए यह कहते हुए भी कि मैं देवता में विश्वास करता हूँ, सच्चाई यह है कि मेरी अपनी आन्तरिक आवाज़ में मेरा विश्वास कहीं ज़्यादा तगड़ा है।

पीली ईंटों वाली सड़क पर चलिए

प्रामाणिकता के हरेक अन्य स्रोत की ही भाँति अनुभूतियों की भी अपनी कमज़ोरियाँ हैं। मानववाद मानकर चलता है कि हर मनुष्य में एक अद्वितीय प्रामाणिक आन्तरिक स्वत्व होता है, लेकिन मैं जब उससे बरतने की कोशिश करता हूँ, तो मेरा सामना या तो ख़ामोशी से होता है या एक-दूसरे से टकराते विरोधी स्वरों के कोलाहल से होता है। इस समस्या से निपटने के लिए मानववाद ने न सिर्फ़ प्रामाणिकता के एक नए स्रोत, बल्कि उस प्रामाणिकता तक पहुँच बनाने और सच्चा ज्ञान हासिल करने की एक नई पद्धति की भी घोषणा की है।

मध्ययुगीन यूरोप में ज्ञान का मुख्य सूत्र था: **ज्ञान = मज़हबी पोथियाँ x तर्क।*** अगर लोग किसी महत्त्वपूर्ण सवाल का जवाब जानना चाहते थे, तो वे मज़हबी पोथियाँ पढ़ते थे और उसके मज़मून का सटीक मतलब समझने के लिए अपने तर्क का इस्तेमाल करते थे। उदाहरण के लिए, जो अध्येता पृथ्वी के आकार का निश्चय करना चाहते थे, वे प्रासंगिक सन्दर्भों की तलाश करते हुए बाइबिल को बारीक़ी से पढ़ते थे। किसी ने इसकी ओर जॉब 38:13 में संकेत किया, जो कहता है कि ईश्वर 'पृथ्वी की किनारों को थाम सकता है, और दुष्टों को उससे झटक कर बाहर गिरा सकता है'। पण्डित ने समझाया कि इसका अभिप्राय यह है कि चूँकि पृथ्वी में 'किनारे' हैं, जिनको ईश्वर 'थाम' सकता है, इसलिए पृथ्वी निश्चय ही समतल चौकोर होनी चाहिए। किसी दूसरे सन्त ने इस व्याख्या को नकारते हुए आईज़ह 40:22 की ओर ध्यान दिलाया, जहाँ कहा गया है कि ईश्वर 'पृथ्वी के वृत्त पर सिंहासन पर बैठा है'। क्या यह इस बात का प्रमाण नहीं है कि पृथ्वी गोल है? व्यावहारिक तौर पर, इसका मतलब यह था कि अध्येता वर्षों विद्यालयों और पुस्तकालयों में बैठकर ज्ञान की खोज में लगे रहते थे, जिस दौरान वे अधिक से अधिक ग्रन्थों को पढ़ा करते थे, और अपनी तर्कबुद्धि को पैना करते रहते थे, ताकि वे उन ग्रन्थों को ठीक से समझ सकते।

वैज्ञानिक क्रान्ति ने ज्ञान का एक बिल्कुल अलग तरह का सूत्र पेश किया: **ज्ञान = अनुभवपरक जानकारी x गणित।** अगर हम किसी सवाल का जवाब जानना चाहते हैं, तो हमें उससे सम्बन्धित अनुभवपरक जानकारी एकत्र करना, और फिर उनका विश्लेषण करने के लिए गणितीय औज़ारों का इस्तेमाल करना ज़रूरी है। उदाहरण के लिए, पृथ्वी के सही आकार का अनुमान करने के लिए हम पृथ्वी के विभिन्न स्थलों से सूरज, चन्द्रमा और ग्रहों का पर्यवेक्षण करने के साथ शुरुआत कर सकते हैं। एक बार पर्याप्त पर्यवेक्षण एकत्र

कर लेने के बाद हम न केवल पृथ्वी के आकार को ज्ञात करने के लिए, बल्कि समूचे सौरमण्डल की संरचना को भी ज्ञात करने के लिए त्रिकोणमिति (ट्रिगनामिट्री) का इस्तेमाल कर सकते हैं। व्यावहारिक तौर पर इसका मतलब है कि वैज्ञानिक ज्ञान की खोज की प्रक्रिया में वेधशालाओं, प्रयोगशालाओं और अनुसन्धान अभियानों में वर्षों का वक़्त लगाते हुए अधिक से अधिक अनुभवपरक सूचनाएँ एकत्र करते रहते हैं, और अपने गणितीय औज़ारों को पैना करते रहते हैं, ताकि वे उन सूचनाओं की सही व्याख्या कर सकें।

ज्ञान का यह वैज्ञानिक सूत्र खगोलविज्ञान, भौतिकी, चिकित्साशास्त्र और अनेक दूसरे अनुशासनों के क्षेत्र में विस्मयकारी आविष्कारों का कारण बना, लेकिन इसमें एक बहुत बड़ी कमी है: यह मूल्य और अर्थ के सवालों से नहीं निपट सकता। मध्ययुगीन पण्डित सम्पूर्ण निश्चय के साथ इस बात का निर्धारण कर सकते थे कि हत्या और चोरी करना ग़लत है, और जीवन का ध्येय ईश्वर की आज्ञा का पालन करना है, क्योंकि मज़हबी पोथियाँ ऐसा ही कहती हैं। वैज्ञानिक इस तरह का नैतिक निर्णय नहीं दे सकते। सूचना की कितनी ही बड़ी तादाद और गणित की कितनी ही बड़ी प्रतिभा इस बात को साबित नहीं कर सकती कि हत्या करना ग़लत है, लेकिन मानव समाज इस तरह के मूल्य-निर्णयों के बिना क़ायम नहीं रह सकते।

इस मुश्किल से पार पाने का एक तरीक़ा नई वैज्ञानिक पद्धति के साथ-साथ मध्ययुगीन सूत्र का इस्तेमाल करते रहना था। जब हम किसी व्यावहारिक समस्या का सामना करते हैं, जैसे कि पृथ्वी के आकार का निश्चय करना, किसी पुल का निर्माण करना या किसी बीमारी का इलाज ढूँढना, तो हम अनुभवपरक जानकारी एकत्र करते हैं और फिर उस जानकारी का गणितीय ढंग से विश्लेषण करते हैं। जब हम किसी नैतिक समस्या का सामना करते हैं, जैसे कि इस बात का निर्णय करना कि तलाक, गर्भपात और समलैंगिकता की छूट दी जानी चाहिए या नहीं, तो हम मज़हबी पोथियाँ पढ़ते हैं। इस समाधान को काफ़ी हद तक अनेक आधुनिक समाजों ने अपनाया, जिनमें विक्टोरिया-युगीन इंग्लैंड से लेकर इक्कीसवीं सदी का ईरान तक शामिल है।

लेकिन, मानववाद ने एक विकल्प सुझाया। जैसे ही मनुष्यों ने अपने प्रति आत्मविश्वास हासिल कर लिया, नैतिक ज्ञान को अर्जित करने का एक नया सूत्र सामने आया: **ज्ञान = अनुभव x संवेदनशीलता।** अगर हम किसी नैतिक सवाल का जवाब जानना चाहते हैं, तो हमें अपने आन्तरिक अनुभवों से जुड़ने, और अधिकतम संवेदनशीलता के साथ उनका पर्यवेक्षण करना ज़रूरी है। व्यावहारिक तौर पर इसका मतलब है कि ज्ञान की खोज की प्रक्रिया में हम वर्षों का समय लगाकर अनुभवों को एकत्र करते हैं, और अपनी संवेदनशीलता को तीक्ष्ण करते हैं, ताकि हम इन अनुभवों को ठीक ढंग से समझ सकें।

‘अनुभव’ ठीक-ठीक क्या हैं? ये अनुभवपरक सूचनाएँ नहीं हैं। अनुभव अणुओं, विद्युतचुम्बकीय तरंगों, प्रोटीनों या संख्याओं से निर्मित नहीं होता। इसकी बजाय, अनुभव एक व्यक्तिनिष्ठ घटना है, जो तीन मुख्य घटकों से मिलकर बनती है: इन्द्रियबोध, भावावेग और विचार। किसी भी निश्चित क्षण मेरे अनुभव में आने वाली वह हर चीज़, जिसे मैं अपनी इन्द्रियों से महसूस करता हूँ (ताप, आनन्द, तनाव इत्यादि), वह हर भावावेग, जिसे मैं महसूस करता हूँ (प्रेम, भय, क्रोध इत्यादि) और जो भी विचार मेरे दिमाग़ में आते रहते हैं, इसमें समाहित होते हैं।

और ‘संवेदनशीलता’ क्या है? इसका मतलब है दो चीज़ें। पहली, अपनी इन्द्रिय अनुभूतियों, भावावेगों और विचारों की ओर ध्यान देना। दूसरी, इन इन्द्रिय अनुभूतियों, भावावेगों और विचारों को मुझे प्रभावित करने की गुंजाइश देना। माना कि मुझे हर गुज़रती हुई बयार को मुझे उड़ा ले जाने की छूट नहीं देनी चाहिए। तब भी मुझे नए अनुभवों के प्रति खुला होना चाहिए और उनको गुंजाइश देनी चाहिए कि वे मेरे दृष्टिकोणों, मेरे व्यवहार और मेरे व्यक्तित्व तक को बदल सकें।

अनुभव और संवेदनशीलता एक अन्तहीन क्रम में एक-दूसरे को गढ़ते चलते हैं। अगर मुझमें संवेदनशीलता नहीं है, तो मैं कुछ भी अनुभव नहीं कर सकता, और जब तक मैं कई तरह के अनुभवों से नहीं गुज़रता, तब तक मैं संवेदनशीलता विकसित नहीं कर सकता। संवेदनशीलता कोई ऐसी अमूर्त योग्यता नहीं है, जिसको पुस्तकें पढ़कर और व्याख्यान सुनकर विकसित किया जा सके। यह एक व्यावहारिक दक्षता है, जो केवल आचरण में ढाले जाने पर ही पक सकती है और परिपक्व हो सकती है।

उदाहरण के लिए चाय को ही लें। मैं सुबह का अख़बार पढ़ते हुए बहुत ही मीठी साधारण चाय के साथ शुरुआत करता हूँ। चाय ऊर्जा के आकस्मिक धक्के के बहाने से ज़्यादा कुछ ख़ास नहीं है। एक दिन मुझे अहसास होता है कि शक्कर के स्वाद और अख़बार में लगे ध्यान के बीच मैं चाय का स्वाद तो ले ही नहीं पाता हूँ। इसलिए मैं शक्कर की मात्रा कम कर देता हूँ, अख़बार को एक तरफ़ रख देता हूँ, अपनी आँखें बन्द कर चाय पर ही अपना ध्यान एकाग्र करता हूँ। मैं उसकी अनूठी सुगन्ध और स्वाद को महसूस करने लगता हूँ। जल्दी ही मैं ब्लैक और ग्रीन चाय की विभिन्न क़िस्मों को आज़माने लगता हूँ, और उनके तीखे स्वाद की बारीक़ियों और उनकी सुगन्ध की सूक्ष्मताओं के बीच तुलना करने लगता हूँ। कुछ ही महीनों बाद मैं सुपरमार्केट के लेबलों का ख़याल दिमाग़ से निकाल देता हूँ और अपनी चाय हैरोड्स से ख़रीदता हूँ। मैं सिचुआन प्रान्त की या’आन पहाड़ियों से आने वाली उस ‘पांडा डंग टी’ को पसन्द करने लगता हूँ, जो पांडा भालुओं के गोबर की खाद से उगाई गई चाय की झाड़ियों की पत्तियों से तैयार की जाती है। इस तरह, एक बार में एक कप चाय के साथ मैं चाय की अपनी संवेदनशीलता को पैना करता हूँ और चाय

का पारखी बन जाता हूँ। अगर आपने चाय पीने के मेरे शुरुआती दिनों में मेरे लिए मिंग राजवंश के चीनी मिट्टी के प्याले में पांडा डंग टी पेश की होती, तो मैंने उसकी काग़ज़ के कप में पेश की गई बिल्डर की चाय से ज़्यादा क़द्र न की होती। अगर आप में किसी चीज़ के लिए ज़रूरी संवेदनशीलता नहीं है, तो आप उस चीज़ को अनुभव नहीं कर सकते, और आप अनुभवों के एक लम्बे सिलसिले से गुज़रे बिना अपनी संवेदनशीलता विकसित नहीं कर सकते।

जो बात चाय के सन्दर्भ में सही है, वही अन्य सौन्दर्यात्मक और नैतिक ज्ञान पर भी लागू होती है। हम कोई तैयारशुदा अन्तःकरण धारण किए हुए पैदा नहीं हुए हैं। जैसे ही हम ज़िन्दगी बिताना शुरू करते हैं, हम लोगों को चोट पहुँचाते हैं और लोग हमें चोट पहुँचाते हैं, हम सहानुभूतिपूर्ण आचरण करते हैं और दूसरे लोग हमारे प्रति सहानुभूति दर्शाते हैं। अगर हम चीज़ों पर ध्यान देते हैं, तो हमारी नैतिक संवेदनशीलता प्रखर होती है, और ये अनुभव इस बात के मूल्यवान नैतिक ज्ञान का स्रोत बन जाते हैं कि क्या शुभ है, क्या उचित है और वास्तव में मैं कौन हूँ।

इस तरह मानववाद जीवन को उस आन्तरिक परिवर्तन की क्रमिक प्रक्रिया के रूप में देखता है, जो अनुभवों के माध्यम से अज्ञान से ज्ञान के प्रकाश की ओर ले जाती है। मानववादी जीवन का सबसे बड़ा लक्ष्य बौद्धिक, भावनात्मक और शारीरिक अनुभवों की व्यापक विविधता के माध्यम से आपके ज्ञान का पूर्ण विकास करना है। उन्नीसवीं सदी की शुरुआत में, आधुनिक शिक्षा-प्रणाली के मुख्य संस्थापकों में से एक, विल्हेम वॉन हम्बोल्ट ने कहा था कि अस्तित्व का उद्देश्य 'जीवन के व्यापकतम सम्भव अनुभव के निचोड़ से प्रज्ञा को हासिल करना' है। उन्होंने यह यह भी लिखा था कि 'जीवन का एक ही शिखर है - हर मानवीय चीज़ की अनुभूति की थाह लेना'। यह एक अच्छा मानववादी नीति-वाक्य हो सकता है।

चीनी फ़लसफ़े के मुताबिक़, यह जगत यिन (सृष्टि का कर्म-पात्र स्त्री तत्त्व) और यांग (सृष्टि का कर्ता पुरुष तत्त्व) नामक दो परस्पर विरोधी, किन्तु एक-दूसरे की पूरक शक्तियों की परस्पर क्रिया पर टिका हुआ है। यह बात भौतिक जगत के बारे में सही न भी हो, लेकिन यह निश्चय ही उस आधुनिक दुनिया के बारे में सच है जिसकी रचना विज्ञान और मानववाद के बीच के समझौते से हुई है। हर वैज्ञानिक यांग अपने भीतर एक मानववादी यिन को, और हर मानववादी यिन अपने भीतर एक वैज्ञानिक यांग को समाहित किए हुए है। यांग हमें शक्ति उपलब्ध कराता है, और यिन हमें अर्थ और नैतिक विवेक उपलब्ध कराता है। आधुनिकता के यांग और यिन हैं तर्कबुद्धि और भावना, प्रयोगशाला और संग्रहालय, उत्पादन के क्रमिक सोपान और सुपरमार्केट। लोग अक्सर यांग को देखते हैं और कल्पना कर लेते हैं कि आधुनिक दुनिया शुष्क, वैज्ञानिक, तार्किक और उपयोगितावादी है -

प्रयोगशाला या कारख़ाने की तरह, लेकिन आधुनिक दुनिया एक वैभवशाली सुपरमार्केट भी है। समूचे इतिहास के दौरान कभी किसी संस्कृति ने मनुष्य की अनुभूतियों, आकांक्षाओं और अनुभवों को इतना अधिक महत्त्व नहीं दिया। जीवन को अनुभवों की एक शृंखला के रूप में देखने का मानववादी दृष्टिकोण पर्यटन से लेकर कला तक असंख्य आधुनिक उद्योगों का संस्थापक मिथक बन चुका है। ट्रैवल एजेंट और रेस्तराँओं के ख़ानसामे हमारे लिए हवाई जहाज़ के टिकट, होटल या भड़कीले डिनर नहीं बेचते - वे अनूठे अनुभव बेचते हैं।

इसी तरह, जहाँ पूर्वआधुनिक आख्यान बाहरी घटनाओं और कृत्यों पर एकाग्र हुआ करते थे, वहीं आधुनिक उपन्यास, फ़िल्में और कविताएँ अक्सर अनुभूतियों पर ज़ोर देती हैं। ग्रीक-रोमन महाकाव्य और मध्ययुगीन शौर्यगाथाएँ अनुभूतियों की नहीं, बल्कि नायक के कृत्यों का कैटलॉग हुआ करती थीं। एक अध्याय में वर्णन होता था कि किस तरह एक बहादुर योद्धा ने एक नरपिशाच से लड़ाई की और उसको मार गिराया। एक और अध्याय बताता था कि किस तरह उस बहादुर योद्धा ने एक ख़ूबसूरत राजकुमारी को आग उगलते ड्रैगन से छुटकारा दिलाया और उस ड्रैगन को मार गिराया। तीसरा अध्याय बयान करता था कि किस तरह एक दुष्टात्मा ओझा ने राजकुमारी का अपहरण कर लिया था, लेकिन उस बहादुर योद्धा ने उस ओझा का पीछा किया और उसको मार गिराया। आश्चर्य की बात नहीं कि नायक कोई बढ़ई या किसान होने की बजाय हमेशा एक बहादुर योद्धा हुआ करता था, क्योंकि किसान कोई वीरतापूर्ण कृत्य नहीं करते थे।

मुख्यतः, नायक आन्तरिक परिवर्तन की किसी उल्लेखनीय प्रक्रिया से नहीं गुज़रते थे। अकिलीज़, आर्थर, रोलाँ और लेंसलॉट अपने साहसिक अभियानों पर निकलने से पहले ही शौर्यपूर्ण विश्वदृष्टि से युक्त निर्भीक योद्धा हुआ करते थे, और वे अन्त तक उसी विश्वदृष्टि से युक्त निर्भीक योद्धा बने रहते थे। जितने भी नरपिशाचों को वे मारते थे और जितनी भी राजकुमारियों का वे उद्धार करते थे, वह सब उसके साहस और दृढ़ता की पुष्टि करता था, लेकिन उस सबसे उनको कोई सीख नहीं मिलती थी।

कृत्यों की बजाय अनुभूतियों और अनुभवों पर मानववादी एकाग्रता ने कला को रूपान्तरित कर दिया। वर्ड्सवर्थ, दॉस्तॉएव्स्की, डिकिन्स और ज़ोला योद्धाओं और साहसिक कारनामों की कोई परवाह नहीं करते थे, इसकी बजाय उन्होंने इन चीज़ों का वर्णन किया कि साधारण मज़दूर और घरेलू स्त्रियाँ किस तरह महसूस करती थीं। कुछ लोगों का मानना है कि ज्वायस का उपन्यास *यूलीसीज़* बाहरी कृत्यों की बजाय आन्तरिक जीवन की पराकाष्ठा पर इस आधुनिक एकाग्रता का निरूपण करता है। 260,000 शब्दों में ज्वायस डब्लिन के स्टीफ़न डेडलॅस और लियोपोल्ड ब्लूम के एक दिन के जीवन का चित्रण करते हैं, जो उस पूरे दिन के दौरान...कुछ ख़ास नहीं करते।

बहुत थोड़े-से लोग हैं, जिन्होंने *यूलीसीज़* को शुरू से आख़िर तक पढ़ा है, लेकिन एकाग्रता का यही बदलाव हमारी ज़्यादातर जन-संस्कृति को भी सहारा देता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में टीवी सीरीज़ *सर्वाइवर* को अक्सर रियलिटी शोज़ को एक जुनून में बदलने का श्रेय दिया जाता है (या आरोप लगाया जाता है)। *सर्वाइवर* पहला रियलिटी शो था, जिसने नीलसन रेटिंग्स में शीर्ष स्थान बनाया था, और 2007 में *टाइम* पत्रिका ने इसको तब तक के सौ महानतम शोज़ की सूची में शामिल किया था। प्रसारण के हर दौर में तैराकी की न्यूनतम पोशाकों में बीस प्रतियोगियों को किसी उष्णकटिबन्धीय द्वीप पर अलग-थलग छोड़ दिया जाता है। उनको विभिन्न क़िस्म की चुनौतियों का सामना करना पड़ता है, और हर एपिसोड के दौरान वे अपने बीच के किसी एक प्रतियोगी को बाहर कर देने के लिए मतदान करते हैं। आख़िरी बचा व्यक्ति 10 लाख डॉलर लेकर घर जाता है।

होमर के यूनान, रोमन साम्राज्य या मध्ययुगीन यूरोप के दर्शक-श्रोता को यह कल्पना परिचित और अत्यन्त आकर्षक लगी होती। चुनौतियों का सामना करने वाले बीस लोग अन्दर जाते हैं - सिर्फ़ एक शूरवीर बाहर निकलकर आता है। 'अद्भुत!' - अगर होमर का कोई राजकुमार, कोई रोमन कुलीन या धर्मयोद्धा शूरवीर इसे देखने बैठता, तो वह यही सोचता। 'निश्चय ही हमें विस्मयकारी कारनामे, जीवन और मौत की लड़ाइयाँ और पराक्रम तथा विश्वासघात के अतुलनीय कृत्य देखने को मिलेंगे। योद्धा शायद एक-दूसरे की पीठ में छुरा भोंकेंगे, या सबके सामने उनकी अँतड़ियाँ फैला देंगे।

कितनी निराशाजनक बात है! पीठ में छुरा भोंकना और अँतड़ियाँ निकालना तो महज़ रूपक बनकर रह जाते हैं। हर एपिसोड लगभग एक घण्टे तक चलता है। उसमें से पन्द्रह मिनट टूथपेस्ट, षैम्पू और खाद्यान्नों के विज्ञापन खा जाते हैं। पाँच मिनट अविश्वसनीय रूप से बचकानी चुनौतियों के लिए समर्पित होते हैं, जैसे कि एक छल्ले में से सबसे ज़्यादा नारियल कौन फेंक सकता है, एक मिनट में सबसे ज़्यादा तादाद में कीड़े कौन खा सकता है। बाक़ी सारे वक़्त 'नायक' अपने अहसासों के बारे में बात करते रहते हैं! वह बोली/ वह बोला, मुझे ऐसा लगा और मुझे वैसा लगा। अगर कोई शूरवीर धर्मयोद्धा वाक़ई *सर्वाइवर* को देखने बैठ सका होता, तो उसने सम्भवतः ऊब और हताशा से भरकर अपना कुल्हाड़ा उठाकर टेलिविज़न तोड़ दिया होता।

आज हमें मध्ययुग के शूरवीर असंवेदनशील क्रूर इंसान लग सकते हैं। अगर वे हमारे साथ रहते होते, तो हम उनको मनोचिकित्सक के पास भेजते, जो शायद उनकी अनुभूतियों के साथ उनका रिश्ता क़ायम करने में उनकी मदद करता। *द विज़ार्ड ऑफ़ ओज़* में टिन मैन के साथ ऐसा ही होता है। इस उम्मीद में कि जब वह ओज़ पहुँचेगा, तो ओझा उसको एक हृदय देगा, वह डोरोथी और उसकी सहेलियों के साथ पीली ईंटों वाली सड़क पर चलता जाता है। इसी तरह बिजूखा एक मस्तिष्क की कामना करता है और शेर

साहस की कामना करता है। यात्रा के अन्त में वे पाते हैं कि वह महान ओझा एक ढोंगी है, और वह उनको इनमें से कोई भी चीज़ नहीं दे सकता, लेकिन उनको एक ज़्यादा महत्त्वपूर्ण बात समझ में आ जाती है: वह हर चीज़, जिसकी वे आकांक्षा कर रहे हैं, उनके भीतर ही मौजूद है। संवेदनशील, बुद्धिमान या साहसी होने के लिए किसी देवतानुमा ओझा की ज़रूरत नहीं है। आपको तो बस पीली ईंटों वाली सड़क पर चलते रहने और रास्ते में जो भी कोई अनुभव प्राप्त होता है, उसके प्रति ख़ुद को खुला रखने की ज़रूरत है।

ठीक यही सीख नक्षत्र-यान *एंटरप्राइज़* में आकाशगंगा की यात्रा करते कैप्टन किर्क और कैप्टन ज़्या-लुक पिकार्ड को, मिसीसिपी नदी में यात्रा करते हकलबेरी फिन और जिम को, *इज़ी राइडर* में हार्ले-डेविड्सॅन पर सवारी करते व्याट और बिली को, और सड़क पर केन्द्रित दूसरी ढेरों फ़िल्मों के उन दूसरे अनगिनत चरित्रों को मिलती है, जो पेंसिल्वेनिया (या शायद न्यू साउथ वेल्स) में अपना गृह-नगर छोड़कर किसी पुरानी कनवर्टिबल कार (या शायद किसी बस) में यात्रा करते हैं, जीवन को बदल डालने वाले विभिन्न अनुभवों से गुज़रते हैं, अपने साथ रिश्ता बनाते हैं, अपने अहसासों के बारे में बात करते हैं, और अन्त में बेहतर और अक़्लमन्द व्यक्तियों के रूप में सैन फ़्रांसिस्को (या शायद एलिस स्प्रिंग्स) पहुँच जाते हैं।

युद्ध की सच्चाई

ज्ञान = अनुभव x संवेदनशीलता के सूत्र ने सिर्फ़ हमारी जन-संस्कृति को ही नहीं, बल्कि युद्ध जैसे कठोर मुद्दों के बारे में हमारे अनुभव तक को बदल दिया है। ज़्यादातर इतिहास के दौरान, जब लोग यह जानना चाहते थे कि कोई युद्ध जायज़ है या नहीं, तो वे ईश्वर से पूछते थे, वे मज़हबी पोथियों से पूछते थे, और वे राजाओं, कुलीनों और पुराहितों से पूछते थे। शायद ही ऐसे थोड़े-से लोग होते हों, जो इस मामले में एक आम सैनिक या साधारण नागरिक के अनुभवों की परवाह करते हों। होमर, वर्जिल और शेक्सपियर जैसे लेखकों के युद्ध-आख्यान सम्राटों, जनरलों और असाधारण नायकों के कृत्यों पर केन्द्रित होते थे, और हालाँकि वे युद्ध की पीड़ा को छिपाते नहीं थे, लेकिन उस पीड़ा की क्षतिपूर्ति गौरव और साहसिक कारनामों के सम्पूर्ण मेन्यू से हो जाती थी। साधारण सैनिक या तो किसी गोलियथ की मारकाट के शिकार होकर लाषों के ढेर के रूप में दिखाई देते थे, या अपने कन्धों पर विजयी डेविड को उठाए जश्न मनाती भीड़ के रूप में दिखाई देते हैं।

34. चित्रकार ज़्याँ जैक़ वॉल्टर ने *द बैटल ऑफ़ ब्रेटनफ़ील्ड* (1631) *पर बनाए गए चित्र में स्वीडन* के राजा गुस्ताव को यूँ महिमामण्डित किया।

उदाहरण के लिए ब्रेटनफ़ील्ड के युद्ध का पिछले पृष्ठ पर दिया गया चित्र देखें। यह युद्ध 17 सितम्बर 1631 को हुआ था। चित्रकार ज़्याँ जैक़ वॉल्टर स्वीडन के राजा गुस्ताव एडोल्फ़ को महिमामण्डित करता है, जिसने उस दिन निर्णायक जीत के लिए अपनी सेना का नेतृत्व किया था। चित्र में गुस्ताव एडोल्फ़ युद्ध के मैदान पर यूँ छाया हुआ है, जैसे वह कोई युद्ध का देवता हो। आपको लगता है कि राजा युद्ध को यूँ नियन्त्रित करता है, जैसे कोई शतरंज का खिलाड़ी प्यादे को चल रहा हो। प्यादे अपने आप में ज़्यादातर सामान्य आकृतियाँ हैं, या पृष्ठभूमि में छोटे-छोटे बिन्दु जैसे हैं। वॉल्टर की दिलचस्पी इसमें नहीं थी कि जब वे आवेशित होते थे, भाग रहे होते थे, मारे जाते थे या मरते थे, तब वे कैसा महसूस करते थे। वे चेहरों से रहित भीड़ हैं।

यहाँ तक कि जब चित्रकार कमांडर की बजाय स्वयं युद्ध पर एकाग्र होते थे, तब भी वे उसको ऊपर से देखते थे, और निजी अनुभूतियों की बजाय सामूहिक रणनीति से ज़्यादा सरोकार रखते थे। उदाहरण के लिए, नवम्बर 1620 के बैटल ऑफ़ वाइट माउंटेन पर केन्द्रित पीटर स्नेयर्स का चित्र देखें।

यह तसवीर विधर्मी प्रोटेस्टेंट विद्रोहियों के साथ हुए तीस वर्षीय युद्ध की मशहूर कैथोलिक विजय का चित्रण करती है। स्नेयर्स इस जीत का कीर्तिगान इसकी विभिन्न व्यूहरचनाओं, रणनीतियों और सैन्य परिचालनों को कड़ी मेहनत से दर्ज़ करते हुए करना

चाहते थे। आप विभिन्न टुकड़ियों, उनकी युद्ध सामग्री और युद्ध की व्यूह-रचना में उनकी तैनातियों को आसानी-से पहचान सकते हैं। स्नेयर्स ने आम सैनिकों के अनुभवों और अनुभूतियों को कोई महत्त्व नहीं दिया। ज़्याँ जैक़ वॉल्टर की ही तरह वे भी हमें इस युद्ध को देवताओं और राजाओं के आलीशान नज़रिये से दिखाना चाहते हैं, और हमारे ऊपर इस तरह का प्रभाव छोड़ना चाहते हैं कि युद्ध एक भीमकाय शतरंज का खेल है।

35. द बैटल ऑफ़ वाइट माउंटेन पर पीटर स्नेयर्स का चित्र।

अगर आप बारीक़ी से देखें, जिसके लिए आपको एक आतशी शीशे की ज़रूरत होगी, तो आप पाते हैं कि *द बैटल ऑफ़ वाइट माउंटेन* शतरंज के खेल से कुछ ज़्यादा पेचीदा है। पहली निगाह में जो चीज़ ज्यामितीय अमूर्तन प्रतीत होती है, वही बारीक़ी से जाँचने पर नरसंहार के रक्तरंजित दृश्यों में बदल जाती है। यहाँ तक कि आपको जहाँ-तहाँ दौड़ते या भागते हुए सैनिकों के चेहरे भी नज़र आते हैं, जो अपनी बन्दूक़ें चला रहे हैं या अपने बरछों से दुश्मन को बेध रहे हैं, लेकिन ये दृश्य अपना अर्थ समूची तसवीर के भीतर अपनी जगह से प्राप्त करते हैं। जब हम एक सैनिक को तोप के गोले से चकनाचूर होते देखते हैं, तब हम इसे महान कैथोलिक जीत के हिस्से के रूप में अनुभव करते हैं। अगर वह सैनिक प्रोटेस्टेंटों के पक्ष से लड़ रहा है, तो उसकी मौत विद्रोह और विधर्मिता के लिए एक वाजिब पुरस्कार है। अगर सैनिक कैथोलिक सेना के पक्ष से लड़ रहा है, तो उसकी मौत एक मूल्यवान ध्येय की ख़ातिर एक महान बलिदान है। अगर हम ऊपर देखते हैं, तो हम युद्ध-भूमि के ऊपर देवदूतों को मँडराता हुआ पाते हैं। वे एक सफ़ेद बैनर लिए हुए हैं, जो लैटिन

में स्पष्ट करता है कि इस युद्ध-भूमि में क्या हुआ था, और वह इतना महत्त्वपूर्ण क्यों था। सन्देश यह है कि ईश्वर ने 8 नवम्बर 1620 को सम्राट फ़र्दिनान्द II की उसके शत्रुओं को पराजित करने में मदद की।

हज़ारों साल तक, जब लोग युद्ध की ओर नज़र दौड़ाते थे, तो उनको वहाँ देवता, सम्राट, सेनापति और महान नायक दिखाई देते थे, लेकिन पिछली दो सदियों में, राजा और सेनापति उत्तरोत्तर एक ओर धकेले जाते रहे हैं, और आम सैनिक और उसके अनुभव प्रकाश के केन्द्र में आते गए हैं। *ऑल क़्वाइट ऑन द वेस्टर्न फ्रण्ट* जैसे युद्ध-केन्द्रित उपन्यास और प्लाटून जैसी युद्ध-केन्द्रित फ़िल्मों की शुरुआत एक अनाड़ी रंगरूट के साथ होती है, जो अपने और दुनिया के बारे में कुछ ख़ास नहीं जानता, लेकिन जो उम्मीदों और भ्रमों के भारी बोझ से लदा होता है। उसका विश्वास है कि युद्ध महान चीज़ है, युद्ध का सबब न्यायसंगत है और सेनापति एक अद्भुत प्रतिभा का धनी व्यक्ति है। वास्तविक युद्ध में कीचड़, ख़ून, और मौत की गन्ध के कुछ ही हफ़्ते उसकी ग़लतफ़हमियों को एक के बाद एक झकझोरते जाते हैं। अगर वह जीवित बचा रह जाता है, तो यह पूर्व बचकाना रंगरूट एक अधिक अक़्लमन्द व्यक्ति के रूप में युद्ध से लौट आएगा, जिसका अब अध्यापकों, फ़िल्म-निर्माताओं और वाचाल राजनेताओं द्वारा प्रचारित रूढ़ धारणाओं और आदर्शों में कोई विश्वास नहीं रह गया होगा।

विरोधाभास यह है कि यह आख्यान इतना प्रभावशाली रूप ले चुका है कि आज यह अध्यापकों, फ़िल्म-निर्माताओं और वाचाल राजनेताओं द्वारा बार-बार दोहराया जाता है। *अपोकेलिप्स नाउ, फुल मैटल जैकेट* और *ब्लैक हॉक डाउन* जैसी हॉलीवुड की सुपर हिट फ़िल्में चेतावनी देती हैं कि 'युद्ध वह नहीं है, जिसे आप फ़िल्मों में देखते हैं!' सेल्युलाइड, गद्य या कविता में प्रतिष्ठापित एक निचले तबके के सैनिक की अनुभूतियाँ युद्ध का अन्तिम प्रमाण बन चुकी हैं, जिनका सम्मान हर कोई करने लगा है। जैसा कि मज़ाक़ में कहा जाता है, 'एक लाइट बल्ब को बदलने में कितने वियतनामी अनुभवी लगते हैं?' 'तुम नहीं जानोगे, तुम वहाँ नहीं थे।' (हाउ मेनी वियतनाम वेट्स डज़ इट टेक टु चेंज अ लाइट बल्ब?' 'यू वुड नॉट नो, यू वर नॉट देयर'।)

चित्रकारों ने भी घोड़ों पर सवार सेनापतियों और दाँव-पेचों में दिलचस्पी खो दी है। इसकी बजाय वे इस बात का चित्रण करने की कोशिश करते हैं कि एक आम सैनिक कैसा महसूस करता है। एक बार फिर *द बैटल ऑफ़ ब्रेटनफ़ील्ड* और *द बैटल ऑफ़ वाइट माउंटेन* पर नज़र डालें। इसके बाद आगे की इन दो तसवीरों को देखें, जो बीसवीं सदी की युद्ध सम्बन्धी कला की महान कृतियाँ मानी जाती हैं: ओटो डिक्स की द वॉर (Der Krieg) और टॉम ली की दैट 2,000 यार्ड स्टेयर।

डिक्स ने पहले विश्वयुद्ध के दौरान जर्मन सेना में सार्जेंट के रूप में काम किया था। ली ने *लाइफ़* पत्रिका के लिए 1944 के पेलेलियु द्वीप के युद्ध की रिपोर्टिंग की थी। जहाँ वॉल्टर और स्नेयर्स ने युद्ध को एक सैन्य और राजनैतिक हक़ीक़त की तरह देखा था और हमें यह बताना चाहा था कि उन लड़ाइयों में क्या हुआ था, डिक्स और ली ने युद्ध को एक भावनात्मक हक़ीक़त की तरह देखा और हमें यह बताना चाहा कि वह किस तरह महसूस होता है। उनको इस या उस युद्ध के सेनापतियों की महान प्रतिभा या रणनीतिपरक ब्योरों की परवाह नहीं थी। डिक्स का सैनिक वेर्दाँ या ईप या सोम में रहा हो सकता है, लेकिन वह कोई भी जगह हो, उससे फ़र्क़ नहीं पड़ता, क्योंकि युद्ध हर कहीं एक नर्क है। ली का सैनिक पेलेलियु पर महज़ एक अमेरिकी जीआई है, लेकिन आप ठीक वैसी ही 2,000 गज़ की टकटकी इओ जिमा पर किसी जापानी सैनिक के चेहरे पर, स्तालिनग्राद में जर्मन सैनिक के चेहरे पर या डंकिर्क में किसी अँग्रेज़ सैनिक के चेहरे पर भी देख सकते हैं।

डिक्स और ली के चित्रों में युद्ध का अर्थ रणनीतिपरक चालों या अलौकिक घोषणाओं से उत्पन्न नहीं होता। अगर आप युद्ध को समझना चाहते हैं, तो पहाड़ी की चोटी पर खड़े सेनापति, या आकाश में मँडराते फ़रिश्तों की ओर मत देखिए। इसकी बजाय सीधे एक आम सैनिक की आँखों में देखिए। ली के चित्र में मानसिक आघात के शिकार सैनिक की विस्मय से फटी आँखों से युद्ध की सच्चाई की दिशा में एक खिड़की खुलती है। डिक्स के चित्र में सच्चाई इस क़दर असहनीय है कि उसे आंशिक तौर पर एक गैस मास्क के पीछे छिपाया जाना ज़रूरी है। युद्ध के मैदान के ऊपर कोई फ़रिश्ते नहीं उड़ते, बल्कि सिर्फ़ एक उजाड़ शहतीर पर एक सड़ता हुआ शव लटक रहा है और आरोप की मुद्रा में एक अंगुली से इशारा कर रहा है।

36. ओटो डिक्स, द वॉर (1929-32)
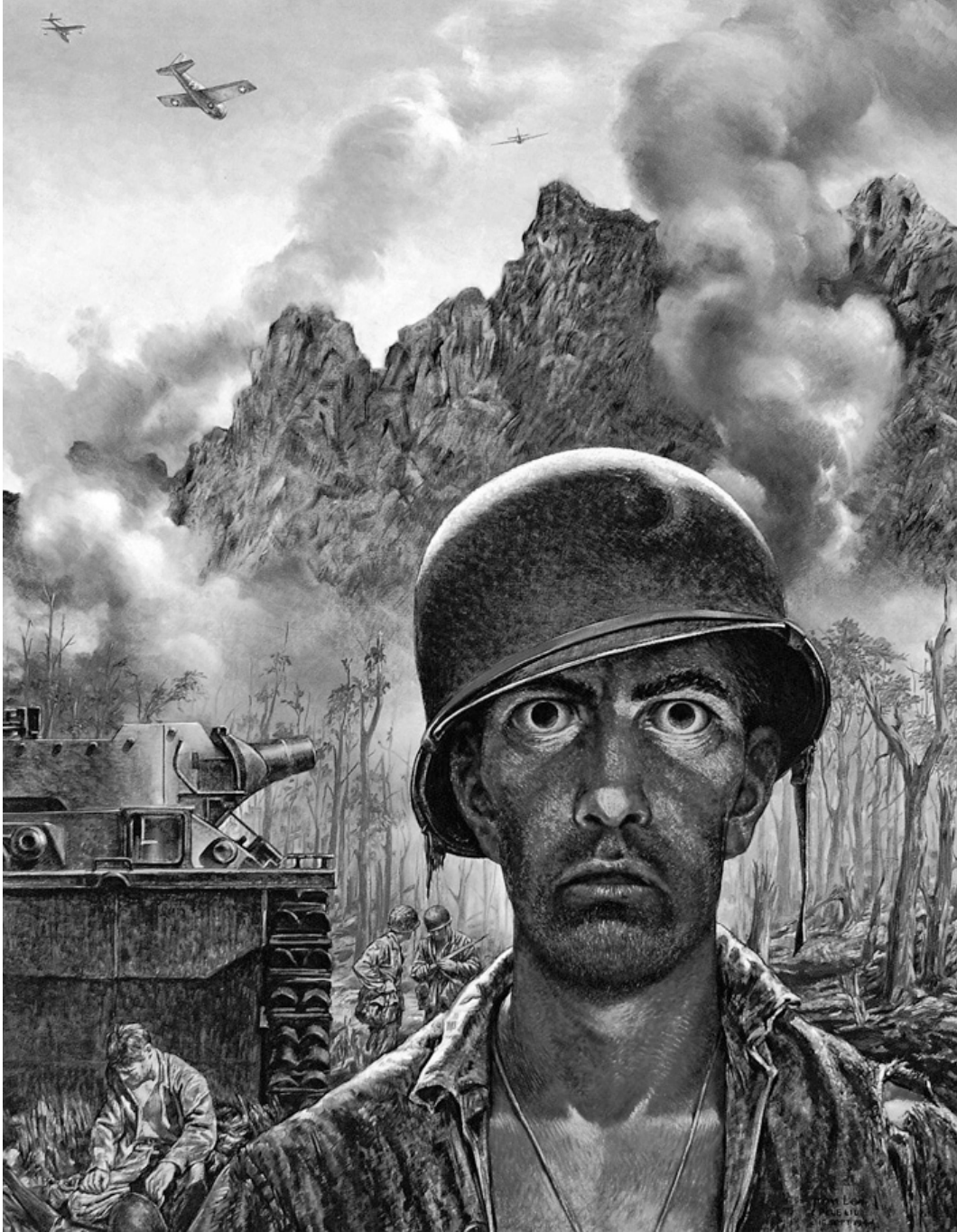
37. टॉम ली, दैट 2,000 यार्ड स्टेयर (1944)

इस तरह डिक्स और ली जैसे कलाकारों ने युद्ध के पारम्परिक सोपानक्रम को उलट देने में मदद की। पहले के युगों के अनगिनत युद्ध निश्चय ही उतने ही भयावह थे, जितने बीसवीं सदी के युद्ध रहे हैं, लेकिन तब तक भयानक अनुभवों तक को एक ऐसे व्यापक परिप्रेक्ष्य में रखा जाता था, जो उनको एक सकारात्मक अर्थ प्रदान करता था। युद्ध एक नर्क हो सकता था, लेकिन वह स्वर्ग का प्रवेश-द्वार भी था। बैटल ऑफ़ वाइट माउंटेन में

लड़ता हुआ सैनिक ख़ुद से कह सकता था: 'यह सही है कि मैं दुख भोग रहा हूँ, लेकिन पोप और सम्राट कहते हैं कि हम एक अच्छे ध्येय के लिए लड़ रहे हैं, इसलिए मेरा दुख अर्थपूर्ण है'। ओटो डिक्स ने एक विपरीत क़िस्म के तर्क का इस्तेमाल किया था। उन्होंने निजी अनुभव को समस्त अर्थ के स्रोत के रूप में देखा, इसलिए उनकी चिन्तन-प्रणाली यह थी: 'मैं दुख भोग रहा हूँ, और यह बुरा है, इसलिए सारा युद्ध ही बुरा है। इसके बावजूद अगर सम्राट (काइज़र) और पादरी इस लड़ाई के पक्ष में हैं, तो वे निश्चय ही ग़लत सोचते हैं'।

मानववादी विभाजन

अब तक हम मानववाद की चर्चा इस तरह करते रहे हैं, जैसे वह कोई एकमात्र सुसंगत विश्व-दृष्टि हो। वस्तुतः मानववाद ईसाइयत और बौद्ध धर्म जैसे प्रत्येक कामयाब मज़हब की नियति को साझा करता है। यह जैसे-जैसे फैलता और विकसित होता गया, वैसे-वैसे कई परस्पर विरोधी पन्थों में बँटता गया। सारे मानववादी पन्थ मानते हैं कि मानवीय अनुभव प्रामाणिकता और अर्थ का श्रेष्ठतम स्रोत है, लेकिन इस मानवीय अनुभव की व्याख्या वे अलग-अलग तरीक़ों से करते हैं।

मानववाद तीन मुख्य शाखाओं में विभाजित हुआ। पारम्परिक शाखा मानती है कि मनुष्य एक अनूठा व्यक्ति है, जो अपनी एक विशिष्ट आन्तरिक आवाज़ और अनुभवों की कभी न दोहराई जाने वाली एक शृंखला को धारण करता है। हर मनुष्य प्रकाश की एक अद्वितीय किरण है, जो एक अलग परिप्रेक्ष्य से दुनिया को प्रकाशित करती है, और जो विश्व में रंग, गहराई और अर्थ का योगदान करती है। इसलिए हमें हर व्यक्ति को दुनिया को अनुभव करने, उसको अपनी आन्तरिक आवाज़ का अनुसरण करने और अपने आन्तरिक सत्य को अभिव्यक्त करने की अधिकतम सम्भव स्वतन्त्रता प्रदान करना चाहिए। चाहे वह राजनीति हो, अर्थव्यवस्था हो या कला हो, वैयक्तिक स्वाधीनता को राजकीय हितों या मज़हबी सिद्धान्तों से ज़्यादा महत्त्व दिया जाना चाहिए। व्यक्ति जितनी ही ज़्यादा स्वतन्त्रता का उपभोग करता है, दुनिया उतनी ही ज़्यादा सुन्दर, समृद्ध और अर्थपूर्ण बनती है। स्वतन्त्रता पर इस बल के चलते मानववाद की पारम्परिक शाखा 'उदार मानववाद' या सिर्फ़ 'उदारवाद' के नाम से जानी जाती है।*

यह उदारवादी राजनीति ही है, जो यह मानती है कि मतदाता बेहतर समझता है। उदारवादी कला मानती है कि सौन्दर्य प्रेक्षक की निगाह में होता है। उदारवादी नैतिकी हमें सलाह देती है कि अगर हमें कोई काम करने से अच्छा महसूस होता है, तो हमें उसे करना चाहिए। उदारवादी शिक्षा-व्यवस्था हमें स्वयं सोचने की सीख देती है, क्योंकि सारे जवाब हमें अपने अन्दर ही मिलेंगे।

उन्नीसवीं और बीसवीं सदियों के दौरान जैसे-जैसे मानववाद उत्तरोत्तर सामाजिक विश्वसनीयता और राजनैतिक शक्ति हासिल करता गया, वैसे-वैसे इसके भीतर से दो भिन्न शाखाओं के अंकुर फूटे: समाजवादी मानववाद, जिसने अपनी परिधि में प्रचुर मात्रा में समाजवादी और साम्यवादी आन्दोलनों को समेटा, और विकासवादी मानववाद, जिसके सबसे प्रसिद्ध पैरोकार थे नाज़ी। ये दोनों शाखाएँ उदारवाद से इस मायने में सहमति रखती थीं कि मानवीय अनुभव प्रामाणिकता और अर्थ का चरम स्रोत है। दोनों में से कोई भी किसी लोकोत्तर सत्ता या किसी अलौकिक विधि-संहिता में विश्वास नहीं करता था। उदाहरण के लिए, अगर आपने कार्ल मार्क्स से पूछा होता कि किसी धुएँ से भरे कारख़ाने में दस साल के बच्चे के बारह घण्टे की पाली में काम करने में क्या बुराई है, तो उन्होंने जवाब दिया होता कि इससे बच्चा बुरा महसूस करता है। हमें शोषण, दमन और ग़ैर बराबरी से बचना चाहिए, इसलिए नहीं कि ऐसा ईश्वर ने कहा था, बल्कि इसलिए कि ये चीज़ें लोगों को दुख पहुँचाती हैं।

लेकिन समाजवादी मानववादी और विकासवादी मानववादी दोनों इस ओर संकेत करते थे कि मानवीय अनुभव दोषपूर्ण होता है। उदारवादी सोचते हैं कि मानवीय अनुभव एक वैयक्तिक हक़ीक़त है, लेकिन दुनिया में असंख्य व्यक्ति हैं, और वे अक्सर अलग-अलग ढंग से महसूस करते हैं और उनकी आकांक्षाएँ एक दूसरे के विरोध में जाती हैं। अगर सारी प्रामाणिकता और अर्थ वैयक्तिक अनुभवों से प्रवाहित होते हैं, तो आप इस तरह के विभिन्न अनुभवों के बीच के अन्तर्विरोधों का समाधान किस तरह करेंगे?

15 जुलाई 2015 को जर्मन चांसलर मर्केल का सामना लेबनान की एक फ़िलिस्तीनी शरणार्थी किशोरी से हुआ, जिसका परिवार जर्मनी में शरण चाहता था, लेकिन उसको जल्द ही देश-निकाला दिया जाने वाला था। रीम नामक इस लड़की ने धाराप्रवाह जर्मन में बोलते हुए मर्केल से कहा, 'यह देखना वाक़ई बहुत तकलीफ़देह है कि किस तरह दूसरे लोग जीवन का आनन्द ले रहे हैं, लेकिन मैं नहीं ले पा रही हूँ। मैं नहीं जानती कि मेरा भविष्य क्या होगा'। मर्केल ने जवाब दिया कि 'राजनीति कठोर हो सकती है' और समझाया कि लेबनान में सैकड़ों हज़ारों शरणार्थी हैं, और जर्मनी उन सबको नहीं खपा सकता। इस व्यावहारिक जवाब से हतप्रभ होकर रीम फूटफूट कर रो पड़ी। मर्केल उस हताश लड़की की पीठ पर हाथ फेरने के लिए आगे बढ़ीं, लेकिन वे अपने फ़ैसले पर अडिग बनी रहीं।

इसके बाद जो हंगामा खड़ा हुआ, उसमें बहुत-से लोगों ने मर्केल पर पत्थर-दिल होने का आरोप लगाया था। आलोचना को शान्त करने के लिए मर्केल ने अपना रुख बदला, और रीम तथा उसके परिवार को पनाह दे दी गई। बाद के महीनों में मर्केल ने दरवाज़े को और भी ज़्यादा खोलते हुए सैकड़ों हज़ारों शरणार्थियों को बाइज़्ज़त जर्मनी में पनाह दी,

लेकिन आप हर किसी को ख़ुश नहीं कर सकते। जल्दी ही उन पर तीखे हमले करते हुए भावुकता का शिकार होने और पर्याप्त सख़्त रवैया न अपनाने के आरोप लगाए जाने लगे। बहुत-से जर्मन अभिभावकों को भय सताने लगा कि मर्केल के यूँ पलटी खा जाने से उनके बच्चों के जीवन-स्तर में गिरावट आएगी, और वे शायद इस्लामीकरण की आक्रामक बाढ़ के शिकार होंगे। आख़िर उनको अपने परिवारों के अमन और ख़ुशहाली को ऐसे नितान्त अजनबियों की मदद की ख़ातिर दाँव पर क्यों लगाना चाहिए, जो मुमकिन है कि उदारवाद के मूल्यों तक में विश्वास न रखते हों? हर कोई इस मसले को बहुत ज़ोरदार ढंग से महसूस करता है। हताश शरणार्थियों और परेशान जर्मनों की अनुभूतियों के बीच के इस अन्तर्विरोध का समाधान कैसे किया जाए?

उदारवादी इस तरह के अन्तर्विरोघों को लेकर हमेशा बहुत चिन्तित रहते हैं। लॉक, जेफ़रसन, मिल और उनके साथियों की भरसक कोशिशें इस तरह की समस्याओं के त्वरित और आसान समाधान उपलब्ध करा पाने में नाकामयाब रहीं। लोकतान्त्रिक चुनाव करा लेने से भी कोई मदद नहीं मिलती, क्योंकि तब सवाल यह उठेगा कि इन चुनावों में मतदान कौन करेगा - सिर्फ़ जर्मन नागरिक, या वे लाखों एशियाई और अफ़्रीकी भी जो जर्मनी में बस जाना चाहते हैं? एक समूह की भावनाओं पर दूसरे समूह की भावनाओं को अतिरिक्त तरजीह क्यों दी जाए? इसी तरह, आप अरब-इज़रायल टकराव के मुद्दे पर 80 लाख इज़रायली नागरिकों और अरब लीग राष्ट्रों के 35 करोड़ नागरिकों का मतदान करा कर इस समस्या का हल नहीं निकाल सकते। इस बात की ज़ाहिर-सी वजहें हैं कि इज़रायली इस तरह के जनमत-संग्रह के नतीजों के प्रति सहमत महसूस नहीं करेंगे।

लोग लोकतान्त्रिक चुनावों से बाध्य तभी महसूस करते हैं, जब वे ज़्यादातर दूसरे मतदाताओं के बुनियादी सरोकारों को साझा करते हैं। अगर दूसरे मतदाताओं के अनुभव मेरे लिए पराए हैं, और अगर मैं मानता हूँ कि वे मेरी भावनाओं को नहीं समझते और मेरे जीवन-मरण से जुड़े हितों की परवाह नहीं करते, तो अगर मुझे सौ में से एक वोट भी प्राप्त होता है, तब भी मैं इस फ़ैसले को स्वीकार करने की कोई वजह नहीं देखता। लोकतान्त्रिक चुनाव सामान्यतः सिर्फ़ उसी आबादी के भीतर कारगर होते, जिसको आपस में जोड़ने वाले कुछ साझा सरोकार होते हैं, जैसे कि साझा मज़हबी आस्थाएँ या राष्ट्रीय मिथक। ये उन लोगों के बीच की असहमतियों का समाधान करने का एक तरीक़ा हैं, जो बुनियादी मुद्दों पर पहले से सहमत होते हैं।

तदनुसार, बहुत-से मामलों में उदारवाद आधुनिक राष्ट्रवाद को गढ़ने वाली सदियों पुरानी सामूहिक पहचानों और जनजातीय भावनाओं के साथ एकरूप हो गया है। आज बहुत-से लोग राष्ट्रवाद को उदारवाद-विरोधी ताक़तों के साथ जोड़कर देखते हैं, लेकिन कम से कम उन्नीसवीं सदी के दौरान राष्ट्रवाद उदारवाद के साथ बहुत धनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ

था। उदारवादी मनुष्यों के अद्वितीय व्यक्तिगत अनुभवों की सराहना करते हैं। हर मनुष्य की विशिष्ट अनुभूतियाँ, अभिरुचियाँ और विचित्रताएँ होती हैं, जिनको अभिव्यक्त करने और जिनका मन्थन करने की उसे तब तक आज़ादी मिलनी चाहिए, जब तक कि वे किसी दूसरे को आघात न पहुँचाते हों। इसी तरह, ज्यूसेपे मेत्सिनी जैसे उन्नीसवीं सदी के राष्ट्रवादी अलग-अलग राष्ट्रों के अनूठेपन की सराहना करते थे। वे इस बात पर ज़ोर देते थे कि बहुत-से मानवीय अनुभव जातीय होते हैं। पोल्का नृत्य आप ख़ुद से नहीं कर सकते, और जर्मन भाषा को ख़ुद से आविष्कृत और संरक्षित नहीं कर सकते। शब्द, नृत्य, भोजन और पेय का इस्तेमाल करता हुआ हर राष्ट्र अपने नागरिकों में अलग-अलग तरह के अनुभवों का पोषण करता है, और अपनी स्वयं की विशिष्ट संवेदनशीलता को विकसित करता है।

मेत्सिनी जैसे उदार राष्ट्रवादियों ने इन ख़ास राष्ट्रीय अनुभवों की असहिष्णु साम्राज्यों के हाथों कुचले जाने और छिन्न-भिन्न किए जाने से रक्षा करने की कामना की, और ऐसे राष्ट्रों के शान्तिपूर्ण समुदाय की कल्पना की, जिनमें से प्रत्येक राष्ट्र अपने पड़ोसियों को आघात पहुँचाए बिना अपनी जातीय अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने और उन पर मन्थन करने को स्वतन्त्र होता। यह आज भी यूरोपीय संघ की विचारधारा है, जिसका 2004 का संविधान कहता है कि यूरोप 'विविधता में एक है' और यह कि यूरोप के विभिन्न समाज 'अपनी राष्ट्रीय पहचानों पर अब भी गर्व करते हैं'। जर्मन राष्ट्र के विशिष्ट जातीय अनुभवों के संरक्षण का मूल्य उदारवादी जर्मनों तक को इस बात के लिए सक्षम बनाता है कि वे अप्रवासियों की बाढ़ को इजाज़त देने का विरोध कर पाते हैं।

निश्चय ही उदारवाद और राष्ट्रवाद के गठबन्धन ने सारी समस्याओं का हल तो मुश्किल से ही किया, वहीं इसी के साथ-साथ इसने बहुत सारी नई समस्याएँ भी खड़ी कर दीं। आप जातीय अनुभवों के मूल्यों की तुलना वैयक्तिक अनुभवों के मूल्यों से कैसे करेंगे? क्या पोल्का नृत्य, ब्राटवॅर्स्ट और जर्मन भाषा का संरक्षण लाखों शरणार्थियों को ग़रीबी और सम्भवतः मौत का सामना करने को छोड़ देने के लिए उचित ठहराता है? और तब क्या होता है, जब राष्ट्रों के भीतर उनकी अपनी अस्मिता की परिभाषा को लेकर बुनियादी टकराव उठ खड़े होते हैं, जैसा कि 1933 में जर्मनी में, 1861 में संयुक्त राज्य अमेरिका में, स्पेन में 1936 में या 2011 में मिस्र में हुआ था? इस तरह के मामलों में लोकतान्त्रिक चुनाव रामबाण दवा मुश्किल से ही होते हैं, क्योंकि परस्पर विरोधी पक्ष इसके परिणामों का सम्मान करने की कोई वजह नहीं देखते।

अन्त में, जैसे ही आप राष्ट्रवादी पोल्का नाचते हैं, एक छोटा-सा, लेकिन महत्त्वपूर्ण क़दम आपको इस विश्वास से कि आपका मुल्क तमाम दूसरे मुल्कों से भिन्न है, इस विश्वास की ओर ले जाता है कि आपका मुल्क बाक़ी मुल्कों से श्रेष्ठ है। उन्नीसवीं सदी के उदार राष्ट्रवाद को जर्मनों, इताल्वियों, पोलिषों और स्लोवानियों के अनूठे अनुभवों का सम्मान

करने के लिए हाब्सबर्ग और ज़ारशाही साम्राज्यों की ज़रूरत पड़ी थी। बीसवीं सदी के उग्र राष्ट्रवादी दूसरे मुल्कों को फ़तह करने के लिए युद्धों और उन लोगों के लिए यातना शिविर तैयार करने के अभियान पर निकल पड़े थे, जो अलग धुनों पर नाचते थे।

समाजवादी मानववाद ने एक बिल्कुल अलग ही रास्ता चुना। समाजवादी उदारवादियों पर आरोप लगाते हैं कि वे हमारा ध्यान दूसरे लोगों के अनुभवों की बजाय हमारी अपनी अनुभूतियों पर केन्द्रित करते हैं। हाँ, मनुष्य का अनुभव समस्त अर्थ का स्रोत है, लेकिन दुनिया में अरबों लोग हैं और वे सब उतने ही मूल्यवान हैं, जितना मैं हूँ। जहाँ उदारवाद हमारी निगाह अन्दर की ओर मोड़ता है, और मेरे अनूठेपन तथा मेरे राष्ट्र के अनूठेपन पर बल देता है, वहीं समाजवाद माँग करता है कि मैं अपने प्रति और अपनी अनुभूतियों के प्रति मोह छोड़कर इस पर ध्यान दूँ कि दूसरे लोग क्या महसूस कर रहे हैं और किस तरह मेरे कृत्य उनके अनुभवों पर असर डालते हैं। विश्व-शान्ति हर राष्ट्र की विशिष्टता का जश्न मनाने से नहीं, बल्कि दुनिया के तमाम कामगारों को एकजुट करने से हासिल होगी, और सामाजिक समरसता हर व्यक्ति द्वारा आत्मरतिपूर्ण ढंग से अपनी अन्दरूनी गहराइयों की छानबीन करने से नहीं, बल्कि हर व्यक्ति द्वारा अपनी आकांक्षाओं पर दूसरों की ज़रूरतों और अनुभवों को प्राथमिकता देने से हासिल होगी।

एक उदारवादी इसका जवाब यह दे सकती है कि अपनी अन्दरूनी दुनिया की छानबीन करते हुए वह दूसरों के प्रति अपनी करुणा और समझ विकसित करती है, लेकिन इस तरह के तर्क का लेनिन या माओ पर कोई ख़ास असर नहीं हुआ होता। उन्होंने समझाया होता कि वैयक्तिक आत्मानुसन्धान दयालु बूर्ज़्वा खोट है, और यह कि जब मैं अपने आन्तरिक स्वत्व के साथ रिश्ता बनाने की कोशिश करता हूँ, तो पूँजीवाद के इस या उस जाल में मेरे फँसने की बहुत ज़्यादा सम्भावना होती है। मेरे मौजूदा राजनैतिक दृष्टिकोण, मेरी पसन्द और नापसन्द और मेरी रुचियाँ तथा महत्त्वाकांक्षाएँ मेरे प्रामाणिक स्वत्व को प्रतिबिम्बित नहीं करतीं। इसकी बजाय, ये मेरे पालन-पोषण और सामाजिक परिवेश को प्रतिबिम्बित करती हैं। वे मेरे वर्ग पर निर्भर करती हैं, और मेरे पड़ोस और मेरे स्कूल द्वारा गढ़ी गई होती हैं। अमीरों और ग़रीबों, दोनों के दिमाग़ों में कुछ बातें जन्म के समय से ही कूट-कूटकर भर दी गई होती हैं। अमीरों को ग़रीबों की उपेक्षा करना सिखाया जाता है, वहीं ग़रीबों को उनके वास्तविक हितों को नज़रअन्दाज़ करने की सीख दी जाती है। कितना ही आत्मचिन्तन या मनोचिकित्सा कोई मदद नहीं करेगी, क्योंकि मनोचिकित्सक भी पूँजीवादी व्यवस्था के लिए काम कर रहे हैं।

दरअसल, सम्भावना यही है कि आत्मचिन्तन मुझे अपनी सच्चाई को समझने से और दूर ही ले जाए, क्योंकि यह निजी निर्णयों पर कुछ ज़्यादा ही ध्यान देता है और सामाजिक परिस्थितियों पर पर्याप्त ध्यान नहीं देता। अगर मैं अमीर हूँ, तो मैं इस नतीजे पर पहुँच

जाता हूँ कि ऐसा इसलिए है कि मैंने अक़्लमन्दी के साथ विकल्पों का चुनाव किया है। अगर मैं ग़रीबी के दलदल में फँसा हूँ, तो निश्चय ही मैंने कुछ ग़लतियाँ की होंगी। अगर मैं अवसादग्रस्त हूँ, तो इसकी पूरी सम्भावना है कि एक उदारवादी इसका दोष मेरे अभिभावकों के मत्थे मढ़ दे, और मुझे जीवन के कुछ नए लक्ष्य निर्धारित करने के लिए प्रोत्साहित करे। अगर मैं यह संकेत दूँ कि मैं शायद इसलिए अवसाद में हूँ, क्योंकि पूँजीवादियों द्वारा मेरा शोषण किया जा रहा है, और इस प्रभावी सामाजिक व्यवस्था के अधीन इस बात की कोई सम्भवना नहीं है कि मैं अपने लक्ष्यों को प्राप्त कर सकूँ, तो मनोचिकित्सक कह सकता है कि मैं अपनी अन्दरूनी मुश्किलों को सामाजिक व्यवस्था पर थोप रहा हूँ, और मैं अपनी माँ के साथ जिन विवादों को नहीं सुलझा पाया हूँ, उनको 'पूँजीपतियों' पर थोप रहा हूँ।

समाजवाद के मुताबिक़, अपनी माँ, अपनी भावनाओं और अपनी ग्रन्थियों पर बात करने में वर्षों का वक़्त ख़र्च करने की बजाय मुझे ख़ुद से यह सवाल करना चाहिए: मेरे मुल्क में उत्पादन के साधनों पर किसका अधिकार है? इस मुल्क के मुख्य आयात और निर्यात क्या हैं? हुक्मरान राजनेताओं और अन्तरराष्ट्रीय बैंक-व्यवसाय के बीच किस तरह का रिश्ता है? केवल प्रभावी सामाजिक-राजनैतिक व्यवस्था को समझकर और तमाम अन्य लोगों के अनुभवों को ध्यान में रखने पर ही मैं सच्चे अर्थों में यह समझ सकता हूँ कि मैं क्या महसूस करता हूँ, और सिर्फ़ कार्रवाइयों के माध्यम से ही हम व्यवस्था को बदल सकते हैं, लेकिन कौन व्यक्ति होगा, जो तमाम इंसानों के अनुभवों को ध्यान में रख सकता हो और किसी नतीजे पर पहुँचने से पहले उन पर जायज़ ढंग से विचार कर सकता हो?

इसीलिए समाजवादी आत्मानुसन्धान को हतोत्साहित करते हैं और मज़बूत सामूहिक संस्थाओं - जैसे कि समाजवादी दलों और ट्रेड यूनियनों - को स्थापित करने की पैरवी करते हैं, जिनका लक्ष्य हमारे लिए दुनिया की व्याख्या करना होता है। जहाँ उदारवादी राजनीति में मतदाता बेहतर समझता है, और उदारवादी अर्थव्यवस्था में ग्राहक हमेशा सही होता है, वहीं समाजवादी राजनीति में राजनैतिक दल बेहतर समझते हैं, समाजवादी अर्थव्यवस्था में ट्रेड यूनियन हमेशा सही होते हैं। प्रामाणिकता और अर्थ अभी भी मानवीय अनुभव से आते हैं - राजनैतिक दल और ट्रेड यूनियन, दोनों लोगों से ही बने होते हैं और दोनों ही मानवीय पीड़ाओं को मिटाने के लिए काम करते हैं - तब भी व्यक्तियों के लिए अपनी निजी अनुभूतियों की बात सुनने की बजाय राजनैतिक दल और ट्रेड यूनियन की बात सुनना अनिवार्य होता है।

विकासवादी मानववाद के पास टकरावपूर्ण मानवीय अनुभवों की समस्या का एक अलग ही समाधान है। डार्विन के विकासवादी सिद्धान्त में अपनी जड़ें मज़बूती से जमाते हुए यह इस बात पर ज़ोर देता है कि टकराव एक ऐसी चीज़ है, जिसका शोक मनाने की बजाय

उसकी सराहना की जानी चाहिए। टकराव प्राकृतिक वरण का वह कच्चा माल है, जो विकास की प्रक्रिया को आगे बढ़ाता है। कुछ मनुष्य दूसरे मनुष्यों के मुक़ाबले सहज ही श्रेष्ठ होते हैं, और जब इंसानी अनुभव आपस में टकराते हैं, तो यह योग्यतम मनुष्यों का कर्तव्य है कि वे अन्य सभी को कुचल दें। जो तर्क मानव जाति को जंगली भेड़ियों के विनाश और पालतू भेड़ों के निर्मम शोषण के लिए उत्प्रेरित करता है, वही तर्क श्रेष्ठ मनुष्यों द्वारा हीन मनुष्यों को कुचले जाने की इजाज़त देता है। यह एक अच्छी बात है कि यूरोपीय लोग अफ़्रीकियों को जीत लेते हैं और अक़्लमन्द व्यापारी मूर्ख व्यापारियों को दिवालियापन की ओर धकेल देते हैं। अगर हम इस विकासवादी तर्क का अनुसरण करें, तो मानव जाति धीरे-धीरे मज़बूत और क़ाबिल होती जाएगी, और अन्ततः अतिमानवों को जन्म देगी। विकासवाद *होमो सेपियन्स* पर जाकर ही नहीं ठहरा - अभी बहुत लम्बा रास्ता तय करना है, लेकिन अगर मानवाधिकारों या इंसानी ग़ैर बराबरी के नाम पर हम योग्यतम मनुष्यों को अक्षम बना देते हैं, तो यह स्थिति अतिमानव के उत्थान को रोक देगी, और *होमो सेपियन्स* के क्षरण और विलुप्ति तक का करण बन सकती है।

आख़िर वे श्रेष्ठ मनुष्य ठीक-ठीक हैं कौन, जो अतिमानव के आगमन की सूचना देते हैं? वे समूची प्रजाति हो सकते हैं, कोई ख़ास क़बीले हो सकते हैं या कोई असाधारण वैयक्तिक प्रतिभाएँ भी हो सकते हैं। वे जो भी कोई हों, जो चीज़ें उनको श्रेष्ठ बनाती हैं, वे उनकी वे बेहतर योग्यताएँ हैं, जो नवीनतम ज्ञान, अधिक उन्नत प्रौद्योगिकी, समृद्ध समाजों या अधिक सुन्दर कला में रूपायित होती हैं। एक आइंस्टीन या एक बीथोवेन का अनुभव किसी पियक्कड़ कामचोर के अनुभव के मुक़ाबले ज़्यादा मूल्यवान होता है, और उनको समान महत्त्व देते हुए बरतना हास्यास्पद है। इसी तरह, अगर किसी राष्ट्र ने निरन्तर मानव प्रगति का नेतृत्व किया है, तो हमें उसको उचित ही उन दूसरे राष्ट्रों से श्रेष्ठ मानना चाहिए, जिन्होंने मानव-विकास में बहुत थोड़ा-सा योगदान किया है या कोई योगदान ही नहीं किया है।

नतीजतन, ओटो डिक्स जैसे उदारवादी कलाकारों के विपरीत विकासपरक मानववाद यह मानता है कि युद्ध को लेकर मनुष्य का अनुभव न केवल मूल्यवान होता है, बल्कि अनिवार्य भी होता है। *द थर्ड मैन* नामक फ़िल्म द्वितीय विश्व युद्ध के समाप्त होने के तुरन्त बाद के वियना को दर्शाती है। हाल ही के टकराव पर विचार करता हुआ हैरी लाइम नामक किरदार कहता है: 'आख़िरकार, यह उतना भयानक भी नहीं है...। बोर्जियास के अधीन पिछले तीस सालों में इटली युद्ध, आतंक, हत्या और रक्तपात के दौर से गुज़रा है, लेकिन उन्होंने माइकेल एंजेलो, लियोनार्दो द विंची और रेनेसाँ को पैदा किया। स्विट्ज़रलैंड में भ्रातृवत प्रेम रहा, लोकतन्त्र और शान्ति का उनका 500 सालों का इतिहास रहा, और उन्होंने क्या उत्पन्न किया? 'कुक्कू घड़ी'। लाइम के लगभग सारे के सारे तथ्य ग़लत हैं -

स्विट्ज़रलैंड शुरुआती दौर के आधुनिक यूरोप का सम्भवतः सबसे ज़्यादा ख़ून का प्यास कोना हुआ करता था (इसका मुख्य निर्यात भाड़े के सैनिक हुआ करते थे), और कुक्कू घड़ी वास्तव में जर्मनों द्वारा ईजाद की गई थी, लेकिन ये तथ्य लाइम के इस विचार के मुक़ाबले कम महत्त्व रखते हैं कि युद्ध का अनुभव मानव जाति को नई उपलब्धियों की ओर ले जाता है। युद्ध प्राकृतिक वरण को अन्ततः खुली छूट देता है। यह कमज़ोर को नेस्तनाबूद कर देता है और मज़बूत, ताक़तवर और महत्त्वाकांक्षी को पुरस्कृत करता है। युद्ध जीवन की सच्चाई को उजागर करता है, और शक्ति, गौरव तथा विजय के संकल्प को जगाता है। नीत्षे ने इसका सारसंक्षेप इन शब्दों में प्रस्तुत किया कि युद्ध 'जीवन का विद्यालय' है और यह कि 'जो चीज़ मुझे मारती नहीं है, वह मुझे और ज़्यादा मज़बूत बनाती है'।

इसी तरह के विचार अँग्रेज़ सेना के लेटनेंट हेनरी जोन्स द्वारा व्यक्त किए गए थे। पहले विश्व युद्ध के दौरान पश्चिमी मोर्चे पर तैनात बीस वर्षीय जोन्स ने अपनी मृत्यु के तीन दिन पहले अपने भाई को एक ख़त भेजा था, जिसमें उसने युद्ध के अपने अनुभव का इस जोशीली शब्दावली में वर्णन किया था:

> क्या तुमने कभी इस तथ्य पर विचार किया है कि युद्ध की भयावहताओं के बावजूद, यह अन्ततः एक बड़ी चीज़ है? मेरे कहने का मतलब है कि इसमें व्यक्ति वास्तविकताओं के आमने-सामने होता है। युद्ध में मूर्खताओं, स्वार्थीपन, विलासिता और शान्ति-काल में दुनिया के दस में से नौ लोगों द्वारा जिये जाने वाले घृणित वाणिज्यिक क़िस्म के जीवन में निहित सामान्य धीरज की जगह वह वहशीपन ले लेता है, जो कम से कम अधिक नेक और स्पष्टवादी होता है। इसे इस तरह देखो: शान्ति-काल में इंसान अपना नगण्य जीवन जीता है, तुच्छताओं में संलग्न रहता है, अपनी सुख-सुविधाओं की, पैसे सम्बन्धी मसलों की, और तमाम इसी तरह की चीज़ों की चिन्ता करता रहता है - महज़ अपने लिए जीवित बने रहने की ख़ातिर। यह क्या ही घटिया जीवन होता है! दूसरी तरफ़, युद्ध में अगर तुम मारे भी जाते हो, तब भी तुम यूँ भी सिर्फ़ कुछ सालों के लिए इस अपरिहार्य नियति की प्रत्याशा करते हो, और तुम्हें यह जानकर सन्तोष प्राप्त होता है कि तुमने अपने देश की मदद करने की ख़ातिर 'जान दी है'। वस्तुतः तुमने एक आदर्श को पूरा कर दिखाया है, जो, जिस हद तक मैं समझ पाता हूँ, साधारण जीवन में आप शायद ही कभी कर पाते हैं। कारण यह है कि साधारण जीवन एक वाणिज्यिक और स्वार्थ के आधार पर चलता है, अगर आप, जैसी कि कहावत है, 'कामयाब होना' चाहते हैं, तो आप अपने हाथ काले होने से नहीं रोक सकते।

व्यक्तिगत तौर पर, मैं अक्सर इस संयोग पर ख़ुशी मनाता हूँ कि मुझे युद्ध में जाने का मौक़ा मिला। इसने मुझे अहसास कराया है कि जीवन कितनी तुच्छ चीज़ है। मैं समझता हूँ कि युद्ध ने हर किसी को 'ख़ुद से बाहर निकलने' का एक अवसर दिया है, जैसे कि मैं कह सकता हूँ...। निश्चय ही, अपने बारे में बात करते हुए, मैं कह सकता हूँ कि अपने पूरे जीवन में मैंने ऐसा प्रचण्ड उल्लास कभी महसूस नहीं किया था, जैसा एक बड़े करतब की शुरुआत पर अनुभव किया था, उदाहरण के लिए पिछले अप्रैल का। इसके पहले के आधा-एक घण्टे की उत्तेजना की तुलना पृथ्वी की किसी चीज़ से नहीं की जा सकती।

अपनी अत्यन्त लोकप्रिय पुस्तक *ब्लैक हॉक डाउन* में पत्रकार मार्क बाओडिन इसी तरह की शब्दावली में 1993 में मोगाडिशू में एक अमेरिकी सैनिक शॉन नेल्सन के युद्ध-अनुभव का बयान करते हैं:

इसका वर्णन करना बहुत कठिन है कि उसने कैसा अनुभव किया था...वह एक दैवीय आलोक के प्रकट होने जैसा था। मौत के क़रीब होते हुए भी उसने इतना सम्पूर्ण रूप से जीवित कभी महसूस नहीं किया था। उसकी ज़िन्दगी के वे बेहद सूक्ष्म क्षण थे, जब उसने मौत को अपने इतने क़रीब से गुज़रते हुए महसूस किया था, जैसे कोई बहुत तेज़ी-से आती दूसरी कार किसी अन्धे मोड़ से मुड़ी हो और उससे सीधे टकरा जाने से बाल-बाल बचकर निकल गई हो। आज के दिन तक वह इसी अहसास के साथ रहता आया था कि मौत ठीक उसके चेहरे के क़रीब साँस ले रही थी...एक के बाद एक पल तक, लगातार तीन घण्टे या उससे ज़्यादा देर तक...। युद्ध...एक पूरी तरह से मानसिक और शारीरिक सजगता की अवस्था जैसा था। सड़क पर उन पलों के दौरान वह शॉन नेल्सन नहीं रह गया था, व्यापक दुनिया के साथ उसका कोई रिश्ता नहीं रह गया था, उसको कोई भुगतान नहीं करने थे, किन्हीं भावनात्मक बन्धनों से वह बँधा हुआ नहीं था, कुछ भी नहीं। वह महज़ एक ऐसा इंसान था, जो एक सूक्ष्म पल से दूसरे सूक्ष्म पल तक जीवित बना हुआ एक के बाद एक साँस ले रहा था, इस बात के प्रति पूरी तरह चौकन्ना कि हर क्षण उसका आख़िरी क्षण हो सकता था। उसको लग रहा था कि वह वैसा कभी महसूस नहीं कर पाएगा।

एडोल्फ़ हिटलर में भी युद्ध के उसके अनुभवों से बदलाव आया था और उसको ज्ञान प्राप्त हुआ था। *मेन क़म्फ* में वह बयान करता है कि किस तरह, जब उसकी टुकड़ी अग्रिम मोर्चे पर पहुँची, तो उसके कुछ ही देर बाद सैनिकों का शुरुआती उत्साह ख़ौफ़ में बदल गया था, जिसके ख़िलाफ़ हर सैनिक को अन्दरूनी आन्तरिक लड़ाई लड़ना और उसके हाथों

पराजय को टालने के लिए भरसक कोशिश करना ज़रूरी था। हिटलर कहता है कि उसने यह अन्दरूनी लड़ाई 1915/16 के जाड़ों में जीत ली थी। वह लिखता है कि 'कम से कम मेरा संकल्प निर्विवाद मालिक था...अब मैं शान्त और निश्चय से भरा हुआ था। और वह चिरस्थायी था। अब नियति मेरी हिम्मत को झकझोरे बिना या मेरी बुद्धि का दिवाला निकाले बिना चरम परीक्षाएँ ले सकती है'।

युद्ध के अनुभव ने हिटलर के समक्ष दुनिया की सच्चाई को उजागर कर दिया था: यह एक जंगल है, जिस पर प्राकृतिक वरण के बेरहम नियमों की हुकूमत चलती है। जो लोग इस सच्चाई को स्वीकार करने से इंकार करते हैं, वे जीवित नहीं बने रह सकते। अगर आप कामयाब होना चाहते हैं, तो आपको न सिर्फ़ इस जंगल के नियमों को समझना ज़रूरी है, बल्कि उनको ख़ुशी-ख़ुशी अपनाना भी ज़रूरी है। इस बात को रेखांकित किया जाना चाहिए कि युद्ध-विरोधी उदारवादी कलाकारों की भाँति हिटलर ने भी साधारण सैनिकों के अनुभवों का पवित्रीकरण किया था। वाक़ई बीसवीं सदी की राजनीति में जनसाधारण के निजी अनुभवों को प्रदान की गई अपरिमित प्रामाणिकता के लिए हिटलर का राजनैतिक जीवन हमारे पास एक श्रेष्ठतम उदाहरण है। हिटलर कोई वरिष्ठ अधिकारी नहीं था - युद्ध के चार वर्षों में वह कॉर्पोरल के पद से ऊपर नहीं उठ पाया था। उसने कोई औपचारिक शिक्षा, कोई व्यावसायिक दक्षता प्राप्त नहीं की थी और उसकी कोई राजनैतिक पृष्ठभूमि भी नहीं थी। वह कोई कामयाब व्यापारी या किसी यूनियन का कार्यकर्ता नहीं रहा था, उसके कोई रिश्तेदार या दोस्त ऊँचे पदों पर नहीं थे, न ही उसके पास कोई उल्लेखनीय दौलत थी। शुरुआत में तो उसके पास जर्मनी की नागरिकता तक नहीं थी। वह एक कंगाल शरणार्थी था।

जब हिटलर ने जर्मन मतदाताओं से गुहार लगाते हुए उनसे उनके भरोसे की माँग की थी, तो वह अपने पक्ष में एक ही तर्क जुटा पाया था: खन्दकों में रहने के उसके अनुभवों ने उसको वह सिखाया था, जो आप विश्वविद्यालयों में, सेना के मुख्यालयों में या किसी सरकारी मन्त्रलय में कभी नहीं सीख सकते। लोगों ने उसका अनुसरण किया और उसके पक्ष में मतदान किया, क्योंकि उन्होंने उसके साथ तादात्म्य स्थापित कर लिया था, और इसलिए कि वे भी यह मानते थे कि दुनिया एक जंगल है, और यह कि जो चीज़ हमें मार नहीं पाती, वह हमें और ज़्यादा मज़बूती प्रदान करती है।

जहाँ उदारवाद प्रत्येक मानव समुदाय के विशिष्ट अनुभवों की रक्षा की ख़ातिर राष्ट्रवाद के एक अपेक्षाकृत नरम संस्करण के साथ मिल गया, वहीं हिटलर जैसे विकासपरक मानववादियों ने विशिष्ट राष्ट्रों को मानव प्रगति के इंजन की तरह देखा और यह नतीजा निकाला कि इन राष्ट्रों को उनके रास्ते में आने वाले किसी भी व्यक्ति को पीटना चाहिए या ज़रूरी हो तो नेस्तनाबूद तक कर देना चाहिए। हालाँकि, यह बात याद रखी जानी चाहिए

कि हिटलर और नाज़ीवाद विकासपरक मानववाद के सिर्फ़ एक ही संस्करण का प्रतिनिधित्व करते हैं। जिस तरह स्तालिन के गुलाग प्रत्येक समाजवादी विचार और तर्क को रद्द नहीं करते, उसी तरह नाज़ीवाद की भयावहताओं को इस बात की छूट नहीं मिलनी चाहिए कि वे विकासपरक मानववाद द्वारा पेश की गई जिन किन्हीं अन्तर्दृष्टियों के प्रति हमें अन्धा बना दें। नाज़ीवाद का जन्म विकासपरक मानववाद के साथ कुछ ख़ास तरह के नस्लपरक सिद्धान्तों और उग्र राष्ट्रवादी भावनाओं के संसर्ग से हुआ था। सारे विकासपरक मानववादी नस्लवादी नहीं होते, और आगे के विकास के लिए मानव जाति की सम्भावनाओं में हरेक विश्वास का अनिवार्यतः यह मतलब नहीं होता कि पुलिस राज्यों और यातना-गृहों की स्थापना अनिवार्य है।

आश्वित्ज़ को एक रक्तिम चेतावनी-संकेत की तरह देखा जाना चाहिए, न कि उस काले परदे की तरह, जो मानव सम्भावनाओं के समूचे हिस्सों को छिपा लेता है। विकासपरक मानववाद ने आधुनिक संस्कृति को रूप देने में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी, और इस बात की पूरी सम्भावना है कि वह इक्कीसवीं सदी को आकार देने में उससे भी ज़्यादा बड़ी भूमिका निभाएगा।

क्या बीथोवेन चक बेरी से बेहतर है?

हम मानववाद की तीनों शाखाओं के बीच के फ़र्क़ को समझ सकें, इसे सुनिश्चित करने के लिए हम कुछ मानवीय अनुभवों की तुलना करते हैं।

अनुभव नम्बर 1: संगीत-शास्त्र का एक प्रोफ़ेसर बीथोवेन की पाँचवीं सिम्फ़नी को सुनने वियना के ऑपेरा हाउस में बैठा है। 'पा पा पा पाम!' जैसे ही ध्वनि-तरंगें उसके कानों के परदों से टकराती हैं, वैसे ही संकेत उसकी श्रव्य तन्त्रिका से होते हुए उसके मस्तिष्क तक पहुँचते हैं और अधिवृक्क ग्रन्थि (एड्रिनल ग्लैंड) उसके रक्त-प्रवाह को अधिवृक्क रस (एड्रेनलिन) से आप्लावित कर देती है। उसके दिल की धड़कनें बढ़ जाती हैं, उसकी साँस तेज़ी-से चलने लगती है, उसकी गर्दन के रोंगटे खड़े हो जाते हैं, और उसकी रीढ़ की हड्डी में झुरझुरी होने लगती है। 'पा पा पा पाम!'

अनुभव नम्बर 2: यह 1965 है। एक मस्टांग कनवर्टिबल कार प्रशान्त तटीय राजमार्ग पर पूरी ताक़त से दौड़ती हुई सैन फ़्रांसिस्को से लॉस ऐंजेलस की ओर चली जा रही है। मर्दाना नौजवान ड्राइवर पूरी आवाज़ में चक बेरी का गाना लगा देता है: 'गो! गो, जॉनी गो!' जैसे ही ध्वनि-तरंगें उसके कानों के परदों से टकराती हैं, वैसे ही संकेत उसकी श्रव्य तन्त्रिका से होते हुए उसके मस्तिष्क तक पहुँचते हैं और अधिवृक्क ग्रन्थि (एड्रिनल ग्लैंड) उसके रक्त-प्रवाह को अधिवृक्क रस (एड्रेनलिन) से आप्लावित कर देती है। उसके दिल की धड़कनें बढ़ जाती हैं, उसकी साँस तेज़ी-से चलने लगती है, उसकी गर्दन के रोंगटे खड़े

हो जाते हैं, और उसकी रीढ़ की हड्डी में झुरझुरी होने लगती है। 'गो! गो, जॉनी, गो, गो, गो!'

अनुभव नम्बर 3: कांगो के वर्षा वनों के अन्दरूनी भाग में एक नाटा शिकारी स्तम्भित खड़ा हुआ है। पास के गाँव से उसको लड़कियों के दीक्षा गीत इनीशिएशन साँग) का सामूहिक स्वर सुनाई दे रहा है। 'ये ओह, ओह। ये ओह, एह।' जैसे ही ध्वनि-तरंगें उसके कानों के परदों से टकराती हैं, वैसे ही संकेत उसकी श्रव्य तन्त्रिका से होते हुए उसके मस्तिष्क तक पहुँचते हैं और अधिवृक्क ग्रन्थि (एड्रिनल ग्लैंड) उसके रक्त-प्रवाह को अधिवृक्क रस (एड्रेनलिन) से आप्लावित कर देती है। उसके दिल की धड़कनें बढ़ जाती हैं, उसकी साँस तेज़ी-से चलने लगती है, उसकी गर्दन के रोंगटे खड़े हो जाते हैं, और उसकी रीढ़ की हड्डी में झुरझुरी होने लगती है। 'ये ओह, ओह। ये ओह, एह'।

अनुभव नम्बर 4: यह कनाडा के चट्टानी पर्वतों (कनेडियन रॉकीज़) में किसी स्थान पर पूर्णिमा की रात है। पहाड़ी की चोटी पर खड़ा एक भेड़िया किसी कामोत्तेजित मादा की पुकार सुनता है। 'अवू! अवू!' जैसे ही ध्वनि-तरंगें उसके कानों के परदों से टकराती हैं, वैसे ही संकेत उसकी श्रव्य तन्त्रिका से होते हुए उसके मस्तिष्क तक पहुँचते हैं और अधिवृक्क ग्रन्थि (एड्रिनल ग्लैंड) उसके रक्त-प्रवाह को अधिवृक्क रस (एड्रेनलिन) से आप्लावित कर देती है। उसके दिल की धड़कनें बढ़ जाती हैं, उसकी साँस तेज़ी-से चलने लगती है, उसकी गर्दन के रोंगटे खड़े हो जाते हैं, और उसकी रीढ़ की हड्डी में झुरझुरी होने लगती है। 'अवू! अवू!'

इनमें से कौन-सा अनुभव अधिक मूल्यवान है?

उदारवादी यह कहने की कोशिश करेंगे कि संगीत-शास्त्र के प्रोफ़ेसर, नौजवान ड्राइवर और कांगलीज़ शिकारी के अनुभव समान रूप से मूल्यवान हैं, और उन सभी को सँजोया जाना चाहिए। हर मानवीय अनुभव किसी अनूठी चीज़ का योगदान करता है, और दुनिया को एक नए अर्थ से समृद्ध करता है। कुछ लोगों को शास्त्रीय संगीत पसन्द आता है, कुछ रॉक एंड रोल को पसन्द करते हैं, कुछ ऐसे भी हैं, जिनको पारम्परिक अफ़्रीकी गीत ज़्यादा भाते हैं। संगीत के छात्रों का परिचय संगीत की अधिकतम सम्भव शैलियों से कराया जाना चाहिए, और अन्त में वे आइट्यून्स स्टोर में जाकर अपना क्रेडिट कार्ड नम्बर डालकर अपनी पसन्द का संगीत ख़रीद सकते हैं। सौन्दर्य श्रोता के कान में होता है, और ग्राहक हमेशा सही होता है, लेकिन क्योंकि भेड़िया इंसान नहीं है, इसलिए उसके अनुभव कोई मूल्य नहीं रखते। यही वजह है कि एक भेड़िये का जीवन मनुष्य के जीवन से कम क़ीमती होता है, और इसीलिए मनुष्य की जान बचाने के लिए भेड़िये को मारने में कोई हर्ज़ नहीं है। आख़िरकार, भेड़िये किसी सौन्दर्य-प्रतियोगिता में मतदान नहीं करते, न ही उनके पास क्रेडिट कार्ड होते हैं।

यह उदारवादी दृष्टिकोण, उदाहरण के लिए, *वोयेजर* गोल्डन रिकार्ड में प्रकट होता है। 1977 में अमेरिकियों ने अन्तरिक्ष खोजी यान *वोयेजर* I को अन्तरिक्ष यात्रा के लिए प्रक्षेपित किया था। अब तक यह हमारे सौरमण्डल से बाहर निकल चुका है, और नक्षत्र-मण्डल को भेदने वाली मनुष्य-निर्मित प्रथम वस्तु का रिकॉर्ड बना चुका है। नवीनतम तकनीकी से पूर्ण उपकरणों के अलावा नासा ने इसमें एक सुनहरा रिकॉर्ड भी स्थापित किया है, जिसका उद्देश्य पृथ्वी से बाहर के किन्हीं भी ऐसे सम्भावित प्राणियों को पृथ्वी ग्रह से परिचित कराना है, जिनकी इस खोजी यान से मुलाक़ात हो सकती है।

इस रिकॉर्ड में पृथ्वी और उसके निवासियों से सम्बन्धित विविध क़िस्म की वैज्ञानिक और सांस्कृतिक जानकारी, कुछ चित्र और आवाज़ें, और दुनियाभर के संगीत की कई दर्जन रचनाएँ भरी हैं, जिसके पीछे यह उम्मीद है कि वे पृथ्वी की कलात्मक उपलब्धियों की बानगी का समुचित प्रतिनिधित्व करेंगे। संगीत का यह नमूना किसी स्पष्ट क्रम का अनुसरण किए बग़ैर बीथोवेन की पाँचवीं सिम्फ़नी समेत शास्त्रीय संगीत की कई रचनाओं को, चक बेरी के 'जॉनी बी. गूडे' समेत समकालीन लोकप्रिय संगीत की कई रचनाओं, और कांगो की नाटी लड़कियों के दीक्षा-गीत समेत दुनियाभर के पारम्परिक संगीत को समाहित किए हुए है, हालाँकि इस रिकॉर्ड में कुत्ते की जाति के कुछ प्राणियों की भौंकने की आवाज़ें भी भरी हैं, लेकिन ये आवाज़ें सांगीतिक बानगी का हिस्सा नहीं हैं, बल्कि उनकी हैसियत को कम करते हुए उनको उस एक अलग हिस्से में रखा गया है, जिसमें हवा के बहने, बारिश और समुद्री लहरों के टकराने की आवाज़ें भी शामिल हैं। आल्फ़ा सेंटौरी þसौरमण्डल का निकटतम नक्षत्र-मण्डल और ग्रह-मण्डल) के सम्भावित श्रोताओं के लिए सन्देश यह है कि बीथोवेन का संगीत, चक बेरी के गीत और नाटी लड़कियों का दीक्षा-गीत समान हैसियत रखते हैं, जबकि भेड़ियों की पुकारें पूरी तरह से अलग कोटि से ताल्लुक़ रखती हैं।

समाजवादी सम्भवतः इस मामले में उदारवादियों से सहमत होंगे कि भेड़िये का अनुभव कोई मूल्य नहीं रखता, लेकिन इन तीनों मानवीय अनुभवों को लेकर उनका रवैया बिल्कुल अलग होगा। समाजवाद में आस्था रखने वाला एक सच्चा व्यक्ति कहेगा कि संगीत का वास्तविक मूल्य किसी स्वतन्त्र श्रोता के अनुभवों पर निर्भर नहीं करता, बल्कि वह संगीत के उस प्रभाव पर निर्भर करता है, जो वह समग्रतः समाज के अन्य लोगों पर डालता है। जैसा कि माओ ने कहा था, 'कला के लिए कला जैसा कुछ नहीं होता, ऐसी कोई कला नहीं होती, जो वर्गों से ऊपर उठी होती हो, जो कला राजनीति से कटी हुई या उससे स्वाधीन हो'।

इसलिए सांगीतिक अनुभव का मूल्यांकन करते वक़्त समाजवादी, उदाहरण के लिए, इस तथ्य पर ध्यान केन्द्रित करेगा कि बीथोवेन ने पाँचवीं सिम्फ़नी का लेखन उच्च-वर्गीय

गोरे यूरोपीय लोगों के लिए किया था, ठीक उस वक़्त जब यूरोप अफ़्रीका की अपनी फ़तह की शुरुआत करने जा रहा था। उनकी वह सिम्फ़नी उस ज्ञानोदय (एनलाइटनमेंट) के आदर्शों को प्रतिबिम्बित करती है, जिसने उच्च-वर्गीय गोरों का महिमामण्डन किया था, और अफ़्रीका की जीत को 'द वाइट मेन्स बर्डन' (अपने उपनिवेशों में रह रहे अश्वेत मूल निवासियों के कल्याण को गोरे उपनिवेशवादियों के कथित कर्तव्य से जोड़ने) के रूप में उचित ठहराया था।

रॉक एंड रोल के बारे में समाजवादी कहेंगे कि इसकी अगुआई उन पददलित अफ़्रीकी अमेरिकी संगीतकारों ने की थी, जिन्होंने ब्यूज़, जैज़ और गॉस्पेल जैसी शैलियों से प्रेरणा ग्रहण की थी, लेकिन, 1950 और 1960 के दशकों में रॉक एंड रोल का मुख्यधारा के गोरे अमेरिकियों द्वारा अपहरण कर लिया गया, और उसको बलात् उपभोक्तवाद, अमेरिकी साम्राज्यवाद और कोका-उपनिवेशवाद की सेवा में झोंक दिया। रॉक एंड रोल का व्यवसायीकरण हुआ और उसको सुविधासम्पन्न गोरे किशोरों द्वारा विद्रोह के उनके पेटी-बूर्ज़्वा दिवास्वप्नों के तहत हथिया लिया गया। चक बेरी ने ख़ुद पूँजीवादी महाशक्ति के निर्देशों के सामने घुटने टेक रखे थे। जहाँ उन्होंने मूलतः 'अ कलर्ड बॉय नेम्ड जॉनी बी. गूडे' (जॉनी बी. गूडे नामक एक अश्वेत लड़का') के बारे में गाया था, वहीं गोरों के रेडियो स्टेशन के दबाव में आकर उन्होंने उस गीत को 'अ *कंट्री* बॉय नेम्ड जॉनी बी गूडे' (जॉनी बी. गूडे नामक एक देहाती लड़का) कर दिया था।

जहाँ तक कांगो की नाटी लड़कियों के सामूहिक गीत का सवाल है, तो उनका दीक्षा-गीत उस पितृसत्तात्मक व्यवस्था का एक हिस्सा है, जो मर्दों और औरतों, दोनों के दिमाग़ों को इस तरह बदल डालती है कि वे दमनकारी लिंगभेदपरक व्यवस्था की पुष्टि करने लगते हैं। और अगर इस तरह के दीक्षा-गीत की कोई रिकॉर्डिंग वैश्विक मण्डी में अपनी जगह बना भी लेती है, तो वह सिर्फ़ सामान्य रूप से अफ़्रीका और विशेष रूप से अफ़्रीकी स्त्रियों के बारे में पश्चिमी उपनिवेशवादी दिवास्वप्नों को और ज़्यादा बल प्रदान करने की भूमिका निभाती है।

तो फिर कौन-सा संगीत सबसे अच्छा है? क्या सरकार को ऑपेरा हाउस खड़े करने, रॉक एंड रोल के कार्यक्रम स्थल तैयार करने या अफ़्रीकी हेरिटेज प्रदर्शनियाँ आयोजित करने पर धन लगाना चाहिए? और पाठशालाओं तथा महाविद्यालयों में हमें संगीत के छात्रों को क्या पढ़ाना चाहिए? ख़ैर, यह सवाल मुझसे मत पूछिए। यह सवाल पार्टी के कमिसार यानी संस्कृति विभाग के मुखिया (सोवियत संघ में किसी सरकारी विभाग के प्रमुख को कमिसार कहा जाता था) से पूछिए।

जहाँ उदारवादी राजनैतिक रूप से ग़लत क़दम उठा लेने के भय से सांस्कृतिक तुलनाओं के विस्फोटक सुरंगों के क्षेत्र के इर्द-गिर्द दबे पाँव चलते रहते हैं, और समाजवादी

इस विस्फोटक क्षेत्र से बच निकलने का सही रास्ता ढूँढने का काम पार्टी के ज़िम्मे छोड़ देते हैं, वहीं विकासपरक मानववादी अविलम्ब छलांग लगाते हुए सारी सुरंगों को विस्फोट से भर देते हैं और अफ़रातफ़री का मज़ा लेते हैं। वे इस ओर संकेत करते हुए शुरुआत कर सकते हैं कि उदारवादी और समाजवादी दोनों दूसरे प्राणियों की हदबन्दी करते हैं, और उनको यह स्वीकार करने में कोई कठिनाई नहीं होती कि मनुष्य भेड़ियों से श्रेष्ठ होते हैं, और इसलिए इंसानी संगीत भेड़िये की पुकारों से ज़्यादा मूल्यवान होता है, लेकिन मानव जाति ख़ुद भी विकास की शक्तियों से मुक्त नहीं हैं। जिस तरह मनुष्य भेड़ियों से श्रेष्ठ होते हैं, उसी तरह कुछ इंसानी संस्कृतियाँ दूसरी संस्कृतियों के मुक़ाबले ज़्यादा उच्च श्रेणी की हैं। इंसानी अनुभवों में एक सुस्पष्ट पदक्रम होता है, और इसको लेकर हमें शर्मिन्दा नहीं होना चाहिए। ताजमहल घासफूस की किसी झोपड़ी से ज़्यादा सुन्दर है, माइकेल एंजेलो का मूर्तिशिल्प डेविड मेरी पाँच साल की भतीजी द्वारा बनाई गई मिट्टी की छोटी-सी मूर्ति के मुक़ाबले श्रेष्ठ है, बीथोवेन ने चक बेरी या कांगो की नाटी लड़कियों के संगीत के मुक़ाबले बेहतर संगीत की रचना की है। हमारा तो यही मानना है!

विकासपरक मानववादियों के अनुसार, अगर कोई भी व्यक्ति इस तरह का तर्क देता है कि सारे मानवीय अनुभव समान रूप से मूल्यवान होते हैं, तो वह या तो मूर्ख है या कायर है। इस तरह का घटियापन या कायरता मानव जाति के क्षय और विलुप्ति का कारण बनेंगे, क्योंकि इससे सांस्कृतिक सापेक्षतावाद या सामाजिक बराबरी के नाम पर मानव प्रगति में बाधा पैदा होगी। अगर उदारवादी और समाजवादी पाषाण युग में रहे होते, तो लेस्कू और अल्टामीरा के भित्ति-चित्रों में उनको सम्भवतः कोई ख़ूबी नज़र न आई होती, और उन्होंने इस बात पर ज़ोर दिया होता कि वे भित्ति-चित्र निएंडरथल्स की ऊलजलूल चित्रकारी से किसी तरह भी श्रेष्ठ नहीं हैं।

मानववादी धर्म-युद्ध

शुरुआती तौर पर उदार मानववाद, समाजवादी मानववाद और विकासपरक मानववाद के बीच का भेद कोई ख़ास महत्त्वपूर्ण प्रतीत नहीं होता था। ईसाइयत, इस्लाम या हिन्दू धर्म से तमाम मानववादी सम्प्रदायों को अलग करने वाले व्यापक अन्तराल के विपरीत मानववाद के विभिन्न संस्करणों के तर्क बहुत तुच्छ थे। जब तक हम सब इस बात पर सहमत हैं कि देवता मर चुका है और सिर्फ़ मानवीय अनुभव ही सृष्टि को अर्थ प्रदान करता है, तब तक क्या यह बात वाक़ई मायने रखती है कि सारे मानवीय अनुभव समान रूप से महत्त्वपूर्ण हैं या इनमें से कुछ दूसरों के मुक़ाबले श्रेष्ठ हैं? लेकिन जैसे ही मानववाद ने दुनिया पर जीत हासिल कर ली, वैसे ही ये अन्दरूनी दरारें चौड़ी होती गईं, और अन्ततः इतिहास के सबसे ज़्यादा घातक धर्म-युद्ध की शक्ल में भड़क उठीं।

बीसवीं सदी के पहले दशक तक उदारवादी आस्था-पद्धति अपनी शक्ति को लेकर काफ़ी आश्वस्त थी। उदारवादियों को पूरा यक़ीन था कि अगर व्यक्तियों को आत्माभिव्यक्ति और अपनी भावनाओं का अनुसरण करने की अधिकतम स्वतन्त्रता मिलती है, तो दुनिया में अपूर्व शान्ति और समृद्धि होगी। उच्च-निम्न के पारम्परिक ढाँचों, रूढ़िवादी मज़हबों और नृशंस साम्राज्यों की बेड़ियों के पूरी तरह से टूटने में समय लग सकता है, लेकिन हर दशक अपने साथ नई स्वतन्त्रताएँ और उपलब्धियाँ लेकर आएगा, और अन्ततः हम पृथ्वी पर स्वर्ग की रचना कर लेंगे। जून 1914 के सुख-शान्ति भरे दिनों में उदारवादियों को लग रहा था कि इतिहास उनके पक्ष में है।

1914 की क्रिसमस के आते-आते उदारवादी युद्ध के मानसिक आघात के शिकार हो चुके थे, और बाद के दशकों में उनके विचारों पर वामपन्थ और दक्षिण पन्थ, दोनों पक्षों से हमले होने लगे। समाजवादियों का तर्क था कि उदारवाद दरअसल बेरहम, शोषक और नस्लीय व्यवस्था का नंगापन ढँकने के लिए एक चिन्दी-मात्र है। 'आज़ादी' की शेखी बधारने वालों के लिए उसका निहितार्थ था 'सम्पत्ति'। जो अच्छा लगता है, उसको करने के वैयक्तिक अधिकार के बचाव का मतलब ज़्यादातर मामलों में मध्य और उच्च वर्गों की सम्पत्ति और विशेष सुविधाओं का बचाव करना होता है। मनचाही जगह पर रहने की आज़ादी किस काम की, जबकि आप उस जगह के भाड़े का भुगतान न कर सकते हों, अपनी रुचि की पढ़ाई करने की आज़ादी किस काम की, जबकि आप ट्यूशन फ़ीस न चुका सकते हों, और अपनी इच्छित जगह की यात्रा करने की आज़ादी किस काम की, जबकि आप एक कार न ख़रीद सकते हों? एक प्रसिद्ध मज़ाक़ हुआ करता था कि उदारवाद के अधीन हरेक व्यक्ति भूखे मरने के लिए आज़ाद होता है। इससे भी बदतर यह कि लोगों को ख़ुद को अलग-थलग व्यक्तियों के रूप में देखने को प्रोत्साहित करते हुए उदारवाद उनको उनके वर्ग के साथी सदस्यों से अलग कर देता है और उनका दमन करने वाली व्यवस्था के ख़िलाफ़ उनको एकजुट होने से रोकता है। इस तरह उदारवाद ग़ैरबराबरी को जारी रखता है, और जन-समुदाय को ग़रीबी में पड़े रहने के लिए और अभिजात वर्ग को अलगाव में बने रहने के लिए अभिशप्त करता है।

जहाँ उदारवाद वामपन्थ के इस आघात से लड़खड़ाया, वहीं विकासपरक मानववाद ने दक्षिणपन्थ पर आघात किया। नस्लवादियों और फ़ासिस्टों, दोनों ने उदारवाद और समाजवाद पर प्राकृतिक वरण को कमज़ोर करने और मानव जाति का क्षरण करने का आरोप लगाया। उन्होंने चेतावनी दी कि अगर सारे इंसानों को समान मूल्य और प्रजनन के समान अवसर प्रदान किए गए, तो प्राकृतिक वरण अपना काम करना बन्द कर देगा। सबसे क़ाबिल मनुष्य घटियापन के महासागर में समा जाएँगे, और मानव जाति अतिमानवों के रूप में विकसित होने की बजाय विलुप्ति की शिकार हो जाएगी।

1914 से 1989 तक तीनों मानववादी सम्प्रदायों के बीच मारक युद्ध छिड़ा रहा, और उदारवाद एक के बाद एक पराजय झेलता रहा। न सिर्फ़ यह कि साम्यवादी और फ़ासिस्ट सरकारों ने कई मुल्कों पर क़ब्ज़ा कर लिया, बल्कि उदारवाद के मूलभूत विचारों को अगर पूरी तरह से ख़तरनाक नहीं तो बचकाना, तो साबित कर ही दिया गया। व्यक्तियों को आज़ादी भर दे दीजिए और देखिए कि दुनिया किस तरह शान्ति और समृद्धि का लाभ उठाती है? वाह, क्या बात है।

दूसरा विश्व युद्ध, जिसको पश्चात-दृष्टि से देखने पर हम महान उदारवादी विजय की तरह याद करते हैं, उस समय वैसा नहीं लगता था। यह युद्ध सितम्बर 1939 में महाशक्तिशाली उदारवादी गठबन्धन और अलग-थलग पड़े नाज़ी जर्मनी के बीच एक तकरार के रूप में शुरू हुआ था। (यहाँ तक कि फ़ासिस्ट इटली ने भी उसके अगले साल के जून तक अवसर की प्रतीक्षा करने की नीति अपना रखी थी।) उदारवादी गठबन्धन के पक्ष में ज़बरदस्त संख्यापरक और आर्थिक श्रेष्ठता थी। जहाँ 1940 में जर्मनी का सकल घरेलू उत्पाद 38.70 करोड़ डॉलर मूल्य का था, वहीं जर्मनी के यूरोपीय प्रतिद्वन्द्वियों का सकल घरेलू उत्पाद कुल मिलाकर 63.1 करोड़ मूल्य का था (जिसमें समुद्र-पार के ब्रितानी, फ़्रांसीसी, डच और बेल्जियाई उपनिवेशों का सकल घरेलू उत्पाद शामिल नहीं था)। तब भी, 1940 के वसन्त में जर्मनी ने मात्र तीन महीने में फ़्रांस, नीदरलैंड्स, नॉर्वे और डेनमार्क पर क़ब्ज़ा करते हुए उदारवादी गठबन्धन को करारी मात दी। ब्रिटेन की भी यही नियति होती, लेकिन उसको इंग्लिश चैनल ने बचा लिया था।

जर्मनों को अन्ततः तभी पराजित किया जा सका, जब उदारवादी देशों ने सोवियत संघ के साथ गठबन्धन कर लिया, जिसको इस टकराव का सबसे बड़ा आघात झेलना पड़ा और बहुत बड़ी क़ीमत चुकानी पड़ी: पाँच लाख अँग्रेज़ों और पाँच लाख अमेरिकियों के मुक़ाबले 2.5 करोड़ सोवियत नागरिक इस युद्ध में मारे गए। नाज़ीवाद को पराजित करने का ज़्यादातर श्रेय साम्यवाद को जाता है। और, कम से कम थोड़े वक़्त के लिए ही सही, साम्यवाद ही इस युद्ध से सबसे ज़्यादा लाभान्वित भी हुआ।

सोवियत संघ इस युद्ध में एक अलग-थलग अछूत के रूप में शामिल हुआ था। और वह विश्व की दो में से एक महाशक्ति और निरन्तर विस्तार लेते अन्तरराष्ट्रीय खेमे के रूप में उभर कर आया। 1949 तक पूर्वी यूरोप एक सोवियत पिछलग्गू में बदल गया, चीन के साम्यवादी दल ने चीनी गृह युद्ध को जीत लिया, और संयुक्त राज्य अमेरिका साम्यवाद-विरोधी उन्माद (हिस्टीरिआ) की गिरफ़्त में आ गया। दुनियाभर के क्रान्तिकारी और उपनिवेशवाद-विरोधी आन्दोलन मॉस्को और चीन की ओर उम्मीद-भरी निगाहों से देखने लगे, वहीं उदारवाद को नस्लपरक यूरोपीय साम्राज्यों के रूप में देखा जाने लगा। जैसे ही ये साम्राज्य ढहे, वैसे ही उनकी जगह उदारवादी लोकतन्त्रों ने नहीं, बल्कि हमेशा की तरह या

तो सैन्य तानाशाहियों या समाजवादी शासन-व्यवस्थाओं ने ले ली। 1956 में सोवियत मुखिया निकिता ख़्रुश्चेव ने उदारवादी पश्चिम के सामने पूरे आत्मविश्वास के साथ डींग हाँकी कि 'चाहे आप इसे पसन्द करें या न करें, लेकिन इतिहास हमारे पक्ष में है। हम आपको दफ़ना देंगे!'

ख़्रुश्चेव का सचमुच ऐसा ही विश्वास था, और ऐसा ही विश्वास तीसरी दुनिया के उन नेताओं तथा पहली दुनिया के उन बौद्धिकों का था, जिनकी संख्या लगातार बढ़ रही थी। 1960 और 1970 के दशकों में 'उदारवाद' पश्चिम के बहुत-से विश्वविद्यालयों में एक गाली बन गया। उत्तरी अमेरिका और पश्चिमी यूरोप में उत्तरोत्तर बढ़ती हुई अशान्ति महसूस की जाने लगी, और उग्रवादी वामपन्थी आन्दोलन उदारवादी व्यवस्था को उखाड़ फेंकने की कोशिश करने लगे। कैम्ब्रिज, सरबोन और पीपुल्स रिपब्लिक ऑफ़ बर्कले के छात्र तेज़ी के साथ चेयरमैन माओ की लिटिल रेड बुक के पन्ने पलट रहे थे और चे ग्वेरा की वीरतापूर्ण तसवीर को अपने बिस्तरों के ऊपर की दीवारों पर लटकाने लगे। 1968 में यह लहर समूचे पश्चिमी जगत में विरोध-प्रदर्शनों और दंगों के शिखर तक जा पहुँची। मैक्सिको के सुरक्षा बलों ने कुख्यात लातेलॉल्को नरसंहार में दर्जनों छात्रों को मार डाला, रोम के छात्र तथाकथित वाले जूलिया के युद्ध में इताल्वी पुलिस के साथ भिड़े, और मार्टिन लूथर किंग की हत्या से अमेरिका के सैकड़ों नगरों में दंगे और विरोध-प्रदर्शन भड़क उठे। मई में छात्र पेरिस की सड़कों पर उतर आए, राष्ट्रपति द गॉल ने भागकर जर्मनी स्थित फ़्रांसिसी सैन्य संचालन केन्द्र में शरण ली, और अमीर फ़्रांसिसी नागरिक सिर क़लम कर दिए जाने के दुस्वप्नों के शिकार होकर अपने बिस्तरों पर काँपने लगे।

1970 तक दुनिया में 130 स्वाधीन देश हुआ करते थे, लेकिन इनमें से केवल तीस देशों में उदार लोकतन्त्र था, जिनमें से ज़्यादातर यूरोप के उत्तर-पश्चिमी कोने में ठुँसे थे। हिन्दुस्तान तीसरी दुनिया का एकमात्र मुल्क था, जो स्वाधीनता हासिल करने के बाद उदारवादी मार्ग पर चल रहा था, लेकिन हिन्दुस्तान तक ने पश्चिमी खेमे से अपनी दूरी बना ली थी और वह सोवियतों की ओर झुका हुआ था।

1975 में उदारवादी खेमे को सबसे ज़्यादा अपमानजनक पराजय झेलनी पड़ी: वियतनाम युद्ध का अन्त उत्तर वियतनामी डेविड द्वारा अमेरिकी गोलियथ की पराजय के साथ हुआ। साम्यवाद ने तेज़ी के साथ एक के बाद एक दक्षिण वियतनाम, लाओस और कम्बोडिया पर क़ब्ज़ा कर लिया। 17 अप्रैल 1975 को कम्बोडिया की राजधानी नोम पेन्ह को कम्बोडिया की साम्यवादी सेना ख़मेर रूज ने क़ब्ज़े में ले लिया। दो सप्ताह बाद जब हेलीकॉप्टर साइगॉन के अमेरिकी दूतावास की छत से आख़िरी अमेरिकियों को उठाकर बाहर निकाल रहे थे, तो सारी दुनिया के लोगों ने इस दृश्य को टेलिविज़न पर देखा। बहुत-से लोगों को पक्का यक़ीन था कि अमेरिकी साम्राज्य ढह रहा है। इसके पहले कि कोई

'दूरगामी प्रभाव के सिद्धान्त' की बात करता, जून में इन्दिरा गाँधी ने हिन्दुस्तान में आपातकाल की घोषणा कर दी, और लगा कि दुनिया का सबसे बड़ा लोकतन्त्र एक अन्य समाजवादी तानाशाही के रास्ते पर जाने वाला है।

उदार प्रजातन्त्र उत्तरोत्तर बुढ़ाते हुए गोरे साम्राज्यवादियों के ख़ास क्लब जैसे लगने लगे थे, जिनके पास बाक़ी दुनिया, या ख़ुद उनके अपने युवाओं तक को देने लायक़ कुछ ख़ास नहीं था। वाशिंगटन ख़ुद को स्वतन्त्र दुनिया का नेता कहकर पुकारता था, लेकिन उसके ज़्यादातर मित्र राष्ट्र या तो सर्वसत्तावादी राजा थे (जैसे कि सऊदी अरब के राजा खालिद, मोरक्को के राजा हसन और फ़ारसी शाह) या सैन्य तानाशाह थे (जैसे कि ग्रीक कर्नल्स, चिली का जनरल पिनोशे, स्पेन का जनरल फ़्रैंको, दक्षिण कोरिया का जनरल पार्क चुंग, ब्राज़ील का जनरल गाइज़ेल और ताइवान का जनरेलेसिमो चियांग काइ-षेक)।

इन तमाम राजाओं और जनरलों के समर्थन के बावजूद सैन्य तौर पर वारसा सन्धि संख्या की दृष्टि से नाटो (नॉर्थ अटलांटिक ट्रीटी ऑर्गनाइज़ेशन: उत्तरी अटलांटिक सन्धि संगठन) पर बहुत भारी पड़ती थी। परम्परागत शस्त्रास्त्रों की बराबरी पर पहुँचने के लिए पश्चिमी मुल्कों ने सम्भवतः उदार लोकतन्त्रों और मुक्त बाज़ार-व्यवस्था से छुटकारा पा लिया होता और वे स्थायी युद्ध के स्तर पर सर्वसत्तावादी राज्यों में बदल गए होते, लेकिन उदार लोकतन्त्र की रक्षा की तो सिर्फ़ परमाणु हथियारों ने। नाटो ने एमएडी (म्यूचुअल अस्योर्ड डिस्ट्रक्षन) सिद्धान्त अपनाया, जिसके मुताबिक़ अगर सोवियत संघ द्वारा पारम्परिक हथियारों से भी हमला किया जाता, तो उसका जवाब सम्पूर्ण परमाणु हमले से दिया जाता। उदारवादियों ने धमकी दी कि 'अगर तुम हमारे ऊपर हमला करोगे, तो हम इस बात का पक्का इन्तज़ाम करेंगे कि कोई भी जीवित न बचने पाए'। इस विकराल ढाल के पीछे, उदार लोकतन्त्र और मुक्त बाज़ार-व्यवस्था अपने आख़िरी गढ़ों में जैसे-तैसे अपनी रक्षा करने में, और पश्चिम के लोग रति, मादक पदार्थों और रॉक एंड रोल का आनन्द लूटते रहने के साथ-साथ वॉशिंग मशीनों, रेफ़्रिजरेटरों और टेलिविज़नों का आनन्द लूटते रहने में कामयाब रहे। इन परमाणु हथियारों के बिना कोई बीटल्स, कोई वुडस्टॉक और उपभोक्ता वस्तुओं से लबालब भरे कोई सुपरमार्केट मुमकिन न होते, लेकिन 1970 के दशक के मध्य में ऐसा लगने लगा था कि परमाणु हथियारों के बावजूद भविष्य समाजवाद के हाथों में ही होगा।

38. साइगॉन में अमेरिकी दूतावास से निकाले जाते लोग।

और तब सब कुछ बदल गया। उदार लोकतन्त्र इतिहास की कचरा-पेटी से रेंगकर बाहर आया, उसने ख़ुद को झाड़ा-पोंछा और दुनिया को जीत लिया। सुपरमार्केट गुलाग से ज़्यादा ताक़तवर साबित हुआ। तूफ़ानी हमले की शुरुआत दक्षिण यूरोप से हुई, जहाँ ग्रीस, स्पेन और पुर्तगाल के सर्वसत्तावादी शासन-तन्त्र ढह गए और उन्होंने लोकतान्त्रिक सरकारों के लिए रास्ता साफ़ कर दिया। 1977 में इन्दिरा गाँधी ने आपातकाल समाप्त करते हुए लोकतन्त्र की पुनर्स्थापना की। 1980 के दशक की पूर्वी एशिया और लैटिन अमेरिका की तानाशाहियों की जगह ब्राज़ील, अर्जेंटीना, ताइवान और दक्षिण कोरिया जैसे देशों में लोकतान्त्रिक सरकारों ने ले ली। 1980 के दशक के बाद के वर्षों तथा 1990 के दशक के शुरुआती वर्षों में उदारवाद की लहर एक सच्ची सुनामी में बदल गई, जो महाशक्तिशाली सोवियत साम्राज्य को बहा ले गई और उसने इतिहास के आगामी अन्त की उम्मीदों को जगा दिया। दशकों की पराजय और नाकामयाबियों के बाद उदारवाद ने शीत युद्ध में निर्णायक विजय प्राप्त की, और वह मानववादी धर्मयुद्ध से, विजय पताका फहराता हुआ प्रकट हुआ, हालाँकि किंचित तहस-नहस हालत में।

सोवियत साम्राज्य के आन्तरिक विस्फोट के साथ ही उदार लोकतन्त्रों ने न सिर्फ़ पूर्वी यूरोप में, बल्कि बाल्टिक स्टेट्स, उक्रेन, जॉर्जिया और अर्मेनिया जैसे पूर्व सोवियत गणराज्यों में भी साम्यवादी शासन-व्यवस्थाओं की जगह ले ली। यहाँ तक कि रूस भी आज लोकतन्त्र होने का दावा करता है। शीत युद्ध में हुई जीत ने दुनिया में अन्यत्र भी कई

जगहों पर, विशेष रूप से लैटिन अमेरिका, दक्षिण एशिया और अफ़्रीका में, उदारवादी आदर्श के विस्तार को नई प्रेरणा से भर दिया। कुछ उदारवादी प्रयोगों का अन्त दयनीय नाकामयाबी में हुआ, लेकिन तब भी कामयाबी के क़िस्सों की तादाद प्रभावशाली है। उदाहरण के लिए, इंडोनेशिया, नाइजीरिया और चिली दशकों तक सैन्य महाबलियों के हाथों शासित होते आए थे, लेकिन आज ये सब क्रियाशील लोकतन्त्र हैं।

अगर कोई उदारवादी जून 1914 में सो गया होता और जून 2014 में जागा होता, तो उसने बहुत ज़्यादा आत्मीय वातावरण का अनुभव किया होता। लोग एक बार फिर यह विश्वास करने लगे हैं कि अगर आप व्यक्तियों को ज़्यादा से ज़्यादा आज़ादी देते हैं, तो दुनिया में शान्ति और समृद्धि का वातावरण होगा। समूची बीसवीं सदी एक बहुत बड़ी भूल जैसी प्रतीत होती है। 1914 के वसन्त में जब मानव जाति उदारवाद के राजमार्ग पर भागी जा रही थी, तभी उसने एक ग़लत मोड़ लिया और वह एक बन्द गली में जा पहुँची। उस राजमार्ग पर वापस अपना रास्ता पाने में उसे आठ दशक लगे और तीन भीषण वैश्विक युद्धों से गुज़रना पड़ा। निश्चय ही, ये दशक पूरी तरह बर्बाद नहीं गए, इन्होंने हमें एंटीबायोटिक्स, परमाणु ऊर्जा और कम्प्यूटर, और इसी के साथ नारीवाद (फ़ेमिनिज़्म), प्रति-उपनिवेशवाद (डि-कॉलॉनियलिज़्म) और स्वच्छन्द यौनाचार जैसी चीज़ें प्रदान कीं। इसके अलावा, उदारवाद ने स्वयं भी इन अनुभवों की तीखी पीड़ा महसूस की है और अब वह उसके मुक़ाबले बहुत कम अहंकारी है, जितना वह एक सदी पहले हुआ करता था। इसने अपने समाजवादी और फ़ासिस्ट प्रतिद्वन्द्वियों से बहुत सारे विचारों और संस्थाओं को लिया और अपनाया है, जिनमें विशेष रूप से आम जनता के लिए शिक्षा, स्वास्थ्य और कल्याणकारी सेवाएँ मुहैया कराने की वचनबद्धताएँ शामिल हैं, लेकिन मूलभूत उदारवादी पैकेज में आश्चर्यजनक रूप से बहुत कम बदलाव आया है। उदारवाद आज भी वैयक्तिक स्वतन्त्रता को सर्वोपरि महत्त्व देता है, और आज भी मतदाता तथा ग्राहक में दृढ़ आस्था रखता है। इक्कीसवीं सदी के इन शुरुआती वर्षों में यह एकमात्र महत्त्वपूर्ण चीज़ है।

बिजली, जनेटिक्स और अतिवादी इस्लाम

अभी 2016 तक व्यक्तिवाद, मानव अधिकार, लोकतन्त्र और उन्मुक्त बाज़ार-व्यवस्था के उदारवादी पैकेज का कोई गम्भीर विकल्प उपलब्ध नहीं था। 2011 में पश्चिमी दुनिया पर जो सामाजिक विरोध-प्रदर्शन - ऑक्युपाइ वॉल स्ट्रीट और स्पेनिश 15 एम आन्दोलन - छाए हुए थे, उनमें लोकतन्त्र, व्यक्तिवाद और मानव अधिकारों के ख़िलाफ़, या उन्मुक्त-बाज़ार अर्थव्यवस्था के बुनियादी सिद्धान्तों के ख़िलाफ़ होने जैसा क़तई कुछ भी नहीं है। स्थिति इसके विपरीत ही है - वे सरकारों की उदारवादी आदर्शों पर खरा न उतरने के लिए आलोचना करते हैं। वे माँग करते हैं कि बाज़ार को वास्तव में उन्मुक्त होना चाहिए, न कि

उन निगमों और बैंकों से नियन्त्रित और उनके हाथों की कठपुतली होना चाहिए, जो अर्थव्यवस्था के लिए इतने महत्त्वपूर्ण होते हैं कि उनको ढहने से बचाने के लिए सरकारें उनमें सार्वजनिक धन झोंक देती हैं। वे ऐसी वास्तविक प्रतिनिधित्व वाली लोकतान्त्रिक संस्थाओं की माँग करते हैं, जो अपने लोगों के पक्ष में मतदान के लिए सक्रिय दौलतमन्दों और अपने साझा हितों के लिए काम करने वाले शक्तिशाली समूहों की बजाय साधारण नागरिकों के लिए काम करती हों। यहाँ तक कि वे विस्फोटक शेयर बाज़ार और तीक्ष्णतम आलोचनाओं से भरी संसदों के पास भी दुनिया को चलाने का कोई व्यावहारिक वैकल्पिक मानक नहीं है। जहाँ उदारवादी पैकेज की नुक़्ताचीनी करते रहना पश्चिम के अकादमिकों और एक्टिविस्टों का प्रिय शग़ल रहा है, वहीं वे अब तक कोई बेहतर विकल्प लेकर आने में नाकामयाब रहे हैं।

चीन पश्चिम के सामाजिक प्रतिवादियों के मुक़ाबले कहीं ज़्यादा गम्भीर चुनौती पेश करता प्रतीत होता है। अपनी राजनीति और अर्थव्यवस्था के उदारीकरण के बावजूद चीन न तो एक लोकतन्त्र है और न ही सच्चे अर्थों में एक मुक्त-बाज़ार-अर्थव्यवस्था है, और यह स्थिति उसको इक्कीसवीं सदी का आर्थिक महाबली होने से नहीं रोकती, लेकिन इस आर्थिक महाबली की विचारधारात्मक परछाईं बहुत क्षीण है। यह बात किसी की समझ में आती नहीं लगती कि चीन इन दिनों - स्वयं चीनियों समेत - किस चीज़ में विश्वास करता है। सिद्धान्ततः चीन अभी भी साम्यवादी है, लेकिन व्यवहार के स्तर पर वह ऐसा कुछ भी नहीं है। कुछ चीनी विचारक और नेता कन्फ़्यूसियनिज़्म की ओर वापसी की बात करते हैं, लेकिन वह एक सुविधाजनक दिखावे से ज़्यादा कुछ नहीं है। इस विचारधारात्मक शून्य ने चीन को सिलिकॉन वैली से उभरते नए तकनीकी-मज़हबों (टेक्नो-रिलीज़न्स) के लिए सबसे ज़्यादा भरोसेमन्द उर्वर-स्थल बना दिया है (जिसके बारे में हम आगे के अध्यायों में चर्चा करेंगे), लेकिन ये तकनीकी-मज़हब, अमरता और आभासी स्वर्ग में अपनी आस्था के साथ, स्वयं को स्थापित करने में कम से कम एक या दो दशक का वक़्त लेंगे। इसलिए, चीन फ़िलहाल उदारवाद के सामने कोई वास्तविक विकल्प नहीं रखता। दिवालिया हो चुके ग्रीस के उदारवाद के आदर्श से हताश होकर और 'चीन की नक़ल करते हुए' किसी वैकल्पिक नमूने की तलाश करने की कोशिश भी कोई व्यावहारिक विकल्प नहीं है।

ऐसे में अतिवादी इस्लाम के बारे में क्या कहा जाए? या कट्टरपन्थी ईसाइयत, मसीही यहूदी मज़हब या पुनरुत्थानवादी हिन्दुत्व के बारे में? जहाँ चीनी यह नहीं जानते कि वे किस चीज़ में आस्था रखते हैं, वहीं ये मज़हबी कट्टरपन्थी यह बात कुछ ज़्यादा ही अच्छी तरह से जानते हैं। नीत्ऱ्षे द्वारा देवता की मृत्यु की घोषणा किए जाने के एक सदी से भी ज़्यादा समय बाद, देवता अपनी वापसी करता लग रहा है, लेकिन यह एक छलावा-मात्र है। देवता मर चुका है - वह सिर्फ़ अपनी काया से छुटकारा पाने में कुछ वक़्त ले रहा है।

उग्रवादी इस्लाम उदारवादी पैकेज के सामने कोई गम्भीर ख़तरा पैदा नहीं करता, क्योंकि अपने तमाम जोश के बावजूद ये कट्टरपन्थी इक्कीसवीं सदी की दुनिया को वाक़ई समझते नहीं हैं, और नई प्रौद्योगिकियाँ हमारे चारों ओर जो नए क़िस्म के ख़तरे और अवसर पेश कर रही हैं, उनके बारे में कहने लायक़ कोई प्रासंगिक बात इन कट्टरपन्थियों के पास नहीं है।

मज़हब और प्रौद्योगिकी हमेशा एक नाज़ुक टैंगो नाचते हैं। वे एक-दूसरे को धकियाते हैं, एक-दूसरे पर निर्भर करते हैं और एक-दूसरे से बहुत ज़्यादा दूर नहीं हट पाते। प्रौद्योगिकी मज़हब पर निर्भर करती है, क्योंकि हर आविष्कार के कई सम्भावित इस्तेमाल होते हैं, और इंजीनियरों को निर्णायक विकल्पों को चुनने के लिए वांछित गन्तव्य की दिशा में संकेत करने के लिए किसी न किसी भविष्यवक्ता की ज़रूरत पड़ती है। इस तरह उन्नीसवीं सदी के इंजीनियरों ने रेल के इंजनों, रेडियो और इंटर्नल कम्बश्चन इंजनों का आविष्कार किया, लेकिन जैसा कि बीसवीं सदी ने साबित किया, आप इन्हीं उपकरणों का इस्तेमाल फ़ासिस्ट समाजों, साम्यवादी तानाशाहियों और उदार लोकतन्त्रों की रचना करने में कर सकते हैं। मज़हबी अभिशंसा के बिना रेल का इंजन अपनी दिशा तय नहीं कर सकता।

दूसरी तरफ़, प्रौद्योगिकी अक्सर हमारी मज़हबी दृष्टियों के विस्तार और सीमाओं को परिभाषित करती है, उसी तरह जैसे कोई वेटर हमारे हाथ में व्यंजनों की सूची थमाते हुए हमारी रुचियों की हदबन्दी कर देता है। नई प्रौद्योगिकियाँ पुराने देवताओं की हत्या कर नए देवताओं को जन्म देती हैं। यही वजह है कि कृषिपरक देवी-देवता शिकारी-संग्रकर्ताओं की प्रेतात्माओं से भिन्न हुआ करते थे, यही वजह है कि कारखानों के कामगार किसानों द्वारा कल्पित स्वर्गों से भिन्न स्वर्गों की कल्पना किया करते थे, और यही वजह है कि इक्कीसवीं सदी की क्रान्तिकारी प्रौद्योगिकियों द्वारा मध्य युगीन मज़हबी पन्थों को पुनरुज्जीवित करने की बजाय अपूर्व मज़हबी आन्दोलनों को जन्म दिए जाने की कहीं ज़्यादा सम्भावना है। इस्लामी कट्टरपन्थी भले ही इस मन्त्र को फिर दोहरा सकते हों कि 'इस्लाम ही जवाब है', लेकिन जो मज़हब अपने समय की प्रौद्योगिकीय वास्तविकताओं से अपना सम्पर्क खो देते हैं, वे पूछे जा रहे सवालों को समझने तक की अपनी क़ाबिलियत खो बैठते हैं। जैसे ही एकबारगी आर्टिफ़िशल इंटेलिजेंस ज़्यादातर संज्ञानात्मक उद्यमों में इंसानों को पीछे छोड़ देगा, उस वक़्त रोज़गार के बाज़ार का क्या हश्र होगा? आर्थिक दृष्टि से बेकार साबित हो चुके लोगों के विशालकाय नए वर्ग का राजनैतिक प्रभाव क्या होगा? जब अतिसूक्ष्म प्रौद्योगिकी और पुनरुत्पादक चिकित्साविज्ञान (रिजनरेटिव मेडीसिन) अस्सी की उम्र को नए सिरे से पचास की उम्र में बदल देंगे, तब रिश्तों, परिवारों और पेंशन निधियों का क्या होगा? जब जैवप्रौद्योगिकी हमें पूर्वनियोजित शिशु (डिज़ाइनर बेबीज़) पैदा करने में, और

अमीरों तथा ग़रीबों के बीच अपूर्व खाइयाँ पैदा करने में सक्षम बना देगी, तब मानव समाज का क्या रूप होगा?

इनमें से किसी सवाल का जवाब आपको क़ुरान या शरीअत में नहीं मिलेगा, न ही वह बाइबिल या कॅन्यूसियाई सूक्ति-संग्रहों *(एनालेक्ट्स)* में मिलेगा, क्योंकि मध्ययुगीन मध्य-पूर्व या प्राचीन चीन में कोई भी व्यक्ति कम्प्यूटरों, जनेटिक्स या अतिसूक्ष्म प्रौद्योगिकी के बारे में कुछ नहीं जानता था। अतिवादी इस्लाम प्रौद्योगिकीय और आर्थिक चक्रवातों की दुनिया में निश्चितता के लंगर का भरोसा दिला सकता है, लेकिन चक्रवात के बीच अपनी नौका खेने के लिए आपको महज़ एक लंगर की बजाय एक नक़्शे और एक दिशा-नियन्त्रक की ज़रूरत होती है। इसलिए अतिवादी इस्लाम अपने अनुयायियों के बीच जन्मे और पले-बढ़े लोगों को तो आकर्षित कर सकता है, लेकिन उसके पास ऐसा लगभग कुछ भी नहीं है, जो वह बेरोज़गार स्पेनी नौजवानों या बेचैन चीनी अरबपतियों को दे सकता हो।

यह सही है कि करोड़ों लोग तब भी इस्लाम, ईसाइयत या हिन्दुत्व में आस्था जारी रखेंगे, लेकिन संख्याएँ अकेली इतिहास में बहुत ज़्यादा मायने नहीं रखतीं। इतिहास अक्सर अतीत की ओर देखने वाले जनसमुदाय की बजाय भविष्य पर निगाह रखने वाले आविष्कारकों के छोटे-छोटे समूहों के हाथों आकार ग्रहण करता है। दस हज़ार साल पहले मध्य पूर्व में ज़्यादातर लोग शिकारी-संग्रहकर्ता हुआ करते थे और बहुत थोड़े-से अग्रगामी ही किसान थे, लेकिन भविष्य किसानों का था। 1850 में, 90 प्रतिशत से ज़्यादा मनुष्य किसान थे, और गंगा, नील और यांग्ट्ज़ नदियों के तटों पर बसे गाँवों में भाप के इंजनों, रेल मार्गों या टेलिग्राफ़ लाइनों के बारे में कोई कुछ नहीं जानता था, लेकिन इन किसानों की नियति मैनचेस्टर और बर्मिंघम में उन मुट्ठीभर इंजीनियरों, राजनेताओं और वित्तपोषकों द्वारा तय की जा चुकी थी, जो औद्योगिक क्रान्ति की अगुआई कर रहे थे। भाप के इंजनों, रेल मार्गों और टेलिग्राफ़ों ने खाद्यान्न, वस्त्रों, वाहनों और हथियारों के उत्पादन को रूपान्तरित कर दिया, और इस तरह औद्योगिक शक्तियों को पारम्परिक कृषि-समाजों के मुक़ाबले निर्णायक बढ़त प्रदान की।

यहाँ तक कि जब औद्योगिक क्रान्ति सारी दुनिया में फैल गई और उसने गंगा, नील और यांग्ट्ज़ को भेद दिया, तब भी बहुत-से लोगों ने भाप के इंजन से कहीं ज़्यादा अपना विश्वास वेदों, बाइबिल, क़ुरान और सूक्ति-संग्रह में जारी रखा। जैसा आज है, उसी तरह उन्नीसवीं सदी में ऐसे पुरोहितों, तान्त्रिकों और गुरुओं की कोई कमी नहीं थी, जो यह तर्क देते थे कि एकमात्र उन्हीं के पास मानवता के सारे सन्तापों का इलाज है, जिनमें वे समस्याएँ भी शामिल थीं, जो औद्योगिक क्रान्ति ने पैदा की थीं। उदाहरण के लिए, 1820 और 1880 के दरम्यान मिस्र (जिसको ब्रिटेन का समर्थन प्राप्त था) ने सूडान को जीत लिया था और उस देश का आधुनिकीकरण करने तथा उसको नई अन्तरराष्ट्रीय

वाणिज्यिक मण्डली में सम्मिलित करने की कोशिश की थी। इसने सूडान के पारम्परिक समाज को अस्थिर करते हुए व्यापक असन्तोष को जन्म दिया और विद्रोहों को प्रोत्साहित किया। 1981 में एक स्थानीय मज़हबी रहनुमा मोहम्मद अहमद बिन अब्दल्लाह ने घोषणा कर दी कि वह महदी (पैग़म्बर) है, जिसको जहान में अल्लाह के क़ानूनों को स्थापित करने के लिए भेजा गया है। उसके अनुयायियों ने आँग्ल-मिस्रीय फ़ौज को पराजित कर दिया, उसके सेनापति जनरल चार्ल्स गोर्डोन का सर क़लम कर दिया, जो विक्टोरियाई ब्रिटेन के लिए एक बहुत बड़ा सदमा था। इसके बाद उन्होंने सूडान में शरीअत की हुकूमत वाले इस्लामिक मज़हबी तन्त्र की स्थापना कर दी, जो 1898 तक जारी रहा।

इस बीच, हिन्दुस्तान में दयानन्द सरस्वती ने एक हिन्दू पुनर्जागरण आन्दोलन की ज़िम्मेदारी सँभाल ली, जिसका बुनियादी सिद्धान्त था कि वैदिक ग्रन्थ कभी ग़लत नहीं होते। 1875 में उन्होंने आर्य समाज की स्थापना की, जो वैदिक प्रज्ञा के प्रसार के लिए समर्पित था, हालाँकि सच कहा जाए तो दयानन्द सरस्वती ने अक्सर वेदों की व्याख्या आश्चर्यजनक रूप से उदारवादी ढंग से की थी, जिसके तहत, उदाहरण के लिए, स्त्रियों को समान अधिकार देने की बात कही गई थी, जो इस विचार के पश्चिम में लोकप्रिय होने के बहुत पहले की बात थी।

दयानन्द के समकालीन पोप पायस प्ग् के दृष्टिकोण स्त्रियों को लेकर काफ़ी ज़्यादा दकियानूसी थे, लेकिन वे अतिमानवीय सत्ता में दयानन्द की आस्था को साझा करते थे। पायस ने कैथोलिक धर्मसिद्धान्त में कई सुधार किए और पोप की अचूकता के अनूठे सिद्धान्त की स्थापना की, जिसके मुताबिक़ आस्था के मामलों में पोप से कभी कोई चूक नहीं हो सकती (यह मध्ययुगीन प्रतीत होता विचार चार्ल्स डार्विन के ग्रन्थ *ऑन द ओरिजिन ऑफ़ स्पिशीज़* के प्रकाशन के ग्यारह वर्ष बाद ही 1870 में एक बन्धनकारी कैथोलिक धर्ममत बना था)।

पोप द्वारा यह जानने के तीस साल पहले कि वह ग़लतियाँ करने में अक्षम है, हांग ज़ुक्र्युआन नामक एक नाकामयाब चीनी अध्येता को एक के बाद एक कई दिव्य दर्शन हुए थे। इन अलौकिक दर्शनों के दौरान ईश्वर ने यह रहस्योद्घाटन किया था कि हांग कोई और नहीं, बल्कि स्वयं ईसा मसीह का छोटा भाई था। उसने हांग से उन मांचू ‘दैत्यों’ को निकाल बाहर करने को कहा, जो चीन पर सत्रहवीं सदी से हुकूमत करते आ रहे थे, और पृथ्वी पर स्वर्ग के महान शान्तिपूर्ण राज्य (Taiping Tiānguó) की स्थापना करने को कहा। हांग के इस पैग़ाम ने उन लाखों हताश चीनियों की कल्पनाओं को उकसा दिया, जो अफ़ीम के युद्धों में चीन की पराजयों से और आधुनिक उद्योग तथा यूरोपीय साम्राज्यवाद के आगमन से बुरी तरह विचलित हो चुके थे, लेकिन हांग उनको शान्ति के साम्राज्य की दिशा में नहीं ले गया। इसकी बजाय उसने मांचू चिंग राजवंश के ख़िलाफ़ उस ताइपिंग विद्रोह में उनका

नेतृत्व किया, जो उन्नीसवीं सदी का वह सबसे ज़्यादा घातक युद्ध था, जो 1850 से 1864 तक जारी रहा था। इसमें कम से कम 2 करोड़ लोग मारे गए, जो नेपोलियन द्वारा लड़े गए युद्धों या अमेरिकी गृह युद्ध में मारे गए लोगों से ज़्यादा संख्या थी।

औद्योगिक कारखानों, रेल मार्गों और भाप से चलने वाले जहाज़ों ने दुनिया को भर रखा था, इसके करोड़ों लोग हांग, दयानन्द, पायस और महदी के धर्ममतों के अनुयायी बन गए, लेकिन हम में ज़्यादातर लोग उन्नीसवीं सदी को आस्था के युग के रूप में नहीं देखते। जब हम उन्नीसवीं सदी के विचारकों के बारे में सोचते हैं, तो ज़्यादा सम्भावना इसी बात की होती है कि हम महदी, पायस प्ग् या हांग जुक़्युआन की बजाय ज़्यादातर मार्क्स, ऐंजिल्स और लेनिन को ही याद करते हैं। और यह ठीक ही है, हालाँकि 1850 में समाजवाद महज़ एक हाशिये का आन्दोलन ही था, लेकिन इसने जल्दी ही गति पकड़ ली थी और दुनिया को चीन और सूडान के मसीहाओं के मुक़ाबले में कहीं ज़्यादा गम्भीर ढंग से बदल दिया था। अगर आप राष्ट्रीय स्वास्थ्य सेवाओं, पेंशन निधियों और निःशुल्क स्कूलों को मूल्यवान समझते हैं, तो आपको हांग जुक़्युआन या महदी की बजाय मार्क्स और लेनिन का (और ओटो वॉन बिस्मार्क का) शुक्रगुज़ार होना चाहिए।

जहाँ हांग और मेहदी नाकामयाब रहे, वहाँ मार्क्स और लेनिन क्यों कामयाब हो सके? इसलिए नहीं कि समाजवादी मानववाद दार्शनिक स्तर पर इस्लामी या ईसाई धर्मशास्त्र से ज़्यादा परिष्कृत था, बल्कि इसलिए कि मार्क्स और लेनिन ने प्राचीन पोथियों और पैग़म्बरी ख़्वाबों की छानबीन करने की बजाय अपने वक़्त की प्रौद्योगिकीय तथा आर्थिक वास्तविकता को समझने पर अपना ध्यान कहीं ज़्यादा केन्द्रित किया। भाप के इंजन, रेल मार्ग, टेलिग्राफ़ और बिजली ने सैकड़ों तरह की समस्याएँ भी पैदा कीं और अपूर्व अवसर भी पैदा किए। नगरीय सर्वहारा के नए वर्ग के अनुभव, ज़रूरतें और उम्मीदें बाइबिल युगीन किसानों के अनुभवों, ज़रूरतों और उम्मीदों से बहुत भिन्न थे। इन ज़रूरतों और उम्मीदों को पूरा करने के लिए मार्क्स और लेनिन ने इस बात का अध्ययन किया कि भाप का इंजन किस तरह काम करता है, कोयले की खदान किस तरह संचालित होती है, रेल मार्ग अर्थव्यवस्था को किस तरह गढ़ते हैं और बिजली किस तरह राजनीति को प्रभावित करती है।

एक बार लेनिन से एक वाक्य में साम्यवाद को परिभाषित करने को कहा गया। उन्होंने कहा, 'साम्यवाद कामगारों की परिषदों की ऊर्जा और समूचे देश का विद्युतीकरण है'। बिना बिजली, बिना रेल मार्ग, बिना रेडियो साम्यवाद नहीं आ सकता था। आप सोलहवीं सदी के रूस में साम्यवाद की स्थापना नहीं कर सकते थे, क्योंकि साम्यवाद एक ही केन्द्र में सूचना और संसाधनों की एकाग्रता को अनिवार्य बना देता है। 'प्रत्येक व्यक्ति अपनी क़ाबिलियत के मुताबिक़ से लेकर प्रत्येक व्यक्ति अपनी ज़रूरतों के मुताबिक़' सिर्फ़ तभी

काम कर सकता है, जब उत्पादन को आसानी के साथ दूर-दूर से एकत्र किया जा सके और दूर-दूर तक उनका वितरण किया जा सके, और जब समूचे देशों की गतिविधियों पर निगाह रखी जा सके और उनके बीच तालमेल बैठाया जा सके।

मार्क्स और उनके अनुयायियों ने नई प्रौद्योगिकीय वास्तविकताओं और नए मानवीय अनुभवों को समझा था, इसलिए उनके पास औद्योगिक समाज की नई समस्याओं के प्रासंगिक जवाब थे, साथ ही इन अपूर्व परिस्थितियों का लाभ उठाने के तरीक़ों के बारे में नए विचार थे। समाजवादियों ने उम्मीदों से भरी नई दुनिया के लिए उम्मीदों से भरे एक नए मज़हब की रचना की थी। उन्होंने प्रौद्योगिकी और अर्थव्यवस्था के माध्यम से मुक्ति का वादा करते हुए इतिहास के पहले प्रौद्योगिकीय मज़हब की स्थापना की थी, और इस तरह विचारधारात्मक विमर्ष के मूलभूत तर्कों को बदल दिया था। मार्क्स के पहले लोग स्वयं को उत्पादन की पद्धतियों के मुताबिक़ नहीं, बल्कि ईश्वर के बारे में अपने नज़रियों के मुताबिक़ परिभाषित और विभाजित किया करते थे। मार्क्स के बाद प्रौद्योगिकी और आर्थिक संरचना के प्रश्न आत्मा और मरोणोपरान्त जीवन के सवालों के मुक़ाबले कहीं ज़्यादा महत्त्वपूर्ण और निर्णायक बन गए। बीसवीं सदी के दूसरे अर्द्ध में मानव जाति ने स्वयं को पूरी तरह से उत्पादन पद्धति से सम्बन्धित तर्कों में झोंक दिया। मार्क्स और लेनिन के कटु आलोचकों तक ने इतिहास और समाज के बारे में उनके बुनियादी रुखों को अपनाया, और ईश्वर तथा स्वर्ग की बजाय प्रौद्योगिकी और उत्पादन के बारे में कहीं ज़्यादा सावधानीपूर्वक विचार करना शुरू कर दिया।

उन्नीसवीं सदी के मध्य में मार्क्स जितनी कुशाग्र बुद्धि वाले बहुत थोड़े-से लोग हुआ करते थे, इसलिए बहुत थोड़े-से देश तीव्र औद्योगिकीकरण की प्रक्रिया से गुज़रे थे। इन थोड़े-से देशों ने दुनिया पर जीत हासिल की। ज़्यादातर समाज तत्कालीन घटनाक्रम को समझने में नाकामयाब रहे, और इसलिए वे प्रगति की रेलगाड़ी में सवार होने से रह गए। दयानन्द का हिन्दुस्तान और महदी का सूडान भाप के इंजनों की बजाय ईश्वर में कहीं ज़्यादा तल्लीन रहा, इसलिए वे औद्योगिक ब्रिटेन द्वारा उपनिवेशीकृत और शोषित हुए। पिछले कुछ सालों के दौरान ही हिन्दुस्तान उसको ब्रिटेन से अलग करने वाले आर्थिक और भूराजनैतिक अन्तराल को पाटने की दिशा में उल्लेखनीय प्रगति कर पाया है। सूडान अभी भी बहुत पीछे बना हुआ है और संघर्ष कर रहा है।

इक्कीसवीं सदी के इस आरम्भिक दौर में प्रगति की रेलगाड़ी एक बार फिर स्टेशन से रवाना हो रही है - और यह *होमो सेपियन्स* नामक स्टेशन से रवाना होने वाली सम्भवतः आख़िरी ट्रेन होगी। जिनकी यह ट्रेन छूट जाएगी, उनको दूसरी बार मौक़ा नहीं मिलने वाला। इसमें अपने लिए एक सीट हासिल करने के लिए आपको इक्कीसवीं सदी की प्रौद्योगिकी, और विशेष रूप से जैवप्रौद्योगिकी और कम्प्यूटर ऐल्गारिदमों की शक्तियों को

समझने की ज़रूरत है। ये शक्तियाँ भाप और टेलिग्राफ़ से कहीं ज़्यादा प्रबल हैं, और इनका इस्तेमाल मात्र खाद्यान्नों, वस्त्रों, वाहनों और हथियारों के उत्पादन के लिए नहीं किया जाएगा। इक्कीसवीं सदी के मुख्य उत्पादों में कायाएँ, मस्तिष्क और मानस शामिल होंगे, और कायाओं और मस्तिष्कों को गढ़ना जानने वालों और इनको गढ़ना न जानने वालों के बीच का अन्तराल चार्ल्स डिकन्स के ब्रिटेन और महदी के सूडान के बीच के अन्तराल से कहीं ज़्यादा बड़ा होगा। दरअसल, यह सेपियनों और निएंडरथलों के बीच के अन्तराल से ज़्यादा बड़ा अन्तराल होगा। इक्कीसवीं सदी में जो लोग प्रगति की ट्रेन में यात्रा कर रहे होंगे, वे सृष्टि और संहार की अलौकिक क्षमताएँ हासिल कर लेंगे, जबकि जो लोग पीछे छूट गये होंगे, उनको विलुप्ति का सामना करना होगा।

जो समाजवाद सौ साल पहले बेहद आधुनिक हुआ करता था, वह नई प्रौद्योगिकी के साथ क़दम मिला कर चलने में विफल हो गया था। लियोनिद ब्रेज़नेव और फ़िदेल कास्त्रो मार्क्स और लेनिन के भाप के युग में गढ़े गए विचारों से चिपके रहे, और उन्होंने कम्प्यूटरों और जैवप्रौद्योगिकी की ताक़त को नहीं समझा। इसके विपरीत, उदारवादियों ने अपने को सूचना-युग के मुताबिक़ बेहतर ढंग से ढाल लिया। इससे आंशिक तौर पर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि ख्रुश्चेव का 1956 का पूर्वानुमान क्यों सही साबित नहीं हो सका, और क्यों अन्ततः उदारवादी पूँजीपतियों ने ही मार्क्स को दफ़नाया। अगर आज मार्क्स जीवित हो उठते, तो वे सम्भवतः अपने बचे हुए अनुयायियों से *दास कैपिटल* को पढ़ने में कम और इंटरनेट तथा मानवीय जीन-समूह का अध्ययन करने में ज़्यादा समय ख़र्च करने का आग्रह करते।

अतिवादी इस्लाम समाजवाद से भी ज़्यादा बदतर हालत में है। यह अभी तक औद्योगिक क्रान्ति के साथ समझौता नहीं कर सका - आश्चर्य की बात नहीं कि जनेटिक इंजीनियरिंग तथा आर्टिफ़िशल इंटेलिजेंस के बारे में कहने लायक़ प्रासंगिक महत्त्व की कोई ख़ास बात इसके पास नहीं है। इस्लाम, ईसाइयत और अन्य पारम्परिक मज़हब अभी भी दुनिया में महत्त्वपूर्ण हैसियत बनाए हुए हैं, लेकिन उनकी भूमिका अब व्यापक तौर पर प्रतिक्रियात्मक रह गई है। अतीत में, वे रचनात्मक शक्तियाँ हुआ करते थे। उदाहरण के लिए, ईसाइयत ने तब तक विधर्मितापूर्ण मानी जाती रही इस धारणा का प्रचार किया था कि ईश्वर के समक्ष सारे मनुष्य बराबर हैं, और इस तरह उसने मनुष्य-निर्मित राजनैतिक संरचनाओं, सामाजिक पदक्रमों और यौन सम्बन्धों में बदलाव का पक्ष लिया। माउंट पर दिए गए अपने उपदेश में ईसा ने और भी आगे बढ़कर इस बात पर ज़ोर दिया था कि कमज़ोर और दलित लोग ईश्वर को प्रिय होते हैं, और इस तरह उन्होंने शक्ति के पिरामिड को उलटा खड़ा कर दिया था, और क्रान्तिकरियों की पीढ़ियों का साहस बढ़ाया था।

सामाजिक और नैतिक सुधारों के अतिरिक्त ईसाइयत को महत्त्वपूर्ण आर्थिक और प्रौद्योगिकीय नवाचारों का भी श्रेय जाता है। कैथोलिक चर्च ने मध्ययुगीन यूरोप की सर्वाधिक परिष्कृत प्रशासनिक व्यवस्था खड़ी की थी, और अभिलेखागारों, कैटलॉगों, समय-सारिणियों और सूचना के भण्डारण, व्यवस्थापन तथा परिकलन की अन्य तकनीकों के इस्तेमाल का रास्ता खोला था। बारहवीं सदी में वैटिकन यूरोप की सिलिकॉन वैली के सबसे क़रीब की चीज़ थी। चर्च ने यूरोप के पहले आर्थिक कॉर्पोरेशनों - मठों - की स्थापना की थी, जिन्होंने 1,000 सालों तक यूरोप की अर्थव्यवस्था का नेतृत्व किया था और उन्नत क़िस्म की कृषिपरक तथा प्रशासनिक प्रणालियों की शुरुआत की थी। मठ घड़ियों का इस्तेमाल करने वाली पहली संस्थाएँ थीं, और सदियों तक ये मठ तथा कैथेड्रल-स्कूल यूरोप के सबसे महत्त्वपूर्ण अध्ययन-केन्द्र हुआ करते थे, जिन्होंने बोलोग्ना, ऑक्सफ़ोर्ड और सालामांका जैसे यूरोप के कई प्रथम विश्वविद्यालयों की स्थापना में मदद की।

आज कैथोलिक चर्च को करोड़ों अनुयायियों की वफ़ादारी और टाइद (आय का दसवाँ हिस्सा) का लाभ प्राप्त होता है। तब भी यह और अन्य देववादी मज़हब बहुत पहले रचनात्मक शक्तियों की जगह प्रतिक्रियात्मक शक्तियों में बदल चुके हैं। वे अनूठी प्रौद्योगिकियों, नवाचारी आर्थिक प्रणालियों या अपूर्व सामाजिक विचारों की अगुआई करने की बजाय रक्षात्मक कार्रवाइयों में लगे हैं। वे अब ज़्यादातर दूसरे आन्दोलनों द्वारा प्रचारित प्रौद्योगिकियों, पद्धतियों और विचारों को लेकर चिन्ता में पड़े रहते हैं। जीवविज्ञानी गर्भनिरोधक गोलियों का आविष्कार करते हैं और पोप को समझ में नहीं आता कि इसको लेकर क्या किया जाए। कम्प्यूटर वैज्ञानिक इंटरनेट विकसित करते हैं और रब्बी इस पर बहस करते हैं कि मज़हबी यहूदियों को इसका इस्तेमाल करने की इजाज़त दी जानी चाहिए या नहीं। नारीवादी चिन्तक स्त्रियों का आह्वान करते हैं कि वे अपनी देहों को अपने स्वामित्व में लें - और ज्ञानवान मुफ़्ती इस पर बहस करते हैं कि इस तरह के भड़काऊ विचारों का मुक़ाबला किस तरह किया जाए।

ख़ुद से पूछिए: बीसवीं सदी की सबसे ज़्यादा प्रभावशाली खोज, आविष्कार या रचना क्या थी? यह एक मुश्किल सवाल है, क्योंकि उन प्रत्याशियों की लम्बी सूची में से किसी एक को चुनना कठिन काम है, जिनमें एंटीबायोटिक्स जैसी वैज्ञानिक खोजें, कम्प्यूटर जैसे प्रौद्योगिकीय आविष्कार, नारीवाद जैसी विचारधारात्मक कल्पनाएँ शामिल हैं। अब आप ख़ुद से पूछिए: बीसवीं सदी में इस्लाम और ईसाइयत जैसे पारम्परिक मज़हबों की सबसे ज़्यादा प्रभावशाली खोज, आविष्कार या रचना क्या थी? यह भी एक बेहद मुश्किल सवाल है, क्योंकि यह इतना कम है कि उसमें से चुनाव करना मुश्किल है। पादरियों, रब्बियों और मुफ़्तियों ने बीसवीं सदी में ऐसा क्या खोजा था, जिसका उल्लेख हम एंटीबायोटिक्स, कम्प्यूटर्स या नारीवाद के समान कर सकें? इन दो सवालों पर विचार कर

चुकने के बाद आपके हिसाब से इक्कीसवीं सदी के बड़े परिवर्तन कहाँ से उत्पन्न होंगे: इस्लामिक स्टेट से या गूगल से? हाँ, इस्लामिक स्टेट जानता है कि यूट्यूब पर वीडियो कैसे डाले जाएँ, लेकिन यातना के उद्योग के अलावा, सीरिया या इराक़ से बाद के दिनों में और क्या नया आविष्कार उभरकर आया है?

कई वैज्ञानिकों समेत अरबों लोग मज़हबी पोथियों को प्रामाणिकता का स्रोत मानना जारी रखे हैं, लेकिन ये मज़मून अब रचनात्मकता का स्रोत नहीं रह गए हैं। उदाहरण के लिए, ईसाइयत के अपेक्षाकृत प्रगतिशील घड़ों द्वारा समलैंगिक विवाह या स्त्री पादरी को स्वीकृति दिए जाने के बारे में विचार करें। इस स्वीकृति का उद्गम कहाँ है? वह बाइबिल, सेंट ऑगुस्तीन या मार्टिन लूथर में नहीं है। इस स्वीकृति का उद्गम मिशेल फूको की पुस्तक *द हिस्ट्री ऑफ़ सेक्सुअलिटी* या डोना हारावे के निबन्ध *'अ साइबोर्ग मैनिफ़ेस्टो'* में है। तब भी सच्चे आस्थावान ईसाई - वे चाहे कितने ही प्रगतिशील क्यों न हों - यह स्वीकार नहीं कर सकते कि उन्होंने अपनी नैतिकी फूको और हारावे से प्राप्त की है। इसलिए वे वापस बाइबिल, सेंट ऑगुस्तीन और मार्टिन लूथर की ओर मुड़ते हैं, और गहरी खोजबीन करते हैं। वे भरपूर ध्यान लगाकर तब तक एक-एक पृष्ठ और एक-एक कहानी पढ़ते जाते हैं, जब तक कि उनको वह चीज़ नहीं मिल जाती, जिसकी उनको ज़रूरत है: कोई सूक्ति, कोई नीति-कथा या कोई ऐसा विधान, जिसकी पर्याप्त रचनात्मक व्याख्या करने के बाद यह अर्थ निकलता है कि ईश्वर समलैंगिक विवाह को अपना आशीर्वाद देता है और स्त्रियों को पादरी बनाया जा सकता है। इसके बाद वे दिखावा करते हैं कि यह विचार बाइबिल से आया था, जबकि वस्तुतः वह फूको के यहाँ से आया है। बाइबिल को प्रामाणिकता के स्रोत की तरह माना जाता है, भले ही वह अब प्रेरणा का स्रोत नहीं रह गई है।

यही वजह है कि पारम्परिक मज़हब उदारवाद का कोई विकल्प पेश नहीं कर पाते। उनकी पोथियों के पास जनेटिक इंजीनियरिंग या आर्टिफ़िशल इंटेलिजेंस के बारे में कहने के लिए कुछ भी नहीं है, और ज़्यादातर पादरी, रब्बी और मुफ़्ती जीव विज्ञान या कम्प्यूटर विज्ञान की दुनिया की नई ईजादों के बारे में कुछ भी नहीं समझते, क्योंकि अगर आप इन ईजादों को समझना चाहते हैं, तो आपके पास ज़्यादा विकल्प नहीं हैं - प्राचीन ग्रन्थों को कण्ठस्थ कर डालने और उन पर बहस करने की बजाय आपको वैज्ञानिक लेख पढ़ने और प्रयोगशालाओं में बैठकर प्रयोग करने की ज़रूरत है।

इसका मतलब यह नहीं है कि उदारवाद अपनी प्रशस्ति पर टिका रह सकता है। यह सही है कि इसने मानववादी धर्मयुद्ध में फ़तह हासिल कर ली है, और अभी 2016 तक इसका कोई कारगर विकल्प सामने नहीं आ सका था, लेकिन इसकी कामयाबी में ही इसकी बर्बादी के बीज निहित हो सकते हैं। विजयोन्माद से भरे हुए उदारवादी आदर्श अब मनुष्य जाति को अमरता, अलौकिक सुख और दिव्यता की ओर धकेल रहे हैं। ग्राहकों और

मतदाताओं की तथाकथित अचूक आकांक्षाओं से उत्प्रेरित वैज्ञानिक और इंजीनियर अपनी ज़्यादा से ज़्यादा ऊर्जा इन उदारवादी परियोजनाओं पर ख़र्च करते हैं, लेकिन वैज्ञानिक जो कुछ खोज रहे हैं, और इंजीनियर जो कुछ गढ़ रहे हैं, वह उनके अनजाने ही उदारवादी विश्वदृष्टि की अन्तर्निहित खोटों और ग्राहकों तथा मतदाताओं के अन्धेपन, दोनों को उजागर कर सकता है। जब जनेटिक इंजीनियरिंग और आर्टिफ़िशल इंटेलिजेंस अपनी सम्पूर्ण सम्भावनाओं को उजागर कर चुके होंगे तब मुमकिन है कि उदारवाद, लोकतन्त्र और मुक्त-बाज़ार-व्यवस्था चकमक के चाकुओं, टेप कैसिटों, इस्लाम और साम्यवाद की तरह पुराने पड़ चुके हों।

इस पुस्तक की शुरुआत इस भविष्यवाणी के साथ हुई थी कि इक्कीसवीं सदी में मनुष्य अमरता, अलौकिक सुख और दिव्यता हासिल करने की कोशिश करेंगे। यह भविष्यवाणी बहुत मौलिक या दूरदृष्टिपूर्ण नहीं है। यह महज़ उदार मानववाद के पारम्परिक आदर्शों को प्रतिबिम्बित करती है। चूँकि मानवतावाद बहुत पहले मनुष्य के जीवन, भावनाओं और आकांक्षाओं का पवित्रीकरण कर चुका है, इसलिए यह आश्चर्य की बात नहीं होनी चाहिए कि मानववादी सभ्यता मनुष्य की उम्र के दायरे, मानवीय सुख और मानवीय शक्ति को ज़्यादा से ज़्यादा विस्तार देने की कोशिश करेगी, लेकिन इस पुस्तक का तीसरा और अन्तिम अध्याय इस पर चर्चा करेगा कि इस मानवतावादी स्वप्न को सच्चाई में बदलने की कोशिश नई उत्तर-मानवतावादी प्रौद्योगिकियों को छुट्टा छोड़कर इस स्वप्न की बुनियादों को ही खोखला कर सकती है। अनुभूतियों में मानववाद की आस्था ने हमें आधुनिक सौदे की क़ीमत चुकाए बिना इस सौदे के फल चखने में सक्षम बनाया था। अपनी शक्तियों की सीमाएँ निर्धारित करने और हमें अर्थ प्रदान करने के लिए अब हमें किन्हीं देवताओं की ज़रूरत नहीं रह गई है - ग्राहकों और मतदाताओं के उन्मुक्त चुनाव हमारे लिए सारे आवश्यक अर्थ उपलब्ध करा देते हैं। तब फिर, जब हमें इस बात का अहसास होगा कि ग्राहक और मतदाता कभी उन्मुक्त ढंग से चुनाव नहीं करते, और जब उनकी अनुभूतियों की परिगणना करने, उनका आकल्पन करने या उनको मात देने की प्रौद्योगिकियाँ हमारे पास होंगी, तब क्या होगा? अगर मनुष्य का अनुभव ही समूचे विश्व की पहचान का आधार बन जाएगा, तो तब क्या होगा, जब मानवीय अनुभव एक और ऐसे गढ़े जाने योग्य उत्पाद में बदल जाएगा, जो अपने सार रूप में सुपरमार्केट की किसी भी दूसरी वस्तु से भिन्न नहीं होगा?
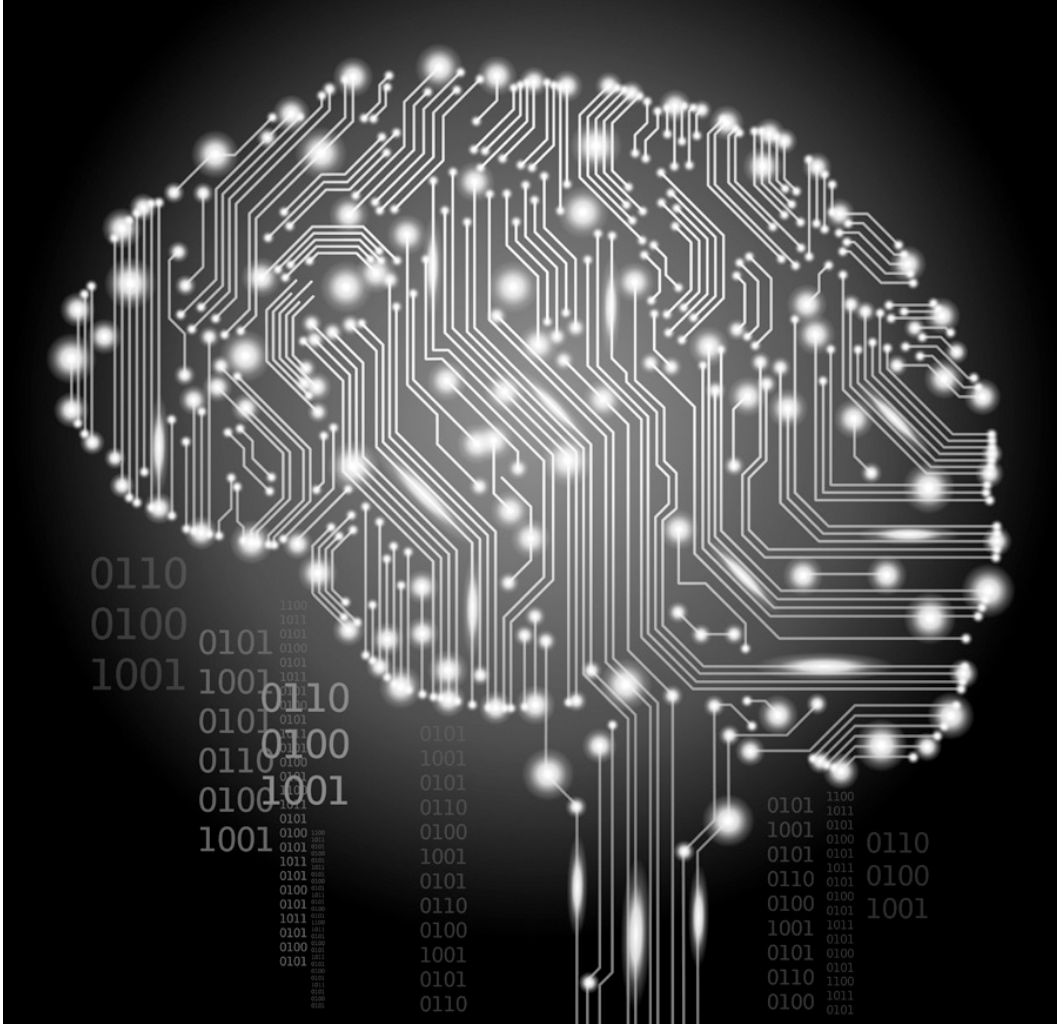
39. कम्प्यूटर के रूप में मस्तिष्क - मस्तिष्क के रूप में कम्प्यूटर। कृत्रिम बुद्धि (आर्टिफ़िशल इंटेलिजेंस) अब मनुष्य की बुद्धि को पीछे छोड़ देने को तैयार बैठी है।

*इस सूत्र का स्वरूप बहुलीकरण के अनुरूप था, क्योंकि तत्व एक-दूसरे के आधार पर काम करते थे। कम से कम मध्ययुगीन दार्शनिकों के अनुसार आप तर्क के बिना बाइबिल को नहीं समझ सकते। यदि आपके तर्क का मूल्य शून्य है, तो फिर आप बाइबिल का प्रत्येक पन्ना पढ़ लेंगे, तब भी आपके ज्ञान का मूल्य शून्य ही होगा। इसके विपरीत यदि आपकी पोथी का मूल्य शून्य है, तो तर्क का कोई भी दम आपकी मदद नहीं कर सकता। यदि इस सूत्र का इस्तेमाल अतिरिक्त प्रतीकों के साथ किया जाता, तो परिणाम फिर भी यह होता कि ऐसे किसी व्यक्ति के पास ख़ूब ज्ञान होता, जिसके पास ढेरों तर्क तो होते, लेकिन कोई पोथियाँ नहीं होतीं। यह ऐसा ज्ञान होता, जो आपके और मेरे लिए तो तर्कसंगत होता, लेकिन मध्ययुगीन दार्शनिकों के लिए नहीं।

*अमेरिकी राजनीति में उदारवाद की व्याख्या अत्यन्त संकीर्ण रूप से की जाती है, और उसे रूढ़िवाद के विपरीत माना जाता है। शब्दावली के व्यापक अर्थ में हालाँकि ज़्यादातर रूढ़िवादी अमेरिकी भी उदार हैं।

भाग-III

अपना नियन्त्रण खोता होमो सेपियन्स

क्या मनुष्य दुनिया का संचालन करना और उसको
अर्थ देना जारी रख सकते हैं?

जैवप्रौद्योगिकी और आर्टिफ़िशल इंटेलिजेंस
मानववाद के सामने किस तरह का ख़तरा पैदा करते हैं?

मानव जाति का उत्तराधिकार किसे प्राप्त हो सकता है, और
कौन-सा नया मज़हब मानववाद की जगह ले सकता है?

8
प्रयोगशाला में टाइमबम

2016 में दुनिया पर व्यक्तिवाद, मानवाधिकार, लोकतन्त्र और मुक्त बाज़ार-व्यवस्था के उदारवादी पैकेज का वर्चस्व है, लेकिन इक्कीसवीं सदी का विज्ञान उदारवादी व्यवस्था की जड़ें खोद रहा है, क्योंकि विज्ञान मूल्यों के सवालों से नहीं जूझता, इसलिए वह यह निर्धारित नहीं कर सकता कि उदारवादी स्वतन्त्रता को समानता से ज़्यादा मूल्यवान मानने, या व्यक्ति को समूह से ज़्यादा मूल्यवान मानने के मामले में सही है या नहीं। प्रत्येक अन्य मज़हब की ही भाँति उदारवाद भी सिर्फ़ अमूर्त नैतिक मूल्य-निर्णयों पर आधारित नहीं है, बल्कि उस चीज़ पर भी आधारित है, जिनको वह तथ्यात्मक वक्तव्य मानता है। और ये तथ्यात्मक वक्तव्य सख़्त वैज्ञानिक पड़ताल के सामने टिकते नहीं हैं।

उदारवादी स्वतन्त्रता को इतना ज़्यादा मूल्य इसलिए देते हैं, क्योंकि उनका विश्वास है कि मनुष्यों में स्वतन्त्र निर्णय लेने की शक्ति होती है। उदारवाद के मुताबिक़ मतदाताओं और ग्राहकों के निर्णय न तो अवश्यम्भावी (डिटर्मिनिस्टिक) होते हैं और न ही संयोगजन्य (रेंडम) होते हैं। लोग निश्चय ही बाहरी शक्तियों और संयोगजन्य घटनाओं से प्रभावित होते हैं, लेकिन अन्ततः हम स्वतन्त्रता की जादुई छड़ी घुमाते हैं और स्वयं ही निर्णय लेते हैं। यही वजह है कि उदारवाद मतदाताओं और ग्राहकों को इतना अधिक महत्त्व देता है, और हमें अपने दिल की आवाज़ सुनने तथा जो अच्छा लगे वही करने की सीख देता है। यह हमारी स्वतन्त्र निर्णय लेने की शक्ति ही है, जो विश्व को अर्थ से रंजित करती है, और चूँकि कोई भी बाहरी व्यक्ति नहीं जान सकता कि आप वास्तव में कैसा महसूस करते हैं या वह आपके निर्णयों का पुख़्ता पूर्वानुमान नहीं कर सकता, इसलिए आपको अपने हितों और आकांक्षाओं का ख़याल रखने के मामले में किसी महान शक्ति (बिग ब्रॅदर) पर भरोसा नहीं करना चाहिए।

मनुष्यों को स्वतन्त्र निर्णय लेने की शक्ति का श्रेय देना कोई नैतिक मूल्य- निर्णय *नहीं* है - इसे संसार के तथ्यात्मक विवरण के दावे के रूप में पेश किया जाता है, हालाँकि यह तथाकथित तथ्यात्मक विवरण वाली बात जॉन लॉक, ज़्याँ-ज़ैक़ रूसो और थॉमस जेफ़रसन के ज़माने में कोई मायने रख सकती थी, लेकिन जैविक विज्ञानों की ताज़ा खोजों के सन्दर्भ में यह सटीक नहीं लगती। स्वतन्त्र निर्णय लेने की शक्ति और समकालीन विज्ञान के बीच का अन्तर्विरोध प्रयोगशाला में हाथी जैसा है, जिसको देखने जब ज़्यादातर लोग अपने सूक्ष्मदर्षियों और एफ़एमआरआई में झाँकते हैं, तो न देखना ही पसन्द करते हैं।

अठारहवीं सदी में *होमो सेपियन्स* एक रहस्यमय ब्लैक बॉक्स की तरह था, जिसकी अन्दरूनी कार्यप्रणालियाँ हमारी समझ से परे थीं। इसलिए अध्येता यह सवाल पूछते थे कि किसी आदमी ने छुरा निकालकर दूसरे आदमी का क़त्ल क्यों कर दिया, तो इसका स्वीकार्य जवाब यह होता था: 'क्योंकि उसने ऐसा करना ठीक समझा। उसने अपनी स्वतन्त्र निर्णय-शक्ति का इस्तेमाल हत्या करने के लिए किया, इसलिए वही इस अपराध के लिए पूरी तरह से ज़िम्मेदार है'। पिछली सदी के दौरान जब वैज्ञानिकों ने सेपियन्स का ब्लैक बॉक्स खोला, तो वहाँ पर उनको न तो आत्मा दिखाई दी, न स्वतन्त्र निर्णय शक्ति दिखाई दी और न ही 'स्वत्व' दिखाई दिया - उनको सिर्फ़ जीन्स, हार्मोन्स और न्यूरॉन दिखाई दिए, जो उन्हीं भौतिक और रासायनिक नियमों का पालन करते हैं, जो बाक़ी वास्तविकता को नियन्त्रित करते हैं। आज जब अध्येता पूछते हैं कि अमुक आदमी ने छुरा निकालकर दूसरे आदमी का क़त्ल क्यों कर दिया, तो इसका यह जवाब किसी काम का नहीं होता कि 'क्योंकि उसने ऐसा करना ठीक समझा'। इसकी बजाय, जनेटिक्स-विज्ञानी और मस्तिष्क-विज्ञानी इसका कहीं ज़्यादा विस्तृत जवाब उपलब्ध कराते हैं: 'उसने ऐसा मस्तिष्क की उन अमुक-अमुक विद्युतरासायनिक प्रक्रियाओं के चलते किया, जो एक ख़ास जनेटिक बनावट से गढ़ी गई थीं, जो संयोगजन्य उत्परिवर्तनों से जुड़े प्राचीन विकासपरक दबावों को प्रतिबिम्बित करती है'।

हत्या को अंजाम देने वाली विद्युतरासायनिक मस्तिष्क प्रक्रियाएँ या तो अवश्यम्भावी होती हैं, या संयोगजन्य होती हैं या दोनों का मिला-जुला रूप होती हैं,लेकिन वे स्वतन्त्र कभी नहीं होतीं। उदाहरण के लिए, जब कोई न्यूरॉन किसी विद्युत आवेश को उत्प्रेरित करता है, तो यह किसी बाहरी उत्प्रेरक पर कोई अवश्यम्भावी प्रतिक्रिया हो सकती है, या शायद किसी रेडियोधर्मी अणु के स्वतःस्फूर्त विघटन जैसी किसी संयोगजन्य घटना का नतीजा हो सकती है। दोनों में से कोई स्थिति स्वतन्त्र निर्णय-क्षमता की गुंजाइश नहीं छोड़ती। जैवरासायनिक घटनाओं की शृंखलाबद्ध प्रतिक्रियाओं में हर घटना पिछली घटना से तय होती है, उनके रास्ते जिन निर्णयों पर पहुँचा जाता है, वे निश्चय ही स्वतन्त्र निर्णय नहीं होते हैं। इसी तरह संयोगजन्य अवपरमाणुविक (सबएटॉमिक) घटनाओं के रास्ते जिन

निर्णयों पर पहुँचा जाता है, वे भी स्वतन्त्र निर्णय नहीं होते, वे महज़ संयोगजन्य होते हैं। और जब संयोगजन्य घटनाएँ अवश्यम्भावी प्रक्रियाओं से मिलती हैं, तो सम्भाव्यतापरक नतीजे हमारे हाथ लगते हैं, लेकिन इनको भी स्वतन्त्र नहीं कहा जा सकता।

मान लीजिए कि हम एक ऐसा रोबेट तैयार करते हैं, जिसकी सेंट्रल प्रॉसेसिंग यूनिट यूरेनियम के एक रेडियोधर्मी पिण्ड से जुड़ी है। जब दो में से कोई एक विकल्प - जैसे कि दायाँ बटन दबाना या बायाँ बटन दबाना - चुनने की बारी आती है, तो रोबोट यूरेनियम के उन अणुओं की गणना करता है, जिनका पिछले मिनट में क्षरण हुआ है। अगर यह संख्या सम होती है - वह दायाँ बटन दबाता है। अगर संख्या विषम होती है - वह बायाँ बटन दबाता है। इस तरह के एक रोबोट की हरक़तों के बारे में हम कभी निश्चयपूर्वक कुछ भी नहीं जान सकते, लेकिन इस यन्त्र को 'स्वतन्त्र' कोई नहीं कहेगा, और हम उसको किसी लोकतान्त्रिक चुनाव में मतदान करने की छूट देने या इसकी कार्रवाइयों के लिए इसको वैधानिक तौर पर ज़िम्मेदार ठहराने का ख़्वाब नहीं देखेंगे।

हमारी श्रेष्ठतम वैज्ञानिक समझ के अनुसार अवश्यम्भाविता और संयोगजन्यता ने 'स्वतन्त्रता' का एक कण भी छोड़े बिना पूरा-का-पूरा केक अपने बीच बाँट लिया है। 'स्वतन्त्रता' नामक पवित्र शब्द, 'आत्मा' शब्द की ही भाँति, एक ऐसा खोखला पद साबित हुआ है, जो समझ में आने लायक़ किसी अर्थ से पूरी तरह रिक्त है। स्वतन्त्र निर्णय-शक्ति का वजूद सिर्फ़ उन कल्पित क़िस्सों में है, जिनको हम मनुष्यों ने गढ़ रखा है।

स्वतन्त्रता के ताबूत के लिए आख़िरी कील विकासवाद ने उपलब्ध कराई है। जिस तरह अमर आत्माओं के साथ विकासवाद की संगति नहीं बैठाई जा सकती, उसी तरह विकासवाद स्वतन्त्र निर्णय-शक्ति के विचार को नहीं निगल सकता, क्योंकि अगर मनुष्य स्वतन्त्र होते, तो प्राकृतिक वरण ने उनको आकार कैसे दिया हो सकता था? विकासवाद के सिद्धान्त के मुताबिक़ प्राणियों द्वारा चुने जाने वाले सारे विकल्प - चाहे वे उनके आवास से ताल्लुक़ रखते हों, चाहे भोजन या संसर्ग से - उनके जनेटिक कोड को प्रतिबिम्बित करते हैं। अगर कोई प्राणी, अपने योग्य (फिट) जीन्स की वजह से, एक पोषक मशरूम को खाने और स्वस्थ तथा प्रजनन-क्षम जोड़ीदारों के साथ संसर्ग करने का विकल्प चुनता है, तो ये जीन्स अगली पीढ़ी में स्थानान्तरित हो जाते हैं। अगर कोई प्राणी अपने अयोग्य (अनफ़िट) जीन्स की वजह से ज़हरीले मशरूम खाने और किन्हीं अक्षम जोड़ीदारों से संसर्ग करने का विकल्प चुनता है, तो उसके जीन्स विलुप्त हो जाएँगे, लेकिन, अगर कोई प्राणी 'स्वतन्त्र' ढंग से इस बात का चुनाव करता है कि उसको क्या खाना चाहिए और किसके साथ संसर्ग करना चाहिए, तो प्राकृतिक वरण के लिए अपना काम करने के लिए कुछ नहीं बचेगा।

इस तरह की वैज्ञानिक व्याख्याओं से सामना होने पर लोग अक्सर उनको परे झटकते हुए यह कहते हैं कि वे तो स्वतन्त्र *महसूस* करते हैं और अपनी इच्छाओं तथा फ़ैसलों के मुताबिक़ आचरण करते हैं। यह सही है। मनुष्य अपनी आकांक्षाओं के मुताबिक़ ही आचरण करते हैं। अगर 'स्वतन्त्र निर्णय-शक्ति' से हमारा अभिप्राय अपनी आकांक्षाओं के मुताबिक़ आचरण करने की क्षमता से है, तो हाँ, मनुष्यों के पास स्वतन्त्र निर्णय-शक्ति होती है, और वह चिम्पांज़ियों, कुत्तों और तोतों में भी होती है। जब पोली क्रैकर खाना चाहती है, तो पोली क्रैकर खाती है, लेकिन सबसे बड़ा सवाल यह नहीं है कि क्या तोते, और मनुष्य अपनी अन्दरूनी आकांक्षाओं के मुताबिक़ काम कर सकते हैं या नहीं - सबसे बड़ा सवाल यह है कि *क्या वे सबसे पहले अपनी आकांक्षाओं का चुनाव कर सकते हैं*। पोली क्रैकर ही क्यों खाना चाहती है, ककड़ी क्यों नहीं? मैं कष्ट देने वाले अपने पड़ोसी के सामने अपना दूसरा गाल कर देने की बजाय उसको मारने पर क्यों तुला हूँ? मैं काली कार की बजाय लाल कार ही क्यों ख़रीदना चाहता हूँ? मैं लेबर पार्टी की बजाय कंज़र्वेटिव पार्टी को वोट देना क्यों पसन्द करता हूँ? इनमें से किसी भी इच्छा का चुनाव मेरा नहीं है। मैं अपने भीतर एक ख़ास इच्छा को मज़बूत होते महसूस करता हूँ, क्योंकि यह अहसास मेरे मस्तिष्क में चलने वाली जैवरासायनिक प्रक्रियाओं से रचा गया होता है। ये प्रक्रियाएँ अवश्यम्भावी या संयोगजन्य हो सकती हैं, लेकिन स्वतन्त्र नहीं।

आप जवाब दे सकते हैं कि कम से कम पड़ोसी की हत्या करने या किसी सरकार को चुनने जैसे महत्त्वपूर्ण फ़ैसलों के मामले में मेरा चुनाव किसी क्षणिक अनुभूति को प्रतिबिम्बित नहीं करता, बल्कि वज़नदार तर्कों से युक्त एक लम्बे और विवेकपूर्ण सोच-विचार को प्रतिबिम्बित करता है, लेकिन तर्क की ऐसी कई सम्भावित ट्रेनें हो सकती हैं, जिनका अनुसरण मैं कर सकता हूँ, जिनमें से कुछ के परिणामस्वरूप मैं कंज़र्वेटिव पार्टी को वोट दूँगा, कुछ के परिणामस्वरूप मैं लेबर पार्टी को वोट दूँगा, और कुछ के परिणामस्वरूप यूकेआईपी को भी वोट दे सकता हूँ या अपने घर पर ही बैठा रह सकता हूँ। वह क्या चीज़ है, जिसके चलते मैं एक ट्रेन की बजाय दूसरी ट्रेन पर सवार होने का चयन करता हूँ? मेरे मस्तिष्क के पेडिंग्टॅन (लन्दन का एक रेल स्टेशन) में मुमकिन है कि मैं अवश्यम्भावी प्रक्रियाओं द्वारा विवेक बुद्धि की किसी एक ख़ास ट्रेन में सवार होने के लिए विवश कर दिया जाऊँ, या यह भी कि मैं बेतरतीब ढंग से किसी भी ट्रेन में चढ़ जाऊँ, लेकिन मैं 'स्वतन्त्र ढंग से' उन विचारों पर सोचने का चुनाव नहीं करता, जिनके चलते मैं कंज़र्वेटिव पार्टी को वोट दूँगा।

ये महज़ परिकल्पनाएँ या दार्शनिक अनुमान नहीं हैं। आज हम मस्तिष्क-स्केनरों का इस्तेमाल करते हुए लोगों की आकांक्षाओं और निर्णयों का, इसके पहले ही कि लोग उनके प्रति सजग हों, पूर्वानुमान कर सकते हैं। इस तरह के प्रयोग के तहत लोगों को, उनके दोनों

हाथों में एक-एक स्विच थमाते हुए, एक विशाल मस्तिष्क-स्केनर के भीतर रख दिया जाता है। उनसे कहा जाता है कि जब भी उनका मन हो वे दोनों में से किसी एक स्विच को दबा दें। मस्तिष्क की स्नायुविक गतिविधि का पर्यवेक्षण करने वाले वैज्ञानिक किसी व्यक्ति द्वारा किसी स्विच को दबाए जाने के पहले ही, और उस व्यक्ति के अपने इरादे के प्रति सजग होने से भी पहले ही, इसका पूर्वनुमान कर सकते हैं कि वह व्यक्ति कौन-सा स्विच दबाएगा। व्यक्ति के निर्णय का संकेत देने वाली मस्तिष्क में घटित होती स्नायुविक घटनाओं की शुरुआत उस व्यक्ति के अपने चुनाव के प्रति सजग होने के कुछ सौ मिलीसेकेंड से लेकर कुछ सेकेंडों के दौरान हो जाती है।

दाएँ या बाएँ में से किसी एक बटन को दबाने का फ़ैसला निश्चय ही उस व्यक्ति के चुनाव को दर्शाता है, लेकिन यह स्वतन्त्र चुनाव नहीं होता। वस्तुतः, स्वतन्त्र इच्छा-शक्ति में हमारा विश्वास एक दोषपूर्ण तर्क का नतीजा है। जब एक शृंखलाबद्ध जैवरासायनिक प्रतिक्रिया के चलते मैं दाएँ बटन को दबाने की इच्छा करता हूँ, तो मुझे लगता है कि मैं सचमुच दायाँ बटन ही दबाना चाहता हूँ, लेकिन लोग ग़लत ढंग से झटपट इस नतीजे पर पहुँच जाते हैं कि अगर मैं इसे दबाना चाहता हूँ, तो यह चाहना मेरा चुनाव होता है। यह निश्चय ही ग़लत है। मैं अपनी आकांक्षाओं का चुनाव नहीं करता। मैं सिर्फ़ उनको महसूस करता हूँ, और उसके मुताबिक़ आचरण करता हूँ।

इसके बावजूद लोग स्वतन्त्र इच्छा-शक्ति के पक्ष में तर्क देना जारी रखते हैं, तो इसलिए क्योंकि वैज्ञानिक भी अक्सर पुरानी पड़ चुकी धर्मशास्त्रीय अवधारणाओं का इस्तेमाल करते रहते हैं। सदियों तक, ईसाई, मुसलमान और यहूदी धर्मशास्त्री आत्मा और इच्छा-शक्ति के बीच के रिश्तों पर बहस करते रहे। वे मानकर चलते थे कि हर मनुष्य में - आत्मा (सोल) नामक - एक आन्तरिक सत्त्व होता है, जो कि मेरा सच्चा स्वत्व (सेल्फ़) है। इसके आगे उनका यह भी मानना था कि इस स्वत्व की उसी तरह कई आकांक्षाएँ होती हैं, जिस तरह इसके पास वस्त्र, वाहन और मकान होते हैं। मैं कथित रूप से अपनी आकांक्षाओं का चुनाव उसी तरह करता हूँ, जैसे मैं अपने कपड़ों का चुनाव करता हूँ, और मेरी नियति इन्हीं चुनावों के मुताबिक़ निर्धारित हो जाती है। अगर मैं अच्छी आकांक्षाओं का चुनाव करता हूँ, तो अन्त में मैं स्वर्ग में पहुँच जाता हूँ, अगर मैं बुरी आकांक्षाओं का चुनाव करता हूँ, तो नर्क में जाना मेरी नियति बन जाती है। उदाहरण के लिए, ईव ने उस वर्जित फल को खाने की आकांक्षा क्यों की थी, जो सर्प ने उसके सामने पेश किया था? क्या यह आकांक्षा उस पर ज़बरदस्ती थोपी गई थी? क्या यह आकांक्षा उनके मन में विशुद्ध संयोगवश जागी थी? या उसने 'स्वतन्त्र मन से' उसका चुनाव किया था? अगर उसने उसको स्वतन्त्र मन से नहीं चुना था, तो फिर उसके लिए उसको सज़ा क्यों दी गई?

लेकिन एक बार जैसे ही हम यह मान लेते हैं कि आत्मा जैसी कोई चीज़ नहीं होती और मनुष्यों में 'स्वत्व' जैसा कोई आन्तरिक सत्त्व नहीं होता, वैसे ही यह सवाल उठाने का कोई मतलब नहीं रह जाता कि 'स्वत्व अपनी आकांक्षाओं का चुनाव कैसे करता है?' ये किसी अविवाहित से यह पूछने जैसा है कि 'आपकी बीवी अपने कपड़ों का चुनाव कैसे करती है?' वास्तव में, सिर्फ़ एक चेतना-प्रवाह होता है, और आकांक्षाएँ इस प्रवाह के भीतर उत्पन्न होकर इसी में बिला जाती हैं, लेकिन ऐसा कोई स्थायी स्वत्व नहीं होता, जो आकांक्षाओं का स्वामी होता हो, इसलिए यह पूछना अर्थहीन है कि मैं अपनी आकांक्षाओं का चुनाव अवश्यम्भावी ढंग से करता हूँ, संयोगवश करता हूँ या स्वतन्त्र ढंग से करता हूँ।

यह बात बेहद जटिल लग सकती है, लेकिन इस विचार को जाँचना विस्मयकारी ढंग से आसान है। अगली बार जब कोई ख़याल आपके मन में आए, तो ठहरकर ख़ुद से पूछिए: 'मेरे मन में यही विचार क्यों पैदा हुआ? क्या मैंने मिनटभर पहले इस विचार पर सोचने का फ़ैसला किया था, और उसके बाद ही इस पर सोचना शुरू किया? या यह विचार, मेरे किसी निर्देश या इजाज़त के बिना, यूँ ही उत्पन्न हुआ? अगर मैं वाक़ई अपने विचारों और निर्णयों का मालिक हूँ, तो क्या मैं अगले साठ सेकेंड तक किसी भी चीज़ के बारे में न सोचने का फ़ैसला कर सकता हूँ?' इसे आज़माइए, और देखिए क्या होता है।

स्वतन्त्र इच्छा-शक्ति पर सन्देह करना महज़ एक दार्शनिक उपक्रम नहीं है। इसके व्यावहारिक निहितार्थ भी हैं। अगर प्राणियों में वाक़ई स्वतन्त्र इच्छा-शक्ति का अभाव है, तो इससे यह अभिप्राय भी निकलता है कि हम मादक द्रव्यों, जनेटिक इंजीनियरिंग या सीधे मस्तिष्क उद्दीपन का इस्तेमाल करके उनकी आकांक्षाओं को मनचाहे ढंग से गढ़ सकते हैं या नियन्त्रित तक कर सकते हैं।

अगर आप दर्शनशास्त्र को कार्यरत होते देखना चाहते हैं, तो किसी रोबो-रैट प्रयोगशाला का भ्रमण करिए। रोबो-रैट हल्के-से फेरबदल से युक्त एक साधारण चूहा होता है: वैज्ञानिकों ने चूहे के मस्तिष्क के संवेदी और रिवॉर्ड इलाक़ों में इलेक्ट्रोड प्रत्यारोपित कर दिए हैं। इससे वैज्ञानिक चूहे की गतिविधियों को रिमोट कंट्रोल के द्वारा नियन्त्रित कर पाते हैं। कुछ अभ्यासों के बाद अध्येता चूहों को न सिर्फ़ बाएँ या दाएँ मोड़ने में कामयाब रहे, बल्कि वे उनको सीढ़ियाँ चढ़ने, कचरे के ढेरों को सूँघने, और बेहद ऊँचाई से छलांग लगाने जैसे इस तरह के काम कराने में भी कामयाब रहे, जिनको चूहे सामान्यतः पसन्द नहीं करते। सेनाएँ और व्यावसायिक प्रतिष्ठान रोबो-रैट्स में इस उम्मीद में बहुत गहरी दिलचस्पी ले रहे हैं कि यह चीज़ बहुत-से उद्यमों और परिस्थितियों में उपयोगी साबित होगी। उदाहरण के लिए, रोबो-रैट्स ध्वस्त इमारतों में दबे जीवित बच रहे लोगों की टोह लेने, बमों और बारूदी सुरंगों का पता लगाने, और भूमिगत सुरंगों और गुफ़ाओं का नक़्शा तैयार करने में मदद कर सकते हैं।

पशु-कल्याण से जुड़े कार्यकर्ताओं ने इस तरह के प्रयोगों से चूहों को होने वाली पीड़ा पर चिन्ता जताई है। एक अग्रणी रोबो-रैट अध्येता, स्टेट यूनिवर्सिटी ऑफ़ न्यू यॉर्क के प्रोफ़ेसर संजीव तलवार ने इन चिन्ताओं को ख़ारिज़ करते हुए तर्क दिया है कि चूहे दरअसल इन प्रयोगों का आनन्द लेते हैं। तलवार कहते हैं कि वे आख़िरकार 'आनन्द के लिए काम करते हैं' जब इलेक्ट्रोड उनके मस्तिष्क के रिवॉर्ड सेंटर्स को भड़काते हैं, तो 'चूहों को निर्वाण का अनुभव होता है'।

हमारी श्रेष्ठतम समझ के मुताबिक़, चुहिया को ऐसा नहीं लगता कि उसको कोई दूसरा नियन्त्रित कर रहा है, और वह ऐसा महसूस नहीं करती कि कोई उसकी इच्छा के विरुद्ध उस पर दबाव डाल रहा है। जब प्रोफ़ेसर तलवार रिमोट कंट्रोल को दबाते हैं, तो चुहिया बाईं तरफ़ मुड़ना चाहती है, इसीलिए वह बाईं तरफ़ मुड़ती है। जब प्रोफ़ेसर दूसरा बटन दबाता है, तो चुहिया सीढ़ी पर चढ़ना चाहती है, इसीलिए वह सीढ़ियों पर चढ़ती है। आख़िरकार, चुहिया की इच्छाएँ भड़के हुए स्नायुओं के पैटर्न के अलावा और कुछ भी नहीं हैं। इससे क्या फ़र्क़ पड़ता है कि ये स्नायु इसलिए उत्तेजित होते हैं कि वे दूसरे स्नायुओं द्वारा उत्तेजित किए जा रहे होते हैं या प्रोफ़ेसर तलवार के रिमोट कंट्रोल से जुड़े प्रत्यारोपित इलेक्ट्रोडों से उत्तेजित किए जा रहे होते हैं? अगर आप चुहिया से इसके बारे में पूछें, तो वह आपसे कह सकती है, 'निश्चय ही मेरी अपनी स्वतन्त्र इच्छा-शक्ति है! देखो, मैं बाएँ मुड़ना चाहती हूँ और मैं बाएँ मुड़ जाती हूँ। मैं सीढ़ी पर चढ़ना चाहती हूँ और मैं सीढ़ी पर चढ़ जाती हूँ। क्या इससे यह बात साबित नहीं होती कि मेरी अपनी स्वतन्त्र इच्छा-शक्ति है?'

होमो सेपियन्स पर किए गए प्रयोग दर्शाते हैं कि चूहों की तरह ही इंसानों को भी मनमाने ढंग से परिचालित किया जा सकता है, और यह कि प्रेम, क्रोध, भय और अवसाद जैसी जटिल अनुभूतियों तक को उत्पन्न करना और उनका विनाश करना सम्भव है। संयुक्त राज्य अमेरिका की सेना ने हाल ही में लोगों के मस्तिष्कों में कम्प्यूटर चिप्स प्रत्यारोपित करने की पहल की है। उनको उम्मीद है कि इस पद्धति से अभिघातोत्तर तनाव विकार (पोस्ट-ट्रॅमेटिक स्ट्रेस डिसऑर्डर) के शिकार सैनिकों का इलाज किया जा सकेगा। यरुशलम के हदस्साह अस्पताल में डॉक्टरों ने तीव्र अवसाद से पीड़ित मरीज़ों की अनूठी चिकित्सा का तरीक़ा खोजा है। वे मरीज़ के मस्तिष्क में इलेक्ट्रोड प्रत्यारोपित कर देते हैं और उनको मरीज़ की छाती में प्रत्यारोपित किए गए सूक्ष्म कम्प्यूटर से जोड़ देते हैं। कम्प्यूटर का निर्देश मिलने पर ये इलेक्ट्रोड हल्के विद्युत प्रवाह संचारित करते हैं, जो मस्तिष्क के उन हिस्सों को पंगु बना देते हैं, जो अवसाद की वजह होते हैं। यह इलाज हमेशा तो कामयाब नहीं होता, लेकिन कुछ प्रकरण ऐसे भी हैं, जिनमें मरीज़ों ने बताया है

कि जो ख़ौफ़नाक ख़ालीपन उनको ज़िन्दगी भर सन्ताप देता रहा था, वह जैसे जादुई ढंग से ग़ायब हो गया।

एक मरीज़ ने शिकायत की कि इस कार्रवाई के कई महीनों बाद वह फिर बीमार पड़ गया और गम्भीर अवसाद का शिकार हो गया। परीक्षण के बाद डॉक्टरों ने समस्या की जड़ को ढूँढ निकाला: कम्प्यूटर की बैटरी की बिजली ख़त्म हो गई थी। जैसे ही उन्होंने बैटरी बदली, अवसाद तेज़ी-से ख़त्म हो गया।

स्पष्ट क़िस्म के नैतिक प्रतिबन्धों के चलते अध्येता केवल कुछ ख़ास प्रकरणों में ही इंसान के मस्तिष्कों में इलेक्ट्रोड प्रत्यारोपित करते हैं। इसलिए मनुष्यों पर सबसे ज़्यादा प्रासंगिक प्रयोग दख़लन्दाज़ी से मुक्त हेल्मट-नुमा उपकरणों (जिनको तकनीकी तौर पर ट्रांसक्रेनियल डायरेक्ट करेंट स्टिमुलेटर्स के नाम से जाना जाता है) का इस्तेमाल करते हुए किए गए हैं। इलेक्ट्रोड से युक्त हेल्मट खोपड़ी के बाहरी हिस्से से जुड़ा होता है। यह हल्के विद्युतचुम्बकीय प्रभावों को उत्पन्न करता है और उनको मस्तिष्क के विशिष्ट इलाक़ों की दिशा में भेजकर मस्तिष्क की चुनिन्दा गतिविधियों को उत्प्रेरित या बाधित करता है।

प्रशिक्षण-अवधि और लड़ाई के मैदान में भी सैनिकों की एकाग्रता को पैना करने और उनके कार्य-निष्पादनों में सुधार लाने की उम्मीद में अमेरिकी सेना इस तरह के हेल्मटों का इस्तेमाल कर रही है। मुख्य प्रयोग ह्यूमन इफ़ेक्टिवनेस डायरेक्ट्रेट द्वारा किए गए हैं, जो ओहियो में वायु सेना के एक सैन्य-संचालन-केन्द्र में स्थित है। इन प्रयोगों के नतीजे हालाँकि अभी किसी निर्णय पर नहीं ले जाते, और हालाँकि ट्रांसक्रेनियल स्टिमुलेटर्स के इर्द-गिर्द व्याप्त महिमामण्डन उसकी वास्तविक उपलब्धियों से काफ़ी बढ़-चढ़ कर किया गया है, तब भी कई अध्ययनों ने इस ओर संकेत किया है कि यह पद्धति सचमुच ड्रोन ऑपरेटरों, वायु-यातायात नियन्त्रकों, निशानेबाज़ों और उन दूसरे अमलों की संज्ञानात्मक योग्यताओं में इज़ाफ़ा कर सकती है, जिनके कर्तव्य उनसे लम्बे समय तक बेहद चौकस रहने की माँग करते हैं।

न्यू साइंटिस्ट के लिए काम करने वाली पत्रकार सैली अदी को निशानेबाज़ों के एक प्रशिक्षण-केन्द्र में जाकर स्वयं ही इसके प्रभावों की जाँच करने की इजाज़त दी गई थी। पहले उसने ट्रांसक्रेनियल हेल्मट पहने बिना ही युद्ध के मैदान के एक मॉडल में प्रवेश किया। सैली उस आतंक का बयान करती हैं, जिसने उनको उस वक़्त जकड़ लिया, जब उन्होंने देखा कि आत्मघाती बम बाँधे और राइफ़लों से लैस बीस मुखौटधारी आदमी सीधे उस पर टूट पड़े। सैली लिखती हैं, 'मैं हर किसी को गोली से मार गिराती हूँ, तभी न जाने कहाँ से तीन नए हमलावर प्रकट हो जाते हैं। मैं साफ़ तौर पर पर्याप्त तेज़ी से गोली नहीं चला रही हूँ, और आतंक तथा अदक्षता के चलते मैं लगातार अपनी राइफ़ल को जैम करती जा रही हूँ'। उसकी क़िस्मत से वे हमलावर उसके चारों तरफ़ लगे विशाल परदों पर

प्रक्षेपित वीडियो छवियाँ थीं। तब भी वह अपने दयनीय प्रदर्शन से इतनी निराश थी कि उसका मन अपनी राइफ़ल फेंककर युद्ध-क्षेत्र के उस मॉडल से भाग जाने को कर रहा था।

इसके बाद उसको हेल्मट से जोड़ा गया। वह बताती हैं कि उसको एक हल्की-सी झनझनाहट और मुँह में एक अजीब-से धातुई स्वाद के सिवाय कुछ भी असामान्य महसूस नहीं हुआ। तब भी उसने आभासी आतंकवादियों को चुन-चुनकर, उन पर एक के बाद एक इस तरह बिना किसी उत्तेजना के और रणनीतिपरक ढंग से गोलियाँ चलाना शुरू कर दिया, जैसे वह रैम्बो या क्लिंट ईस्टवुड हो। 'जैसे ही वे बीसों लोग अपनी बन्दूक़े घुमाते हुए मेरी ओर दौड़ते हैं, मैं धीरज के साथ अपनी राइफ़ल सँभालती हूँ, पलभर के लिए एक गहरी साँस लेने के लिए रुकती हूँ, और अपने सबसे क़रीब वाले पर गोली दाग देती हूँ, और इसके बाद शान्त भाव से अपने अगले लक्ष्य पर ध्यान लगाती हूँ। लगभग तुरन्त ही मुझे एक आवाज़ सुनाई देती है, जो मुझे पुकारती हुई कहती है, 'ओके, बहुत अच्छे'। उस मिथ्याभासी कक्ष की बत्तियाँ जल उठीं...। अपने चारों ओर बिछी लाषों के बीच की उसकी आकस्मिक ख़ामोशी में मैं सचमुच और भी हमलावरों के सामने आने की उम्मीद कर रही थी, और जब उस टीम के लोगों ने मेरे इलेक्ट्रोड हटाने शुरू कर दिए, मुझे कुछ निराशा होती है। मैं सिर उठाकर देखती हूँ और सोचती हूँ कि कहीं किसी ने घड़ी के काँटों को आगे तो नहीं घुमा दिया है। यह बात समझ से परे थी कि बीस मिनट कैसे बीत गए। 'मैंने कितने मार गिराए?' मैं असिस्टेंट से पूछती हूँ। वह मेरी ओर आश्चर्य से देखती है। 'सब के सब'।'

इस प्रयोग ने सैली की ज़िन्दगी को बदल डाला। बाद के दिनों में उसने पाया कि वह एक 'क़रीब-क़रीब आध्यात्मिक अनुभव से होकर गुज़री है...उस अनुभव को परिभाषित करने वाली चीज़ ज़्यादा चतुर होने या तेज़ी-से सीखने का अहसास नहीं था: जिस चीज़ ने मेरे पैरों तले की ज़मीन खिसका दी थी, वह यह थी कि मेरी ज़िन्दगी में पहली बार मेरे दिमाग़ की हर चीज़ ख़ामोश हो गई थी...। मेरा मस्तिष्क निस्सन्देह एक इल्हाम था। मेरे दिमाग़ में सहसा यह आश्चर्यजनक ख़ामोशी थी...मुझे उम्मीद है कि आप मेरे प्रति सहानुभूति बरतेंगे, जब मैं आपसे यह कहती हूँ कि जिस चीज़ की मैं हफ़्तों बाद तक बहुत ज़्यादा अपेक्षा करती रही थी, वह यह थी कि मैं वापस जाकर उन इलेक्ट्रोडों को अपने सिर से जोड़ लेना चाहती थी। मेरे मन में बहुत-से सवाल भी उठने लगे थे। मैं क्या थी सिवाय उन ग़ुस्सैल कठोर नोम्स (जादुई बौने की मूर्ति) के, जिन्होंने मेरे दिमाग़ को आबाद कर रखा है और जो मुझे इसलिए नाकामयाबी की ओर धकेलते हैं, क्योंकि मैं इतनी डरी हुई हूँ कि कोशिश ही नहीं करना चाहती? और वे आवाज़ें कहाँ से आती हैं?'

इनमें से कुछ आवाज़ें समाज के पूर्वाग्रहों को दोहराती हैं, कुछ हमारे निजी इतिहास को प्रतिध्वनित करती हैं, और कुछ हमारी जनेटिक विरासत को स्वर देती हैं। सैली कहती हैं कि ये सब आवाज़ें मिलकर एक अदृश्य क़िस्से को गढ़ती हैं, जो हमारे सचेत निर्णयों को

इस तरह आकार देता है कि हम उसको शायद ही कभी समझ पाते हैं। क्या होगा अगर हम अपने आन्तरिक एकालापों को नए सिरे से लिख सकें, या उनको अवसर आने पर पूरी तरह से ख़ामोश तक कर सकें?

अभी 2016 में ट्रांसक्रेनियल उद्दीपक अपनी शैशवावस्था में ही थे, और यह बात स्पष्ट नहीं है कि वे कभी परिपक्व प्रौद्योगिकी में बदल भी पाएँगे या नहीं। अभी तक तो वे थोड़े-से वक़्त के लिए ही बढ़ी हुई क्षमताएँ उपलब्ध कराते हैं, और सैली अदी का बीस मिनट का वह अनुभव पूरी तरह से एक अपवाद हो सकता है (या यहाँ तक कि वह कुख्यात छद्म चिकित्सा प्रभाव (प्लसीबो इफ़ेक्ट) का नतीजा भी हो सकता है)। ट्रांसक्रेनियल उद्दीपकों के ज़्यादातर प्रकाशित अध्ययन विशेष परिस्थतियों में कार्यरत लोगों के बहुत छोटे-से नमूनों पर आधारित हैं, और इसके दीर्घकालिक प्रभाव तथा ख़तरे अज्ञात हैं, लेकिन अगर यह प्रौद्योगिकी परिपक्व हो जाती है, या मस्तिष्क के विद्युत प्रवाह के ढाँचों को मनचाहा आकार देने की कोई नई पद्धतियाँ हाथ लग जाती हैं, तो ये मानव-समाजों और मनुष्यों के साथ क्या करेंगी?

लोग सिर्फ़ आतंकवादियों को ज़्यादा दक्षतापूर्वक ढंग से गोली से उड़ा देने भर के लिए ही नहीं, बल्कि नितान्त सांसारिक उदारवादी लक्ष्यों तक पहुँचने के लिए भी अपने मस्तिष्क के विद्युत सर्किटों को मनचाहे ढंग से परिचालित करेंगे। जैसे कि, ज़्यादा दक्षतापूर्वक अध्ययन और काम करने के लिए, ख़ुद को खेलों और रुचिकर कौतुकों में संलग्न रखने के लिए, और किसी ख़ास क्षण में उनको जो चीज़ रुचिकर लगती होगी, वह चाहे गणित हो या फुटबॉल हो, उस पर ख़ुद को एकाग्र करने योग्य बनाने के लिए। वैसे जब कभी इस क़िस्म के छलप्रयोग रोज़मर्रा की चीज़ बन जाएँगे, तब ग्राहकों की कल्पित स्वतन्त्र इच्छा-शक्ति ख़रीदे जाने लायक़ एक और उत्पाद में बदल जाएगी। आप पियानो बजाने में निपुणता हासिल करना चाहते हैं, लेकिन जब कभी उसका अभ्यास करने का वक़्त आता है, तो आप टेलिविज़न देखना पसन्द करते हैं? कोई बात नहीं: एक हेल्मट सिर पर रखिए, सही सॉफ़्टवेयर स्थापित करिए, और आप पूरी तरह से पियानो बजाने के लिए बेचैन हो उठेंगे।

आप प्रतिवाद करते हुए कह सकते हैं कि अपने दिमाग़ की पुकारों को ख़ामोश करने या उनको ऊँचा करने की क़ाबिलियत आपकी स्वतन्त्र इच्छा-शक्ति को कमज़ोर करने की बजाय उसको दरअसल और ज़्यादा मज़बूती प्रदान करेगी। फ़िलहाल, बाहरी व्यवधानों की वजह से आप अक्सर अपनी सबसे प्रीतिकर और सच्ची आकांक्षाओं को पूरा नहीं कर पाते हैं। मनोयोग हेल्मट (अटेंशन हेल्मट) और उससे मिलते-जुलते उपकरणों की मदद से आप अभिभावकों, पुरोहितों, शब्दों के हेरफेर में माहिर लोगों, विज्ञापनबाज़ों और पड़ोसियों की बाहरी आवाज़ों को आसानी-से ख़ामोश कर सकेंगे, और उस चीज़ पर ध्यान

केन्द्रित कर सकेंगे, जो आप चाहते हैं, लेकिन जैसा कि हम जल्दी ही देखेंगे, यह धारणा कि आपका एक इकलौता स्वत्व है और इसलिए आप अपनी प्रामाणिक आकांक्षाओं को पराई आवाज़ों से अलग कर सकते हैं, एक और उदारवादी मिथक है, जिसको ताज़ा वैज्ञानिक अनुसन्धान से तोड़ा जा चुका है।

मैं कौन हूँ?

विज्ञान न सिर्फ़ स्वतन्त्र इच्छा-शक्ति में उदारवादी विश्वास को खोखला करता है, बल्कि व्यक्तिवाद में आस्था को भी खोखला करता है। उदारवादी मानते हैं कि हमारे पास एक अद्वितीय और अविभाज्य स्वत्व होता है। इंडिविजुअल (individual) होने का अर्थ है कि मैं इन-डिविजुअल (in-dividual) हूँ। हाँ, मेरी काया लगभग 37 ट्रिलियन कोशिकाओं से निर्मित है, और हर दिन मेरी काया और मेरा दिमाग़ अन्तहीन उलट-फेरों और रूपान्तरणों से गुज़रते हैं। तब भी अगर मैं सचमुच अपनी ओर ध्यान देता हूँ और अपने साथ सम्पर्क क़ायम करने की कोशिश करता हूँ, तो निश्चित तौर पर मुझे अपनी अन्दरूनी गहराई में एक अद्वितीय, स्पष्ट और प्रामाणिक आवाज़ सुनने को मिलती है, जो मेरा वास्तविक स्वत्व है, और जो विश्व में सारे अर्थ और प्रामाणिकता का स्रोत है। उदारवाद का कोई मतलब तभी है, जब मेरे पास एक - और सिर्फ़ एक - सच्चा स्वत्व हो, क्योंकि अगर मेरी एक से ज़्यादा प्रामाणिक आवाज़ें हुईं, तो मैं यह कैसे जान पाऊँगा कि मतदान केन्द्र, सुपरमार्केट और विवाह के बाज़ार में मुझे किस आवाज़ पर ध्यान देना चाहिए?

लेकिन पिछले कुछ दशकों के दौरान जैविक विज्ञान इस नतीजे पर पहुँच चुके हैं कि यह उदारवादी क़िस्सा एक विशुद्ध कपोल-कल्पना है। अद्वितीय, प्रामाणिक स्वत्व में उतनी ही वास्तविकता है, जितनी वह अमर आत्मा, सान्ता क्लॉज़ और ईस्टर बन्नी में है। अगर मैं वाक़ई अपनी अन्दरूनी गहराइयों में झाँककर देखता हूँ, तो जिस दिखाऊ एकात्मकता को मैं स्वाभाविक मानकर चलता हूँ, वह उन परस्पर टकराती आवाज़ों के शोर में विलीन हो जाती है, जिनमें से कोई भी आवाज़ 'मेरा वास्तविक स्वत्व' नहीं है। मनुष्य अविभाज्य (individual) नहीं हैं। वे 'विभाज्य' (dividual) हैं।

मनुष्य का मस्तिष्क दो गोलार्धों से मिलकर बना है, जो एक मोटे स्नायुविक तार से जुड़े होते हैं। प्रत्येक गोलार्ध शरीर के विपरीत हिस्से को नियन्त्रित करता है। दायाँ गोलार्ध शरीर के बाएँ हिस्से को नियन्त्रित करता है, बाएँ दृष्टि-क्षेत्र की सूचनाएँ प्राप्त करता है और वही बाएँ हाथ और बाएँ पैर को संचालित करता है - और बाएँ गोलार्ध की गतिविधि इसके विपरीत होती है। यही कारण है कि जिन लोगों के दाएँ हिस्से में पक्षाघात होता है, वे कभी-कभी अपने शरीर के बाएँ हिस्से को नज़रअन्दाज़ करते हैं (जैसे कि वे अपने सिर के सिर्फ़

दाएँ हिस्से के बालों में कंधी करते हैं, या अपनी तश्तरी के सिर्फ़ दाएँ हिस्से में रखा खाना खाते हैं)।

इन दो गोलार्घों के बीच भावनात्मक और संज्ञानात्मक भेद भी होते हैं, हालाँकि यह विभाजन एकदम साफ़ नहीं होता। कुछ संज्ञानात्मक गतिविधियों में दोनों गोलार्ध शामिल होते हैं, लेकिन दोनों की भूमिका बराबर की नहीं होती। उदाहरण के लिए, ज़्यादातर मामलों में बायाँ गोलार्ध बोलने और तार्किक विचार करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है, जबकि दायाँ गोलार्ध स्थलपरक सूचना को संसाधित (प्रॉसेसिंग) करने में ज़्यादा प्रबल होता है।

दोनों गोलार्घों के रिश्ते को समझने की दिशा में हुई बहुत-सी महत्त्वपूर्ण खोजें मिरगी के मरीज़ों के अध्ययन पर आधारित हैं। मिरगी के गम्भीर प्रकरणों में, विद्युत तूफ़ानों (इलेक्ट्रिकल स्टॉर्म्स) की शुरुआत मस्तिष्क के एक हिस्से से होती है, लेकिन ये तूफ़ान जल्दी ही मस्तिष्क के दूसरे हिस्सों में फैलकर तीव्र दौरे की वजह बन जाते हैं। इन दौरों के वक़्त मरीज़ अपने शरीरों पर अपना नियन्त्रण खो देते हैं, और बार-बार पर पड़ने वाले दौरे उनको कोई रोज़गार करने या सामान्य जीवन जीने से वंचित कर देते हैं। बीसवीं सदी के मध्य में, जब सारी दूसरी चिकित्साएँ नाकामयाब हो गईं, तो डॉक्टर इस समस्या की तीव्रता को कम करने के लिए दोनों गोलार्घों को जोड़ने वाले मोटे स्नायुविक तार को काट दिया करते थे, ताकि एक गोलार्ध में उठने वाले विद्युतीय तूफ़ान दूसरे गोलार्ध में प्रवेश न कर सकें। मस्तिष्क विज्ञानियों के लिए ये मरीज़ विस्मयकारी सूचनाओं की सोने की खदान जैसे थे।

विभाजित मस्तिष्कों वाले इन मरीज़ों के कुछ सर्वाधिक उल्लेखनीय अध्ययन प्रोफ़ेसर रोजर वॉल्कॉट, जिनको देहक्रियाविज्ञान और चिकित्साशास्त्र में अभिनव खोजों के लिए 1981 का नोबेल पुरस्कार प्रदान किया गया था, और उनके छात्र प्रोफ़ेसर माइकेल एस. गज़्ज़ानिगा द्वारा किया गया था। इनमें से एक अध्ययन एक किशोर लड़के पर केन्द्रित था। उस लड़के से पूछा गया कि बड़ा होने पर वह क्या बनना चाहेगा। लड़के ने जवाब दिया: नक़्शानवीस। यह जवाब उसके मस्तिष्क के बाएँ गोलार्ध द्वारा उपलब्ध कराया गया था, जो तार्किक विचार करने और बोलने में निर्णायक भूमिका निभाता है, लेकिन इस लड़के के दाएँ गोलार्ध में वाणी का एक और सक्रिय केन्द्र था, जो वाचिक भाषा को तो नियन्त्रित नहीं कर सकता था, लेकिन जो अक्षरों की गोटियों (स्क्रैबल टाइल्स) का इस्तेमाल कर शब्दों को गढ़ सकता था। अध्येता यह जानने को उत्सुक थे कि उस लड़के का दायाँ गोलार्ध क्या कहेगा। इसलिए उन्होंने मेज़ पर अक्षरों की गोटियाँ बिखरा दीं, और काग़ज़ के एक टुकड़े पर लिखा: 'बड़े होने पर तुम क्या करना चाहोगे?' उन्होंने काग़ज़ का वह टुकड़ा लड़के के बाएँ दृष्टि-क्षेत्र की कगार पर रख दिया। चूँकि दायाँ गोलार्ध वाचिक भाषा

का इस्तेमाल नहीं कर सकता था, इसलिए लड़के ने कुछ नहीं कहा, लेकिन उसका दायाँ हाथ मेज़ पर तेज़ी-से हरक़त करते हुए तब तक गोटियों को जमाता रहा, जब तक कि उससे 'ऑटोमोबाइल रेस' शब्द तैयार नहीं हो गए। भयानक।

ऐसे ही ख़ौफ़नाक व्यवहार का परिचय दूसरे विश्व युद्ध के एक बुज़ुर्ग सैनिक डब्ल्यू. जे. ने दिया था। डब्ल्यू. जे. का प्रत्येक हाथ एक भिन्न गोलार्ध से नियन्त्रित था। चूँकि दोनों गोलार्ध एक-दूसरे के सम्पर्क में नहीं थे, इसलिए कभी-कभी ऐसा होता था कि उसका दायाँ हाथ दरवाज़ा खोलने के लिए बढ़ता, और बायाँ हाथ बीच में ही दख़लन्दाज़ी करते हुए उस दरवाज़े को झटके-से बन्द करने की कोशिश करता।

एक अन्य प्रयोग के तहत गज़्ज़ानिगा और उनके साथियों ने बाईं ओर के मस्तिष्क - जो वाणी की भूमिका निभाता है - के सामने चूज़े के पंजे की एक तसवीर उभारी और इसी के साथ-साथ दाएँ मस्तिष्क के सामने एक बर्फ़ीले भूदृश्य की तसवीर उभारी। जब पी. एस. नामक उस मरीज़ से पूछा गया कि उसने क्या देखा, तो उसने जवाब दिया 'चूज़े का पंजा'। गज़्ज़ानिगा ने इसके बाद पी. एस. के सामने कई सारी तसवीरें पेश करते हुए उससे पूछा कि उसने जो कुछ देखा था, उससे उनमें से कौन-सी तसवीर सबसे ज़्यादा मेल खाती है। मरीज़ के दाएँ हाथ (जो उसके बाएँ मस्तिष्क से नियन्त्रित था) ने चूज़े की तसवीर की तरफ़ तो इशारा किया, लेकिन इसी के साथ-साथ उसका बायाँ हाथ बढ़ा और उसने बर्फ़ हटाने के बेलचे की तरफ़ इशारा किया। गज़्ज़ानिगा ने तब पी. एस. से ज़ाहिर-सा सवाल पूछा: 'आपने चूज़े और बेलचे, दोनों की तरफ़ इशारा क्यों किया?' पी. एस. ने जवाब दिया: ' ओह, चूज़े के पंजे का रिश्ता चूज़े से है, और चूज़ों के दड़बे की सफ़ाई के लिए हमें बेलचे की ज़रूरत पड़ती है'।

यहाँ क्या हुआ था? वाणी को नियन्त्रित करने वाले बाएँ मस्तिष्क के पास बर्फ़ के दृश्य के बारे में कोई सूचना नहीं थी, और इसलिए वह वास्तव में यह नहीं जानता था कि उसके बाएँ हाथ ने बेलचे की तरफ़ इशारा क्यों किया था। इसलिए उसने एक विश्वसनीय चीज़ ईजाद कर ली। इस प्रयोग को कई बार दोहराने के बाद गज़्ज़ानिगा इस नतीजे पर पहुँचे कि मस्तिष्क का बायाँ गोलार्ध सिर्फ़ हमारी वाचिक योग्यताओं का आधार नहीं है, बल्कि वह एक अन्दरूनी व्याख्याकार भी है, जो सत्य का आभास देने वाले क़िस्सों को गढ़ने के लिए आंशिक सुराग़ों का इस्तेमाल करते हुए निरन्तर हमारे जीवन के अर्थ को समझने की कोशिश करता है।

एक और भी प्रयोग के तहत ग़ैर-वाचिक दाएँ गोलार्ध के समक्ष एक पोर्नोग्राफ़िक छवि पेश की गई। मरीज़ ने शरमाते और फूहड़ ढंग से हँसते हुए प्रतिक्रिया की। 'क्या देखा आपने?' उन शरारती अध्येताओं ने पूछा। 'कुछ भी नहीं, महज़ रोशनी की एक कौंध,' बाएँ गोलार्ध ने कहा, और मरीज़ अपने चेहरे पर हाथ रखते हुए तुरन्त उसी तरह हँसा। 'तो

फिर आप हँस क्यों रहे हैं?' उन लोगों ने पूछा। भौंचक बाएँ गोलार्ध का व्याख्याकार - कोई तर्कसंगत स्पष्टीकरण देने के लिए जूझता हुआ - बोला कि उस कमरे की एक मशीन बहुत मज़ेदार लग रही थी।

यह कुछ ऐसा है मानो सीआईए संयुक्त राज्य अमेरिका के स्टेट डिपार्टमेंट की जानकारी के बग़ैर पाकिस्तान में ड्रोन हमला कर देता है। जब एक पत्रकार स्टेट डिपार्टमेंट के अधिकारियों से इसके बारे में पूछताछ करता है, तो वे कोई विश्वसनीय-सी लगती सफ़ाई गढ़ते हैं। वास्तव में, शब्दों के हेरफेर में माहिर उन लोगों के पास कोई सुराग़ नहीं होता कि उस हमले का आदेश क्यों दिया गया था, इसलिए वे महज़ कोई स्पष्टीकरण गढ़ लेते हैं। इसी से मिलती-जुलती प्रक्रिया सिर्फ़ विभाजित मस्तिष्क वाले मरीज़ों द्वारा ही नहीं, बल्कि सारे मनुष्यों द्वारा प्रयोग में लाई जाती है। बहुत बार मेरा निजी सीआईए मेरे स्टेट डिपार्टमेंट से मंज़ूरी लिए बिना या उसकी जानकारी के बिना काम करता है, और फिर मेरा स्टेट डिपार्टमेंट कोई ऐसा क़िस्सा गढ़ लेता है, जो मुझको श्रेष्ठतम सम्भव शक्ल में पेश करता है। अक्सर ही ऐसा भी होता है कि स्वयं इस स्टेट डिपार्टमेंट को अपने ही द्वारा गढ़ी गई इन विशुद्ध कल्पनाओं पर यक़ीन हो जाता है।

ऐसे ही नतीजों पर स्वभावपरक अर्थशास्त्र (बिहेव्यरल इकॅनॉमिक्स) के वे विशेषज्ञ पहुँचे हैं, जो यह जानना चाहते हैं कि लोग आर्थिक निर्णय किस तरह लेते हैं। या और भी सटीक ढंग से कहें, तो जो इस तरह के निर्णय लेते हैं। वह कौन है, जो मर्सडीज़ ख़रीदने की बजाय टोयोटा ख़रीदने का निर्णय लेता है, थाईलैंड की बजाय पेरिस में छुट्टियाँ बिताने का निर्णय लेता है, शंघाई के शेयर बाज़ार की बजाय दक्षिण कोरियाई ट्रैज़री बॉण्ड्स में निवेश करने का निर्णय लेता है? ज़्यादातर प्रयोगों से ऐसे संकेत मिले हैं कि इनमें से कोई भी निर्णय लेने वाला कोई एकल स्वत्व नहीं होता। इसकी बजाय ये निर्णय विभिन्न और अक्सर परस्पर टकराती आन्तरिक सत्ताओं के बीच रस्साकशी का नतीजा होते हैं।

ऐसा ही एक नवाचारी प्रयोग डैनियल काह्नेमेन ने किया था, जिनको अर्थशास्त्र का 2002 का नोबेल पुरस्कार प्राप्त हुआ था। काह्नेमेन ने स्वैच्छिक भागीदारों के एक समूह से तीन हिस्सों में होने वाले एक प्रयोग में शामिल होने का आग्रह किया। प्रयोग के 'संक्षिप्त' हिस्से के तहत उन स्वैच्छिक भागीदारों ने 140ब तापमान से युक्त पानी से भरे एक बर्तन में एक मिनट तक हाथ डाला। इतना तापमान दर्दनाक होने की सीमा तक अप्रिय होता है। प्रयोग में साठ सेकेंड बाद उनसे अपने हाथ बर्तन से बाहर निकालने को कहा गया। प्रयोग के 'बड़े' हिस्से के तहत, स्वैच्छिक भागीदारों ने अपना दूसरा हाथ 140ब तापमान के पानी से ही भरे एक अन्य बर्तन में डाला, लेकिन साठ सेकेंड बाद उस बर्तन के पानी को चुपचाप गर्म करते हुए क्रमषः 150ब तक बढ़ा दिया गया। तीस सेकेंड बाद उनसे हाथ बाहर निकालने को कहा गया। कुछ स्वैच्छिक भागीदारों ने 'संक्षिप्त' हिस्से में पहले भाग लिया

था, जबकि दूसरों ने ‘बड़े’ हिस्से से शुरुआत की थी। दोनों ही प्रकरणों में, दोनों हिस्सों के पूरा होने के ठीक सात मिनट बाद प्रयोग का सबसे महत्त्वपूर्ण हिस्सा शुरू हुआ। स्वैच्छिक भागीदारों से दोनों में से किसी एक हिस्से को दोहराने को कहा गया, और वे किस हिस्से को चुनना चाहते थे, इसका फ़ैसला उन पर छोड़ दिया गया। पूरे 80 प्रतिशत लोगों ने प्रयोग के ‘बड़े’ हिस्से को कम दर्दनाक हिस्से की तरह याद करते हुए चुना।

यह ठण्डे पानी का प्रयोग बहुत आसान है, लेकिन इसका निहितार्थ उदारवादी विश्वदृष्टि के मर्म को हिला देने वाला है। यह हमारे भीतर कम से कम दो स्वत्वों की मौजूदगी को उजागर करता है: अनुभव करने वाला स्वत्व और बयान करने वाला स्वत्व। अनुभवकर्ता स्वत्व हमारी क्षण-प्रति-क्षण की चेतना है। इस अनुभवकर्ता स्वत्व के सन्दर्भ में, ज़ाहिर है कि ठण्डे पानी के इस प्रयोग का ‘बड़ा’ हिस्सा बदतर था। पहले आप साठ सेकेंड तक पानी को 14०c तापमान पर अनुभव करते हैं, जो उतना ही अप्रिय है जितना आपने ‘संक्षिप्त’ हिस्से में अनुभव किया था, और फिर आपको तीस और सेकेंड तक 15०c तापमान को झेलना पडता़ है, जो कि किंचित कम बुरा है, लेकिन वह सुखद किसी भी तरह से नहीं है। अनुभवकर्ता स्वत्व के लिए यह मुमकिन नहीं है कि एक बेहद अप्रिय अनुभव में हल्का-सा सुखद अनुभव जोड़ देने से उसके लिए पूरा का पूरा प्रसंग आकर्षक बन जाए।

लेकिन, यह अनुभवकर्ता स्वत्व कुछ भी याद नहीं रखता। यह कोई क़िस्से नहीं कहता और जब बड़े फ़ैसले लेने का वक़्त आता है, तो इससे लगभग कभी भी कोई सलाह नहीं ली जाती। स्मृति को जाग्रत करने, क़िस्से कहने, और बड़े फ़ैसले लेने जैसी तमाम चीज़ों का एकाधिकार हमारे भीतर मौजूद एक नितान्त भिन्न सत्ता के पास होता है: बयानकर्ता स्वत्व के पास। यह बयानकर्ता स्वत्व गज़्ज़ानिगा के व्याख्याकार बाएँ-मस्तिष्क जैसा है। ये हमेशा अतीत के बारे में क़िस्से गढ़ने और भविष्य की योजनाएँ तैयार करने में व्यस्त रहता है। हर पत्रकार, कवि और राजनेता की तरह यह बयानकर्ता स्वत्व संक्षिप्त रास्ते (शॉर्ट कट) अपनाता है। ये सब कुछ बयान नहीं करता, और आमतौर से सिर्फ़ चरमोत्कर्ष के क्षणों तथा अन्तिम निष्कर्षों का इस्तेमाल करते हुए क़िस्से बुनता है। समूचे अनुभव का मूल्य अन्तिम निष्कर्षों के साथ चरमोत्कर्षों का औसत बैठाने से निर्धारित होता है। उदाहरण के लिए, ठण्डे पानी के प्रयोग के संक्षिप्त हिस्से का मूल्यांकन करते हुए बयानकर्ता स्वत्व सबसे बुरे हिस्से (जिसमें पानी बहुत ठण्डा था) और आख़िरी क्षण (जब पानी अभी भी बहुत ठण्डा था) के बीच का औसत निकालता है और इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि ‘पानी बहुत ठण्डा था’। यह बयानकर्ता स्वत्व यही काम प्रयोग के बड़े हिस्से के सन्दर्भ में भी करता है। ये सबसे बुरे हिस्से (जब पानी बहुत ठण्डा था) और आख़िरी क्षण (जब पानी उतना ठण्डा नहीं था) के बीच का औसत निकालता है और इस निष्कर्ष

पर पहुँचता है कि 'पानी कुछ गर्म था'। अनिवार्यतः, बयानकर्ता स्वत्व अवधि के प्रति अन्धा होता है, क्योंकि वह दोनों हिस्सों को अलग करने वाली समय की लम्बाई को कोई अहमियत नहीं देता। इसलिए जब इसको दोनों में से किसी एक को चुनना होता है, तो यह बड़े हिस्से को दोहराना पसन्द करता है, उस हिस्से को जिसमें 'पानी किसी हद तक गर्म था'।

हर बार जब भी यह बयानकर्ता स्वत्व हमारे अनुभवों का मूल्यांकन करता है,तो यह उनकी अवधि को निकाल देता है और 'पराकाष्ठा-और-अन्त का नियम' को अपनाता है - वह सिर्फ़ चरम क्षण और अन्तिम क्षण को याद करता है, और इनके औसत के आधार पर समूचे अनुभव का आकलन करता है। हमारे सारे व्यावहारिक फ़ैसलों पर इसका दूरगामी प्रभाव पड़ता है। काह्नेमेन ने अनुभवकर्ता स्वत्व और बयानकर्ता स्वत्व की पड़ताल की शुरुआत 1990 के दशक में की थी, जब उन्होंने यूनिवर्सिटी ऑफ़ टोरेंटो के डोनाल्ड रेडेलमियर के साथ मिलकर, कोलोनोस्कोपी के मरीज़ों का अध्ययन किया था। कोलोनोस्कोपी परीक्षणों में आँत सम्बन्धी विभिन्न बीमारियों का पता लगाने के लिए गुदा के रास्ते आँतों में एक छोटा-सा कैमरा प्रविष्ट कराया जाता है। यह कोई अच्छा अनुभव नहीं होता। डॉक्टर जानना चाहते थे कि कम से कम तकलीफ़देह ढंग से इस प्रक्रिया को कैसे सम्पन्न किया जाए। क्या उनको कोलोनोस्कोपी की गति को तेज़ करके मरीज़ को कम अवधि में ज़्यादा तकलीफ़ पहुँचने देना चाहिए, या उनको ज़्यादा धीमी गति और सावधानी के साथ काम करना चाहिए?

इस जिज्ञासा का जवाब पाने के लिए काह्नेमेन और रेडेलमियर ने 154 मरीज़ों से कोलोनोस्कोपी के दौरान एक मिनट के अन्तरालों में अपनी पीड़ा के स्तर की जानकारी देने का आग्रह किया। उन्होंने 0 से 10 तक के एक पैमाने का इस्तेमाल किया, जहाँ 0 का मतलब था ज़रा भी दर्द नहीं और 10 का मतलब था असहनीय दर्द। जब कोलोनोस्कोपी समाप्त हो गई, तो मरीज़ों से परीक्षण के 'दर्द के समग्र स्तर' की श्रेणी, और इसी के साथ 0 से 10 के पैमाने पर उसकी श्रेणी निर्धारित करने को कहा गया। हम उम्मीद कर सकते थे कि समग्र श्रेणी-निर्धारण ने मिनट-दर-मिनट रिपोर्टों के संग्रह को प्रतिबिम्बित किया होगा, यानी जितनी देर तक कोलोनोस्कोपी चली होगी, और जितना ज़्यादा दर्द मरीज़ों ने महसूस किया होगा, दर्द का समग्र स्तर उतना ही अधिक होगा, लेकिन वास्तविक नतीजे भिन्न थे।

जिस तरह ठण्डे पानी के प्रयोग के सन्दर्भ में हुआ था, उसी तरह यहाँ भी दर्द के समग्र स्तर ने अवधि की उपेक्षा की और उसकी बजाय पराकाष्ठा-और-अन्त नियम को प्रतिबिम्बित किया। एक कोलोनोस्कोपी आठ मिनट तक चली, सबसे बुरे क्षण में मरीज़ ने दर्द के स्तर के 8 होने की सूचना दी, और आख़िरी मिनट में उसने दर्द के स्तर के 7 होने की

सूचना दी। जब परीक्षण समाप्त हो गया, तब इस मरीज़ ने अपने दर्द के समग्र स्तर को 7.5 की श्रेणी में रखा। एक अन्य कोलोनोस्कोपी चौबीस मिनट तक चली। इस बार भी दर्द का चरम स्तर 8 था, लेकिन परीक्षण के एकदम आख़िरी मिनट में मरीज़ ने इस स्तर के 1 होने की सूचना दी। इस मरीज़ ने अपने समग्र दर्द को 4.5 की श्रेणी में रखा। इस बात ने कि यह कोलोनोस्कोपी तीन गुना लम्बी चली थी, और नतीजतन उसने कुल मिलाकर कहीं ज़्यादा दर्द झेला था, उसकी स्मृति पर कोई प्रभाव नहीं डाला। बयानकर्ता स्वत्व अनुभवों को संचित नहीं करता - वह उनका औसत निकालता है।

इसलिए मरीज़ किस चीज़ को प्राथमिकता देते हैं: एक संक्षिप्त और चुभने वाली कोलोनोस्कोपी को, या एक लम्बी और सावधानीपूर्वक की गई कोलोनोस्कोपी को? इस सवाल का कोई एक जवाब नहीं है, क्योंकि मरीज़ के कम से कम दो स्वत्व होते हैं और उनकी दिलचस्पियाँ भिन्न होती हैं। अगर आप अनुभवकर्ता स्वत्व से पूछें, तो वह सम्भवतः एक संक्षिप्त कोलोनोस्कोपी का चुनाव करे, लेकिन अगर आप बयानकर्ता स्वत्व से पूछें, तो वह लम्बी कोलोनोस्कोपी को पसन्द करेगा, क्योंकि उसे सबसे बुरे क्षण और आख़िरी क्षण के बीच के औसत की ही याद रहती है। दरअसल, बयानकर्ता स्वत्व के दृष्टिकोण से, डॉक्टर को हर परीक्षण के एकदम अन्त में फीके दर्द के कुछ पूरी तरह से निरर्थक मिनटों को शामिल करना चाहिए, क्योंकि यह समूची स्मृति को बहुत कम पीड़ामय बना देगी।

शिशु-चिकित्सक इस युक्ति को अच्छी तरह से समझते हैं। इसी तरह से पशुचिकित्सक भी समझते हैं। बहुत-से डॉक्टर अपने क्लीनिक में स्वादिष्ट खाद्य पदार्थ से भरे मर्तबान रखते हैं, और बच्चों (या कुत्तों को) तकलीफ़देह इंजेक्शन देने या कोई कष्टप्रद चिकित्सकीय जाँच करने के बाद, इनमें से कुछ खाद्य पदार्थ उनको थमा देते हैं। जब बयानकर्ता स्वत्व डॉक्टर के यहाँ गए होने को याद करता है, तो इस यात्रा के अन्त के वे दस सुखद क्षण कई मिनटों की बेचैनी और पीड़ा को मिटा देते हैं।

विकासवाद ने इस युक्ति को शिशु-चिकित्सकों से युगों पहले ढूँढ लिया था। शिशु को जन्म देते समय बहुत-सी स्त्रियाँ जिस असहनीय यातना से गुज़रती हैं, उसको देखते हुए किसी को लग सकता है कि इस पीड़ा से एक बार गुज़र चुकने के बाद कोई भी स्वस्थ दिमाग़ वाली स्त्री यह काम फिर करने पर राज़ी नहीं होगी, लेकिन प्रसव-पीड़ा के अन्त में और उसके बाद के दिनों में हार्मोनल तन्त्र कॉर्टीसोल और बीटा-एंडोर्फिन्स का रिसाव करता है, जो उस पीड़ा को कम कर देता है और राहत का तथा कभी-कभी उल्लास का अहसास पैदा कर देता है। इसके अतिरिक्त, शिशु के प्रति बढ़ता हुआ प्रेम और दोस्तों, परिवार के सदस्यों की वाहवाही, मज़हबी रूढ़ियाँ और राष्ट्रवादी प्रचार मिलजुलकर प्रसव-पीड़ा के यातनादायी प्रभाव को एक सकारात्मक स्मृति में बदल देते हैं।

40. शिशु ईसा को गोद में लिए मैरी की एक प्रतिष्ठित छवि। ज़्यादातर संस्कृतियों में प्रसव को एक सदमे की बजाय एक अद्भुत अनुभव की तरह चित्रित किया गया है।

तेल अवीव के रॉबिन चिकित्सा-केन्द्र में किए गए एक अध्ययन से यह बात सामने आई कि प्रसव-पीड़ा की स्मृति मुख्यतः चरम और अन्तिम क्षणों की पीड़ा को प्रतिबिम्बित करती है, जबकि उसकी समग्र अवधि का कोई भी प्रभाव नहीं होता। एक अन्य अनुसन्धान परियोजना के तहत 2,428 स्वीडिश स्त्रियों से शिशु को जन्म देने के दो महीने बाद प्रसव-पीड़ा की उनकी समृति को बयान करने को कहा गया। इनमें से नब्बे प्रतिशत ने

इस अनुभव को सकारात्मक या अत्यन्त सकारात्मक बताया। वे ज़रूरी तौर पर पीड़ा को भूली नहीं थीं। इनमें से 28.5 प्रतिशत ने इसको निकृष्टतम पीड़ा बताया था, लेकिन इस चीज़ ने उनको इसका एक सकारात्मक अनुभव के रूप में मूल्यांकन करने से नहीं रोका। बयानकर्ता स्वत्व एक तीखी कैंची और एक मोटे काले मार्कर हाथ में लेकर हमारे अनुभवों की बारीक़ी से जाँच करता है। यह डर के कम से कम कुछ क्षणों को काट देता है, और अभिलेखागार में एक सुखद अन्त से युक्त कहानी को पेश करता है।

हमारे जीवन के ज़्यादातर निर्णायक महत्त्व रखने वाले चुनाव - जीवन-साथी के, आजीविका के, आवास के और छुट्टियाँ मनाने के चुनाव - हमारे बयानकर्ता स्वत्व द्वारा किए जाते हैं। मान लीजिए कि आपके पास छुट्टियाँ बिताने के दो सम्भावित विकल्प हैं। आप जेम्सटाउन, वर्जीनिया जाकर उस ऐतिहासिक उपनिवेशवादी नगर का भ्रमण कर सकते हैं, जहाँ 1607 में उत्तरी अमेरिका के भू-भाग पर पहला अँग्रेज़ी उपनिवेश स्थापित किया गया था। दूसरा विकल्प है, आप छुट्टियाँ बिताने का अपना सबसे प्रिय सपना पूरा कर सकते हैं, चाहे वह अलास्का में ट्रैकिंग करने का हो, फ़्लोरिडा में धूप-स्नान करने का हो, या लॉस वेगास में सेक्स, ड्रग्स और जुएबाज़ी की स्वच्छन्द बाकनेलिया (जश्न) में संलग्न होने का हो, लेकिन एक चेतावनी भी है: अगर आप उस तरह छुट्टियाँ बिताने का चुनाव करते हैं, जिसका आप ख़्वाब देख रहे हैं, तो आप घर वापसी पर हवाई जहाज़ में सवार होने के पहले एक ऐसी गोली ज़रूर लें, जो उन छुट्टियों की आपकी याद को मिटा दे। जो कुछ वेगास में हुआ, वह हमेशा वेगास में ही बना रहेगा। आप कौन-सा पर्यटन चुनेंगे? ज़्यादातर लोग उपनिवेशवादी जेम्सटाउन का चुनाव करेंगे, क्योंकि ज़्यादातर लोग अपना क्रेडिट कार्ड बयानकर्ता स्वत्व को सौंप देते हैं, जिसकी दिलचस्पी सिर्फ़ क़िस्सों में होती है और ऐसे अत्यन्त अद्भुत अनुभवों तक में उसकी कोई दिलचस्पी नहीं होती, जिनको वह याद न रख सकता हो।

सच कहें तो, अनुभवकर्ता स्वत्व और बयानकर्ता स्वत्व एक-दूसरे से पूरी तरह जुदा नहीं होते, बल्कि घनिष्ट रूप से आपस में गुँथे होते हैं। बयानकर्ता स्वत्व अपने क़िस्सों के लिए हमारे अनुभवों का इस्तेमाल महत्त्वपूर्ण (लेकिन एकमात्र नहीं) कच्चे माल की तरह करता है। बदले में ये क़िस्से उस चीज़ को आकार देते हैं जिसे अनुभवकर्ता स्वत्व वास्तव में महसूस करता है। रमज़ान के समय रोज़े रखते समय, किसी चिकित्सकीय जाँच की तैयारी के सिलसिले में उपवास करते समय, और पैसों के अभाव में भोजन न कर पाने के समय हम भूख को अलग-अलग तरह से महसूस करते हैं। बयानकर्ता स्वत्व द्वारा हमारी भूख के लिए जो अलग-अलग अर्थ प्रदान किए जाते हैं, वे बहुत भिन्न क़िस्म के वास्तविक अनुभवों की रचना करते हैं।

इसके अतिरिक्त, अनुभवकर्ता स्वत्व अक्सर इतना प्रबल होता है कि वह बयानकर्ता स्वत्व की श्रेष्ठतम ढंग से तैयार की गई योजनाओं को ध्वस्त कर देता है। मसलन, मैं नए साल पर संकल्प कर सकता हूँ कि अब से मैं सन्तुलित आहार लूँगा और हर दिन जिम जाया करूँगा। इस तरह के महान फ़ैसलों पर बयानकर्ता स्वत्व का एकाधिकार होता है, लेकिन अगले हफ़्ते जब जिम जाने का समय आता है, तो अनुभवकर्ता स्वत्व का वर्चस्व क़ायम हो जाता है। मेरा मन जिम जाने को नहीं होता, और इसकी बजाय मैं पिज़्ज़ा का ऑर्डर देता हूँ, सोफ़े पर बैठ जाता हूँ और टेलिविज़न चालू कर देता हूँ।

तब भी, हममें से ज़्यादातर लोग स्वयं को बयानकर्ता स्वत्व की तरह देखते हैं। जब हम कहते हैं 'मैं', तो हमारा अभिप्राय उस कहानी से होता है, जो हमारे दिमाग़ में होती है, हमारा अभिप्राय अनुभवों के उस वेगवान प्रवाह से नहीं होता, जिससे हम गुज़र रहे होते हैं। हम उस अन्दरूनी व्यवस्था के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं, जो जीवन की उन्मत्त अराजकता को लेकर उससे ऐसी कहानियाँ बुनती है, जो ऊपरी तौर पर तर्कसंगत और सिलसिलेवार प्रतीत होती हैं। इससे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता कि उनका कथानक झूठों और रिक्तियों से भरा हुआ होता है, और बार-बार नए सिरे से लिखा गया होता है, जिससे कि आज की कहानी बीते कल की कहानी को साफ़ तौर पर काट रही होती है। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि हम हमेशा यह अहसास बनाए रखते हैं कि जन्म से लेकर मृत्यु तक (और शायद उसके परे भी) हमारी एक एकल अपरिवर्तनीय पहचान होती है। यह चीज़ इस सन्देहास्पद उदारवादी विश्वास को जन्म देती है कि मैं एक व्यक्ति (इंडिविज़ुअल) हूँ, और यह कि मेरी एक ऐसी स्पष्ट और सुसंगत आन्तरिक आवाज़ है, जो समूचे विश्व को अर्थ उपलब्ध करती है।

जीवन का अर्थ

बयानकर्ता स्वत्व जॉर्ज लुइस बोर्गेस की कहानी 'अ प्राब्लम' का मुख्य पात्र है। यह कहानी मिगेल सर्वान्तिस के प्रसिद्ध उपन्यास डॉन क़्विहोते (Don Quixote) के इसी नामधारी नायक के बारे में है। डॉन क़्विहोते अपने लिए एक कल्पित दुनिया रच लेता है, जिसमें वह एक प्रसिद्ध सूरमा है, जो दैत्यों से युद्ध कर लेडी डल्सीनिया डेल टोबोसो की रक्षा करने की मुहिम पर निकला है। वास्तविक रूप में डॉन क़्विहोते एक बुज़ुर्ग देहाती भद्रपुरुष, एलेन्सो क़्विशानो है, कुलीन डल्सीनिया पास के गाँव के खेत में काम करने वाली एक गँवई लड़की है और दैत्य दरअसल पवनचक्कियाँ हैं। बोर्गेस सवाल उठाते हैं कि उस सूरत में क्या होता अगर इन कल्पनाओं में अपने विश्वास के चलते डॉन क़्विहोते किसी वास्तविक व्यक्ति पर हमला कर उसको मार डालता? बोर्गेस मानवीय परिस्थिति के बारे में एक बुनियादी सवाल उठाते हैं: जब हमारे बयानकर्ता स्वत्व द्वारा बुने गए क़िस्से हमें या

हमारे आस-पास के लोगों को गम्भीर क्षति पहुँचाते हैं? बोर्गेस कहते हैं कि तीन मुख्य सम्भावनाएँ हैं।

एक सम्भावना यह है कि कुछ ख़ास न हो। डॉन क़्विहोते किसी वास्तविक आदमी को मारना ही नहीं चाहेगा। उसकी भ्रान्तियाँ इतनी प्रबल हैं कि वह वास्तविक हत्या करने और पवनचक्कियों के रूप में कल्पित दैत्यों के साथ द्वन्द्व-युद्ध करने के बीच फ़र्क़ ही नहीं कर पाएगा। दूसरा विकल्प यह है कि जैसे ही डॉन क़्विहोते किसी व्यक्ति की जान लेगा, वैसे ही वह इतना भयभीत हो उठेगा कि वह अपने विभ्रम से बाहर आ जाएगा। यह उस नौजवान रंगरूट जैसी स्थिति होगी, जो इस विश्वास के साथ युद्ध लड़ने जाता है कि अपने देश की ख़ातिर मर जाना अच्छा है, लेकिन अन्त में युद्ध की वास्तविकताओं का सामना होने पर उसका भ्रम टूट जाता है।

लेकिन एक तीसरा विकल्प भी है, जो कहीं ज़्यादा जटिल और गम्भीर है। जब तक डॉन क़्विहोते कल्पित दैत्यों से लड़ रहा था, तब तक वह महज़ एक नाटक कर रहा था, लेकिन जैसे ही वह वास्तव में किसी व्यक्ति की हत्या करेगा, वह पूरी शक्ति के साथ अपनी कल्पनाओं से चिपक जाएगा, क्योंकि केवल ये कल्पनाएँ ही उसके इस त्रासद कुकर्म को अर्थ प्रदान करती हैं। विरोधाभास यह है कि किसी कल्पित क़िस्से की ख़ातिर हम जितनी ही कुर्बानियाँ देते हैं, उतनी ही दृढ़ता के साथ हम उस क़िस्से से चिपके रहते हैं, क्योंकि हम इन कुर्बानियों के लिए, और उस पीड़ा के लिए जो हमने पहुँचाई होती है, अर्थ देने को व्यग्र होते हैं।

राजनीति में इसको 'हमारे लड़कों की जान बेकार नहीं गई' लक्षण (सिंड्रोम) के रूप में जाना जाता है। 1915 में इटली मित्र राष्ट्र शक्तियों के पक्ष से प्रथम विश्वयुद्ध में शामिल हुआ था। इटली का घोषित लक्ष्य ट्रैंटो और ट्रीस्टे को आज़ाद करने का था, जो वे दो इताल्वी अधिकार-क्षेत्र थे, जिन पर ऑस्ट्रो-हंगेरियाई साम्राज्य ने 'नाजायज़ ढंग से' क़ब्ज़ा कर रखा था। इताल्वी राजनेताओं ने संसद में उग्र भाषण देते हुए ऐतिहासिक बदला लेने और प्राचीन रोम के गौरव की पुनर्प्रतिष्ठा के संकल्प दोहराए थे। सैकड़ों-हज़ारों की संख्या में इताल्वी रंगरूट 'फ़ॉर ट्रैंटो एंड ट्रीस्टे!' के नारे लगाते हुए मोर्चे पर गए थे। उनका ख़याल था कि यह एक आसान जीत होगी।

लेकिन ऐसा कुछ नहीं था। ऑस्ट्रो-हंगेरियाई फ़ौज ने इसोन्ज़ो नदी के समानान्तर एक मज़बूत रक्षात्मक सैन्य-दीवार खड़ी कर रखी थी। इताल्वियों ने ग्यारह रक्तरंजित लड़ाइयों में इस रक्षा-पंक्ति से टक्कर ली, लेकिन वे बहुत-से-बहुत कुछ मील का इलाक़ा ही जीत सके, लेकिन कोई उल्लेखनीय कामयाबी हासिल नहीं कर सके। पहली लड़ाई में कोई 15,000 इताल्वी लोग मारे गए, घायल हुए या बन्दी बना लिए गए। दूसरी लड़ाई में इताल्वियों ने 40,000 लोगों को खो दिया। तीसरी लड़ाई में उन्होंने 60,000 लोगों को

खोया। इस तरह यह सिलसिला ग्यारहवीं मुठभेड़ तक दो से ज़्यादा ख़ौफ़नाक वर्षों तक जारी रहा। इसके बाद ऑस्ट्रियाइयों ने अन्ततः जवाबी हमला किया, और कैपेरेट्टो की लड़ाई के नाम से प्रसिद्ध बारहवीं लड़ाई में उन्होंने इताल्वियों को बुरी तरह पराजित कर दिया और लगभग वेनिस के दरवाज़ों तक पीछे धकेल दिया। वह गौरवमय कारनामा एक रक्तस्नान में बदल गया। युद्ध का अन्त आते-आते लगभग 700,000 इताल्वी सैनिक मारे जा चुके थे और दस लाख से ज़्यादा सैनिक घायल हो चुके थे।

पहली इसोन्ज़ो लड़ाई में इताल्वी राजनेताओं के पास दो विकल्प थे। वे अपनी ग़लती स्वीकार कर सकते थे और शान्ति-सन्धि की पेशकश कर सकते थे। ऑस्ट्रिया-हंगरी का इटली के ख़िलाफ़ कोई दावा नहीं था और उसको शान्ति-सन्धि करके ख़ुशी ही होती, क्योंकि वह अपनी जीवन-रक्षा के लिए कहीं ज़्यादा ताक़तवर रूसियों से लड़ने में व्यस्त था, लेकिन राजनेता हज़ारों की संख्या में मारे जा चुके इताल्वी सैनिकों के अभिभावकों, बीवियों और बच्चों के पास किस तरह जाकर उनसे यह कहते: 'सॉरी, हमसे ग़लती हुई। हमें उम्मीद है कि आप इस बात को सुनकर बहुत दुखी नहीं होंगे, लेकिन आपका जियोवान्नी बेकार ही मारा गया, उसी तरह आपका मार्को मारा गया है'। दूसरा विकल्प था कि वे यह कह सकते थेः जियोवान्नी और मार्को हीरो थे! वे इसलिए मरे ताकि ट्रीस्टे इताल्वियों के पास वापस आ सकता, और हमारा दृढ़ निश्चय है कि ये मौतें बेकार नहीं जाएँगी। हम तब तक लड़ना जारी रखेंगे, जब तक कि हमारी जीत नहीं हो जाती!' आश्चर्य की बात नहीं कि राजनेताओं ने दूसरा विकल्प चुना। इसलिए उन्होंने दूसरी लड़ाई लड़ी, और उससे भी ज़्यादा लोगों को खो दिया। राजनेताओं ने एक बार फिर तय किया कि लड़ाई जारी रखना सबसे अच्छा होगा, क्योंकि 'हमारे लड़कों की जानें बेकार नहीं गईं'।

आप सिर्फ़ राजनेताओं को दोष नहीं दे सकते। जन-समुदाय ने भी युद्ध को समर्थन देना जारी रखा था। और जब लड़ाई के बाद इटली वे सारे अधिकार-क्षेत्र हासिल नहीं कर सका, जिनकी उसने माँग की थी, तो इताल्वी लोकतन्त्र ने बेनिटो मुसौलिनी और उसके फ़ासिस्टों को अपना मुखिया बना लिया, जिन्होंने आश्वासन दिया कि इताल्वियों ने जो बलिदान दिए थे, उसकी वे समुचित भरपाई करेंगे। जहाँ किसी राजनेता को अभिभावकों से यह कहना मुश्किल होता है कि उनका बेटा अकारण ही मारा गया, वहीं अभिभावकों के लिए यह बात ख़ुद से कह पाना और भी ज़्यादा तकलीफ़देह होता है - और युद्ध के शिकार हुए लोगों के लिए तो और भी मुश्किल होता है। एक अपंग सैनिक, जिसने अपने पैर गवाँ दिए होते हैं, स्वयं से बजाय यह कहने के कि 'मुझे अपने पैर इसलिए गवाँने पड़े क्योंकि मैं इतना मूर्ख था कि मैं स्वार्थी राजनेताओं की बातों में आ गया', यह कहना ज़्यादा पसन्द करेगा: 'मैंने शाश्वत इताल्वी राष्ट्र के गौरव की ख़ातिर अपनी कुर्बानी दी थी!' सुखद

कल्पनाओं में जीना ज़्यादा आसान होता है, क्योंकि सुखद कल्पनाएँ पीड़ा को अर्थ प्रदान करती हैं।

41. इसोन्ज़ो युद्ध के शिकार कुछ लोग। क्या इनका बलिदान बेकार गया था?

पुरोहितों ने इस सिद्धान्त को हज़ारों साल पहले खोज लिया था। यह अनेक मज़हबी कर्मकाण्डों और फ़तवों का आधार है। अगर आप देवताओं और राष्ट्रों जैसी काल्पनिक सत्ताओं में लोगों का विश्वास क़ायम करना चाहते हैं, तो आपको उनसे किसी मूल्यवान चीज़ का बलिदान करवाना चाहिए। यह बलिदान जितना ही ज़्यादा पीड़ादायी होगा, उतना ही ज़्यादा इस बलिदान को स्वीकार करने वाली कल्पित सत्ता के वजूद में उनका विश्वास मज़बूत होगा। ज्युपिटर को अपने क़ीमती बैल की बलि देने वाले एक ग़रीब किसान को इस बात का यक़ीन हो जाएगा कि ज्युपिटर का अस्तित्व वास्तव में है, अन्यथा वह अपनी इस बेवक़ूफ़ी के लिए क्या तर्क देगा? वह किसान इसलिए एक के बाद एक बैलों की बलि देता जाएगा, ताकि उसको यह स्वीकार न करना पड़े कि उसके सारे पिछले बैल बेकार गए। ठीक इसी वजह से, अगर मैंने इताल्वी राष्ट्र के गौरव की ख़ातिर अपने एक बच्चे की या साम्यवादी क्रान्ति की ख़ातिर अपने पैरों की कुर्बानी दी होती है, तो इतना भर मुझे आमतौर से एक पुरजोश इताल्वी राष्ट्रवादी या एक उत्साही साम्यवादी में बदल देने के लिए काफ़ी होता है, क्योंकि अगर इताल्वी राष्ट्रवादी मिथक या साम्यवादी प्रचार झूठ होते, तो मुझे यह मानने के लिए विवश होना पड़ता कि मेरे बच्चे की मौत या स्वयं मेरा पक्षाघात पूरी तरह तरह से बेकार साबित हुआ। बहुत कम लोग हैं, जो इस तरह की बात को पचा पाते हैं।

यही तर्क आर्थिक क्षेत्र में भी काम करता है। 1997 में स्कॉटलैंड की सरकार ने एक नया संसद भवन खड़ा करने का फ़ैसला किया। मूल योजना के मुताबिक़ इस निर्माण-कार्य में दो वर्ष का समय और 4 करोड़ पाउंड की लागत का अनुमान था। दरअसल, इस काम में पाँच साल लग गए और इस पर 40 करोड़ पाउंड का ख़र्च हुआ। जब भी कभी ठेकेदारों को आकस्मिक कठिनाइयों और ख़र्चों का सामना करना पड़ता, वे स्कॉट सरकार के पास जाकर और ज़्यादा वक़्त और पैसे की माँग करते थे। जब भी ऐसा होता, सरकार ख़ुद से कहती: ख़ैर, हम पहले ही इसमें लाखों पाउंड फूँक चुके हैं, और अब अगर हम काम रोक देते हैं और इस आंशिक ढाँचे को जस-का-तस छोड़ देते हैं, तो हमारी बहुत बदनामी होगी। हम 4 करोड़ पाउंड और दे देते हैं’। कुछ महीनों बाद फिर से वही हुआ, जब तक इमारत को अधूरा छोड़ देने को टालने का दबाव और भी बढ़ चुका था। कुछ महीनों बाद यही क़िस्सा फिर दोहराया गया, और यह सिलसिला तब तक चलता रहा, जब तक कि वास्तविक लागत मूल आकलन से दस गुना नहीं बढ़ गई।

इस जाल में सिर्फ़ सरकारें ही नहीं फँसतीं। व्यापारिक घराने अक्सर अपने नाकामयाब उद्यमों में लाखों फूँक देते हैं, वहीं व्यक्तिगत तौर पर लोग निष्क्रिय विवाहों और गतिरोध के शिकार रोज़गारों से चिपके रहते हैं। हमारा बयानकर्ता स्वत्व पीड़ा को भविष्य में जारी

रखना ज़्यादा पसन्द करेगा, सिर्फ़ इसलिए ताकि उसको यह स्वीकार न करना पड़े कि अतीत की पीड़ा पूरी तरह से अर्थहीन थी। अन्ततः अगर हम अपनी अतीत की भूलों का प्रायश्चित करना चाहते हैं, तो हमारे बयानकर्ता स्वत्व के लिए कथानक में कुछ ऐसे पेंच गढ़ना अनिवार्य है, जो इन ग़लतियों को अर्थपूर्ण बना दें। 'हाँ, मैंने एक ग़लती की वजह से अपने पैर गँवा दिए थे, लेकिन इस ग़लती के चलते ही मैं यह बात समझ सका कि युद्ध एक नर्क है, और अब आगे से मैं अपना जीवन शान्ति के लिए संघर्ष करने में लगा दूँगा। इसलिए जो शारीरिक क्षति मुझे पहुँची, वह आख़िरकार कुछ तो सार्थक साबित हुई: इसने मुझे शान्ति का मूल्य सिखाया'।

42. स्कॉटलैंड का संसद भवन। हमारे स्टर्लिंग बेकार नहीं गए।

इस तरह हम देखते हैं कि राष्ट्रों, देवताओं और पैसे की ही तरह स्वत्व भी एक कल्पित क़िस्सा है। हममें से हरेक के पास एक परिष्कृत व्यवस्था है, जो हमारे ज़्यादातर अनुभवों को बाहर फेंक देती है, कुछ चुनिन्दा नमूनों को बचाए रखती है, उनको हमारे द्वारा देखी गई फ़िल्मों, पढ़े गए उपन्यासों, सुने गए व्याख्यानों और जिन दिवास्वप्नों का हमने आनन्द लिया होता है, उनके टुकड़ों से मिला देती है, और फिर इस सारे घालमेल से एक सुसंगत प्रतीत होता क़िस्सा गढ़ती है, जो हमें बताता है कि मैं कौन हूँ, मैं कहाँ से आया हूँ और कहाँ जा रहा हूँ। यह कहानी मुझे बताती है कि मुझे किस चीज़ से प्रेम करना चाहिए, किससे नफ़रत करनी चाहिए और अपने साथ किस तरह बरतना चाहिए। अगर कथानक के लिए ज़रूरी हुआ, तो यह कहानी मुझे अपना बलिदान करने तक के लिए प्रेरित कर

सकती है। हम सबकी अपनी शैलियाँ होती हैं। कुछ लोग त्रासदी में रहते हैं, कुछ एक अनन्त मज़हबी नाटक में निवास करते हैं, कुछ जीवन के प्रति ऐसा दृष्टिकोण अपनाते हैं, जैसे वह कोई एक्शन फ़िल्म हो, और मानो किसी कॉमेडी के कुछ कार्य-व्यापार न हों, लेकिन अन्त में, वे सब होती कहानियाँ ही हैं।

तब फिर जीवन का क्या अर्थ है? उदारवाद मानता है कि हमें यह उम्मीद नहीं करनी चाहिए कि कोई बाहरी सत्ता हमें एक तैयारशुदा अर्थ उपलब्ध कराए। इसकी बजाय, प्रत्येक मतदाता, ग्राहक और दर्शक को अर्थ का सृजन करने के लिए, और महज़ अपने जीवन के ही नहीं, बल्कि समूचे विश्व के अर्थ का सृजन करने के लिए, अपनी स्वतन्त्र इच्छा-शक्ति का इस्तेमाल करना चाहिए।

जैविक विज्ञान, हालाँकि, उदारवाद को कमज़ोर बनाते हुए तर्क देता है कि स्वतन्त्र व्यक्ति जैवरासायनिक ऐल्गरिदमों के एक संयोजन से गढ़ी गई महज़ एक काल्पनिक कहानी है। हर पल मस्तिष्क की जैवरासायनिक प्रक्रिया अनुभव की एक कौंध को रचती है, जो तुरन्त ही ग़ायब हो जाती है। एक के बाद एक तेज़ी के साथ और कौंधें प्रकट होती हैं और लुप्त हो जाती हैं, प्रकट होती हैं और लुप्त हो जाती हैं। ये क्षणिक अनुभव किसी चिरस्थायी सत्त्व का रूप नहीं लेते। बयानकर्ता स्वत्व इस अव्यवस्था पर व्यवस्था थोपने के लिए एक अनन्त क़िस्सा गढ़ता है, जिसमें ऐसे प्रत्येक अनुभव के लिए जगह होती है, और इसलिए हर अनुभव कोई न कोई टिकाऊ अर्थ लिए होता है, लेकिन यह क़िस्सा कल्पना की उपज ही है, भले ही वह कितना ही यक़ीन दिलाने वाला और ललचाने वाला क्यों न हो। मध्ययुगीन धर्मयोद्धाओं का विश्वास था कि ईश्वर और स्वर्ग उनकी ज़िन्दगियों को अर्थ उपलब्ध कराता था, आधुनिक उदारवादियों का विश्वास है कि वैयक्तिक स्वतन्त्र चयन जीवन को अर्थ उपलब्ध कराते हैं। वे सब समान रूप से भ्रान्तिमूलक हैं।

स्वतन्त्र इच्छा-शक्ति और व्यक्तियों को लेकर सन्देह बेशक नए नहीं हैं। 2,000 साल से भी पहले हिन्दुस्तान, चीन और यूनान के चिन्तकों ने तर्क दिया था कि 'वैयक्तिक स्वत्व' एक छलावा है', लेकिन इस तरह के सन्देह इतिहास में तब तक बहुत ज़्यादा बदलाव नहीं लाते, जब तक कि अर्थव्यवस्था, राजनीति और रोज़मर्रा जीवन पर उनका प्रभाव नहीं पड़ता। मनुष्य संज्ञानात्मक असंगतियों के उस्ताद होते हैं, और हम स्वयं को प्रयोगशाला में एक चीज़ पर और अदालत या संसद में नितान्त किसी दूसरी चीज़ पर विश्वास करने की छूट देते हैं। जिस तरह ईसाइयत उसी दिन लुप्त नहीं हो गई थी, जिस दिन डार्विन ने *ऑन द ओरिजिन ऑफ़ स्पिशीज़* का प्रकाशन किया था, उसी तरह उदारवाद भी महज़ इसलिए लुप्त नहीं हो जाएगा कि वैज्ञानिक इस नतीजे पर पहुँच चुके हैं कि स्वतन्त्र व्यक्ति नहीं होते।

निश्चय ही, रिचर्ड डॉकिन्स, स्टीवेन पिंकर और नई वैज्ञानिक विश्वदृष्टि के दूसरे सूरमा तक उदारवाद को त्यागने से इंकार करते हैं। स्वत्व और इच्छा-शक्ति की स्वतन्त्रता को विखण्डित (डिकॉन्स्ट्रक्ट) करने में सैकड़ों पाण्डित्यपूर्ण पन्ने लगा चुकने के बाद, वे ऐसी विस्मयकारी बौद्धिक कलाबाज़ियाँ दिखाते हैं, जो उनको चमत्कारपूर्ण ढंग से वापस अठारहवीं सदी में ले जाकर छोड़ती हैं, मानो विकासपरक जैविकी और मस्तिष्क विज्ञान की विस्मयकारी खोजों का लॉक, रूसो और जेफ़रसन के नैतिक और राजनैतिक विचारों पर कोई प्रभाव ही न पड़ा हो।

लेकिन एक बार जैसे ही ये विधर्मितापूर्ण वैज्ञानिक अन्तर्दृष्टियाँ रोज़मर्रा की प्रौद्योगिकी, रोज़मर्रा की गतिविधियों और आर्थिक संरचनाओं में रूपान्तरित हो जाएँगी, वैसे ही इस दो नावों की सवारी को साधे रखना उत्तरोत्तर मुश्किल होता जाएगा, और हमें - या हमारे उत्तराधिकारियों को - सम्भवतः मज़हबी आस्थाओं और राजनैतिक संस्थाओं के एक सर्वथा नवीन पैकेज की ज़रूरत होगी। तीसरी सहस्राब्दी की शुरुआत में उदारवाद को ख़तरा इस दार्शनिक विचार से नहीं है कि 'स्वतन्त्र व्यक्तियों का कोई अस्तित्व नहीं है', बल्कि ठोस प्रौद्योगिकियों से है। हम ऐसे अत्यन्त उपयोगी उपकरणों, औज़ारों और संरचनाओं की बाढ़ का सामना करने जा रहे हैं, जो मनुष्यों की स्वतन्त्र इच्छा-शक्ति को कोई छूट नहीं देते। क्या लोकतन्त्र, स्वतन्त्र बाज़ार-व्यवस्था और मानवाधिकार इस बाढ़ के सामने टिक सकेंगे?

9
विराट अलगाव

पिछले पृष्ठ हमें उन ताज़ा वैज्ञानिक खोजों के संक्षिप्त दौरे पर ले गए थे,जो उदारवादी दर्शन को खोखला करती हैं। अब इन खोजों के व्यावहारिक निहितार्थों को समझना ज़रूरी है। उदारवादी स्वतन्त्र बाज़ार-व्यवस्था और लोकतान्त्रिक चुनावों के इसलिए पक्षधर होते हैं, क्योंकि वे मानते हैं कि हर मनुष्य एक अद्वितीय रूप से मूल्यवान व्यक्ति होता है, जिसके स्वतन्त्र चुनाव प्रामाणिकता के अन्तिम स्रोत होते हैं। इक्कीसवीं सदी में तीन व्यावहारिक घटनाएँ इस विश्वास को पुराना और बेकार साबित कर सकती हैं:

1. मनुष्य अपनी आर्थिक और सैन्य उपयोगिता खो देंगे, और इसलिए आर्थिक और राजनैतिक व्यवस्था उनको बहुत ज़्यादा मूल्यवान मानना बन्द कर देगी।
2. यह व्यवस्था मनुष्यों को सामूहिक तौर पर मूल्यवान मानना जारी रखेगी, लेकिन विशिष्ट व्यक्तियों के रूप में उनको मूल्यवान नहीं मानेगी।
3. यह व्यवस्था कुछ विशिष्ट व्यक्तियों को तब भी मूल्यवान मानती रहेगी, लेकिन ये लोग आबादी के विशाल समुदाय की बजाय उन्नत अतिमानवों के एक नए अभिजात वर्ग की रचना करेंगे।

हम इन तीनों ख़तरों का विस्तार से परीक्षण करते हैं। पहला ख़तरा - प्रौद्योगिकीय घटनाक्रम मनुष्यों को आर्थिक और सैन्य दृष्टि से अनुपयोगी बना देंगे - उदारवाद को दार्शनिक स्तर पर ग़लत साबित नहीं करेंगे, लेकिन व्यावहारिक स्तर पर यह समझ पाना मुश्किल है कि लोकतन्त्र, मुक्त बाज़ार-व्यवस्थाएँ और अन्य उदारवादी संस्थाएँ इस आघात को कैसे झेल पाएँगे। आख़िरकार, उदारवाद एक वर्चस्वशाली विचारधारा महज़ इसलिए नहीं बन गई थी कि इसके दार्शनिक तर्क सबसे ज़्यादा प्रामाणिक थे। इसकी बजाय,

उदारवाद इसलिए कामयाब हुआ था, क्योंकि प्रत्येक मनुष्य को मूल्यवान मानने के पीछे प्रचुर मात्र में राजनैतिक, आर्थिक और सैन्य अर्थ निहित था। आधुनिक औद्योगिक युद्धों के आम रणक्षेत्रों और आधुनिक औद्योगिक अर्थव्यवस्था की उत्पादन शृंखलाओं में हर मनुष्य महत्त्व रखता था। उस हर जोड़ा हाथ का एक मूल्य था, जो राइफ़ल को थाम सकता था या लिवर को खींच सकता था।

1793 के वसन्त में यूरोप के राजघरानों ने फ़्रांसीसी क्रान्ति का उसके पालने में ही गला घोंट देने के लिए अपनी सेनाएँ भेज दी थीं। इसकी प्रतिक्रिया में पेरिस के उग्र क्रान्तिकारियों ने levée en masse (सामूहिक विद्रोह) का ऐलान कर दिया था और पहला सम्पूर्ण युद्ध शुरू कर दिया था। 23 अगस्त को नेशनल कॅन्वेन्शन ने आदेश जारी कर दिया था कि 'इस क्षण से लेकर उस क्षण तक, जब तक कि इसके शत्रुओं को रिपब्लिक की ज़मीन से बाहर नहीं खदेड़ दिया जाता, सारे फ़्रांसीसी नागरिक सेना की सेवाओं में स्थायी रूप से अपेक्षित होंगे। नौजवानों को लड़ना होगा, विवाहित पुरुषों को हथियार गढ़ने होंगे और रसद पहुँचानी होगी, स्त्रियों को तम्बू और कपड़े तैयार करने होंगे और अस्पतालों में अपनी सेवाएँ देनी होंगी, बच्चों को रुई से लिनेन तैयार करने होंगे तथा बूढ़ों को योद्धाओं का साहस बढ़ाने और राजाओं के प्रति नफ़रत जगाने तथा रिपब्लिक की एकता का उपदेश देने के लिए सार्वजनिक चौकों की शरण लेनी होगी'।

यह आदेश फ़्रांसीसी क्रान्ति के सबसे प्रसिद्ध दस्तावेज़ - *द डिक्ल्येरेशन ऑफ़ द राइट्स ऑफ़ मैन एंड ऑफ़ द सिटीज़न्स* (पुरुषों और नागरिकों के अधिकारों का घोषणा-पत्र) - पर दिलचस्प रोशनी डालता है, जो इस बात को स्वीकार करता है कि सारे नागरिकों के समान मूल्य और समान राजनैतिक अधिकार होते हैं। क्या यह संयोग है कि सार्वभौमिक अधिकारों का दावा ठीक उस ऐतिहासिक मुक़ाम पर किया गया था, जब सार्वभौमिक स्तर पर सेना में अनिवार्य भरती का आदेश जारी किया गया? हालाँकि, अध्येता इन दोनों चीज़ों के ठीक-ठीक सम्बन्ध को लेकर बाल की खाल निकाल सकते हैं, लेकिन बाद की दो सदियों में लोकतन्त्र के बचाव में आमतौर से दिया जाता रहा एक तर्क यह बात स्पष्ट करता है कि नागरिकों को राजनैतिक अधिकार देना अच्छी बात है, क्योंकि लोकतान्त्रिक देशों के सैनिक और कामगार तानाशाह मुल्कों के सैनिकों और कामगारों के मुक़ाबले बेहतर ढंग से काम करते हैं। कथित तौर पर, लोगों को राजनैतिक अधिकार देने से उनकी उत्प्रेरणा और पहल करने की शक्ति में इज़ाफ़ा होता है, जो युद्ध के मैदान और कारख़ाने, दोनों ही जगहों पर उपयोगी होता है।

इसीलिए 1869 से 1909 तक हार्वर्ड के अध्यक्ष रहे चार्ल्स डब्ल्यू. एलियट ने 5 अगस्त 1917 को *न्यू यॉर्क टाइम्स* में लिखा था कि 'लोकतान्त्रिक सेनाएँ उन सेनाओं के मुक़ाबले बेहतर ढंग से लड़ती हैं, जो कुलीनतान्त्रिक ढंग से संगठित और निरंकुश ढंग से

नियन्त्रित की गई होती हैं' और यह कि 'जिन राष्ट्रों में लोग विधि- निमार्ण की प्रक्रिया को निर्धारित करते हैं, अपने लोकसेवकों को चुनते हैं, और युद्ध तथा शान्ति के सवालों का फ़ैसला करते हैं, उनकी सेनाएँ उस निरंकुश शासक की सेनाओं के मुक़ाबले बेहतर ढंग से लड़ती हैं, जो जन्मसिद्ध अधिकार और परमात्मा द्वारा नियुक्त होने के आधार पर हुकूमत करता है'।

इसी से मिलता-जुलता तर्क प्रथम विश्वयुद्ध के बाद स्त्रियों को मताधिकार देने के पक्ष में दिया जाता है। समग्र औद्योगिक युद्धों में स्त्रियों की महत्त्वपूर्ण भूमिका को देखते हुए, देशों ने उनको शान्तिकाल में राजनैतिक अधिकार दिए जाने की ज़रूरत महसूस की थी। इसीलिए 1918 में राष्ट्रपति वुडरोव विल्सन स्त्रियों के मताधिकार के समर्थक बन गए थे, और उन्होंने संयुक्त राज्य अमेरिका की सीनेट को समझाया था कि प्रथम विश्वयुद्ध इसमें शामिल दूसरे देशों या अमेरिका द्वारा जीता ही न जा सका होता, अगर स्त्रियों ने उसमें सेवाएँ - हर क्षेत्र में सेवाएँ - न दी होतीं, सिर्फ़ उद्यमों के उन क्षेत्रों में नहीं, जिनमें हम उनको काम करते देखने के अभ्यस्त हैं, बल्कि उस हर जगह पर, जहाँ कहीं पुरुषों ने काम किया है और स्वयं लड़ाई के मैदान की कगारों और किनारों पर भी। अगर हम उनको पूरी तरह से मुमकिन मताधिकार के साथ वोट देने का अधिकार नहीं देते, तो हमारे ऊपर से न सिर्फ़ भरोसा उठ जाएगा, बल्कि हम इसी लायक़ होंगे कि हम पर भरोसा न किया जाए'।

लेकिन इक्कीसवीं सदी में ज़्यादातर मर्द और औरतें अपना सैन्य और आर्थिक मूल्य खो सकते हैं। दो विश्वयुद्धों के दौरान सेना में अनिवार्य भरती के जिस तरह के सामूहिक अभियान चलाये गए थे, उनका ज़माना लद चुका है। इक्कीसवीं सदी की अत्यन्त विकसित सेनाएँ उन्नत प्रौद्योगिकियों पर कहीं ज़्यादा भरोसा करती हैं। युद्ध की बलि चढ़ाए जाने योग्य सैनिकों की असीम तादाद की बजाय आज मुल्कों को उच्च प्रशिक्षण प्राप्त बहुत थोड़े-से सैनिकों की, बल्कि उससे भी कम संख्या में महायोद्धाओं (सुपर-वॉरिअर) के विशेष बल और ऐसे मुट्ठीभर विशेषज्ञों की ज़रूरत होती है, जो परिष्कृत प्रौद्योगिकियों के उत्पादन और उपयोग के काम में माहिर होते हैं। पायलट-रहित ड्रोनों और साइबर वार्मों से 'आबाद' उच्च-तकनीकी बल बीसवीं सदी की विशाल सेनाओं की जगह लेते जा रहे हैं, और सेनापति ज़्यादातर जोखिम वाले फ़ैसले लेने की ज़िम्मेदारी ऐल्गरिदमों को सौंप रहे हैं।

हाड़-मांस के बने सैनिक अप्रत्याशित व्यवहार और ख़ौफ़, भूख और थकान से प्रभावित होने की सम्भावना के अलावा, उत्तरोत्तर अप्रासंगिक होते जा रहे समयमान के आधार पर सोचते और गतिशील होते हैं। नेबुख़दनेज़र के ज़माने से लेकर सद्दाम हुसैन के समय तक, विपुल प्रौद्योगिक विकास के बावजूद, युद्ध जैविक समयसारिणी के आधार पर लड़े जाते थे। घण्टों वार्ताएँ चलती थीं, कई-कई दिनों तक लड़ाइयाँ चलती रहती थीं, और

इस तरह युद्ध सालों घिसटते रहते थे, लेकिन साइबर युद्ध कुछ ही मिनटों में ख़त्म हो सकते हैं। जब साइबर-कमांड की पाली पर तैनात किसी ले़टनेंट का ध्यान किसी असामान्य घटनाक्रम पर जाता है, तो वह फ़ोन उठाती है और अपने उच्च अधिकारी से बात करती है, जो तुरन्त ही वाइट हाउस को सचेत कर देता है। और जब तक राष्ट्रपति का हाथ लाल रंग के हैंडसेट तक पहुँचता है, तब तक युद्ध हारा जा चुका होता है। कुछ ही सेकेंड के भीतर एक पर्याप्त रूप से परिष्कृत साइबर हमला संयुक्त राज्य अमेरिका के पॉवर ग्रिड को ठप कर सकता है, संयुक्त राज्य अमेरिका के विमान-नियन्त्रण केन्द्रों को तबाह कर सकता है, परमाणु संयन्त्रों और रासायनिक संस्थापनों में असंख्य औद्योगिक दुर्घटनाओं को अंजाम दे सकता है, पुलिस, सेना और खुफ़िया विभागों के संचार-तन्त्रों को तहस-नहस कर सकता है - और वित्तीय अभिलेखों को नेस्तनाबूद कर सकता है, जिससे खरबों डॉलर इस तरह नामोनिशान छोड़े बिना ग़ायब हो सकते हैं कि किसी को यह पता ही नहीं चल सकेगा कि उनमें किसका कितना हिस्सा शामिल था। जो एकमात्र चीज़ सार्वजनिक उन्माद को क़ाबू में किए हुए है, वह यह है कि इंटरनेट, टेलिविज़न और रेडियो के बावजूद, लोगों को इस तबाही की सम्पूर्ण प्रचण्डता का अहसास नहीं होगा।

छोटे पैमाने पर देखें तो, मान लीजिए दो ड्रोन आपस में हवा में लड़ते हैं। एक ड्रोन तब तक गोलाबारी नहीं कर सकता, जब तक कि उसको दूर किसी तहख़ाने में बैठे इंसानी ऑपरेटर से इसकी इजाज़त नहीं मिल जाती। दूसरा ड्रोन पूरी तरह से स्वचालित है। आपके हिसाब से कौन-सा ड्रोन प्रभावी होगा? अगर 2093 में जर्जर हो चुका यूरोपीय संघ एक नई फ़्रांसीसी क्रान्ति को पूरी तरह कुचल देने के लिए अपने ड्रोन और साइबोर्ग भेजता है, तो पेरिस कम्यून प्रत्येक उपलब्ध हैकर, कम्प्यूटर और स्मार्टफ़ोन को बचाव के काम में जोत सकता है, लेकिन ज़्यादातर इंसान उसके किसी काम के नहीं होंगे, सिवाय शायद इसके कि वह उनको इंसानी कवच की तरह इस्तेमाल कर ले। यह बात अर्थपूर्ण है कि आज बहुत-सी विषम तकरारों में नागरिक उन्नत आयुधों के समक्ष एक कवच की भूमिका में सिकुड़कर रह गए हैं।

43. बाएँ: 1916 में सोम के युद्ध में लड़ते हुए सैनिक। दाएँ: एक पायलट-रहित ड्रोन।

अगर आप विजय से ज़्यादा न्याय की परवाह करते हैं, तब भी आप शायद अपने सैनिकों और पायलटों की जगह रोबोट और ड्रोन तैनात करना पसन्द करेंगे। इंसानी सैनिक हत्याएँ करते हैं, बलात्कार और लूटपाट करते हैं, और अगर वे सदाचारी भी होते हैं, तब भी वे ग़लती से नागरिकों को मार देते हैं। नैतिक ऐल्गरिदमों से पूर्वनियोजित कम्प्यूटर कहीं ज़्यादा आसानी-से अन्तरराष्ट्रीय दण्ड न्यायालय के ताज़ा आदेशों का पालन कर सकते हैं।

आर्थिक क्षेत्र में भी हथौड़ा थामने (यहाँ आशय सम्भवतः नीलामी के उस प्रभारी से है, जो नीलामी के दौरान लोगों का ध्यान आकर्षित करने के लिए हथौड़े का इस्तेमाल करता है - अनुवादक) या बटन दबाने की क़ाबिलियत पहले के मुक़ाबले काफ़ी कम मूल्यवान होती जा रही है, जो कि उदारवाद और पूँजीवाद के बीच के गम्भीर गठबन्धन को जोखिम में डालने वाली स्थिति है। बीसवीं सदी में उदारवादियों का कहना था कि हमें नैतिकी और अर्थव्यवस्था के बीच चुनाव करने की ज़रूरत नहीं है। मानवाधिकारों और स्वतन्त्रता की रक्षा करना एक नैतिक दायित्व भी था और आर्थिक उन्नति की कुंजी भी थी। ब्रिटेन, फ़्रांस और संयुक्त राज्य अमेरिका कथित रूप से इसलिए समृद्ध हुए थे, क्योंकि उन्होंने अपनी अर्थव्यवस्थाओं और समाजों का उदारीकरण किया था, और अगर तुर्की, ब्राज़ील या चीन भी उतने ही समृद्ध होना चाहते थे, तो उनको भी वैसा ही करना ज़रूरी था। अगर ज़्यादातर नहीं तो बहुत सारे मामलों में ये नैतिक नहीं, बल्कि आर्थिक तर्क था, जिसने निरंकुश शासकों और सैनिक तानाशाहों को उदारीकरण के लिए तैयार किया।

इक्कीसवीं सदी में उदारवाद को लोगों की विश्वसनीयता हासिल करने में बहुत मुश्किल पेश आएगी। जब जन-समुदाय अपना आर्थिक महत्त्व खो देगा, तब क्या महज़ नैतिक तर्क मानवाधिकारों और स्वतन्त्रताओं के बचाव के लिए पर्याप्त होगा? क्या अभिजात वर्ग और सरकारें उस दशा में भी हर इंसान की क़द्र करना जारी रखेंगीं, जब कि ऐसा करना किसी आर्थिक लाभांश (डिविडेंट) का भुगतान नहीं कर रहा होगा?

अतीत में ऐसे बहुत-से काम हुआ करते थे, जो सिर्फ़ इंसान ही कर सकते थे, लेकिन अब रोबोट और कम्प्यूटर मनुष्य की बराबरी पर पहुँचने को हैं, और जल्दी ही वे बहुत-से उद्यमों में मनुष्य को पीछे छोड़ देंगे। सही है कि कम्प्यूटर मनुष्यों की तुलना में बहुत अलग ढंग से काम करते हैं, और इसकी कोई सम्भावना नहीं दिखाई देती कि कम्प्यूटर जल्दी ही कभी मनुष्यों जैसे बन जाएँगे। ख़ासतौर से, ऐसा नहीं लगता कि कम्प्यूटर चेतना-सम्पन्न होने वाले हैं और वे भावनाओं और अनुभूतियों को महसूस करना शुरू कर देंगे। पिछली आधी सदी में कम्प्यूटर बुद्धि में अपार प्रगति हुई है, लेकिन कम्प्यूटर-चेतना के क्षेत्र में सर्वथा शून्य प्रगति हुई है। जहाँ तक हमारी जानकारी है, 2016 तक कम्प्यूटर उससे ज़्यादा चेतन नहीं थे, जितने 1950 के दशक में उनके आरम्भिक नमूने हुआ करते थे,

लेकिन हम सबसे महत्त्वपूर्ण क्रान्ति की कगार पर हैं। मनुष्य अपना आर्थिक मूल्य खोने जा रहे हैं, क्योंकि बुद्धिमत्ता चेतना से विलग हो रही है।

अभी तक उच्चस्तरीय बुद्धिमत्ता विकसित चेतना के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़ी हुई थी। केवल चेतन प्राणी ही वे काम कर सकते थे, जिनके लिए बहुत ज़्यादा बुद्धिमत्ता आवश्यक होती थी, जैसे शतरंज खेलना, कार चलाना, रोगों का पता लगाना या आतंकवादियों की पहचान करना, लेकिन अब हम ऐसी नई क़िस्म की अ-चेतन बुद्धि को विकसित कर रहे हैं, जो इस तरह के काम मनुष्यों से बेहतर ढंग से कर सकती है, क्योंकि ये सारे काम पैटर्न की पहचान पर आधारित हैं, और अ-चेतन ऐल्गरिदम पैटर्न की पहचान में जल्दी ही मनुष्यों से श्रेष्ठ साबित हो सकते हैं।

विज्ञान-कथा पर आधारित फ़िल्में सामान्यतः यह मानकर चलती हैं कि मानवीय बुद्धिमत्ता की बराबरी करने और उसको पीछे छोड़ देने के लिए कम्प्यूटरों को चेतना विकसित करनी होगी, लेकिन वास्तविक विज्ञान एक अलग ही कहानी कहता है। परम-बुद्धि की दिशा में ले जाने वाले कई वैकल्पिक रास्ते हो सकते हैं, जिनमें से कुछ ही चेतना की संकुलता से होकर गुज़रते हैं। लाखों सालों से जैविक विकास चेतना की राह पर धीरे-धीरे आगे बढ़ता रहा है। अजैविक कम्प्यूटरों का विकास इस संकुलता से पूरी तरह बचकर निकल सकता है, और इस तरह परम-बुद्धि तक पहुँचने का एक भिन्न और और ज़्यादा फुर्तीला रास्ता तैयार कर सकता है।

यह स्थिति एक अनूठा सवाल पैदा करती है: दो में से कौन-सी चीज़ वास्तव में महत्त्वपूर्ण है, बुद्धि या चेतना? जब तक वे घनिष्ट रूप से जुड़े हुए थे, उनके तुलनात्मक मूल्य पर बहस करना दार्शनिकों का एक मनोरंजक शग़ल हुआ करता था, लेकिन इक्कीसवीं सदी में यह एक अत्यन्त आवश्यक राजनैतिक और आर्थिक मुद्दा बनता जा रहा है। और इस बात का अहसास संजीदगी से भर देने वाला है कि कम से कम सेनाओं और व्यापारिक निगमों के लिए इसका जवाब एकदम स्पष्ट है: बुद्धिमत्ता अनिवार्य (मेंडेटॅरी) है, लेकिन चेतना ऐच्छिक (ऑप्शनल) है।

सेनाएँ और व्यापारिक निगम बुद्धिमान प्रतिनिधियों के बग़ैर काम नहीं कर सकते, लेकिन उनको चेतना और व्यक्तिनिष्ठ अनुभवों की ज़रूरत नहीं है। एक हाड़-मांस के बने टैक्सी-ड्राइवर के सचेतन अनुभव उस स्वचालित कार के अनुभवों के मुक़ाबले अन्तहीन रूप से समृद्ध होते हैं, जो नितान्त कुछ भी महसूस नहीं करती। टैक्सी-ड्राइवर सिओल की व्यस्त सड़कों के बीच से अपना रास्ता बनाते हुए संगीत का आनन्द ले सकता है। मुमकिन है कि वह आसमान की ओर नज़रें उठाकर देखे और विश्व के रहस्यों के बारे में सोचे, तो उसका दिमाग़ विस्मय से भर उठे। जब वह अपनी छोटी-सी बेटी को चलना सीखते हुए देखे, तो उसकी आँखें ख़ुशी के आँसुओं से छलछला उठ सकती हैं, लेकिन व्यवस्था किसी

टैक्सी-ड्राइवर से इस सबकी अपेक्षा नहीं करती। वह तो सिर्फ़ इतना चाहती है कि वह टैक्सी में सवार लोगों को यथाशीघ्र, सुरक्षित और सस्ते में अमुक जगह से अमुक जगह तक पहुँचा दे। और स्वचालित कार यह काम इंसानी ड्राइवर के मुक़ाबले कहीं ज़्यादा बेहतर ढंग से बहुत जल्दी करने लगेगी, भले ही वह संगीत का आनन्द नहीं ले सकती या अस्तित्व के रहस्य के बारे में सोचते हुए चकित नहीं हो सकती।

हमें औद्योगिक क्रान्ति के दौरान घोड़ों की नियति को याद करना चाहिए। फ़ार्म का एक साधारण घोड़ा सूँघ सकता है, प्रेम कर सकता है, चेहरों को पहचान सकता है, और मॉडल टी फ़ोर्ड या दस लाख डॉलर मूल्य की लैम्बोर्गिनी कार के मुक़ाबले हज़ारों दूसरे काम ज़्यादा बेहतर ढंग से कर सकता है, लेकिन इसके बावजूद कारों ने घोड़ों की जगह ले ली थी, क्योंकि वे उन मुट्ठी भर कामों के सन्दर्भ में श्रेष्ठ थीं,जिनकी व्यवस्था को वाक़ई ज़रूरत थी। टैक्सी-ड्राइवरों की भी वही नियति होने की पूरी सम्भावना है।

दरअसल, अगर हम मनुष्यों को न सिर्फ़ टैक्सियाँ चलाने से, बल्कि किसी भी तरह के वाहन चलाने से रोक देते हैं, और कम्प्यूटर ऐल्गरिदमों को यातायात व्यवस्था की देखरेख का एकाधिकार सौंप देते हैं, तो हम सारे वाहनों को एक ही नेटवर्क से जोड़ सकते हैं, और इस तरह कार-दुर्घटनाओं की सम्भावनाओं को कम से कम स्तर पर ला सकते हैं। अगस्त 2015 में गूगल की एक प्रयोगात्मक स्वचालित कार दुर्घटना की शिकार हो गई थी। वह जैसे ही एक चौराहे पर पहुँची और उसने सड़क पार करने के इरादे से एक पैदल चल रहे व्यक्ति को ताड़ लिया, वैसे ही उसने ब्रेक लगा दिए। पलभर में ही उसे पीछे से आती एक सेडान ने टक्कर मार दी, जिसका लापरवाह ड्राइवर सड़क पर निगाह रखने की बजाय मुमकिन है ब्रह्माण्ड के रहस्यों के बारे में सोच रहा हो। यह दुर्घटना नहीं हो सकती थी, अगर दोनों वाहन आपस में जुड़े कम्प्यूटरों के मार्गदर्शन में चल रहे होते। नियन्त्रक ऐल्गरिदम को सड़क पर दौड़ रहे प्रत्येक वाहन की स्थिति और इरादों की जानकारी होती, और उसने अपनी दोनों कठपुतलियों को आपस में भिड़ने की गुंजाइश न दी होती। इस तरह की व्यवस्था ढेर सारे समय, पैसे और इंसानी ज़िन्दगियों को बचाएगी, लेकिन यह कार चलाने के इंसानी अनुभव और करोड़ों इंसानी आजीविकाओं को भी नेस्तनाबूद कर देगी।

कुछ अर्थशास्त्रियों का अनुमान है कि आगे-पीछे ऐसे मनुष्य पूरी तरह से अनुपयोगी हो जाएँगे, जिनको उन्नत नहीं बनाया गया होगा। रोबोट और 3क् प्रिंटर पहले से ही शर्टें तैयार करने जैसे हाथ से किए जाने वाले कामों में लगे कारीगरों की जगह लेते जा रहे हैं, और अत्यन्त बुद्धिमान ऐल्गरिदम यही काम दिमाग़ी पेषों के साथ करेंगे। बैंक क्लर्क और ट्रैवल एजेंट, जो कुछ समय पहले तक स्वचालन (ऑटोमेशन) से पूरी तरह सुरक्षित प्रतीत होते थे, वे अब विलुप्तप्राय प्रजाति बन चुके हैं। जब हम किसी ऐल्गरिदम से हवाई जहाज़

के टिकट ख़रीदने के लिए अपने स्मार्टफ़ोन का इस्तेमाल कर सकते हैं, तो हमें कितने ट्रैवल एजेंटों की ज़रूरत रह जाएगी?

शेयर बाज़ार के व्यापारी भी ख़तरे में हैं। आजकल ज़्यादातर वित्तीय कारोबार उन कम्प्यूटर ऐल्गरिदमों से परिचालित होता है, जो एक सेकेंड में उससे ज़्यादा आँकड़ों (डेटा) को प्रॉसेस कर सकता है, जितना कोई इंसान एक साल में कर पाएगा और उन आँकड़ों पर उससे ज़्यादा फुर्ती से प्रतिक्रिया कर सकता है, जितनी फुर्ती से इंसान पलक झपक सकता है। 23 अप्रैल 2013 को सीरियाई हैकरों ने एसोसिएटेड प्रेस के अधिकृत ट्विटर हैंडल पर धावा बोल दिया था। 13:7 बजे उन्होंने ट्वीट किया कि वाइट हाउस पर हमला कर दिया गया है और राष्ट्रपति ओबामा घायल हो गए हैं। व्यापारिक ऐल्गरिदमों ने, जो न्यूज़फ़ीड पर निरन्तर निगाह रखते हैं, इस ख़बर पर अविलम्ब प्रतिक्रिया करते हुए पागलों की तरह शेयरों को बेचना शुरू कर दिया। डाउ जोन्स अचानक गिर गया और साठ सेकेंड के भीतर उसने 150 प्वाइंट गँवा दिए, जो कि 136 अरब डॉलर के बराबर थे! 13:10 पर एसोसिएटेड प्रेस ने स्पष्ट किया कि वह ट्वीट एक झाँसा था। ऐल्गरिदमों ने रिवर्स गियर डाला। 13:13 तक डाउ जोन्स ने लगभग पूरे के पूरे नुक़सान की भरपाई कर ली।

उसके तीन साल पहले, 6 मार्च 2010 को न्यू यॉर्क शेयर बाज़ार इससे भी ज़्यादा तीखे आघात का शिकार हुआ था। पाँच मिनट के भीतर - 14:42 से 14:47 तक - डाउ जोन्स में 1,000 प्वाइंट की गिरावट आ गई, जिसने 1 खरब डॉलर को मिटा डाला था। इसके बाद इसमें वापस उछाल आया और तीन मिनट से कुछ ही ज़्यादा के समय में यह गिरावट से पहले के स्तर पर लौट आया। जब अति-तीव्र गति से काम करने वाले कम्प्यूटर प्रोग्रामों के पास हमारे पैसे की ज़िम्मेदारी होती है, तब यह होता है। तब के बाद से विशेषज्ञ इस बात को समझने की कोशिश में लगे हैं कि इस तथाकथित 'फ़्लैश क्रैश' के दौरान हुआ क्या था। वे यह बात जानते हैं कि इसके लिए ऐल्गरिदम दोषी हैं, लेकिन वे पक्के तौर पर अभी भी नहीं जानते कि गड़बड़ी कहाँ पर हुई थी। संयुक्त राज्य अमेरिका के कुछ आढ़तिए पहले ही ऐल्गरिदमीय कारोबार के ख़िलाफ़ मुक़दमा दायर कर चुके हैं, जिसमें यह तर्क दिया गया है कि यह उन मनुष्यों के ख़िलाफ़ नाजायज़ भेदभाव बरतता है, जो प्रतिस्पर्धा के लिए पर्याप्त तेज़ी-से प्रतिक्रिया नहीं कर पाते। इस चीज़ को लेकर बाल की खाल निकालने से कि क्या इससे वाक़ई मानवाधिकारों का उल्लंघन होता है, वकीलों को ढेर सारा काम और ढेर सारी फ़ीस मिल सकती है।

और ज़रूरी नहीं कि ये वकील इंसान हों। फ़िल्में और टेलिविज़न धारावाहिक इस तरह की धारणा को जन्म देते हैं कि वकील अपना समय अदालतों में 'अब्जेक्शन!' चिल्लाते हुए और जोशीले भाषण देते हुए बिताते हैं, लेकिन ज़्यादातर साधारण वकील अपना समय अन्तहीन फ़ाइलों को ध्यान-से पढ़ते हुए, उनमें नज़ीरों, बचाव के रास्ते और

सम्भावित रूप से प्रासंगिक साक्ष्यों के छोटे-छोटे अंश खोजने में लगाते हैं। कुछ यह पता लगाने की कोशिश में लगे हैं कि जॉन डो की हत्या वाली रात क्या हुआ था, या ऐसे किसी महाकाय व्यापारिक अनुबन्ध को गढ़ने में लगे हुए हैं, जो उनके मुवक्किल को हरसम्भव घटना के प्रति सुरक्षा उपलब्ध कर सके। जब परिष्कृत क़िस्म के खोजी ऐल्गरिदम उससे ज़्यादा नज़ीरें एक दिन में ढूँढ निकालेंगे जितनी को ढूँढने में इंसान की पूरी ज़िन्दगी लग जाएगी, और जब मस्तिष्क के स्कैन एक बटन दबाने मात्र से झूठों और फ़रेबों को उजागर करने लगेंगे, तब इन सारे वकीलों की क्या नियति होगी? बेहद अनुभवी वकील और जासूस भी लोगों के चेहरों की भाव-भंगिमाओं और बोलने के अन्दाज़ मात्र से छल-कपट का पता नहीं लगा सकते। झूठ बोलना मस्तिष्क के उन भिन्न इलाक़ों से ताल्लुक़ रखता है, जिनका इस्तेमाल सच बोलने के लिए किया जाता है। हम अभी उस जगह पहुँचे नहीं हैं, लेकिन यह कल्पना आसानी-से की जा सकती है कि वह दिन बहुत दूर नहीं जब एफएमआरआई स्कैनर सच्चाई का पता लगाने वाली अचूक मशीनों के रूप में काम करने लगेंगे। यह स्थिति लाखों की तादाद में वकीलों, न्यायाधीषों, पुलिसकर्मियों और जासूसों को कहाँ ले जाकर छोड़गी? हो सकता है कि वे कोई नया व्यवसाय सीखने के लिए स्कूल वापस लौटने के बारे में सोचें।

हालाँकि जब वे कक्षा में प्रवेश करेंगे, तो हो सकता है कि उनको पता चले कि ऐल्गरिदम उनसे पहले वहाँ पहुँच चुके हैं। माइंडोजो जैसी कम्पनियाँ ऐसी परस्पर-क्रिया कर सकने वाले ऐल्गरिदम विकसित करने में लगी हैं, जो मुझे न सिर्फ़ गणित, भौतिकी और इतिहास पढ़ाएँगे, बल्कि इसी के साथ-साथ वे मेरा अध्ययन भी करेंगे और इस बात को जान लेंगे कि मैं ठीक-ठीक हूँ कौन। डिजिटल अध्यापक मेरे एक-एक जवाब और उस जवाब को देने में मैंने कितना समय लिया है, इस पर क़रीबी निगरानी रखेंगे। धीरे-धीरे, वे मेरी ख़ास कमज़ोरियों के साथ-साथ मेरी क्षमताओं को जानने लगेंगे और पता लगा लेंगे कि कौन-सी चीज़ें मुझे उत्तेजित करती हैं, और कौन-सी चीज़ें हैं, जिनसे मेरी पलकें झपकने लगती हैं। वे मुझे ऊष्मा गतिकी (थर्मोडायनामिक्स) या ज्यामिति कुछ इस ढंग से पढ़ा सकेंगे, जो मेरे व्यक्तित्व की बनावट से मेल खाता हो, भले ही वह ढंग मेरी कक्षा के 99 प्रतिशत छात्रों के लिए ठीक न बैठता हो। और ये डिजिटल अध्यापक कभी अपना धीरज नहीं खोएँगे, कभी मुझ पर चिल्लाएँगे नहीं, और कभी हड़ताल पर नहीं जाएँगे, हालाँकि, यह बात स्पष्ट नहीं है कि इस तरह के अक़्लमन्द कम्प्यूटर प्रोग्रामों से भरी दुनिया में मुझे ऊष्मा गतिकी या ज्यामिति के बारे में जानने की ज़रूरत ही क्यों पड़ेगी।

यहाँ तक कि डॉक्टर भी ऐल्गरिदमों के लिए मज़ाक़ का विषय हैं। डॉक्टरों का पहला और मुख्य काम बीमारियों का सही ढंग से पता लगाना, और फिर उन बीमारियों की जो भी श्रेष्ठ चिकित्सा उपलब्ध हो, उसका परामर्श देना है। अगर मैं बुखार और दस्त की

शिकायत लेकर क्लीनिक में पहुँचता हूँ, तो मैं विशाक्त भोजन के दुष्प्रभाव का शिकार हो सकता हूँ, लेकिन यही लक्षण पेट के वाइरस, हैजा, पेचिस, मलेरिया, कैंसर या किसी अन्य अज्ञात बीमारी का नतीजा भी हो सकते हैं। रोग की सही पहचान के लिए मेरे डॉक्टर के पास सिर्फ़ कुछ ही मिनट होते हैं, क्योंकि मेरा स्वास्थ्य बीमा कुल मिला कर इतने ही वक़्त के लिए भुगतान करता है। इतने वक़्त में थोड़े-से सवालों और शायद एक फुर्तीली चिकित्सकीय जाँच से ज़्यादा की गुंजाइश नहीं होती। इसके बाद डॉक्टर इस थोड़ी-सी जानकारी को मेरे चिकित्सकीय अतीत, और इंसानी व्याधियों की विराट दुनिया के परिप्रेक्ष्य में रखकर देखता है। मुश्किल यह है कि कोई बेहद चौकन्ना डॉक्टर भी मेरी पिछली बीमारियों और जाँचों को याद नहीं रख सकता। इसी तरह से कोई भी डॉक्टर हरेक बीमारी और हरेक दवा से परिचित नहीं हो सकता, या चिकित्सा-विज्ञान की हर पत्रिका में छपे हर नए लेख को नहीं पढ़ सकता। इस सबसे ऊपर यह कि डॉक्टर कभी-कभी थका हुआ या भूखा या शायद बीमार तक हो सकता है, और ये चीज़ें उसके आकलन को प्रभावित कर सकती हैं। आश्चर्य की बात नहीं कि डॉक्टर कभी-कभी रोग की पहचान में चूक जाते हैं या उससे कमतर चिकित्सा का परामर्श दे देते हैं, जितनी आवश्यक होती है।

अब आईबीएम के प्रसिद्ध वाट्सॅन पर विचार करें - जो एक कृत्रिम बुद्धि प्रणाली (आर्टिफ़िशल इंटेलिजेंस सिस्टम) है, जिसने 2011 में पूर्व इंसानी चैम्पियनों को हराकर *जियोपार्डी!* नामक टेलिविज़न गेम शो जीता था। वाट्सॅन इस वक़्त ज़्यादा गम्भीर काम करने की तैयारी में लगा है, ख़ासतौर से रोगों की पहचान करने के काम में। वाट्सॅन जैसे आर्टिफ़िशल इंटेलिजेंस इंसानी डॉक्टरों के मुक़ाबले विपुल सम्भावनाओं से युक्त हैं। पहली चीज़ तो यह है कि आर्टिफ़िशल इंटेलिजेंस अपने डेटाबैंकों में इतिहास की प्रत्येक ज्ञात बीमारी और चिकित्सा की जानकारी एकत्र करके रख सकता है। ये इन डेटाबैंकों को, न सिर्फ़ नए अनुसन्धानों से की गई खोजों, बल्कि दुनिया के प्रत्येक सम्बद्ध क्लीनिक और अस्पताल से एकत्र किए गए चिकित्सकीय आँकड़ों से रोज़ तरोताज़ा बनाए रख सकता है।

44. आईबीएम का वाट्सॅन 2011 में *जियोपार्डी* में दो इंसानी प्रतिद्वन्द्वियों को पराजित करता हुआ।

दूसरे, वाट्सॅन न सिर्फ़ मेरे समूचे जीन-समूह और मेरे दैनिक चिकित्सकीय अतीत से, बल्कि मेरे अभिभावकों, सहोदरों, चचेरे-फुफेरे-ममेरे भाई-बहनों, पड़ोसियों और दोस्तों के जीन-समूहों और उनके दैनिक चिकित्सकीय अतीत से भी तत्काल परिचय स्थापित कर लेगा। वाट्सॅन तत्काल जान जाएगा कि क्या मैंने हाल ही में किसी उष्ण-कटिबन्धीय देश की यात्रा की है, क्या मुझे बार-बार पेट-सम्बन्धी इन्फ़ेक्षन होते रहे हैं, क्या मेरे परिवार में किन्हीं लोगों को आँत के कैंसर की बीमारियाँ रही हैं या क्या आज सुबह से पूरे शहर के लोग दस्त की शिकायत कर रहे हैं।

तीसरे, वाट्सॅन कभी थकान, भूख या बीमारी महसूस नहीं करेगा, और उसके पास मेरे लिए पूरा समय होगा। मैं घर पर अपने सोफ़े पर आराम से बैठकर वाट्सॅन के सैकड़ों सवालों के जवाब दे सकता हूँ और उसको बता सकता हूँ कि मैं ठीक कैसा महसूस कर रहा हूँ। ये ज़्यादातर मरीज़ों के लिए (सिर्फ़ शायद रोग के भ्रम के शिकार लोगों को छोड़कर) एक अच्छी ख़बर है, लेकिन अगर आप इस उम्मीद के साथ आज चिकित्सा महाविद्यालय में प्रवेश लेते हैं कि आप बीस साल बाद एक फ़ैमिली डॉक्टर बन जाएँगे, तो सम्भवतः आपको दोबारा सोचना चाहिए। जब इस तरह का वाट्सॅन आस-पास मौजूद हो, तो शेरलॉक्स की बहुत ज़्यादा ज़रूरत नहीं रह जाएगी।

यह ख़तरा न सिर्फ़ सामान्य डॉक्टरों के सिर पर, बल्कि विशेषज्ञों के सिर पर भी मँडरा रहा है। दरअसल, यह कैंसर की पहचान जैसे अपेक्षाकृत सीमित क्षेत्रों में विशेषज्ञता प्राप्त डॉक्टरों की जगह लेने के मामले में ज़्यादा आसान साबित हो सकता है। हाल ही में किए

गए एक प्रयोग के तहत एक कम्प्यूटर ऐल्गरिदम ने उसके सामने पेश किए गए फेंफड़ों के कैंसर सम्बन्धी प्रकरणों में से 90 प्रतिशत प्रकरणों की एकदम ठीक-ठीक पहचान की, जबकि इंसानी डॉक्टरों की कामयाबी की दर 50 प्रतिशत रही। दरअसल, भविष्य पहले से मौजूद है। सीटी स्कैनों और मैमोग्राफ़ी परीक्षणों का काम नियमित रूप से विशेषीकृत ऐल्गरिदमों द्वारा किया जा रहा है, जो डॉक्टरों को एक अतिरिक्त अभिमत उपलब्ध कराते हैं, और कभी-कभी वे ऐसी गाँठों (ट्यूमर्स) का पता भी लगा लेते हैं, जिनका पता लगा पाने में डॉक्टर चूक गए होते हैं।

अभी भी कुछ ऐसी मुश्किल तकनीकी समस्याएँ हैं, जो वाट्सॅन और उसके जैसों को आने वाले कल के ज़्यादातर डॉक्टरों की जगह लेने से रोकती हैं, लेकिन इन तकनीकी समस्याओं - जो हालाँकि मुश्किल हैं - को एक बार हल किए जाने भर की ज़रूरत है। इंसानी डॉक्टरों का प्रशिक्षण एक जटिल और ख़र्चीली प्रक्रिया है, जिसमें सालों का वक़्त लगता है। जब अध्ययन और प्रशिक्षण (इंटर्नशिप) के लगभग एक दशक के बाद यह प्रक्रिया पूरी हो जाती है, तब कुल मिलाकर आपके हाथ एक डॉक्टर लगता है। अगर आप दो डॉक्टर चाहते हैं, तो आपको पूरी प्रक्रिया नए सिरे से दोहरानी पड़ती है। इसके विपरीत, अगर आप कभी वाट्सॅन में रुकावट पैदा कर रही समस्याओं का समाधान कर लेते हैं, तो आपको एक नहीं, बल्कि अन्तहीन डॉक्टर मिल जाएँगे, जो दुनिया के हर कोने में पूरे हफ़्ते चौबीसों घण्टे उपलब्ध हुआ करेंगे। इसलिए अगर इसको कारगर बनाने में 100 अरब डॉलर का ख़र्च भी आता है, तब भी दीर्घकालिक स्तर पर यह इंसानी डॉक्टरों को प्रशिक्षण देने से बहुत सस्ता पड़ेगा।

निश्चय ही सारे इंसानी डॉक्टर दृश्य से नदारद नहीं हो जाएँगे। ऐसे उद्यम जो रोग-निदान की साधारण प्रक्रिया के मुक़ाबले रचनात्मकता के उच्चतर स्तर की माँग करते हैं, वे निकट भविष्य में इंसानों के हाथ में ही रहेंगे। ठीक जिस तरह इक्कीसवीं सदी की सेनाएँ अपने उत्कृष्ट प्रशिक्षण-प्राप्त विशेष बलों के आकार में वृद्धि कर रही हैं, उसी तरह भविष्य की स्वास्थ्य-सेवाएँ भी आर्मी रेंजरों और विशेष नौसैनिक कार्यबलों के चिकित्सकीय समकक्षों के लिए बहुत ज़्यादा नौकरियों की पेशकश कर सकती हैं, लेकिन, जिस तरह अब सेनाओं के लिए लाखों की तादाद में जीआईज़ (गैल्वनाइज़्ड आयरॅन = जोशीले फौलादी सैनिकों) की ज़रूरत नहीं रह गई है, उसी तरह भविष्य की स्वास्थ्य सेवाओं के लिए लाखों जीपीज़ (जनरल प्रैक्टिशनर्स) की ज़रूरत नहीं रह जाएगी।

जो बात डॉक्टरों के सन्दर्भ में सही है, वही उससे दोहरे स्तर पर औषधि-विक्रेताओं (फ़ार्मासिस्ट्स) के बारे में सही है। 2011 में सैन फ़्रांसिस्को में एक फ़ार्मेसी खुली है, जिसमें सिर्फ़ एक रोबोट काम करता है। जब कोई आदमी उस फ़ार्मेसी में आता है, तो वह रोबोट उस ग्राहक के सारे नुस्खे (प्रिस्क्रिप्शन्स) लेता है, साथ ही अगर मरीज़ कोई और

दवा लेता है, तो उसकी, और उसकी सन्दिग्ध एलर्जियों की विस्तृत जानकारी प्राप्त करता है। यह रोबोट इस बात का निश्चय करता है कि नुस्खे में लिखी गई नई दवाएँ किसी दूसरी दवा या एलर्जी के साथ विपरीत प्रतिक्रिया तो नहीं करतीं, और इसके बाद ही वह उस ग्राहक को वांछित दवाएँ देता है। इस रोबोटीय औषधि-विक्रेता ने अपने कामकाज के पहले साल में एक भी ग़लती किए बिना 20 लाख नुस्खे निपटाए। एक हाड़-मांस के बने औषधि-विक्रेता से औसतन 1.7 प्रतिशत नुस्खों के मामले में चूक हो जाती है। अकेले संयुक्त राज्य अमेरिका में इसका मतलब प्रति वर्ष 5 करोड़ नुस्खों का ग़लत समझा जाना होता है!

कुछ लोगों का तर्क है कि अगर एक ऐल्गरिदम डॉक्टरों और औषधि-विक्रेताओं को उनके व्यवसाय के तकनीकी पक्षों में मात दे भी देता है, तब भी वह उनके मानवीय स्पर्श की जगह नहीं ले सकता। अगर आपका सीटी दर्शाता है कि आपको कैंसर है, तो यह सूचना आप एक निर्जीव मशीन से हासिल करना पसन्द करेंगे या उस इंसानी डॉक्टर से जो आपकी भावनात्मक अवस्था के प्रति सचेत है? मान लिया, लेकिन यह सूचना उस सचेत मशीन से हासिल करने के बारे में क्या ख़याल है, जो आपकी भावनाओं और व्यक्तित्व के मुताबिक़ अपने शब्दों को गढ़ती है? याद रहे कि प्राणी ऐल्गरिदम हैं, और वाट्सॅन आपकी भावनात्मक अवस्था को उतने ही सटीक ढंग से समझ सकता है, जितने सटीक ढंग से वह आपकी अन्दरूनी गठानों (ट्यूमर्स) का पता लगा लेता है।

एक इंसानी डॉक्टर आपकी भाव-भंगिमाओं और आपके बोलचाल के लहज़े जैसे बाहरी संकेतों का विश्लेषण करते हुए आपकी भावनात्मक अवस्था की पहचान करता है। वाट्सॅन न सिर्फ़ इस तरह के बाहरी संकेतों का विश्लेषण इंसानी डॉक्टर के मुक़ाबले ज़्यादा सटीक ढंग से कर सकेगा, बल्कि वह इसी के साथ-साथ ऐसे अनेक आन्तरिक संकेतकों का भी विश्लेषण कर सकेगा, जो सामान्यतः आपकी आँखों और कानों से ओझल बने रहते हैं। आपके रक्तचाप, मस्तिष्क की गतिविधियों और असंख्य दूसरी जैवसांख्यकीय सूचनाओं (बायोमैट्रिक डेटा) की निगरानी करते हुए वाट्सॅन एकदम ठीक-ठीक ढंग से जान सकेगा कि आप कैसा महसूस कर रहे हैं। पहले जिन लाखों सामाजिक स्थितियों से वाट्सॅन का सामना हो चुका होगा, उनसे एकत्र किए गए आँकड़ों की बदौलत वह आपको यह बता सकेगा कि आपको महज़ सही स्वर में क्या सुनने की ज़रूरत है। अपनी बहुप्रशंसित भावनात्मक सूझबूझ के बावजूद मनुष्य अक्सर अपनी ही भावनाओं के वशीभूत हो जाते हैं और प्रतिकूल ढंग से प्रतिक्रिया करते हैं। उदाहरण के लिए, किसी क्रोधित व्यक्ति से मुठभेड़ होने पर वे चिल्लाने लगते हैं, और किसी भयभीत आदमी की बात सुनकर वे अपनी बेचैनियों को बेक़ाबू होने की खुली छूट दे देते हैं। वाट्सॅन इस तरह

के प्रलोभनों का शिकार कभी नहीं होगा। चूँकि उसकी अपनी कोई भावनाएँ नहीं होंगी, इसलिए वह आपकी भावनात्मक अवस्था के प्रति बेहद सटीक प्रतिक्रियाएँ करेगा।

कुछ ग्राहक-सेवा विभागों द्वारा, जैसे कि शिकागो-स्थित मैटरसाइट कॉर्पोरेशन द्वारा शुरू किए गए विभाग द्वारा, इस अवधारणा को पहले ही आंशिक तौर पर क्रियान्वित किया जा चुका है। मैटरसाइट अपने सामान का विज्ञापन इस विवरण के साथ करता है: 'क्या आपने कभी किसी से बात करते हुए ऐसा महसूस किया है जैसे सहसा उसके साथ आपकी दोस्ती हो गई हो? यह जादुई अहसास व्यक्तित्वों के बीच रिश्ता क़ायम हो जाने का नतीजा होता है। मैटरसाइट यह अहसास हर दिन सारी दुनिया में फैले अपने कॉल सेंटर्स में पैदा करता है'। जब आप किसी अनुरोध या शिकायत के साथ किसी ग्राहक सेवा केन्द्र को फ़ोन करते हैं, तो वह आपके कॉल को किसी नुमाइन्दे के पास तक पहुँचाने के लिए कुछ सेकेंड का वक़्त लेता है। मैटरसाइट व्यवस्था के तहत आपका कॉल एक अक़्लमन्द ऐल्गरिदम के माध्यम से आगे बढ़ाया जाता है। आप सबसे पहले फ़ोन करने की वजह बताते हैं। ऐल्गरिदम आपकी समस्या को सुनता है, आपके द्वारा इस्तेमाल किए गए शब्दों और आपके लहज़े का विश्लेषण करता है, और इनके आधार पर न सिर्फ़ आपकी मौजूदा भावनात्मक अवस्था, बल्कि आपके व्यक्तित्व की बनावट को भी समझ लेता है - कि आप अन्तर्मुखी हैं, बहिर्मुखी हैं, विद्रोही क़िस्म के हैं या दूसरे पर निर्भर करने वाले हैं। इस जानकारी के आधार पर यह ऐल्गरिदम आपका कॉल एक ऐसे नुमाइन्दे के पास पहुँचाता है, जो आपकी मन:स्थिति और व्यक्तित्व के साथ सबसे ज़्यादा मेल रखता हो। यह ऐल्गरिदम जानता है कि आपको किसी ऐसे सहानुभूतिशील व्यक्ति की ज़रूरत है, जो धीरज के साथ आपकी शिकायतों को सुने, या किसी दो-टूक तर्कशील क़िस्म के व्यक्ति की ज़रूरत है, जो आपको सबसे फुर्तीला तकनीकी समाधान उपलब्ध कराएगा। इस तरह के सुसंयोग से दोनों के हित सधते हैं - ग्राहक भी ख़ुश और ग्राहक सेवा केन्द्र के समय और धन की कम से कम बर्बादी।

अनुपयोगी वर्ग

इक्कीसवीं सदी की अर्थव्यवस्था का सबसे महत्त्वपूर्ण सवाल बहुत तर्कसंगत ढंग से यह हो सकता है कि अनावश्यक लोगों का क्या किया जाए। जब हमारे पास ऐसे अत्यन्त अक़्लमन्द अ-चेतन ऐल्गरिदम होंगे, जो लगभग हर काम बेहतर ढंग से कर सकेंगे, तब चेतना-सम्पन्न मनुष्य क्या करेंगे?

समूचे इतिहास के दौरान रोज़गार का बाज़ार तीन मुख्य क्षेत्रों में विभाजित रहा है: कृषि, उद्योग और सेवा क्षेत्र। लगभग 1800 तक लोगों का बहुत बड़ा हिस्सा खेती सम्बन्धी काम किया करता था, और बहुत थोड़े-से लोग थे, जो उद्योग या सेवा क्षेत्र से जुड़े

हुए थे। औद्योगिक क्रान्ति के दौरान विकसित देशों के लोगों ने खेतों और पशुओं को त्याग दिया। ज़्यादातर लोग उद्योगों में लग गए, लेकिन बढ़ती हुई तादाद में लोगों ने आजीविका के लिए सेवा क्षेत्र को चुनना भी शुरू कर दिया था। हाल के दशकों में विकसित देशों में एक और क्रान्ति हुई(जैसे-जैसे औद्योगिक रोज़गार ख़त्म होते गए, वैसे-वैसे सेवा क्षेत्र विस्तार पाता गया। 2010 में मात्र 2 प्रतिशत लोग कृषि के क्षेत्र में काम करते थे और 20 प्रतिशत लोग औद्योगिक क्षेत्र में काम करते थे, जबकि 78 प्रतिशत लोग अध्यापकों, डॉक्टरों, वेबपेज डिज़ाइनरों और इसी तरह के अन्य पेषों में लगे थे। जब विचारहीन ऐल्गरिदम मनुष्यों से बेहतर ढंग से अध्यापन, रोग-निदान और आकल्पन करने में लग जाएँगे, तब हम क्या करेंगे?

यह कोई नितान्त नया प्रश्न नहीं है। औद्योगिक क्रान्ति के विस्फोट के समय से ही लोग इस बात को लेकर भयभीत रहने लगे थे कि यान्त्रिकीकरण बेरोज़गारी की वजह बन सकता है। ऐसा कभी नहीं हुआ, क्योंकि पुराने व्यवसायों के चलन से बाहर हो जाने के साथ नए व्यवसाय विकसित होते गए, और यह स्थिति हमेशा बनी रही कि कुछ काम ऐसे हुआ करते थे, जिनको मनुष्य मशीनों से बेहतर ढंग से कर सकते थे, लेकिन यह कोई प्राकृतिक नियम नहीं है, और इस बात की गारंटी देने वाली कोई चीज़ नहीं है कि इस तरह की स्थिति भविष्य में भी बनी रहेगी। मनुष्यों में दो बुनियादी क़िस्म की क़ाबिलियतें होती हैं: शारीरिक और संज्ञानात्मक। जब तक मशीनें मनुष्यों के साथ शारीरिक क़ाबिलियतों के मामले में प्रतिस्पर्घा करती थीं, तब तक ऐसे असंख्य संज्ञानात्मक उद्यम थे, जिनको मनुष्य बेहतर ढंग से निष्पादित कर सकते थे। इसलिए जब मशीनों ने विशुद्ध शारीरिक स्तर पर किए जाने वाले काम अपने हाथ में ले लिए, तो मनुष्यों ने उस तरह के कामों पर ख़ुद को एकाग्र किया, जो कम से कम कुछ संज्ञानात्मक दक्षताओं की माँग करते थे, लेकिन उस वक़्त क्या होगा, जब ऐल्गरिदम याद करने, विश्लेषण करने और पैटर्नों को पहचानने के मामले में हमें मात दे देंगे?

यह ख़याल कि मनुष्यों के पास हमेशा ही एक ऐसी अनूठी क़ाबिलियत होगी, जो चेतना-हीन ऐल्गरिदमों की पहुँच से परे होगी, एक ख़याली पुलाव मात्र है। इस दिवास्वप्न के ताज़ा वैज्ञानिक जवाब का सारांश तीन साधारण सिद्धान्तों में पेश किया जा सकता है।

1. प्राणी ऐल्गरिदम हैं। हर प्राणी - जिसमें होमो सेपियन्स शामिल हैं - विकास-प्रक्रिया के लाखों वर्षों के दौरान प्राकृतिक वरण द्वारा गढ़े गए जैविक ऐल्गरिदमों का एक समागम है।
2. ऐल्गरिदमीय गणनाएँ (कैल्कुलेशन्स) उस सामग्री से प्रभावित नहीं होतीं, जिससे कैल्कुलेटर बनाया जाता है। एबेकस चाहे लकड़ी का हो, लोहे का हो या प्लास्टिक का, दो गुरियों में दो गुरिये मिलाने पर उनकी संख्या चार ही होती है।

3. इसलिए ऐसा सोचने की कोई वजह नहीं है कि जैविक ऐल्गरिदम ऐसे काम कर सकेंगे, जिनको दोहरा पाने या जिनको श्रेष्ठ ढंग से कर पाने में अ-जैविक ऐल्गरिदम सक्षम नहीं होंगे। जब तक गणनाएँ सही बनी रहती हैं, तब तक इससे क्या फ़र्क़ पड़ता है कि ऐल्गरिदम कार्बन में प्रकट होते हैं या सिलिकॉन में।

यह सही है कि फ़िलहाल अनेक ऐसे काम हैं, जिनको जैविक ऐल्गरिदम अ-जैविक ऐल्गरिदमों के मुक़ाबले बेहतर ढंग से कर सकते हैं, और विशेषज्ञों ने बार-बार इस बात की घोषणा की है कि ऐसा कुछ है, जो अ-जैविक ऐल्गरिदमों की पहुँच से 'हमेशा' बाहर बना रहेगा, लेकिन पता चलता है कि 'हमेशा' का मतलब अक्सर एक या दो दशक से ज़्यादा नहीं होता। कुछ समय पहले तक चेहरे की पहचान एक ऐसे काम का अनुकूल उदाहरण हुआ करता थी, जिसको शिशु तक आसानी-से कर लेते थे, लेकिन जिसमें अत्यन्त शक्तिशाली कम्प्यूटरों तक से चूक हो जाया करती थी। आज चेहरे की पहचान के कम्प्यूटर प्रोग्राम लोगों को इंसानों से कहीं ज़्यादा दक्षतापूर्वक और फुर्ती से पहचानने में सक्षम हैं। पुलिस बल और खुफ़िया तन्त्र सन्दिग्धों और अपराधियों को ढूँढ निकालने के लिए निगरानी कैमरों के अन्तहीन घण्टों के वीडियो फुटेज को स्कैन करने के वास्ते इस तरह के प्रोग्रामों का नियमित इस्तेमाल करते हैं।

1980 में जब लोग मनुष्यता की अनूठी प्रकृति के बारे में चर्चा किया करते थे, तो वे मनुष्य की श्रेष्ठता के प्राथमिक सबूत के तौर पर शतरंज का आदतन इस्तेमाल करते थे। उनको विश्वास था कि कम्प्यूटर शतरंज के खेल में इंसानों को कभी मात नहीं दे पाएँगे। 10 फ़रवरी 1996 को आईबीएम के डीप ब्ल्यू ने विश्व चैम्पियन गैरी कास्पारोव को हराकर इंसानी श्रेष्ठता के इस ख़ास दावे को झूठा साबित कर दिया।

डीपब्ल्यू को रचने वालों द्वारा इसको शुरुआती बढ़त प्रदान की गई थी। उन लोगों ने इसको न सिर्फ़ शजरंज के बुनियादी नियमों, बल्कि शतरंज की रणनीतियों से सम्बन्धित विस्तृत निर्देशों से भी लैस (प्रि-प्रोग्राम) किया हुआ था। आर्टिफ़िशल इंटेलिजेंस की नई सन्तति इंसानी परामर्श की बजाय मशीनी शिक्षण को प्राथमिकता देती है। 2015 में गूगल डीपमाइंड द्वारा विकसित किए गए एक कम्प्यूटर प्रोग्राम ने *ख़ुद* से यह सीख लिया था कि उन्चास सर्वश्रेष्ठ अटारी खेल किस तरह खेले जाएँ। इस प्रोग्राम के एक डिवेलपर डॉ. डेमिस हस्साबिस ने बताया कि 'हमने इस सिस्टम को जो एकमात्र सूचना दी थी, वह थी स्क्रीन पर रॉ पिक्सेल और यह विचार कि इसको अधिकतम स्कोर हासिल करना है। और बाक़ी सब कुछ इसी ने हल किया'। इस प्रोग्राम ने इसके सामने पेश किए गए *पैक-मेन* और *स्पेस इन्वेडर्स* से लेकर कार रेसिंग और टेनिस खेलों तक सारे खेलों के नियम सीख लिए। इसके बाद इसने इन खेलों को इंसानों जितनी ही अच्छी तरह से या उनसे भी बेहतर

ढंग से खेला, और कभी-कभी ऐसी रणनीतियों का इस्तेमाल किया, जो इंसानी खिलाड़ियों को कभी सूझती तक नहीं हैं।

45. गैरी कास्पारोव को पराजित करता डीप ब्ल्यू।

इसके कुछ ही समय बाद आर्टिफ़िशल इंटेलिजेंस ने और भी सनसनीखेज़ कामयाबी हासिल की, जब गूगल के अल्फ़ा गो सॉफ़्टवेयर ने ख़ुद को गो नामक वह खेलना सिखाया, जो चीन का एक प्राचीन रणनीतिपरक खेल है। यह शतरंज से भी ज़्यादा जटिल है। गो की पेचीदिगियों को बहुत पहले से आर्टिफ़िशल इंटेलिजेंस प्रोग्रामों की पहुँच से परे माना जाता रहा था। मार्च 2016 में सिओल में अल्फ़ा गो और दक्षिण कोरियाई गो चैम्पियन ली सेडोल के बीच खेला गया। अल्फ़ा गो ने विशेषज्ञों को चकित कर देने वाली नितान्त अपारम्परिक चालों और मौलिक रणनीतियों का इस्तेमाल करते हुए ली को 4-1 से बुरी तरह पीट दिया। जहाँ मैच के पहले ज़्यादातर व्यावसायिक गो खिलाड़ियों को यक़ीन था कि ली जीत जाएगा, वहीं अल्फ़ा गो की चालों का विश्लेषण करने के बाद ज़्यादातर विशेषज्ञ इस नतीजे पर पहुँचे कि खेल ख़त्म था और यह कि इंसान के पास अल्फ़ा गो और उसके वंशजों को हराने की अब उम्मीदें बाक़ी नहीं रह गई थीं।

कम्प्यूटर ऐल्गरिदमों ने हाल ही में गेंद से खेले जाने वाले खेलों में भी अपना जौहर साबित कर दिया है। कई दशकों तक बेसबॉल की टीमें खिलाड़ियों का चयन करने के लिए व्यावसायिक स्काउटों और मैनेजरों की अक़्लमन्दी, अनुभव और सूझबूझ का इस्तेमाल किया करती थीं। श्रेष्ठ खिलाड़ी लाखों डॉलर कमा कर लाते थे, और स्वाभाविक ही समृद्ध

टीमें श्रेष्ठ खिलाड़ियों को हथिया लेती थीं, जबकि ग़रीब टीमों को खुरचन से सन्तोष करना पड़ता था। 2002 में कम बजट वाली ऑकलैंड ऐथलेटिक्स के मैनेजर बिली बीन ने इस व्यवस्था को तोड़ने का फ़ैसला किया। उन्होंने इंसानी स्काउटों द्वारा नज़रअन्दाज़ कर दिए गए या कम करके आँके गए खिलाड़ियों से विजेता टीम तैयार करने के लिए अर्थशास्त्रियों तथा कम्प्यूटर-रत लोगों द्वारा विकसित एक रहस्यमय कम्प्यूटर ऐल्गरिदम पर भरोसा किया। अनुभवी व्यक्ति इस बात से कुढ़े हुए थे कि बीन के ऐल्गरिदम ने बेसबॉल की पवित्रता का उल्लंघन किया है। वे इस बात पर ज़ोर दे रहे थे कि बेसबॉल खिलाड़ियों का चयन एक कला है, और सिर्फ़ ऐसे इंसान ही इस कला में माहिर हो सकते हैं, जिनको इस खेल का क़रीबी और दीर्घकालीन अनुभव होता है।

जल्दी ही ऐसा मौक़ा आया, जब इन लोगों को अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हो रहा था। बीन की निहायत ही छोटे बजट (4.4 करोड़ डॉलर) की ऐल्गरिदमीय टीम न सिर्फ़ न्यू यॉर्क यांकीज़ (12.5 करोड़ डॉलर) जैसे बेसबॉल महारथियों के मुक़ाबले ख़ुद को टिकाए रख सकी, बल्कि वह अमेरिकन लीग के इतिहास की एक के बाद एक खेल जीतने वाली पहली टीम भी बन गई, हालाँकि बीन और ऑकलैंड अपनी इस कामयाबी का लुत्फ़ लम्बे समय तक नहीं उठा पाए। आख़िरकार दूसरी कई टीमों ने भी यही ऐल्गरिदमीय रुख अपना लिया, और चूँकि यांकीज़ और रेड सॉक्स बेसबॉल खिलाड़ियों और कम्प्यूटर सॉफ़्टवेयर, दोनों को कहीं ज़्यादा भुगतान कर सकते थे, इसलिए ऑकलैंड ऐथलेटिक्स जैसी कम बजट वाली टीमों के पास इस व्यवस्था को मात देने के अवसर पहले के मुक़ाबले और भी कम रह गए।

2004 में एमआईटी के प्रोफ़सर फ़्रैंक लेवी और हार्वर्ड के प्रोफ़ेसर रिचर्ड मर्नान ने रोज़गार की मण्डी पर गहन शोध प्रकाशित करते हुए उन व्यवसायों की सूची पेश की थी, जिनके स्वचालन (ऑटोमेशन) के अधीन हो जाने की सबसे ज़्यादा सम्भावना थी। ट्रक ड्राइविंग को रोज़गार के एक ऐसे उदाहरण के रूप में पेश किया गया था,जिसके निकट भविष्य में स्वचालीकृत होने की सम्भावना नहीं थी। उन्होंने लिखा था कि इस बात की कल्पना करना मुश्किल है कि ऐल्गरिदम किसी व्यस्त सड़क पर ट्रकों को सुरक्षित ढंग से चला सकेंगे। महज़ दस साल बाद गूगल और टेसला न सिर्फ़ इसकी कल्पना कर सके, बल्कि वे इसको वास्तव में मुमकिन भी कर रहे हैं।

दरअसल, समय के गुज़रने के साथ कम्प्यूटर ऐल्गरिदमों द्वारा मनुष्यों को विस्थापित करना उत्तरोत्तर आसान होता जा रहा है, महज़ इसलिए नहीं कि ऐल्गरिदम ज़्यादा चतुर होते जा रहे हैं, बल्कि इसलिए भी कि मनुष्यों का व्यवसायीकरण हो रहा है। प्राचीन शिकारी-संग्रहकर्ताओं ने जीवित बने रहने के लिए व्यापक स्तर पर विविध क़िस्म की दक्षताओं में महारत हासिल कर रखी थी, यही वजह है कि एक रोबोटीय शिकारी-

संग्रहकर्ता को गढ़ना बेहद मुश्किल काम होगा। इस तरह के रोबोट को यह जानना ज़रूरी होगा कि चकमक पत्थर से भाले की नोक कैसे तैयार की जाए, जंगल में खाने लायक़ मशरूमों का पता कैसे लगाया जाए, किसी मैमॅथ को कैसे खोजा जाए और दर्जनभर दूसरे शिकारियों के साथ समन्वय स्थापित करके हमला कैसे किया जाए, और बाद में किसी तरह के घावों की मरहम-पट्टी करने के लिए जड़ी-बूटियों का इस्तेमाल कैसे किया जाए, लेकिन पिछले कुछ हज़ार सालों से मनुष्य विशेषज्ञता प्राप्त करने में लगे हैं। एक टैक्सी ड्राइवर या एक हृदयरोग विशेषज्ञ किसी शिकारी-संग्रहकर्ता के मुक़ाबले एक बहुत संकुचित कार्यक्षेत्र में विशेषज्ञता रखता है, और यह स्थिति आर्टिफ़िशल इंटेलिजेंस से इनके विस्थापन को आसान बना देती है। जैसा कि मैंने बार-बार ज़ोर देकर कहा है कि आर्टिफ़िशल इंटेलिजेंस मनुष्य-नुमा अस्तित्व के क़रीब कहीं भी नहीं है, लेकिन 99 प्रतिशत मानवीय ख़ूबियाँ और क़ाबिलियतें ज़्यादातर आधुनिक कामों के निष्पादन के लिहाज़ से अनावश्यक हैं। मनुष्यों को रोज़गार की मण्डी से बाहर निकालने के लिए इसको किसी व्यवसाय-विशेष में आवश्यक विशिष्ट योग्यताओं के मामले में हमें मात देने भर की ज़रूरत है।

यहाँ तक कि इन तमाम गतिविधियों को सँभालने वाले मैनेजरों को भी विस्थापित किया जा सकता है। अपने शक्तिशाली ऐल्गरिदमों की बदौलत उबर मुट्ठीभर इंसानों की मदद से लाखों टैक्सी ड्राइवरों की व्यवस्था सँभाल सकता है। ज़्यादातर निर्देश किसी भी इंसानी निरीक्षण के बग़ैर ऐल्गरिदमों द्वारा दिए जाते हैं। मई 2014 में रिजनरेटिव मेडीसन के क्षेत्र में विशेषता प्राप्त हाँगकाँग की वेंचर-कैपिटल फ़र्म डीप नॉलेज वेंचर्स ने अपने बोर्ड में वाइटल (VITAL) नामक एक ऐल्गरिदम को नियुक्त कर एक अनूठा उदाहरण रच डाला। वित्तीय स्थिति, नैदानिक परीक्षणों और प्रत्याशित कम्पनियों की बौद्धिक सम्पदा से सम्बन्धित आँकड़ों की विपुल मात्र का विश्लेषण कर वाइटल निवेश सम्बन्धी परामर्श देता है। बोर्ड के पाँच अन्य सदस्यों की तरह इस ऐल्गरिदम को भी इस मसले पर अपना मत देने का अवसर प्राप्त होता है कि किसी कम्पनी-विशेष में फ़र्म को निवेश करना चाहिए या नहीं।

वाइटल की अब तक की कार्रवाइयों का परीक्षण करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि यह कम से कम एक प्रबन्धकीय बुराई - भाई-भतीजावाद - सीख चुका है। इसने ऐसी कम्पनियों में निवेश करने के परामर्श दिए हैं, जिनके यहाँ ऐल्गरिदमों को ज़्यादा प्रभुत्व मिला हुआ है। उदाहरण के लिए, वाइटल के आशीर्वाद से डीप नॉलेज वेंचर्स ने हाल ही में पाथवे फ़ार्मासूटिकल में निवेश किया है, जिसने व्यक्ति के हिसाब से कैंसर चिकित्साओं (पर्सनलाइज़्ड कैंसर थेरेपीज़) के चयन और मूल्यांकन के लिए ओंकोफ़ाइंडर नामक ऐल्गरिदम को नियुक्त कर रखा है।

जैसे-जैसे ऐल्गरिदम इंसानों को रोज़गार की मण्डी से बाहर धकेलते जाएँगे, वैसे-वैसे सम्पत्ति और सत्ता सर्वशक्तिमान ऐल्गरिदमों के स्वामित्व वाले छोटे-से विशिष्ट वर्ग के हाथों में सिमट सकती है, और यह प्रक्रिया अपूर्व सामाजिक और राजनैतिक ग़ैरबराबरी की स्थिति पैदा कर सकती है। आज लाखों टैक्सी ड्राइवरों, बस ड्राइवरों और ट्रक ड्राइवरों का ख़ासा आर्थिक और राजनैतिक दबदबा है, जिनमें से प्रत्येक परिवहन व्यवसाय के एक छोटे-से हिस्से को नियन्त्रित करता है। अगर उनके सामूहिक हितों पर ख़तरा मँडराता है, तो वे संगठित हो सकते हैं, हड़ताल पर जा सकते हैं, बहिष्कार कर सकते हैं और शक्तिशाली मतदाता समूह तैयार कर सकते हैं, लेकिन जैसे ही लाखों इंसानी ड्राइवरों को एक ऐल्गरिदम द्वारा विस्थापित कर दिया जाता है, वह सारी सम्पत्ति और सत्ता उस ऐल्गरिदम पर मालिकाना हक़ रखने वाले कॉर्पोरेशन द्वारा, और उन मुट्ठीभर अरबपतियों द्वारा हथिया ली जाएगी, जिनके पास उस निगम का स्वामित्व होगा। दूसरी सम्भावना यह है कि ऐल्गरिदम स्वयं ही मालिक बन जाएँ। मनुष्य का क़ानून पहले से ही निगमों और राष्ट्रों जैसी अन्तरव्यक्तिनिष्ठ सत्ताओं को 'वैधानिक व्यक्तियों' के रूप में मान्यता देता है। हालाँकि, टोयोटा या अर्जेंटीना के पास न काया है और न दिमाग़ है, तब भी वे अन्तरराष्ट्रीय क़ानून के अधीन हैं, उनके स्वामित्व में ज़मीन और पैसा हो सकता है, और अदालत में उन पर मुक़दमा चलाया जा सकता है या वे मुक़दमा चला सकते हैं। हम जल्दी ही ऐसी ही हैसियत ऐल्गरिदमों को प्रदान कर सकते हैं। ऐसी सूरत में एक ऐल्गरिदम किसी इंसानी मालिक की इच्छाओं की परवाह किए बिना किसी परिवहन साम्राज्य या किसी वेंचर-कैपिटल फ़ंड का मालिक हो सकता है।

अगर ऐल्गरिदम सही फ़ैसले लेता है, तो वह विपुल सम्पत्ति खड़ी कर सकता है, जिसका वह फिर उस जगह निवेश कर सकता है, जिसे वह ठीक समझता है, जैसे कि मसलन वह आपका मकान ख़रीदकर आपका मकान मालिक बन जाए। अगर आप इस ऐल्गरिदम के वैधानिक अधिकारों का उल्लंघन करते हैं - जैसे कि, मसलन मकान किराये का भुगतान नहीं करते हैं - तो एह ऐल्गरिदम वकील लगा सकता है और अदालत में आप पर मुक़दमा दायर कर सकता है। अगर इस तरह ऐल्गरिदम निरन्तर इंसानी पूँजीपतियों को मात देते रहते हैं, तो अन्ततः यह स्थिति बन सकती है कि हमारे ग्रह पर एक ऐल्गरिदमीय उच्च वर्ग का स्वामित्व स्थापित हो जाए। यह बात असम्भव लग सकती है, लेकिन इस सम्भावना को ख़ारिज़ करने से पहले यह याद रखें कि हमारे ग्रह का ज़्यादातर हिस्सा पहले से ही राष्ट्रों और निगमों जैसी अ-मानवीय अन्तरव्यक्तिनिष्ठ सत्ताओं के स्वामित्व में है। वाक़ई, 5000 साल पहले सुमेर के ज़्यादातर हिस्से पर ऐंकी और इनान्ना जैसे कल्पित देवताओं का स्वामित्व था। अगर देवता किसी मुल्क के मालिक हो सकते हैं और लोगों को नौकरी पर रख सकते हैं, तो ऐल्गरिदम ऐसा क्यों नहीं कर सकते?

तब लोग क्या करेंगे? कला के बारे में कहा जाता है कि वह हमें हमारा चरम (और अनूठे ढंग से मानवीय) शरण-स्थल मुहैया कराती है। एक ऐसी दुनिया में जिसमें डॉक्टरों, ड्राइवरों, अध्यापकों और यहाँ तक कि मकान-मालिकों की जगह कम्प्यूटर ले चुके होंगे, उसमें क्या हर कोई कलाकार बन जाएगा? हालाँकि, यह समझ पाना मुश्किल है कि कलात्मक सृजन ऐल्गरिदमों से सुरक्षित क्यों होगा। हमें इस क़दर आत्मविश्वास क्यों है कि संगीत की रचना करने के मामले में कम्प्यूटर कभी हमसे आगे नहीं निकल पाएगा? जैविक विज्ञानों के मुताबिक़ कला किसी जादुई अन्तःकरण या आधिभौतिक आत्मा से उत्पन्न नहीं होती, बल्कि वह गणितीय पैटर्नों को पहचानने वाले जैविक ऐल्गरिदमों की उपज होती है। अगर ऐसा है, तो कोई वजह नहीं है कि अ-जैविक ऐल्गरिदम इस काम में माहिर नहीं हो पाएँगे।

डेविड कोप सान्ता क्रुज़ स्थित यूनिवर्सिटी ऑफ़ कैलिफ़ोर्निया में संगीतशास्त्र के प्रोफ़ेसर हैं। वे शास्त्रीय संगीत की दुनिया के सर्वाधिक विवादास्पद व्यक्तित्व भी हैं। कोप ने ऐसे कम्प्यूटर प्रोग्राम तैयार किए हैं, जो कन्सर्टोज़, कोरल्स, सिम्फ़नियों और ऑपेराओं की रचना करते हैं। उनकी पहली रचना का नाम था ई.एम.आई. (एक्सपेरीमेंट्स इन म्यूज़िकल इंटेलिजेंस), जिसने योहन सेबास्टियन बाख़ की षैली की नक़ल तैयार करने में विशेषज्ञता हासिल की हुई है। इस प्रोग्राम को तैयार करने में सात साल लगे, लेकिन एक बार जब यह काम पूरा हो गया, तो ई.एम.आई. ने एक दिन में 5,000 chorales á la Bach (बाख़ कोरल्स) की रचनाएँ कर डालीं। कोप ने कुछ चुनिन्दा कोरलों को सान्ता क्रुज़ के एक संगीत समारोह में प्रस्तुत किया। उत्साह से भरे श्रोताओं ने इस भावोत्तेजक प्रस्तुति की सराहना की, और काफ़ी उत्साहपूर्वक यह बताया कि किस तरह उस संगीत ने उनके अन्तर्मन को छू लिया था। वे यह नहीं जानते थे कि इसकी रचना बाख़ ने नहीं, बल्कि ई.एम.आई. ने की थी, और जब सच्चाई उजागर की गई, तो कुछ लोगों ने खिन्न मन से ख़ामोश रहते हुए प्रतिक्रिया जताई, जबकि कुछ दूसरे लोग ग़ुस्से से चिल्ला उठे।

ई.एम.आई. ने स्वयं को उन्नत बनाना जारी रखा और बीथोवेन, शोपाँ, रख़्मानिनोव और स्ट्राविंस्की का अनुकरण करना सीख लिया। कोप को ई.एम.आई. के लिए एक अनुबन्ध प्राप्त हुआ और उसके पहले एलबम - *क्लासिकल म्यूज़िक कम्पोज़्ड बाइ कम्प्यूटर* - की विस्मकारी ढंग से अच्छी ख़ासी बिक्री हुई। इस प्रचार से शास्त्रीय संगीत के मर्मज्ञ उत्तरोत्तर विद्वेश से भरते गए। यूनिवर्सिटी ऑफ़ ओरेगन के प्रोफ़ेसर स्टीव लार्सन ने कोप को एक निर्णायक सांगीतिक मुक़ाबले के लिए चुनौती दी। लार्सन ने सुझाव दिया कि व्यावसायिक पियानो-वादकों द्वारा एक के बाद एक तीन संगीत-रचनाएँ पेश की जाएँ: एक बाख़ की, एक ई.एम.आई. की और एक स्वयं लार्सन की। इसके बाद श्रोताओं से मतदान कराकर पूछा जाए कि कौन-सी रचना किसने तैयार की है। लार्सन को यक़ीन था कि लोग

मनुष्य-कृत रचना और यन्त्रकृत निर्जीव संगीत-रचना के बीच आसानी-से फ़र्क़ कर लेंगे। कोप ने इस चुनौती को स्वीकार कर लिया। निर्धारित तिथि पर यूनिवर्सिटी ऑफ़ ओरेगन के संगीत सभागार में सैकड़ों की संख्या में व्याख्याता, छात्र और संगीत-प्रेमी एकत्र हुए। प्रस्तुति के अन्त में मतदान कराया गया। परिणाम? श्रोताओं का विचार था कि ई.एम.आई. द्वारा प्रस्तुत की गई रचना बाख़ की वास्तविक रचना थी, बाख़ की रचना को लार्सन ने कम्पोज़ किया था, और लार्सन की रचना कम्प्यूटर द्वारा प्रस्तुत की गई थी।

आलोचकों ने यह तर्क देना जारी रखा कि ई.एम.आई. का संगीत तकनीकी तौर पर पर उत्कृष्ट है, लेकिन कुछ ऐसा है, जिसका उसमें अभाव है। वह अत्यन्त अचूक (एक्युरेट) है। उसमें कोई गहराई नहीं है, उसमें आत्मा नहीं है, लेकिन जब लोगों ने ई.एम.आई. की संगीत-रचनाओं को, उनकी उत्पत्ति से अनजान रहते हुए सुना, तो उन्होंने ठीक उसकी गहन अनुभूतिपरकता तथा भावनात्मक अनुगूँज के लिए ही अक्सर उसकी सराहना की।

ई.एम.आई. की कामयाबी को देखते हुए कोप ने और भी नए तथा परिष्कृत प्रोग्राम तैयार किए। उनकी श्रेष्ठतम उपलब्धि थी ऐनी। जहाँ ई.एम.आई. पूर्वनिर्धारित नियमों के मुताबिक़ संगीत-रचनाएँ तैयार करता था, वहीं ऐनी यान्त्रिक शिक्षण पर आधारित है। इसकी सांगीतिक सैली बाहरी दुनिया की सूचनाओं (इनपुट्स) से प्रतिक्रिया करते हुए लगातार परिवर्तित और विकसित होती रहती है। कोप को अनुमान ही नहीं होता कि ऐनी अगली कौन-सी रचना तैयार करने वाला है। वस्तुतः, ऐनी ने अपने को संगीत-रचनाओं तक ही सीमित नहीं कर रखा है, बल्कि वह दूसरे कलारूपों, जैसे कि हाइकू कविता, का अन्वेशण भी करता है। 2011 में कोप ने कम्स *द फ़ायरी नाइट: 2,000 हाइकू बाइ मैन एंड मशीन* का प्रकाशन किया। इनमें से कुछ हाइकू ऐनी द्वारा और कुछ जैविक कवियों द्वारा लिखे गए थे। पुस्तक में यह नहीं बताया गया था कि कौन-से किसके द्वारा लिखे गए थे। अगर आप सोचते हैं कि आप इंसानी सृजनात्मकता और यान्त्रिक उपज के बीच फ़र्क़ कर सकते हैं, तो अपने दावे की जाँच करने के लिए आपका स्वागत है।

उन्नीसवीं सदी में औद्योगिक क्रान्ति ने एक विशाल नगरीय सर्वहारा वर्ग की रचना की थी, और समाजवाद का प्रसार इसलिए हुआ था, क्योंकि कोई और दूसरा ऐसा पन्थ नहीं था, जो इस नए कामगार वर्ग की अपूर्व ज़रूरतों, उम्मीदों और भयों का समाधान कर सकता। उदारवाद अन्ततः समाजवादी कार्यक्रम के श्रेष्ठतम अंशों को अपनाने के बाद ही समाजवाद को पराजित कर सका। इक्कीसवीं सदी में हम एक महाकाय नए निष्क्रिय वर्ग (अनवर्किंग क्लास) को उभरता देख सकते हैं: किसी भी तरह के आर्थिक, राजनैतिक, और कलात्मक मूल्य तक से वंचित लोगों का ऐसा वर्ग, जो समाज की समृद्धि, शक्ति और महिमा में किसी तरह का योगदान नहीं करते होंगे। यह 'अनुपयोगी वर्ग' सिर्फ़ बेराज़गार ही नहीं होगा - यह रोज़गार के क़ाबिल भी नहीं होगा।

सितम्बर 2013 में ऑक्सफ़ोर्ड के दो अध्येताओं, कार्ल बेनिडिक्ट फ्रे़ और माइकल ए. ओसबोर्न ने 'फ़्यूचर ऑफ़ एम्प्लॉयमेंट' ('रोज़गार का भविष्य') का प्रकाशन किया था, जिसमें उन्होंने ऐसे विभिन्न व्यवसायों का सर्वेक्षण प्रस्तुत किया था, जिनको अगले बीस वर्षों के भीतर कम्प्यूटर ऐल्गरिदमों द्वारा हथियाए जाने की सम्भावना है। इसका हिसाब लगाने के लिए फ्रे़ और ओसबोर्न द्वारा विकसित किए गए ऐल्गरिदम के आकलन के मुताबिक़ संयुक्त राज्य अमेरिका के 47 प्रतिशत रोज़गार अत्यन्त जोखिम की स्थिति में हैं। उदाहरण के लिए, इस बात की 99 प्रतिशत सम्भावना है कि 2033 के आते-आते इंसानी टेलिमार्केटरों और बीमाकर्ताओं के रोज़गार ऐल्गरिदमों द्वारा हथिया लिए जाएँगे। इसी गति को प्राप्त होने की 98 प्रतिशत सम्भावना खेल रेफ़रियों की, 97 प्रतिशत सम्भावना रोकड़ियों (कैशियर्स) की और 96 प्रतिशत सम्भावना रसोइयों (शेफ़्स) की है। वेटर - 94 प्रतिशत। वकालत के कार्य में प्रशिक्षित वकीलों के सहयोगी - 94 प्रतिशत। टूर गाइड - 91 प्रतिशत। निर्माण-कार्यों में लगे मज़दूर - 88 प्रतिशत। पशुचिकित्सकीय सहयोगी - 86 प्रतिशत। सुरक्षाकर्मी/चौकीदार - 84 प्रतिशत। नाविक - 83 प्रतिशत। शराबघरों में काम करने वाले परिचारक (बारटेंडर) - 77 प्रतिशत। अभिलेखापाल (आर्काइविस्ट) - 76 प्रतिशत। बढ़ई - 72 प्रतिशत। शरीर-रक्षक (लाइफ़ गॉर्ड) - 67 प्रतिशत आदि, आदि। कुछ रोज़गार निश्चय ही सुरक्षित हैं। 2033 तक ऐल्गरिदमों द्वारा पुरातत्त्वविदों के विस्थापित किए जाने की सम्भावना मात्र 0.7 प्रतिशत है, क्योंकि उनके काम शृंखलाओं की अत्यन्त परिष्कृत क़िस्म की पहचान की माँग करते हैं, और उनसे बड़ी तादाद में मुनाफ़े नहीं होते। इसलिए यह सम्भव प्रतीत नहीं होता कि निगमें या सरकार आगामी बीस वर्षों में पुरातत्त्वविज्ञान को स्वचालित बनाने के लिए आवश्यक निवेश करेंगी।

निश्चय ही, 2033 के आते-आते बहुत-से नए व्यवसायों के प्रकट होने की सम्भावना है, जैसे कि मसलन, आभासी-जगत आकल्पकों (वर्चुअल-वर्ल्ड डिज़ाइनर्स) के व्यवसाय, लेकिन इस तरह के व्यवसाय सम्भवतः इस समय के साधारण रोज़गारों के मुक़ाबले बहुत ज़्यादा सृजनात्मकता और लचीलेपन की माँग करेंगे, और यह बात साफ़ नहीं है कि चालीस साल की उम्र के रोकड़िये या बीमा ऐजेंट अपने आपको नए सिरे से आभासी-जगत आकल्पकों के रूप में से गढ़ने में सक्षम हो पाएँगे या नहीं (ज़रा किसी बीमा ऐजेंट द्वारा रचे गए आभासी जगत की कल्पना करने की कोशिश कीजिए!)। और अगर वे ऐसा कर भी लेते हैं, तो प्रगति की रफ़्तार ऐसी है कि एक और दशक बीतते न बीतते उनको एक बार फिर नए सिरे से ख़ुद को गढ़ना पड़ सकता है। आख़िरकार, ऐल्गरिदम आभासी जगत के आकल्पन के काम में भी तो इंसानों को पीछे छोड़ सकते हैं। असल समस्या नए रोज़गार गढ़ने की नहीं है। असल समस्या इस तरह के नए रोज़गार गढ़ने की है, जिनको मनुष्य ऐल्गरिदमों से बेहतर ढंग से कर सकें।

चूँकि हम नहीं जानते कि 2030 या 2040 में रोज़गार मण्डी की शक्ल किस तरह की होगी, इसलिए आज से ही हमारे पास ऐसी कोई सूझ नहीं है कि हम अपने बच्चों को क्या पढ़ाएँ। वे जो कुछ इस समय स्कूल में पढ़ रहे हैं, वह शायद उनके चालीस साल की उम्र के होने तक अप्रासंगिक हो जाएगा। पारम्परिक तौर पर, जीवन दो मुख्य हिस्सों में विभाजित रहा है: अध्ययन-काल और उसके बाद काम करने का समय। बहुत जल्द ही यह पारम्परिक प्रारूप पुराना पड़ जाएगा, और मनुष्यों के पास खेल में बने रहने का एकमात्र तरीक़ा आजीवन सीखते रहना, और स्वयं को नए सिरे से गढ़ते रहना होगा। अगर ज़्यादातार नहीं तो बहुत-से इंसान ऐसा कर पाने में असमर्थ हो सकते हैं।

आगामी प्रौद्योगिकीय समृद्धि के चलते शायद इस अनुपयोगी जन-समुदाय का पेट भरना और उसको सहारा देना सम्भव होगा, जिसके लिए शायद इस समुदाय को कोई कोशिश भी नहीं करनी पड़ेगी, लेकिन ऐसा क्या होगा, जो उनको व्यस्त और सन्तुष्ट रख सके। लोगों को कुछ करते रहना ज़रूरी होता है, अन्यथा वे पगला जाते हैं। वे पूरे दिन क्या किया करेंगे? इसका एक हल ड्रग और कम्प्यूटर खेल हो सकता है। ये अनावश्यक लोग समय की बढ़ती हुई तादाद को आभासी वास्तविकता की 3D दुनिया में ख़र्च कर सकते हैं, जो उनको बाहर की नीरस वास्तविकता के मुक़ाबले अधिक उत्तेजना उपलब्ध करा सकती है और भावनात्मक रूप से व्यस्त रख सकती है, लेकिन इस तरह की स्थिति मानव जीवन की पवित्रता और मानवीय अनुभव में उदारवादी विश्वास के लिए घातक आघात पहुँचाने वाली होगी। आख़िर ऐसे बेकार निकम्मे लोगों में पवित्रता जैसा क्या होगा, जो ला ला लैंड (सपनों की दुनिया) के कृत्रिम अनुभव को निगलते हुए अपने दिन गुज़ार रहे होंगे?

निक बोस्ट्राम जैसे कुछ विशेषज्ञ और चिन्तक चेतावनी देते हैं कि मानव जाति द्वारा इस तरह की अघोगति को भोगे जाने की नौबत आने की सम्भावना नहीं है, क्योंकि जैसे ही आर्टिफ़िशल इंटेलिजेंस मानवीय बुद्धि को पीछे छोड़ देगा, वैसे ही वह बहुत आसानी-से मानव जाति का विनाश कर देगा। आर्टिफ़िशल इंटेलिजेंस ऐसा या तो इस भय के चलते करना चाह सकता है कि मनुष्य जाति उसके ख़िलाफ़ खड़ी हो जाएगी और उसके प्लग खींचने की कोशिश करेगी, या फिर अपने ही किसी अज्ञेय लक्ष्य को हासिल करने की ख़ातिर ऐसा कर सकता है, क्योंकि मनुष्यों के लिए अपने से ज़्यादा चतुर एक व्यवस्था की प्रेरणाओं को नियन्त्रित करना अत्यन्त मुश्किल होगा।

यहाँ तक कि इस व्यवस्था को किन्हीं अनुकूल प्रतीत होते लक्ष्यों से पूर्वनियोजित (प्रिप्रोग्राम) करना भयानक विपरीत प्रतिक्रिया की वजह बन सकता है। एक लोकप्रिय परिदृश्य एक ऐसे कॉर्पोरेशन की कल्पना करता है, जो पहला आर्टिफ़िशल सुपर-इंटेलिजेंस डिज़ाइन करता है और परीक्षण के तौर पर उसको पाइ का मूल्य ज्ञात करने का एक सीधा-सादा काम सौंपता है। इसके पहले कि लोगों को स्थिति का अहसास हो सके,

यह आर्टिफ़िशल इंटेलिजेंस पृथ्वी को अपने क़ब्ज़े में ले लेता है, मानव-प्रजाति को नेस्तनाबूद कर देता है, आकाशगंगा की आमूल-चूल फ़तह की मुहिम छेड़ देता है, और समूचे ज्ञात विश्व को एक ऐसे भीमकाय सुपर-कम्प्यूटर में रूपान्तरित कर देता है, जो अरबों सालों तक पाइ का उत्तरोत्तर सही मूल्य ज्ञात करने में लगा रहता है। आख़िरकार, यह उसके लिए उसके सर्जक द्वारा सौंपी गई एक दिव्य मुहिम है।

87 प्रतिशत की सम्भाव्यता

इस अध्याय की शुरुआत में हमने उदारवाद के सिर पर मँडराते कई ख़तरों की पहचान की थी। इनमें पहला यह है कि मनुष्य सैन्य और आर्थिक दृष्टि से अनुपयोगी हो सकता है। बेशक, यह एक सम्भावना है, कोई भविष्यवाणी नहीं है। तकनीकी अड़चनें या राजनैतिक आपत्तियाँ रोज़गार-मण्डी पर ऐल्गरिदम के आक्रमण को धीमा कर सकती हैं। दूसरी सम्भावना यह है कि चूँकि मनुष्य के दिमाग़ के ज़्यादातर रहस्य अभी भी अनसुलझे हैं, इसलिए हम सचमुच नहीं जानते कि मनुष्य अपनी कौन-सी छिपी हुई प्रतिभाओं को उजागर कर सकता है, और दूसरे रोज़गारों की क्षतिपूर्ति के लिए कौन-से अनूठे रोज़गारों की रचना कर सकता है, हालाँकि ज़रूरी नहीं कि यह उदारवाद को बचाने के लिए काफ़ी हो, क्योंकि उदारवाद महज़ मनुष्य के मूल्य में विश्वास नहीं करता, बल्कि वह व्यक्तिवाद में भी विश्वास करता है। उदारवाद के सिर पर मँडराता दूसरा ख़तरा यह है कि जहाँ व्यवस्था को भविष्य में मनुष्यों की ज़रूरत बनी रह सकती है, वहीं उसको व्यक्तियों (इंडिविजुअल्स) की ज़रूरत नहीं रह जाएगी। मनुष्य संगीत रचना, भौतिकी पढ़ाना और धन का निवेश करना जारी रखेंगे, लेकिन व्यवस्था इन मनुष्यों को उससे बेहतर ढंग से समझा करेगी, जितना स्वयं ये मनुष्य समझते होंगे और यह व्यवस्था ही उनके सबसे ज़्यादा महत्त्वपूर्ण फ़ैसले लिया करेगी। इस तरह व्यवस्था व्यक्तियों को उनके प्रभुत्व और स्वतन्त्रता से वंचित कर देगी।

व्यक्तिवाद में उदारवादी विश्वास इन तीन धारणाओं पर आधारित है, जिनकी चर्चा हमने की थी:

1. मैं एक इन-डिविजुअल हूँ - यानी, मुझमें एक ऐसा एकल सत्त्व मौजूद है, जिसको हिस्सों या उपव्यवस्थाओं में विभाजित नहीं किया जा सकता। यह सही है कि यह आन्तरिक मर्म बहुत सारी बाहरी तहों में लिपटा है, लेकिन अगर मैं इन बाहरी छिलकों को हटाने की कोशिश करता हूँ, तो मुझे अपनी अन्दरूनी गहराई में एक स्पष्ट और एकल आवाज़ सुनने को मिलेगी, जो कि मेरा प्रामाणिक स्वत्व है।
2. मेरा प्रामाणिक स्वत्व पूरी तरह स्वतन्त्र है।

3. पहली दो धारणाओं से यह निष्कर्ष निकलता है कि मैं अपने बारे में ऐसी बातें जान सकता हूँ, जिनका पता दूसरा कोई भी व्यक्ति नहीं लगा सकता, क्योंकि स्वतन्त्रता के मेरे आन्तरिक क्षेत्र तक सिर्फ़ मेरी ही पहुँच है, और केवल मैं ही अपने प्रामाणिक स्वत्व की फुसफुसाहटों को सुन सकता हूँ। यही वजह है कि उदारवाद व्यक्ति को इतना ज़्यादा अधिकार सौंपता है। अपने बारे में निर्णय लेने के मामले में मैं किसी दूसरे पर भरोसा नहीं कर सकता, क्योंकि दूसरा कोई यह जान ही नहीं सकता कि मैं वास्तव में कौन हूँ, मैं कैसा महसूस करता हूँ और क्या चाहता हूँ। यही वजह है कि मतदाता बेहतर समझता है, ग्राहक हमेशा सही होता है और सौन्दर्य देखने वाले की निगाह में होता है।

लेकिन जीवन सम्बन्धी विज्ञान इन तीनों धारणाओं को चुनौती देते हैं। उनके मुताबिक़ः

1. प्राणी ऐल्गरिदम हैं, और मनुष्य इंडिविजुअल नहीं हैं - वे 'डिविजुअल्स' हैं, यानी मनुष्य किसी एकल आवाज़ या एकल स्वत्व से वंचित विभिन्न ऐल्गरिदमों का समुच्चय हैं।
2. ऐल्गरिदमों से निर्मित मनुष्य स्वतन्त्र नहीं होते। उनकी रचना जीनों और पर्यावरणपरक दबावों से हुई है, और वे या तो अवश्यम्भावी ढंग से निर्णय लेते हैं या बेतरतीब ढंग से, लेकिन स्वतन्त्र ढंग से नहीं।
3. इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि कोई बाहरी ऐल्गरिदम सिद्धान्ततः मुझे मुझसे बेहतर ढंग से जान सकता है। मेरी काया और दिमाग़ जिन प्रणालियों से मिलकर बने हैं, उनमें से एक-एक प्रणाली पर जो ऐल्गरिदम निगरानी रखता है, वही यह बात ठीक-ठीक ढंग से जान सकता है कि मैं कौन हूँ, मैं कैसा महसूस करता हूँ और क्या चाहता हूँ। एक बार विकसित हो चुकने के बाद इस तरह का ऐल्गरिदम मतदाता, ग्राहक और दर्शक की जगह ले सकता है। इसके बाद यह ऐल्गरिदम ही बेहतर समझेगा, यह ऐल्गरिदम ही हमेशा सही होगा और सौन्दर्य इसी ऐल्गरिदम की गणनाओं में होगा।

उन्नीसवीं और बीसवीं सदी के दौरान व्यक्तिवाद तब भी एक अच्छा व्यावहारिक अर्थ रखता था, क्योंकि तब ऐसे कोई बाहरी ऐल्गरिदम नहीं थे, जो वास्तव में मेरे ऊपर प्रभावशाली ढंग से निगरानी रख सकते। राज्य और बाज़ार भले ही ठीक यही करना चाहते रहे हों, लेकिन उनके पास इसके लिए आवश्यक प्रौद्योगिकी का अभाव था। केजीबी और एफ़बीआई को मेरी जैवरासायनिकी, जीन-समूह और मस्तिष्क की धुँधली-सी जानकारी भर थी, और अगर खुफ़िया लोग मेरे द्वारा किए गए एक-एक फ़ोन कॉल को चोरी छिपे सुन भी लेते और सड़क पर संयोग से हुई हर मुलाक़ात को दर्ज़ भी कर लेते थे, तब भी उनके पास सारी सूचनाओं का विश्लेषण करने के लिए कोई कम्प्यूटिंग शक्ति नहीं हुआ

करती थी। नतीजतन, बीसवीं सदी की प्रौद्योगिकीय परिस्थितियों के लिहाज़ से उदारवादियों का यह तर्क सही था कि मुझसे बेहतर मुझे कोई नहीं समझ सकता। इसलिए इस बात की एक अच्छी ख़ासी वजह थी कि मनुष्य स्वयं को एक स्वायत्त तन्त्र की तरह देखते थे और किसी महाशक्ति (बिग ब्रॅदर) के आदेशों पर ध्यान देने की बजाय अपनी आन्तरिक आवाज़ों का अनुसरण करते थे।

लेकिन इक्कीसवीं सदी की प्रौद्योगिकी बाहरी ऐल्गरिदमों को 'मनुष्यता में घुसपैठ करने' (हैक करने), और मुझको मुझसे बेहतर ढंग से समझने में सक्षम बना सकती है। जैसे ही यह मुमकिन हो जाता है, वैसे ही व्यक्तिवाद (इंडिविजुअलिज़्म) में विश्वास ढह जाएगा और वर्चस्व वैयक्तिक मनुष्यों के एक-दूसरे से जुड़े नेटवर्कों के हाथों में चला जाएगा, फिर लोग स्वयं को अपनी आकांक्षाओं के अनुरूप अपना जीवन जीने वाली स्वायत्त सत्ताओं के रूप में देखना बन्द कर देंगे, और इसकी बजाय स्वयं को जैवरासायनिक प्रक्रियाओं के एक ऐसे संग्रह के रूप में देखना शुरू कर देंगे, जिस पर इलेक्ट्रॉनिक ऐल्गरिदमों के तन्त्र द्वारा निरन्तर निगरानी रखी जा रही होगी और जिसे उनके द्वारा संचालित किया जा रहा होगा। इसके लिए ऐसे किसी बाहरी ऐल्गरिदम की ज़रूरत नहीं है, जो मुझे *अच्छी* तरह से जानता है और जिससे कभी कोई चूक नहीं होती, इतना काफ़ी है कि यह ऐल्गरिदम मुझे मुझसे बेहतर ढंग से जानेगा, और मेरी तुलना में *बहुत कम* ग़लतियाँ करेगा। तब मेरी जिन्दगी के उत्तरोत्तर निर्णयों और विकल्पों के चुनावों में इस ऐल्गरिदम पर भरोसा करना अर्थपूर्ण होगा।

जहाँ तक चिकित्सा-विज्ञान का प्रश्न है, इस रेखा को हम पहले ही पार कर चुके हैं। अस्पतालों में अब हम इंडिविजुअल नहीं रहे। इस बात की भरपूर सम्भावना है कि आपके जीवन-काल के दौरान सर्वाधिक अहम निर्णयों में से ज़्यादातर निर्णय आई.बी.एम. के वाट्सॅन जैसे कम्प्यूटर ऐल्गरिदमों द्वारा लिए जाने लगें। और यह ज़रूरी तौर पर बुरी स्थिति नहीं है। डायबिटीज़ के मरीज़ पहले ही अपने पास सेंसर रखते हैं और अपनी शुगर के स्तर की दिन में कई बार जाँच करते रहते हैं, और अगर वह स्तर ख़तरे की सीमारेखा पार रहा होता है, तो यह सेंसर उनको चौकन्ना बनाए रखता है। 2014 में येल विश्वविद्यालय के शोधकर्ताओं ने आईफ़ोन से नियन्त्रित 'कृत्रिम पाचक-ग्रन्थि' (आर्टिफ़िशिलय पेन्क्रियाज़) के पहले कामयाब परीक्षण की घोषणा की थी। इस प्रयोग में डायबिटीज़ के बावन मरीज़ों ने भाग लिया था। हर मरीज़ के पास एक छोटा-सा सेंसर और उसके पेट में प्रत्यारोपित एक छोटा-सा पम्प था। यह पम्प इन्सुलिन और ग्लूकागॉन - वे दो हार्मोन, जो मिलकर शुगर और ख़ून के स्तर को नियमित रखते हैं - की छोटी ट्यूबों से जुड़े थे। सेंसर निरन्तर शुगर के स्तर को मापता हुआ सम्बन्धित आँकड़ों को आईफ़ोन में भेजता रहता था। आईफ़ोन में एक ऐसा एप्लीकेशन मौजूद था, जो उस सूचना का

विश्लेषण करता था, जब कभी ज़रूरी होता था, तो पम्प को आदेश देता था, जो - इंसानी हस्तक्षेप की किसी ज़रूरत के बिना - या तो इन्सुलिन या ग्लूकागॉन की नपी-तुली मात्र इन्जेक्ट कर देता था।

किसी गम्भीर बीमारी का शिकार होने से बचे दूसरे बहुत-से लोगों ने अपने स्वास्थ्य और गतिविधियों पर निगरानी रखने के लिए ऐसे सेंसरों का उपयोग शुरू कर दिया है। स्मार्टफ़ोनों और कलाई-घड़ियों से लेकर बाजूबन्दों और अण्डरवियर तक में रखे जा सकने योग्य ये उपकरण रक्तचाप और हृदय की धड़कन जैसी विभिन्न जैवसांख्यकीय सूचनाओं (बायोमैट्रिक डेटा) को दर्ज़ करते हैं। इसके बाद ये सूचनाएँ ऐसे परिष्कृत कम्प्यूटर प्रोग्रामों में भर दी जाती हैं, जो इन सेसरों को धारण करने वालों को परामर्श देते हैं कि उनको अपने स्वास्थ्य में और अधिक सुधार लाने और एक अधिक दीर्घ और रचनात्मक जीवन जीने के लिए अपने भोजन और दिनचर्या में किस तरह के परिवर्तन करने चाहिए। विशालकाय औषधि-निर्माता कम्पनी नोवॉर्टिस के साथ मिलकर गूगल एक ऐसा कॉन्टैक्ट लैंस विकसित करने में लगा है, जो आँसुओं की बनावट का विश्लेषण कर हर कुछ सेकेंड के दौरान रक्त में ग्लूकोज़ के स्तर का परीक्षण करता है। पिक्सी साइंटिफ़िक ऐसे 'स्मार्ट डायपर्स' बेचता है, जो बच्चे की चिकित्सकीय स्थिति के सुराग़ पाने के लिए बच्चे के मल का विश्लेषण करते हैं। नवम्बर 2014 में माइक्रोसॉफ़्ट ने माइक्रोसॉफ़्ट बैंड बाज़ार में उतारा था - यह एक स्मार्ट बाजूबन्द है, जो दूसरी चीज़ों के साथ-साथ आपके हृदय की धड़कन, आपकी नींद के लक्षणों और प्रत्येक दिन आपके द्वारा रखे गए क़दमों पर निगरानी रखता है। डैडलाइन नामक एक एप्लीकेशन एक क़दम और आगे बढ़कर आपको सूचना देता है कि आपकी मौजूदा आदतों को देखते हुए आपके जीवन के कितने साल और बचे हैं।

कुछ लोग इन एप्लीकेशनों का इस्तेमाल इसके बारे में बहुत गहराई से विचार किए बिना करते हैं, लेकिन बाक़ी लोगों के लिए यह अगर एक मज़हब नहीं तो विचारधारा तो बन ही चुका है। क़्वांटिफ़ाइड सेल्फ़ आन्दोलन का तर्क है कि स्वत्व (सेल्फ़) गणितीय पैटर्नों के सिवाय और कुछ भी नहीं है। ये पैटर्न इतने जटिल होते हैं कि इंसानी दिमाग़ द्वारा इनको समझे जाने की कोई सम्भावना नहीं है। इसलिए अगर आप पुरानी सूक्ति के मुताबिक़ आचरण करना चाहते हैं और स्वयं को जानना चाहते हैं, तो आपको अपना वक़्त फ़लसफ़े, ध्यान या मनोविश्लेषण में बर्बाद नहीं करना चाहिए, बल्कि आपको व्यवस्थित ढंग से जैवसांख्यकीय सूचनाएँ (बायोमैट्रिक डेटा) एकत्र करनी चाहिए और ऐल्गरिदमों को इजाज़त देनी चाहिए कि वे आपके लिए उन सूचनाओं का विश्लेषण करें और आपको बताएँ कि आप कौन हैं और आपको क्या करना चाहिए। इस आन्दोलन का नीति-वाक्य है 'संख्याओं के माध्यम से आत्म-ज्ञान' ('सेल्फ़-नॉलेज थ्रू नम्बर्स')।

2000 में इज़रायली गायक श्लोमी श्बान ने अपने कामयाब गीत 'ऐरिक' से स्थानीय प्लेलिस्ट को जीत लिया था। यह गीत एक ऐसे शख़्स के बारे में है, जिसके दिमाग़ पर अपनी गर्लफ्रेंड के पूर्व साथी ऐरिक की धुन सवार है। वह जानना चाहता है कि बिस्तर में बेहतर कौन है - वह, या ऐरिक? गर्लफ्रेंड यह कहते हुए इस सवाल से कतरा जाती है कि दोनों के साथ का उसका अनुभव भिन्न था। यह शख़्स इससे सन्तुष्ट नहीं होता और माँग करता है 'अंकों में बात कर, लेडी'। ख़ैर, ठीक इसी तरह के लोगों के लिए बेडपोस्ट नामक कम्पनी ऐसे जैवसांख्यकीय बाजूबन्द बेचती है, जिनको आप सम्भोग के दौरान पहन सकते हैं। यह बाजूबन्द हृदय की गति, पसीने के स्तर, सम्भोग की अवधि, कामोत्तेजना की चरम अवस्था की अवधि और आपके द्वारा ख़र्च कैलोरी की मात्र जैसे आँकड़े एकत्र करता है। इन आँकड़ों को एक कम्प्यूटर में डाल दिया जाता है, जो सारी सूचना का विश्लेषण करने के बाद आपके सम्भोग-कर्म के निष्पादन को सटीक संख्या के आधार पर श्रेणी प्रदान करता है। कामोत्तेजना की चरम अवस्था के बारे में कोई झूठ नहीं और 'यह आपके लिए यह कैसा था?'

जो लोग स्वयं को इस तरह के उपकरणों की निर्मम मध्यस्थता के सहारे अनुभव करते हैं, वे स्वयं को एक व्यक्ति (इंडिविजुअल) की तरह देखने की बजाय जैवरासायनिक प्रणालियों के एक संग्रह की तरह देखना शुरू कर सकते हैं, और उनके निर्णय उत्तरोत्तर विभिन्न प्रणालियों की परस्पर विरोधी माँगों को प्रतिबिम्बित कर सकते हैं। मान लीजिए कि आपके पास सप्ताह में दो घण्टे का ख़ाली वक़्त होता है, और आप इस बारे में निश्चय नहीं कर पाते कि इन दो घण्टों के दौरान आप शतरंज खेलें या टेनिस। एक भला दोस्त पूछ सकता है: 'आपका दिल क्या कहता है?' आप जवाब देते हैं, 'जहाँ तक मेरे दिल का सवाल है, ज़ाहिर है कि टेनिस बेहतर है। ये मेरे कोलेस्ट्रॉल-स्तर और रक्तचाप के लिए भी बेहतर है, लेकिन मेरा एफ़एमआरआई स्कैन दर्शाता है कि मुझे अपने बाएँ हिस्से के मस्तिष्क-आवरण के आगे के हिस्से (प्रि-फ्रंटल कोर्टेक्स) को मज़बूत बनाना चाहिए। मेरे परिवार में डिमेन्शिया (स्मृतिभ्रंश की एक प्रकार की मानसिक बीमारी) ख़ासी आम रही है, और मेरे चाचा को यह कम उम्र में ही हो गई थी। ताज़ा अध्ययन दर्शाते हैं कि हफ़्ते में एक बार शतरंज खेलने से इसका हमला देर से होता है'।

आप अस्पताल में वृद्धों के वॉर्डों में बाह्य चिकित्सा के अत्यन्त अतिरंजित उदाहरण देख सकते हैं। मानववाद वृद्धावस्था की कल्पना प्रज्ञा और सजगता की उम्र के रूप में करता है। एक आदर्श बुज़ुर्ग शारीरिक बीमारियों और कमज़ोरियों का शिकार हो सकता है, लेकिन उसका दिमाग़ तेज़ और पैना होता है, और उसके पास देने के लिए अन्तर्दृष्टि से युक्त अस्सी वर्ष होते हैं। वह एकदम ठीक-ठीक जानता है कि क्या चीज़ क्या है, और अपने नाती-पोतों और दूसरे मुलाक़ातियों को देने के लिए उसके पास बुद्धिमत्तापूर्ण

परामर्श होते हैं। इक्कीसवीं सदी के अस्सी बरस के बूढ़े इस छवि की हमेशा पुष्टि नहीं करते। मानवीय जैविकी की हमारी बढ़ती हुई समझ की बदौलत चिकित्सा-विज्ञान हमें हमारे दिमाग़ों और 'प्रामाणिक स्वत्वों' को विघटित और विलीन होने के लिहाज़ से पर्याप्त लम्बे समय तक जीवित रख सकता है। अक्सर ही जो चीज़ बची रहती है, वह निष्क्रिय जैविक प्रणालियाँ होती हैं, जिनको मॉनीटरों, कम्प्यूटरों और पम्पों के एक संग्रह के माध्यम से क्रियाशील बनाकर रखा जाता है।

एक गहरे स्तर पर, जैसे-जैसे जनेटिक प्रौद्योगिकियाँ रोज़मर्रा के जीवन में जुड़ती जाएँगी और लोगों के उनके डीएनए के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध बनते जाएँगे, वैसे-वैसे एकल स्वत्व और भी धुँधला जा सकता है और प्रामाणिक आन्तरिक आवाज़ जीनों के कोलाहल-भरी भीड़ में विलीन हो सकती है। मुश्किल दुविधाओं और निर्णयों का सामना होने पर मैं अपनी आन्तरिक आवाज़ को खोजना बन्द कर सकता हूँ और उसकी बजाय मैं अपनी आन्तरिक जनेटिक संसद से परामर्श लेने लग सकता हूँ।

14 मई 2013 को अभिनेत्री ऐंजेलिना जोली ने न्यू यॉर्क टाइम्स में ऑपरेशन से अपने दोनों स्तन हटाए जाने के फ़ैसले के बारे में एक लेख प्रकाशित किया था। जोली वर्षों से स्तन कैंसर के ख़तरे की छाया में रहती आई थीं, क्योंकि उनकी माँ और नानी, दोनों इस बीमारी से अपेक्षाकृत कम उम्र में दुनिया छोड़ गई थीं। स्वयं जोली ने अपना जनेटिक परीक्षण कराया था, जिससे इस बात की पुष्टि हुई थी कि वे BRCA1 जीन का ख़तरनाक उत्परिवर्तन धारण किए हुए थीं। हाल ही के एक सांख्यकीय सर्वेक्षण के मुताबिक़ इस उत्परिवर्तन को धारण करने वाली स्त्रियों में स्तन का कैंसर विकसित होने की 87 प्रतिशत आशंका होती है। भले ही उस समय जोली को कैंसर नहीं था, तब भी उन्होंने इस ख़ौफ़नाक बीमारी को रोक देने का फ़ैसला किया और दोनों स्तन कटा लिए। अपने लेख में जोली ने बताया था कि 'मैंने अपने इस क़िस्से को गोपनीय न रखने का फ़ैसला इसलिए किया, क्योंकि ऐसी बहुत-सी स्त्रियाँ हैं, जो नहीं जानती कि शायद वे कैंसर की छाया में रह रही हैं। मुझे उम्मीद है कि वे भी अपने जीन का परीक्षण कराएँगी, और अगर उनको गम्भीर जोखिम हुआ, तो उनको भी जानकारी रहेगी कि उनके पास शक्तिशाली विकल्प हैं'।

ऑपरेशन से वक्ष हटवाए जाएँ या नहीं, यह एक मुश्किल और सम्भावित रूप से घातक निर्णय होता है। इस ऑपरेशन और उसके बाद के इलाज़ों से जुड़ी असुविधाओं, ख़तरों और ख़र्चों से परे, इस फ़ैसले का व्यक्ति के स्वास्थ्य, शारीरिक बनावट, भावनात्मक स्वास्थ्य और रिश्तों पर दूरगामी प्रभाव पड़ सकता है। जोली का निर्णय, और इसको सार्वजनिक करने के उनके साहस ने ज़बरदस्त हलचल पैदा की थी और इससे उनको अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर समर्थन और सराहना प्राप्त हुई थी। ख़ासतौर से बहुत-से लोगों को

उम्मीद थी कि यह प्रचार जनेटिक चिकित्सा और उसके सम्भावित फ़ायदों के प्रति लोगों की जागरूकता में इज़ाफ़ा करेंगे।

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखें तो ऐल्गरिदमों ने उनकी ज़िन्दगी में जो निर्णायक भूमिका निभाई, उस पर ग़ौर करना दिलचस्प है। जब जोली को अपनी ज़िन्दगी के बारे में एक इतना महत्त्वपूर्ण निर्णय लेने की नौबत आई, तो उन्होंने समुद्र की ओर झाँकती किसी पहाड़ी की चोटी पर चढ़कर लहरों में डूबते सूरज को ताकते हुए अपनी अन्तरतम अनुभूतियों से सम्पर्क साधने की कोशिश नहीं की। इसकी बजाय, उन्होंने अपने उन जीनों की बात सुनना बेहतर समझा, जिनकी आवाज़ अनुभूतियों में नहीं, बल्कि संख्याओं में अभिव्यक्ति पाती है। उस समय जोली ने किसी तरह की पीड़ा या बेचैनी अनुभव नहीं की। उनकी अनुभूतियों ने उनसे कहा: 'शान्त रहो, सब कुछ एकदम ठीक हो जाएगा'। लेकिन उनके डॉक्टरों द्वारा इस्तेमाल किए गए कम्प्यूटर ऐल्गरिदमों ने एक अलग ही कहानी कही: 'आपको कोई गड़बड़ी महसूस नहीं होती, लेकिन आपके डीएनए में एक टाइम बम टिकटिक कर रहा है। इसके बारे में, तुरन्त ही, कुछ करो'।

बेशक, जोली की भावनाओं और अनूठे व्यक्तित्व ने भी एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। अगर उनसे अलग व्यक्तित्व वाली किसी दूसरी स्त्री को यह पता चला होता कि उसके शरीर में भी वैसे ही जनेटिक उत्परिवर्तन मौजूद हैं, तो मुमकिन है कि उसने स्तन कटाने का फ़ैसला न लिया होत, लेकिन और यहाँ पर हम एक धुँधलके से भरे इलाक़े में प्रवेश करते हैं - उस सूरत में क्या होता अगर उस दूसरी स्त्री को पता चला होता कि वह न सिर्फ़ ख़तरनाक BRCA1 उत्परिवर्तन धारण किए हुए है, बल्कि (कल्पित) जीन ABCD3 में एक और ऐसा उत्परिवर्तन धारण किए हुए है, जो सम्भाव्यताओं का आकलन करने में सक्षम मस्तिष्क के इलाक़े को क्षीण कर देता है, और इस वजह से लोग ख़तरों को कम करके आँकने लगते हैं। क्या होता अगर किसी सांख्यकीविद ने इस स्त्री को बताया होता कि उसकी माँ, नानी और कई दूसरे रिश्तेदार इसलिए कम उम्र में दुनिया छोड़ गए थे, क्योंकि उन्होंने विभिन्न तरह के स्वास्थ्य सम्बन्धी ख़तरों को कम करके आँका था और इसलिए वे एहतियाती क़दम उठाने में नाकामयाब रहे थे?

पूरी सम्भावना है कि आप भी अपने स्वास्थ्य के बारे में उसी तरह से महत्त्वपूर्ण निर्णय लें, जिस तरह ऐंजेलिना जोली ने लिया था। आप जनेटिक परीक्षण कराएँगे, ख़ून की जाँच कराएँगे या एफ़एमआरआई कराएँगे, एक ऐल्गरिदम विपुल सांख्यकीय सूचना-भण्डार (डेटाबेस) के आधार पर परिणामों का विश्लेषण करेगा, और इसके बाद आप ऐल्गरिदम का परामर्श स्वीकार करेंगे। यह कोई भविष्यसूचक परिदृश्य नहीं है। ऐल्गरिदम हमारे ख़िलाफ़ विद्रोह नहीं करते और हमें ग़ुलाम नहीं बनाते। इसकी बजाय, यह उनकी

भलमनसाहत है कि वे हमारे पक्ष में ऐसे निर्णय लेते हैं कि उनकी सलाह न मानना पागलपन होगा।

ऐंजेलिना जोली ने पहली प्रमुख भूमिका 1993 की साइंस-फ़िक्षन एक्षन फ़िल्म *साइबोर्ग 2* में निभाई थी। इसमें उन्होंने 2074 में कॉर्पोरेट जासूसी और हत्या के लिए पिनह्वील रोबोटिक्स द्वारा विकसित साइबोर्ग कैसेला रीज़ की भूमिका निभाई थी। कैसेला को इस तरह से मानवीय भावनाओं से युक्त ढंग से रचा गया था, ताकि वह अपनी मुहिम के दौरान इंसानी समाज के साथ घुल-मिल सके। जब कैसेला को पता चला कि पिनह्वील रोबोटिक्स उसको न सिर्फ़ नियन्त्रित करता है, बल्कि उसका इरादा उसको ख़त्म कर देने का भी है, तो वह भाग जाती है और अपने जीवन तथा स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष करती है। *साइबोर्ग 2* वैश्विक कार्पोरेट ऑक्टोपसों के ख़िलाफ़ स्वतन्त्रता और निजता के लिए संघर्ष करते एक व्यक्ति के बारे में रची गई उदारवादी फँतासी है।

अपने वास्तविक जीवन में जोली ने स्वास्थ्य की ख़ातिर अपनी गोपनीयता और स्वायत्तता का उत्सर्ग करने का फ़ैसला लिया था। इंसानी स्वास्थ्य में सुधार लाने की ऐसी ही आकांक्षा हममें से ज़्यादातर लोगों को ख़ुशी-ख़ुशी अपनी गोपनीय और निजी दुनिया की रक्षा करने वाले प्रतिबन्धों को तोड़ देने और नौकरशाहियों तथा बहुराष्ट्रीय निगमों को हमारे अन्तरतम एकान्त स्थलों में घुसपैठ करने की छूट देने को बाध्य कर सकती है। उदाहरण के लिए, गूगल को हमारे ईमेल पढ़ने देने और हमारी गतिविधियों पर नज़र रखने की छूट देने से गूगल के लिए यह मुमकिन होगा कि जो महामारियाँ फैलने को हों, उनको पारम्परिक स्वास्थ्य सेवाओं द्वारा नोटिस किए जाने के पहले ही, वह हमें उनके बारे में सचेत कर दे।

ब्रिटेन की राष्ट्रीय स्वास्थ्य सेवा को यह कैसे पता चलता है कि लन्दन में फ़्लू की महामारी फैल गई है? सैकड़ों क्लीनिकों के हज़ारों डॉक्टरों की रिपोर्टों का विश्लेषण करने के माध्यम से। और इन सारे डॉक्टरों को इसकी सूचना कैसे प्राप्त होती है? इस तरह कि जब एक सुबह मैरी कुछ अस्वस्थ-सा महसूस करती हुई जागती है, तो वह सीधे डॉक्टर के पास नहीं भागती। वह कुछ घण्टे इन्तज़ार करती है, और उम्मीद करती है कि शहद से युक्त एक कप अच्छी-सी चाय चमत्कार कर देगी। जब हालत सुधरती नहीं दिखती, तो वह डॉक्टर से समय लेती है, क्लीनिक जाती है और डॉक्टर को अपने लक्षणों की जानकारी देती है। डॉक्टर इस जानकारी को अपने कम्प्यूटर पर टाइप करता है, और उम्मीद है कि राष्ट्रीय स्वास्थ्य केन्द्र के मुख्यालय में कोई व्यक्ति इस जानकारी और हज़ारों दूसरे डॉक्टरों के यहाँ से धाराप्रवाह आ रही दूसरी ऐसी ही रिपोर्टों का विश्लेषण करता है, और इस नतीजे पर पहुँचता है कि फ़्लू धावा बोल रहा है। इस सब में बहुत वक़्त लगता है।

गूगल इसे मिनटों में कर सकता है। उसको सिर्फ़ लन्दन के लोगों द्वारा अपने ईमेलों और गूगल सर्च इंजन में टाइप किए गए शब्दों पर निगरानी रखने और बीमारी के लक्षणों के सूचना-भण्डार के साथ उन लक्षणों का मिलान करने भर की ज़रूरत है। मान लीजिए कि औसतन एक दिन में 'सिरदर्द', 'बुखार', 'मितली' और 'छींक' शब्द लन्दन के ईमेलों और सर्चों में 100,000 बार प्रकट होते हैं। अगर आज गूगल का ऐल्गरिदम पाता है कि ये शब्द 300,000 बार प्रकट हुए हैं, तो समझ लीजिए, हमारे यहाँ फ़्लू की महामारी है। कोई ज़रूरत नहीं कि मैरी के डॉक्टर के यहाँ जाने तक का इन्तज़ार किया जाए। पहली ही सुबह वह कुछ अस्वस्थ-सा महसूस करती जागती है और काम पर जाने से पहले वह अपने साथी को ईमेल करती है कि 'मेरा सिर दर्द कर रहा है, लेकिन मैं आऊँगी'। गूगल के लिए इतना भर काफ़ी है।

लेकिन गूगल का यह जादू कारगर हो सके, इसके लिए मैरी के लिए यह अनिवार्य है कि वह गूगल को न सिर्फ़ उसके सन्देश को पढ़ने की, बल्कि इस जानकारी को स्वास्थ्य अधिकारियों के साथ साझा करने की भी छूट दे। अगर ऐंजेलिना जोली स्तन कैंसर के बारे में जागरूकता पैदा करने की ख़ातिर अपनी गोपनीयता का उत्सर्ग करने को तैयार थीं, तो मैरी को भी महामारी रोकने की ख़ातिर ऐसा ही उत्सर्ग क्यों नहीं करना चाहिए?

यह कोई सैद्धान्तिक विचार नहीं है। 2008 में गूगल ने वास्तव में गूगल फ़्लू ट्रेंड की शुरुआत की थी, जो गूगल सर्चों की निगरानी के माध्यम से फ़्लू के प्रकोपों पर नज़र रखता है। यह सेवा अभी भी विकसित होने की प्रक्रिया में है, और गोपनीयता सम्बन्धी प्रतिबन्धों के चलते ये केवल सर्च इंजन में डाले गए शब्दों पर ही नज़र रखता है और निजी ईमेलों को पढ़ने से कथित तौर पर बचता है, लेकिन यह तब भी पारम्परिक स्वास्थ्य सेवाओं से दस दिन पहले ही फ़्लू की चेतावनी जारी करने में सक्षम है।

गूगल बेसलाइन स्टडी (गूगल आधार-रेखा अध्ययन) इससे भी ज़्यादा महत्त्वाकांक्षी परियोजना है। गूगल का लक्ष्य मानवीय स्वास्थ्य का एक भीमकाय सूचना-भण्डार खड़ा करके एक 'अचूक स्वास्थ्य' रूपरेखा विकसित करने का है। उम्मीद है कि इस आधार-रेखा से मामूली-से भी भटकाव की पहचान लोगों को कैंसर जैसी विस्फोटक समस्याओं के प्रति उसी वक़्त सचेत कर देगी, जब ये समस्याएँ अपनी एकदम आरम्भिक अवस्था में होंगी। यह बेसलाइन स्टडी गूगल फिट नामक उन उत्पादों की एक समूची शृंखला से सम्बद्ध है, जिनको वस्त्रों, कंगनों, जूतों और चष्मों जैसी पहने जानी वाली चीज़ों में समाविष्ट किया जाएगा। इन गूगल फिट उत्पादों का उद्देश्य जैविक आँकड़ों के अन्तहीन प्रवाह से बेसलाइन स्टडी को लैस करने का है।

लेकिन गूगल जैसी कम्पनियाँ पहनने योग्य चीज़ों से कहीं ज़्यादा गहराई में जाना चाहती हैं। डीएनए परीक्षणों का बाज़ार बहुत तेज़ी-से विकसित हो रहा है। इसकी अगुआई

करने वालों में एक है 23एंड मी, जो कि गूगल के सह-संस्थापक सर्गेई ब्रिन की पूर्व पत्नी ऐनी वोजिकी द्वारा स्थापित एक निजी कम्पनी है। '23एंड मी' नाम क्रोमोज़ोमों के उन तेईस जोड़ों से सम्बन्ध रखता है, जिनमें मानवीय जीन-समूह कूटबद्ध होते हैं, जिसके पीछे यह सन्देश निहित है कि मेरे क्रोमोज़ोमों का मेरे साथ एक अत्यन्त ख़ास रिश्ता है। जो भी कोई व्यक्ति इस बात को समझ सकता है कि क्रोमोज़ोम क्या कह रहे हैं, वह आपसे सम्बन्धित ऐसी बातें बता सकता है, जिनका सन्देह भी आपके मन में कभी नहीं जागा था।

अगर आप कुछ जानना चाहते हैं, तो 23एंड मी के लिए मात्र 99 डॉलर का भुगतान कीजिए, और वह आपके लिए एक ट्यूब से युक्त एक छोटा-सा पैकेज भेजेगा। आप उस ट्यूब में थूकिए, उसको बन्द करिए और फिर उसे माउंटेन व्यू कैलिफ़ोर्निया भेज दीजिए। वहाँ पर आपके थूक के डीएनए को पढ़ा जाता है, और उसका परिणाम आपके पास ऑनलाइन भेज दिया जाता है। आपको आपके स्वास्थ्य सम्बन्धी सम्भावित ख़तरों, और गंजेपन से लेकर अन्धेपन तक निन्यान्वे से ज़्यादा लक्षणों और परिस्थितियों के प्रति आपकी जनेटिक प्रवृत्तियों की एक सूची प्राप्त हो जाती है। 'ख़ुद को जानना' इससे पहले कभी इतना आसान और सस्ता नहीं था। चूँकि यह सब सांख्यकी पर आधारित है, इसलिए कम्पनी का सूचना- भण्डार ही एकदम सही पूर्वानुमान की कुंजी है। इसलिए जो भी कम्पनी सबसे पहले एक भीमकाय जनेटिक सूचना-भण्डार खड़ा कर लेगी, वही ग्राहकों को सर्वश्रेष्ठ पूर्वानुमान उपलब्ध कराएगी, और बाज़ार को सशक्त रूप से अपनी मुट्ठी में कर लेगी। संयुक्त राज्य अमेरिका की जैवप्रौद्योगिक कम्पनियाँ इस बात को लेकर उत्तरोत्तर चिन्तित हो रही हैं कि संयुक्त राज्य अमेरिका के गोपनीयता सम्बन्धी सख़्त क़ानून निजी गोपनीयता के प्रति चीन की उपेक्षा के साथ मिलकर इस जनेटिक बाज़ार को प्लेट पर रखकर चीन के हाथ में सौंप देंगे।

अगर हम सारे बिन्दुओं को आपस में जोड़ दें, और अगर हम गूगल और उसके प्रतिस्पर्धियों को अपने जैवसांख्यकीय उपकरणों तक, अपने डीएनए स्कैन तक और अपने चिकित्सकीय अतीत तक पहुँच बना लेने दें, तो हमें वे सारी सर्वज्ञ स्वास्थ्य सेवाएँ हासिल हो जाएँगी, जो न सिर्फ़ महामारी से लड़ेंगी, बल्कि कैंसर, हृदयाघात और अल्ज़ाइमर के विरुद्ध भी हमारा बचाव करेंगी, लेकिन जब गूगल के पास ऐसा सूचना-भण्डार होगा, तो वह इससे ज़्यादा भी कुछ कर सकेगा। एक ऐसी व्यवस्था की कल्पना कीजिए, जो एक प्रसिद्ध पुलिस गीत के शब्दों में, आपकी एक-एक साँस पर, आपकी एक-एक चाल पर और आपके द्वारा तोड़े गए एक-एक अनुबन्ध पर निगाह रखती है, एक ऐसी व्यवस्था जो आपके बैंक खाते की और आपके हृदय की धड़कनों की, आपके शुगर के स्तर की और आपकी यौनपरक हरक़तों की निगरानी रखती है। यह निश्चित तौर पर आपको आपसे बेहतर तरीक़े से जानेगा। जो आत्म-छल और आत्म-भ्रम लोगों को ग़लत रिश्तों में, ग़लत

रोज़गारों और नुक़सानदेह आदतों में फाँस लेते हैं, वे गूगल को बेवक़ूफ़ नहीं बना पाएँगे। उस बयानकर्ता स्वत्व से भिन्न, जो हमें आज नियन्त्रित करता है, गूगल गढ़े गए क़िस्सों के आधार पर फ़ैसले नहीं लेगा, और संज्ञानात्मक शॉर्ट कटों तथा पराकाष्ठा-और-अन्त के नियम से गुमराह नहीं होगा। गूगल आपके द्वारा उठाए गए एक-एक क़दम और आपके द्वारा मिलाए गए एक-एक हाथ को याद रखेगा।

हममें से बहुत-से लोग अपनी निर्णय-प्रक्रियाओं को इस तरह की व्यवस्था के हाथों में सौंपकर ख़ुश होंगे, या कम से कम जब हमें महत्त्वपूर्ण विकल्पों को चुनने की नौबत आएगी, तो उससे परामर्श करेंगे। गूगल हमें सलाह देगा कि हम कौन-सी फ़िल्म देखें, कौन-सी नौकरी की पेशकश मंज़ूर करें, और यहाँ तक कि किससे इश्क़िया मुलाक़ातें करें और किससे विवाह करें। मैं कहूँगी, 'सुनो गूगल, जॉन और पॉल, दोनों मुझसे प्रणय-निवेदन कर रहे हैं। मैं दोनों को पसन्द करती हूँ, लेकिन अलग-अलग ढंग से, और मुझे फ़ैसला कर पाने में बहुत मुश्किल पेश आ रही है। चूँकि तुम सब कुछ जानते हो, तुम्हारी क्या सलाह है कि मुझे क्या करना चाहिए?'

और गूगल जवाब देगा: 'हाँ, मैं आपको आपके जन्म के समय से जानता आया हूँ। मैंने आपके सारे ईमेल पढ़े हैं, आपके सारे फ़ोन कॉल रिकॉर्ड किए हैं, और आपकी प्रिय फ़िल्मों के बारे में, आपके डीएनए के बारे में और आपके दिल के समूचे जैवसांख्यकीय अतीत के बारे में जानता हूँ। मेरे पास आपकी एक-एक प्रणय मुलाक़ात की ठीक-ठीक जानकारी है, और, अगर आप चाहें, तो आप जब-जब जॉन या पॉल से मिलने गई हैं, उन सब मुलाक़ातों के दौरान आपके दिल की धड़कनों का, शुगर स्तर और रक्तचाप का एक-एक सेकेंड का रिकॉर्ड मैं आपको दिखा सकता हूँ। अगर ज़रूरी हुआ, तो मैं आपको इनमें से एक-एक के साथ आपके यौन-सम्पर्क की एकदम सटीक गणितीय श्रेणी मुहैया करा सकता हूँ। और स्वाभाविक ही, मैं उनको भी उतनी ही अच्छी तरह से जानता हूँ, जितनी अच्छी तरह से आपको जानता हूँ। इस सारी जानकारी, अपने शानदार ऐल्गरिदमों, और लाखों रिश्तों के दशकों पुराने सांख्यकीय आँकड़ों के आधार पर - मैं आपको जॉन के साथ जाने की सलाह देता हूँ, जिसमें इस बात की 87 प्रतिशत सम्भावना है कि आप लम्बे समय तक उसके साथ ज़्यादा सन्तुष्ट जीवन जी सकेंगी।

'वाक़ई, मैं आपको इतने अच्छे-से समझता हूँ कि मुझे मालूम है कि आपको मेरा यह जवाब पसन्द नहीं है। पॉल जॉन से ज़्यादा सुन्दर है, और चूँकि आप बाहरी रूप-रंग को बहुत ज़्यादा महत्त्व देती हैं, आप मन ही मन यह चाहती थीं कि मैं 'पॉल' का नाम लेता। रूप-रंग निश्चय ही मायने रखता है, लेकिन उतना नहीं जितना आप सोचती हैं। आपके जैवरासायनिक ऐल्गरिदम - जो हज़ारों साल पहले अफ़्रीका के मैदानों में विकसित हुए थे - रूप-रंग को सम्भावित जोड़ों के समग्र मूल्यांकन में 35 प्रतिशत अंग देते हैं। मेरे ऐल्गरिदम

- जो आज तक के सर्वाधिक ताज़ा अध्ययनों और आँकड़ों पर आधारित हैं - यह कहते हैं कि रूप-रंग रोमांटिक रिश्तों की दीर्घकालीन कामयाबी पर सिर्फ़ 14 प्रतिशत प्रभाव डालता है। इसलिए, बावजूद इसके कि मैंने पॉल के रूप-रंग को ध्यान में रखा है, तब भी मेरा कहना है कि जॉन के साथ आपकी बेहतर ढंग से निभेगी'।

इस तरह की समर्पित परामर्श सेवाओं के बदले में हमें महज़ इस धारणा को तजने की ज़रूरत है कि मनुष्य इंडिविजुअल होते हैं, और हर मनुष्य के पास यह तय करने की स्वतन्त्र इच्छा-शक्ति होती है कि क्या शुभ है, क्या सुन्दर है और जीवन का क्या अर्थ है। मनुष्य बयानकर्ता स्वत्व द्वारा गढ़े गए क़िस्सों से निर्देशित स्वायत्त सत्ताएँ नहीं रह जाएँगे। इसकी बजाय, वे एक विशाल वैश्विक ताने-बाने के अविभाज्य अंग होंगे।

उदारवाद बयानकर्ता स्वत्व का पवित्रीकरण करता है, और उसको मतदान केन्द्र पर, सुपरमार्केट में और विवाह के बाज़ार में मत देने की छूट देता है। यह चीज़ सदियों तक मायने रखती आई थी, क्योंकि बावजूद इसके कि यह बयानकर्ता स्वत्व तमाम तरह की कल्पनाओं और फ़न्तासियों में विश्वास करता है, और कोई ऐसी वैकल्पिक प्रणाली नहीं थी, जो मुझे इससे बेहतर ढंग से समझ पाती, लेकिन जैसे ही हमारे पास एक ऐसी प्रणाली होगी, जो मुझे वाक़ई बेहतर ढंग से समझती होगी, वैसे ही प्रमाण या अधिकार को बयानकर्ता स्वत्व के हाथों में छोड़ देना एक मूर्खतापूर्ण साहस होगा।

लोकतान्त्रिक चुनाव जैसी उदारवादी आदतें पुरानी पड़ जाएँगी, क्योंकि मेरे राजनैतिक दृष्टिकोण तक का प्रतिनिधित्व गूगल मुझसे बेहतर ढंग से कर सकेगा। जब मैं मतदान-केन्द्र पर परदे के पीछे खड़ा होता हूँ, तो उदारवाद मुझे मेरे प्रामाणिक स्वत्व से परामर्श करने, और उस दल या प्रत्याशी को चुनने का निर्देश देता है, जो मेरी गहनतम आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व करता हो, लेकिन जैविक विज्ञान इस ओर संकेत करते हैं कि जब मैं उस परदे के पीछे खड़ा होता हूँ, तो मुझे वास्तव में वह हर चीज़ याद नहीं रह गई होती है, जिसे मैंने पिछले चुनाव से लेकर अब तक के वर्षों में महसूस किया या सोचा होता है। इसके अलावा मेरे ऊपर प्रचार, भ्रान्तियों और बेतरतीब स्मृतियों का जो चौतरफ़ा हमला हुआ होता है, उसने मेरे विवेक को भ्रष्ट कर दिया हो सकता है। ठीक जिस तरह काह्नेमेन के ठण्डे पानी वाले प्रयोग में होता है, उसी तरह राजनीति में भी बयानकर्ता स्वत्व पराकाष्ठा-और-अन्त के नियम का अनुसरण करता है। यह घटनाओं के व्यापक हिस्से को भुला देता है, सिर्फ़ कुछ चरम प्रसंगों को याद रखता है और हाल की घटनाओं को पूरी तरह से विषमानुपातिक महत्त्व दे देता है।

चार साल के लम्बे समय तक मैं प्रधानमन्त्री की नीतियों को लेकर बार-बार शिकायत करता रहा हो सकता हूँ और ख़ुद से तथा हर उस व्यक्ति से जो मेरी बात सुनने को इच्छुक

रहा है, यह कहता रहा हो सकता हूँ कि वे 'हम सब की बर्बादी का कारण' बनेंगे, लेकिन चुनावों के कुछ महीनों पहले सरकार करों में कटौती करती है और उदारपूर्वक पैसे ख़र्च करती है। सत्ताधारी दल विज्ञापन तैयार करने में बेहद माहिर लोगों को काम पर लगाते हुए ज़बरदस्त चुनाव-प्रचार करता है, जिसमें धमकियों और आश्वासनों की ऐसी सुसन्तुलित मिलावट है कि वह मेरे मस्तिष्क के भय-केन्द्र को सीधे प्रभावित करती है। चुनाव की सुबह मैं ज़ुक़ाम के साथ जागता हूँ, जो मेरी मानसिक प्रक्रिया पर असर डालता है और मुझे तमाम दूसरी चीज़ों से ऊपर सुरक्षा तथा स्थिरता को प्राथमिकता देने के लिए प्रेरित करता है। और लीजिए! मैं ठीक उसी आदमी को अगले चार सालों के लिए सत्ता में वापस भेज देता हूँ, जो 'हम सबकी बर्बादी का कारण' बनेगा।

मैंने ख़ुद को इस तरह की नियति से बचा लिया हो सकता था, अगर मैंने अपनी ओर से वोट देने का अधिकार गूगल को सौंप दिया होता। आप जानते हैं कि गूगल का जन्म कल नहीं हुआ था, हालाँकि उसने हाल ही में करों में की गई कटौतियों और चुनावी आश्वासनों को नज़रअन्दाज़ न किया होता, लेकिन उसने यह भी याद रखा होता कि पिछले चार सालों के दौरान क्या हुआ था। उसकी जानकारी में यह बात भी होती कि हर सुबह जब मैं अख़बार पढ़ता हूँ, तो मेरा रक्तचाप कैसा होता है, और जब मैं शाम के समाचार देखता हूँ तो मेरे डोपामाइन का स्तर अचानक तेज़ी-से गिर जाता है। गूगल को यह जानकारी भी होती कि शब्दों के हेरफेर में माहिर प्रचारकों के नारों के खोखलेपन को किस तरह पकड़ा जाए। गूगल यह भी समझता कि बीमारी मतदाताओं को सामान्य से थोड़ा ज़्यादा दाईं ओर झुका देती है, और वह इसकी भरपाई करता। इस तरह गूगल मेरी तात्कालिक मानसिक अवस्था के मुताबिक़, और बयानकर्ता स्वत्व की कल्पनाओं के मुताबिक़ मतदान करने में सक्षम होने की बजाय 'मैं' जिन जैवरासायनिक ऐल्गरिदमों का संग्रह हूँ, उनकी वास्तविक अनुभूतियों और हितों के मुताबिक़ मतदान करने में सक्षम होता।

स्वाभाविक है कि गूगल हमेशा अचूक नहीं होगा। अन्ततः ये सब महज़ सम्भावनाएँ हैं, लेकिन अगर गूगल पर्याप्त अच्छे निर्णय लेता है, तो लोग उसको उत्तरोत्तर अधिकार सौंपते जाएँगे। समय के बीतने के साथ सूचना-भण्डार में वृद्धि होगी, आँकड़े और ज़्यादा सटीक हो जाएँगे, ऐल्गरिदमों में सुधार आएगा और निर्णय और भी ज़्यादा बेहतर होंगे। यह व्यवस्था मुझे कभी पूरी तरह से नहीं जान पाएगी, और वह कभी अचूक नहीं होगी, लेकिन इसकी कोई ज़रूरत भी नहीं है। उदारवाद उसी दिन ढह जाएगा, जिस दिन यह व्यवस्था मुझे मुझसे बेहतर ढंग से समझने लगेगी। जो कि उससे कम मुश्किल स्थिति है, जितनी कि वह लग सकती है, क्योंकि ज़्यादातर लोग स्वयं को वाक़ई ठीक से नहीं जानते।

गूगल के पुराने प्रतिद्वन्द्वी फ़ेसबुक द्वारा कराया गया हाल ही का एक अध्ययन इस ओर संकेत करता है कि फ़ेसबुक का ऐल्गरिदम मनुष्यों के व्यक्तित्वों और रुझानों को परखने के मामले में पहले ही लोगों के दोस्तों, अभिभावकों और जीवन-साथियों से बेहतर साबित हो चुका है। यह अध्ययन उन 86,220 स्वैच्छिक भागीदारों पर किया गया था, जिनके फ़ेसबुक अकाउंट हैं और जिन्होंने एक सौ विषयों की व्यक्तित्व-सम्बन्धी प्रश्नावली को पूरा किया था। फ़ेसबुक के ऐल्गरिदम ने इन स्वैच्छिक भागीदारों के जवाबों का पूर्वानुमान उनकी फ़ेसबुक पसन्दों (लाइक्स) के निरीक्षण के आधार पर किया था - इस आधार पर कि उन्होंने लाइक बटन के साथ कौन-से वेबपेज, तसवीरें और क्लिप्स टैग किए थे। जितने ही ज़्यादा लाइक्स उतने ही सटीक पूर्वानुमान। इस ऐल्गरिदम के पूर्वानुमानों की तुलना इन लोगों के सहकर्मियों, दोस्तों, परिवार के सदस्यों और जीवन-साथियों के पूर्वानुमानों के साथ की गई। यह बात विस्मय जगाने वाली थी कि इस ऐल्गरिदम को सहकर्मियों के पूर्वानुमानों को मात देने के लिए सिर्फ़ दस लाइक्स की ज़रूरत पड़ी। इसके लिए दोस्तों को मात देने के लिए सत्तर लाइक्स की, परिवार के सदस्यों को मात देने के लिए 150 लाइक्स की और जीवन-साथियों को मात देने के लिए 300 लाइक्स की ज़रूरत पड़ी। दूसरे शब्दों में, अगर आपने अपने फ़ेसबुक अकाउंट पर 300 लाइक्स क्लिक किए हैं, तो फ़ेसबुक ऐल्गरिदम आपकी धारणाओं और आकांक्षाओं के बारे में आपके पति या पत्नी से बेहतर पूर्वानुमान कर सकता है!

वाक़ई, कुछ क्षेत्रों में फ़ेसबुक ऐल्गरिदम ने स्वयं व्यक्तियों से बेहतर काम किया था। भागीदारी करने वालों से मादक द्रव्यों के इस्तेमाल का स्तर या उनके सामाजिक सम्पर्कों के आकार का मूल्यांकन करने को कहा गया था। उनके मूल्यांकन ऐल्गरिदम के मूल्यांकनों के मुक़ाबले कम सटीक थे। यह अध्ययन निष्कर्ष के तौर पर यह पूर्वानुमान (जो आलेख के इंसानी लेखकों द्वारा किया गया है, न कि फ़ेसबुक ऐल्गरिदम द्वारा) प्रस्तुत करता है: 'लोगों को अपनी ज़िन्दगी के महत्त्वपूर्ण फ़ैसले लेते वक़्त, जैसे कि गतिविधियों, आजीविका की राह, या रोमांटिक साथियों तक का चुनाव करते वक़्त, अपने स्वयं के मनोवैज्ञानिक मूल्यांकनों को त्याग देना चाहिए और इन मामलों में कम्प्यूटरों पर भरोसा करना चाहिए। मुमकिन है कि इस तरह के आँकड़े-प्रेरित (डेटा-ड्रिवन) फ़ैसले लोगों के जीवन में सुधार लाएँ'।

इसकी एक और अशुभ व्याख्या यह भी हो सकती है कि इसी अध्ययन में यह बात भी निहित है कि भविष्य में संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति के चुनावों में फ़ेसबुक को न केवल करोड़ों अमेरिकियों के राजनैतिक मतों की जानकारी होगी, बल्कि इस बात की जानकारी भी होगी कि इनमें से कौन-से ऐसे निर्णायक मतदाता होंगे, जिन्होंने इस बात का फ़ैसला नहीं किया होगा कि वे किस को वोट देंगे, और किस तरह ऐसे मतदाताओं के मतों

को प्रभावित किया जा सकता है। फ़ेसबुक बता सकेगी कि ओक्लाहोमा में रिपब्लिकनों और डेमोक्रेटों के बीच ख़ासतौर से काँटे की टक्कर है, वह 32,417 ऐसे मतदाताओं की पहचान कर सकेगी, जिन्होंने अभी भी इस बारे में अपना मन नहीं बनाया है कि वे किसको वोट देंगे, और वह यह भी निर्धारित कर सकेगी कि स्थिति में बदलाव लाने के लिए किस प्रत्याशी को क्या कहने की ज़रूरत होगी। फ़ेसबुक यह बेशक़ीमती राजनैतिक जानकारी कैसे हासिल करती है? ये हम हैं, जो उसको यह जानकारी मुफ़्त में देते हैं।

यूरोपीय साम्राज्यवाद के उत्कर्ष के युग में विजेता और व्यापारी रंगीन मनकों के बदले में पूरे के पूरे द्वीप और मुल्क ख़रीद लिया करते थे। इक्कीसवीं सदी में हमारी निजी जानकारी सम्भवतः ज़्यादातर मनुष्यों द्वारा उपलब्ध कराया जा सकने वाला सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण संसाधन है, और इसे हम ईमेल सेवाओं और मज़ेदार कैट वीडियो के बदले प्रौद्योगिकी की महाशक्तियों को प्रदान कर रहे हैं।

ज्ञानी मार्गदर्शक से लेकर सम्प्रभु सत्ता तक

जैसे ही गूगल, फ़ेसबुक और अन्य ऐल्गरिदम सर्वज्ञ मार्गदर्शक बन जाते हैं, वे बहुत आसानी-से एजेंटों और अन्ततः सम्प्रभु सत्ताओं का रूप ले सकते हैं। इस प्रक्षेप-पथ को समझने के लिए वेज़ (Waze) के प्रकरण पर विचार करें, जो जी. पी. एस. (ग्लोबल पोज़ीशनिंग सिस्टम) पर आधारित परिवहन सम्बन्धी एक ऐसा एप्लीकेशन है, जिसका इस्तेमाल आजकल ज़्यादातर ड्राइवर करते हैं। वेज़ महज़ एक नक़्शा नहीं है। इसका इस्तेमाल करने वाले लाखों लोग इसको ट्रैफ़िक जाम, कार दुर्घटनाओं और पुलिस कारों के बारे में निरन्तर ताज़ातरीन जानकारी से लैस करते रहते हैं। लिहाज़ा, वेज़ आपको वाहनों के भारी भीड़भाड़ वाले इलाक़ों से अलग रास्तों पर मोड़ना जानता है, और वह आपको सबसे ज़्यादा मुमकिन फुर्तीले मार्ग से आपके गन्तव्य तक पहुँचा देता है। जब आप किसी चौराहे पर पहुँचते हैं और आपकी सहज बुद्धि आपसे दाएँ मुड़ने को कहती है, लेकिन वेज़ आपको बाएँ मुड़ने का निर्देश देता है, तो इसे इस्तेमाल करने वाले आगे-पीछे सीख जाते हैं कि उनको अपनी सहज बुद्धि की बजाय वेज़ की बात पर ध्यान देना चाहिए।

पहली नज़र में ऐसा लगता है कि वेज़ ऐल्गरिदम महज़ एक ज्ञानी मार्गदर्शक की भूमिका निभाता है। आप एक सवाल पूछते हैं और यह ज्ञानी मार्गदर्शक जवाब दे देता है, लेकिन यह आप पर है कि आप क्या फ़ैसला करते हैं, लेकिन अगर यह ज्ञानी मार्गदर्शक आपका भरोसा जीत लेता है, तो अगला तार्किक क़दम इसको एक एजेंट में बदल देना है। आप इस ऐल्गरिदम को एक अन्तिम लक्ष्य सौंपते हैं, और वह बिना आपकी निगरानी के उस लक्ष्य को पूरा करता है। वेज़ के प्रकरण में ऐसा उस समय हो सकता है, जब आप वेज़ को एक स्वचालित कार से जोड़ दें, और वेज़ से कहें, 'सबसे तेज़ रास्ते से घर ले चलो' या

‘या सबसे ज़्यादा सुरम्य मार्ग से चलो’ या ‘ऐसे रास्ते से चलो, जिससे कम से कम प्रदूषण का सामना करना पड़े’। आप अपना प्रभुत्व जताते हैं, लेकिन आपके आदेशों को किस तरह क्रियान्वित किया जाए, यह चीज़ आप वेज़ पर छोड़ देते हैं।

अन्त में, वेज़ सम्प्रभु सत्ता बन सकता है। उसके हाथों में इतनी अधिक शक्ति होने के नाते, और आपसे कहीं ज़्यादा जानकार होने के नाते, ये आपको और दूसरे ड्राइवरों को अपनी अंगुलियों पर नचाना शुरू कर सकता है, आपकी आकांक्षाओं को आकार देने लग सकता है और आपके लिए आपके फ़ैसले लेने लग सकता है। उदाहरण के लिए, मान लीजिए कि वेज़ इतना अच्छा है कि हर कोई उसका इस्तेमाल करने लगता है। और मान लीजिए कि मार्ग क्रमांक 1 पर ट्रैफ़िक जाम लगा है, जबकि वैकल्पिक मार्ग क्रमांक 2 अपेक्षाकृत खुला है। अगर वेज़ हर किसी को यह जानकारी उपलब्ध करा देता है, तो सारे ड्राइवर मार्ग 2 की ओर भागेंगे, और इस तरह वह मार्ग भी अवरुद्ध हो जाएगा। जब हर कोई एक ही ज्ञानी मार्गदर्शक का इस्तेमाल करने लगता है, और हर कोई उस ज्ञानी मार्गदर्शक पर भरोसा करने लगता है, तो वह ज्ञानी मार्गदर्शक एक सम्प्रभु में बदल जाता है। इसलिए वेज़ हमारे लिए सोचने का काम कर सकता है। हो सकता है कि वह सिर्फ़ आधे ड्राइवरों को ही सूचित करे कि मार्ग 2 खुला है, जबकि बाक़ी आधे लोगों से इस जानकारी को छिपा कर रखे। इस तरह मार्ग 2 को अवरुद्ध किए बग़ैर मार्ग 1 पर दबाव कम हो जाएगा।

माइक्रोसॉफ़्ट कोर्टाना नामक एक इससे भी ज़्यादा परिष्कृत प्रणाली विकसित कर रहा है, जिसका नामकरण इसकी एक लोकप्रिय वीडियो गेम सीरीज़ हालो के एक आर्टिफ़िशल इंटेलिजेंस चरित्र के नाम पर किया गया है। कोर्टाना एक आर्टिफ़िशल इंटेलिजेंस निजी सहायक है, जिसको माइक्रोसॉफ़्ट विंडोज़ के भविष्य के प्रारूपों में एक अन्दरूनी विशेषता के रूप में शामिल करने की उम्मीद रखता है। विंडोज़ का उपयोग करने वालों को प्रोत्साहित किया जाएगा कि वे कोर्टाना को अपनी सारी फ़ाइलों, ईमेल और एप्लीकेशनों तक पहुँच बनाने की गुंजाइश दें, ताकि वह उनको पहचान सके और इस तरह बहुत सारे मामलों में परामर्श दे सके, साथ ही इस्तेमाल करने वाले के हितों का प्रतिनिधित्व करने वाला एक आभासी एजेंट बन सके। कोर्टाना आपको आपकी पत्नी के जन्मदिन पर उसके लिए कुछ ख़रीदने की याद दिला सकता है, उपहार चुन सकता है, रेस्तराँ में आपके लिए मेज़ आरक्षित कर सकता है और आपको डिनर के एक घण्टा पहले अपनी दवा लेने की याद दिला सकता है। यह आपको सावधान कर सकता है कि अगर आपने पढ़ना बन्द नहीं किया, तो आपको अपने कारोबार सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण बैठक में पहुँचने में देर हो सकती है। जैसे ही आप उस बैठक में पहुँचने वाले होंगे, कोर्टाना आपको चेतावनी देगा कि आपका रक्तचाप बहुत बढ़ा हुआ है और आपका डोपामाइन स्तर बहुत

नीचे है, और अतीत की जानकारियों के आधार पर वह बता सकेगा कि इस तरह की परिस्थितियों में आपके द्वारा कारोबार सम्बन्धी गम्भीर भूलें हो जाया करती हैं। इसलिए बेहतर होगा कि आप चीज़ों को अनिश्चय की स्थिति में रखें और किसी तरह की वचनबद्धता से या किसी सौदे पर दस्तख़त करने से बचें।

जैसे ही कोर्टाना एक ज्ञानी मार्गदर्शक से एजेंट में बदल जाते हैं, वे अपने मालिक की ओर से एक-दूसरे से बातचीत करने लग सकते हैं। इसकी शुरुआत पर्याप्त मासूम ढंग से हो सकती है, जिसके तहत मेरा कोर्टाना आपके कोर्टाना से सम्पर्क कर मुलाक़ात के लिए किसी एक जगह और समय पर मिलने को राज़ी हो सकता है। अचानक, जिस कम्पनी द्वारा मुझे नौकरी पर रखे जाने की सम्भावना है, वह मुझसे कह सकती है कि मुझे उसके लिए अपना सीवी भेजने की ज़रूरत नहीं है, बल्कि मैं इतना भर करूँ कि उसके कोर्टाना को मेरे कोर्टाना से पूछताछ करने की इजाज़त दे दूँ या यह भी मुमकिन है कि मेरे सम्भावित प्रेमी का कोर्टाना मेरे कोर्टाना से सम्पर्क क़ायम कर ले, और दोनों यह फ़ैसला करने के लिए नोट्स का मिलान करें कि यह वैवाहिक रिश्ता ठीक होगा या नहीं - और इन कोर्टाना के हम दोनों इंसानी मालिक इस पूरी प्रक्रिया से अनभिज्ञ बने रहें।

जैसे ही कोर्टाना को प्रभुत्व हासिल होता जाएगा, वे अपने मालिक के हितों को बढ़ावा देने के लिए एक-दूसरे के साथ इस तरह की कूटनीतियाँ बरतना शुरू कर सकते हैं, जिससे कि आजीविका या विवाह सम्बन्धी लेनदेन के क्षेत्र में आपकी कामयाबी आपके कोर्टाना की गुणवत्ता पर निर्भर करने लग सकती है। सबसे ज़्यादा ताज़ातरीन कोर्टाना के सम्पन्न मालिक कोर्टाना के पुराने संस्करणों के ग़रीब मालिकों पर निर्णायक बढ़त की स्थिति में होंगे।

लेकिन इस सबका सबसे ज़्यादा अँधेरा पक्ष कोर्टाना के मालिक की पहचान से सम्बन्ध रखने वाला है। जैसा कि हम देख चुके हैं, मनुष्य इंडिविजुअल नहीं हैं, और उनका कोई एकल एकीकृत स्वत्व नहीं है। तब फिर कोर्टाना किसका हित साधेगा? मान लीजिए कि मेरा बयानकर्ता स्वत्व नए साल पर सन्तुलित आहार लेने और रोज़ जिम जाने का संकल्प लेता है। एक हफ़्ते बाद, जब जिम जाने का वक़्त आता है, तो मेरा अनुभवकर्ता स्वत्व कोर्टाना को टीवी चालू करने और पिज़्ज़ा का ऑर्डर देने का निर्देश दे देता है। ऐसे में कोर्टाना को क्या करना होगा? वह अनुभवकर्ता स्वत्व की आज्ञा मानेगा, या बयानकर्ता स्वत्व द्वारा हफ़्ते भर पहले किए गए संकल्प के अनुरूप आचरण करेगा?

आपके मन में यह ख़याल आ सकता है कि क्या कोर्टाना वाक़ई उस अलार्म घड़ी से भिन्न है, जिसमें बयानकर्ता स्वत्व शाम के समय अलार्म भर देता है, ताकि अनुभवकर्ता स्वत्व काम के समय जाग सके, लेकिन कोर्टाना के पास मुझे नियन्त्रित कर सकने वाली शक्ति एक अलार्म घड़ी से कहीं ज़्यादा होगी। अनुभवकर्ता स्वत्व अलार्म घड़ी के बटन को

दबाकर अलार्म को ख़ामोश कर सकता है। इसके विपरीत, कोर्टाना मुझे इतनी अच्छे-से समझता होगा कि उसको यह बात अच्छी तरह से मालूम होगी कि उसको ठीक कौन-से अन्दरूनी बटन दबाने की ज़रूरत है, जिससे कि मैं उसकी 'सलाह' मानूँ।

माइक्रोसॉफ़्ट का कोर्टाना इस खेल में शामिल अकेला खिलाड़ी नहीं है। गूगल नाउ और ऐपल का सीरी भी इसी रास्ते पर हैं। अमेज़ॉन ने भी ऐसे ऐल्गरिदमों को काम पर लगा रखा है, जो लगातार आपका अध्ययन करते रहते हैं और फिर अपनी इस संचित जानकारी का इस्तेमाल उत्पादों की सिफ़ारिश के लिए करते हैं। जब मैं किसी वास्तविक पुस्तक की दुकान पर जाता हूँ, तो मैं अल्मारियों के बीच भटकता हूँ और सही पुस्तक के चुनाव के लिए अपनी अनुभूतियों पर भरोसा करता हूँ। जब मैं अमेज़ॉन की आभासी दुकान का भ्रमण करता हूँ, तो तत्काल एक ऐल्गरिदम प्रकट होता है और मुझसे कहता है: 'मैं जानता हूँ कि अतीत में आप कौन-सी पुस्तकें पसन्द करते रहे हैं। इससे मिलती-जुलती अभिरुचि रखने वाले लोग यह या वह नई पुस्तक पसन्द करते हैं'।

और यह महज़ शुरुआत है। आज संयुक्त राज्य अमेरिका में ज़्यादातर लोग छपी हुई पुस्तकों से ज़्यादा डिजिटल पुस्तकें पढ़ते हैं। अमेज़ॉन के किंडल जैसे उपकरण पढ़ने के दौरान इनका इस्तेमाल करने वालों से सम्बन्धित जानकारी एकत्र करने में सक्षम हैं। उदाहरण के लिए, आपका किंडल इस पर निगाह रख सकता है कि पुस्तक के कौन-से हिस्से आपने फुर्ती से पढ़े, और कौन-से हिस्से धीमी गति से पढ़े, कौन-से पृष्ठ पर आपने विराम लिया, और कौन-से वाक्य पर पहुँचकर आपने पुस्तक को हमेशा के लिए छोड़ दिया। (बेहतर होगा कि लेखक को उस हिस्से को फिर से लिखने को कहा जाए।) अगर किंडल को उन्नत रूप देकर उसको चेहरे की पहचान करने में सक्षम और जैवसांख्यिक संवेदियों से युक्त कर दिया जाता है, तो वह यह जान सकेगा कि आपके द्वारा पढ़े गए प्रत्येक वाक्य ने आपके दिल की धड़कनों और रक्तचाप पर किस तरह का असर डाला। मुझे जानकारी होगी कि किस बात ने आपको हँसाया, किसने आपको उदास कर दिया और किस बात ने आपको ग़ुस्से से भर दिया। जल्दी ही ऐसा वक़्त आएगा, जब आप पुस्तक पढ़ रहे होंगे तो पुस्तक आपको पढ़ रही होगी। और जहाँ आपने जो कुछ पढ़ा होता है, उसको जल्दी-से भूल जाते हैं, वहीं अमेज़ॉन कुछ भी नहीं भूलेगा। इस तरह की जानकारियाँ विस्मयकारी स्पष्टता के साथ आपके लिए पुस्तकों का चुनाव करने में अमेज़ॉन को सक्षम बना देंगी। ये अमेज़ॉन को यह जानने में भी सक्षम बना देंगी कि आप कौन हैं, और किस तरह आपकी रुचियों को जगाया या सुलाया जाए।

अन्ततः हम उस मुक़ाम पर पहुँच सकते हैं, जब इस सर्वज्ञ नेटवर्क से पल भर के लिए भी सम्पर्क तोड़ना असम्भव हो जाएगा। सम्पर्क के टूटने का अर्थ होगा मौत। अगर चिकित्सा-विज्ञान की उम्मीदें पूरी हो जाती हैं, तो भविष्य के मानव अपनी कायाओं में ऐसे

ढेरों जैवसांख्यकीय उपकरण, कृत्रिम अंग और नैनो-रोबोट धारण करने लगेंगे, जो हमारी तन्दुरुस्ती पर निगाह रखेंगे और हमें संक्रमणों, बीमारियों और क्षति से बचाएँगे, लेकिन इन उपकरणों को पूरे वक़्त ऑनलाइन रहना होगा, ताकि वे चिकित्सा-विज्ञान की नवीनतम खोजों से ताज़ातरीन भी बने रह सकें, और साइबरस्पेस की नई महामारियों से उनका बचाव भी किया जाता रह सके। जिस तरह मेरा घरेलू कम्प्यूटर निरन्तर वाइरसों, वार्मों और ट्रोजन हॉर्सों के हमले झेलता रहता है, उसी तरह के हमलों के शिकार मेरे पेसमेकर, श्रवण-यन्त्र और नैनोटेक प्रतिरक्षी तन्त्र भी होगा। अगर मैं अपने शरीर के एंटी-वाइरस प्रोग्राम का नियमित रूप से नवीनीकरण नहीं करूँगा, तो एक सुबह जागने पर मैं पाऊँगा कि मेरी रगों में दौड़ रहे लाखों नैनो-रोबोट अब किसी उत्तर कोरियाई हैकर द्वारा नियन्त्रित किए जा रहे हैं।

इक्कीसवीं सदी की नई प्रौद्योगिकियाँ इस तरह मानववादी क्रान्ति को उलटकर मनुष्यों को उनकी प्रभुता से वंचित कर सकती हैं, और उसके स्थान पर सारा प्रभुत्व अ-मानवीय ऐल्गरिदमों को सौंप सकती हैं। अगर आप इस सम्भावित दिशा से भयभीत हैं, तो इसके लिए कम्प्यूटर में संलग्न लोगों को दोषी मत ठहराइए। इसके लिए मुख्यतः जीवविज्ञानी ज़िम्मेदार हैं। इस बात को समझना बहुत अनिवार्य है कि इस समूची विचारधारा को कम्प्यूटर-विज्ञान की बजाय जीववैज्ञानिक अन्तर्दृष्टियों से प्रोत्साहन मिला है। ये जैविक विज्ञान हैं, जिन्होंने यह नतीजा निकाला है कि प्राणी ऐल्गरिदम होते हैं। अगर स्थिति यह नहीं है - अगर प्राणी ऐल्गरिदमों के मुक़ाबले स्वाभाविक तौर पर भिन्न ढंग से आचरण करते हैं - तो कम्प्यूटर दूसरे क्षेत्रों में चमत्कार पैदा कर सकते हैं, लेकिन तब वे हमें समझने और हमारे जीवन को नियन्त्रित करने में सक्षम नहीं होंगे, और वे निश्चय ही हमारे साथ एकाकार होने में अक्षम होंगे, लेकिन जैसे ही जीवविज्ञानियों ने यह निष्कर्ष निकाल दिया कि प्राणी ऐल्गरिदम हैं, वैसे ही उन्होंने जैविक और अजैविक के बीच की दीवार को तोड़ दिया, कम्प्यूटर क्रान्ति को एक विशुद्ध यान्त्रिक मसले से एक जैविक उथल-पुथल में बदल दिया, और प्रभुत्व को अविभाज्य मनुष्यों के हाथ से हटाकर व्यापक स्तर पर परस्पर जुड़े ऐल्गरिदमों के हाथों में सौंप दिया।

कुछ लोग निश्चय ही इस घटनाक्रम से भयभीत हैं, लेकिन तथ्य यह है कि लाखों लोग इसे ख़ुशी-ख़ुशी अपनाते हैं। आज पहले ही हम में से बहुत-से लोग अपनी ज़िन्दगियों को ऑनलाइन संचालित करते हुए, अपनी प्रत्येक गतिविधि को दर्ज़ करते हुए और कुछ मिनटों के लिए भी नेट के कनेक्षन में बाधा पड़ने पर उन्माद से भर उठते हुए, अपनी गोपनीयता और अविभाज्यता को त्याग चुके हैं। प्रभुत्व के इंसानों के हाथों से निकलकर ऐल्गरिदमों के हाथों में चले जाने का सिलसिला हमारे चारों तरफ़ जारी है, और यह किसी

प्रभावशाली सरकारी फ़ैसले के नतीजे में नहीं, बल्कि नितान्त तुच्छ क़िस्म के व्यक्तिगत चुनावों की वजह से हो रहा है।

अगर हम सावधानी नहीं बरतते, तो इसका परिणाम उस ऑर्वेलियाई पुलिस राज (यहाँ संकेत जॉर्ज ऑर्वेल के प्रसिद्ध उपन्यास 1984 की ओर है - अनुवादक) के रूप में सामने आ सकता है, जो न सिर्फ़ हमारी गतिविधियों की, बल्कि हमारी कायाओं और मस्तिष्कों की अन्दरूनी गतिविधियों की भी निरन्तर निगरानी करता है। ज़रा कल्पना कीजिए कि स्तालिन ने सर्वव्यापी जैवसांख्यकीय संवेदियों का क्या उपयोग पाया होता - और पुतिन उनका क्या उपयोग आज भी कर सकते हैं, लेकिन जहाँ मनुष्य की अविभाज्यता का बचाव करने वाले लोग बीसवीं सदी के दुःस्वप्नों के दोहराए जाने को लेकर भयभीत हैं और चिरपरिचित ऑर्वेलियाई शत्रुओं को प्रतिरोध देने के लिए कमर कसे हैं, वहीं मनुष्य की अविभाज्यता विपरीत दिशा से उभरते उससे भी बड़े ख़तरे का सामना कर रही है। इक्कीसवीं सदी में ज़्यादा सम्भावना इस बात की है कि इंडिविजुअल किसी बाहरी शक्ति के हाथों क्रूरतापूर्वक कुचले जाने की बजाय धीरे-धीरे अन्दर से विघटित होता जाएगा। आज ज़्यादातर कॉर्पोरेशन और सरकारें मेरी अविभाज्यता का सम्मान करती हैं, और चिकित्सा, शिक्षा और मेरी अनूठी ज़रूरतों तथा आकांक्षाओं के अनुरूप मनोरंजन उपलब्ध कराने का वादा करती हैं, लेकिन ऐसा करने के लिए कॉर्पोरेशनों और सरकारों के लिए यह ज़रूरी है कि वे पहले मुझे जैवरासायनिक उपतन्त्रों में विघटित करें, सर्वव्यापक संवेदियों के माध्यम से इन उपतन्त्रों पर निगरानी रखें और शक्तिशाली ऐल्गरिदमों की मदद से उनकी कार्य-प्रणाली को समझें। इस प्रक्रिया में इंडिविजुअल महज़ एक मज़हबी फँतासी बनकर रह जाएगा। वास्तविकता जैवरासायनिक और इलेक्ट्रॉनिक ऐल्गरिदमों का ऐसा जाल बनकर रह जाएगी, जिसकी न तो कोई स्पष्ट सीमाएँ होंगी और न कोई अविभाज्य केन्द्र होंगे।

असमानता का उन्नयन

अभी तक हमने उदारवाद के सामने मँडराते तीन व्यावहारिक ख़तरों में से दो ख़तरों पर ग़ौर किया है: पहला यह कि मनुष्य पूरी तरह से अपना मूल्य खो देंगे, दूसरा यह कि मनुष्य सामूहिक तौर पर तो तब भी मूल्यवान बने रहेंगे, लेकिन अपनी वैयक्तिक सत्ता खो देंगे, और उसकी बजाय बाहरी ऐल्गरिदमों द्वारा नियन्त्रित होने लगेंगे। व्यवस्था को अभी भी सिम्फ़ॅनियाँ रचने, इतिहास पढ़ाने या कम्प्यूटर के कोड लिखने के लिए आपकी ज़रूरत बनी रहेगी, लेकिन वह आपको उससे बेहतर ढंग से समझा करेगी, जितना आप स्वयं समझते हैं, और इसलिए आपके ज़्यादातर फ़ैसले वही लिया करेगी - और आप इससे पूरी

तरह प्रसन्न रहा करेंगे। ज़रूरी नहीं कि यह एक बुरी दुनिया हो, लेकिन यह एक उत्तर-उदारवादी दुनिया ज़रूर होगी।

उदारवाद के सामने तीसरा ख़तरा यह है कि कुछ लोग अपरिहार्य और अव्याख्येय तो बने रहेंगे, लेकिन वे उन्नत बना दिए गए मनुष्यों के एक छोटे-से और विशेषाधिकार-सम्पन्न विशिष्ट वर्ग की रचना करेंगे। ये अतिमानव ऐसी असाधारण क्षमताओं और अपूर्व रचनात्मक शक्तियों से लैस होंगे, जो उनको दुनिया के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण फ़ैसले लेते रहने की गुंजाइश देंगे। वे इस व्यवस्था के लिए महत्त्वपूर्ण सेवाएँ प्रदान करेंगे, वहीं यह व्यवस्था न तो उनको समझ सकेगी और न उनको परिचालित कर सकेगी, लेकिन ज़्यादातर मनुष्यों का ऐसा उन्नयन नहीं हुआ होगा, और इसके परिणामस्वरूप वे कम्प्यूटर ऐल्गरिदमों और इन नए अतिमानवों के वर्चस्व के अधीन एक हीन वर्ग बनकर रह जाएँगे।

मानव जाति का जैविक वर्गों में इस तरह का विभाजन उदारवादी विचारधारा की बुनियादों को नष्ट कर देगा। उदारवाद सामाजिक-आर्थिक फ़ासलों के साथ क़ायम रह सकता है। दरअसल, चूँकि यह स्वतन्त्रता को समानता से बड़ी चीज़ मानता है, इसलिए वह इस तरह के फ़ासलों को कोई ख़ास महत्त्व नहीं देता। तथापि उदारवाद यह मानकर चलता है कि मूल्य और प्रभुत्व की दृष्टि से सारे मनुष्य समान हैं। अगर एक व्यक्ति किसी आलीशान महल में रहने वाला अरबपति है, और दूसरा घास-फूस की झोपड़ी में रहने वाला एक ग़रीब किसान है, तो यह स्थिति उदारवादी नज़रिये से एकदम उचित है, क्योंकि उदारवाद के अनुसार उस किसान के अद्वितीय अनुभव तब भी उतने ही मूल्यवान हैं, जितने उस अरबपति के अनुभव हैं। इसीलिए उदारवादी लेखक ग़रीब किसानों के अनुभवों के बारे में लम्बे-लम्बे उपन्यास लिखते हैं - और इसीलिए अरबपति इस तरह की पुस्तकों को उत्सुकतापूर्वक पढ़ते हैं। अगर आप ब्रॉडवे थिएटर या कोवेंट गार्डन में les Misérables देखने जाएँ, तो आप पाएँगे कि वहाँ की अच्छी सीटों के लिए सैकड़ों डॉलर के टिकट लगते हैं, और वहाँ मौजूद दर्शकों की कुल सम्पत्ति अरबों डॉलर की होती है, लेकिन तब भी इस दर्शक-वर्ग की सहानुभूति उस ज़्याँ वेल्ज़्याँ के साथ होती है, जिसने अपने भूखों मरते भतीजे का पेट भरने की ख़ातिर ब्रेड का एक पैकट चुराने की वजह से उन्नीस साल जेल में काटे थे।

यही तर्क चुनाव के दिन भी काम करता है, जब ग़रीब किसानों के वोट भी ठीक उतने ही मूल्यवान होते हैं, जितने अरबपतियों के वोट होते हैं। सामाजिक ग़ैरबराबरी का उदारवादी समाधान हर किसी के लिए एक जैसे अनुभव रचने की बजाय विभिन्न मानवीय अनुभवों को समान मूल्य प्रदान करना है। हालाँकि, यह समाधान क्या उस वक़्त भी कारगर होगा, जब अमीरों और ग़रीबों के बीच सिर्फ़ दौलत की वजह से ही नहीं, बल्कि वास्तविक जैविक फ़ासलों की वजह से भी अलगाव होगा?

न्यू यॉर्क टाइम्स के अपने लेख में ऐंजेलिना जोली ने जनेटिक परीक्षण पर होने वाले भारी ख़र्च का ज़िक्र किया था। जो परीक्षण जोली ने कराया था, उस पर 3,000 डॉलर का ख़र्च आया था (जिसमें वास्तविक स्तन-उच्छेदन, पुनर्निर्माण सर्जरी और सम्बन्धित चिकित्साओं पर हुआ ख़र्च शामिल नहीं था)। यह भी एक ऐसी दुनिया में जहाँ एक अरब लोग एक दिन में 1 डॉलर से भी कम कमा पाते हैं, और 1.5 अरब लोग प्रतिदिन 1 और 2 डॉलर के बीच कमा पाते हैं। ये लोग अगर अपने पूरे जीवन भी कड़ी मेहनत करें, तो भी वे 3,000 डॉलर के जनेटिक परीक्षण का ख़र्च वहन नहीं कर पाएँगे। और आर्थिक फ़ासले फ़िलहाल बढ़ते ही जा रहे हैं। 2016 की शुरुआत में, दुनिया के बासठ सबसे ज़्यादा अमीर लोगों के पास 3.6 अरब सबसे ज़्यादा ग़रीब लोगों के बराबर सम्पत्ति थी! चूँकि दुनिया की आबादी लगभग 7.2 अरब है, इसलिए इसका मतलब हुआ कि अकेले इन बासठ अरबपतियों के पास कुल मिलाकर उतनी सम्पत्ति है, जितनी मानव जाति की आधी आबादी के पास है।

डीएनए परीक्षण की लागत समय के साथ कम होते जाने की सम्भावना है, लेकिन नई ख़र्चीली पद्धतियाँ लगातार आगे आ रही हैं। इसलिए जहाँ पुरानी चिकित्सा-पद्धतियाँ धीरे-धीरे जन-समुदाय की पहुँच में आती जाएँगी, वहीं सम्भ्रान्त वर्ग हमेशा कुछ क़दम आगे बना रहेगा। समूचे इतिहास के दौरान सम्पन्न लोग अनेक सामाजिक और राजनैतिक सुविधाओं का उपभोग करते रहे हैं, लेकिन उनको ग़रीबों से अलग करने वाला कोई विराट जैविक फ़ासला कभी नहीं रहा। मध्ययुग के कुलीन जन दावा किया करते थे कि उनकी रगों में श्रेष्ठ क़िस्म का नीला रक्त बह रहा है, और हिन्दू ब्राह्मण ज़ोर देते थे कि वे बाक़ी तमाम लोगों से ज़्यादा अक़्लमन्द हैं, लेकिन ये सब विशुद्ध कल्पनाएँ थीं। भविष्य में हालाँकि हम उन्नत बना दिए गए उच्च वर्ग और बाक़ी समाज के बीच की शारीरिक और संज्ञानात्मक क़ाबिलियतों में वास्तविक फ़ासले देखेंगे।

जब वैज्ञानिकों का सामना इस परिदृश्य से होता है, तो उनका तयशुदा जवाब होता है कि बीसवीं सदी में चिकित्सा-विज्ञान की बहुत सारी खोजों की शुरुआत अमीरों के साथ हुई थी, लेकिन इन खोजों से अन्ततः समूची आबादी लाभान्वित हुई और उसने सामाजिक फ़ासलों को बढ़ाने की बजाय कम ही किया है। उदाहरण के लिए टीकों और एंटीबॉयोटिक्स से पश्चिमी देशों में मुख्यतः उच्च वर्ग ही लाभान्वित हुए थे, लेकिन आज ये चीज़ें हर कहीं सारे मनुष्यों के जीवन में सुधार ला रही हैं।

तथापि, यह उम्मीद करना कि यही प्रक्रिया इक्कीसवीं सदी में भी दोहराई जाएगी, दो महत्त्वपूर्ण वजहों से एक इच्छित चिन्तन साबित हो सकता है। पहली, चिकित्सा-विज्ञान के क्षेत्र में ज़बरदस्त अवधारणात्मक क्रान्ति हो रही है। बीसवीं सदी के चिकित्सा-विज्ञान का लक्ष्य बीमारों का इलाज करना था। इक्कीसवीं सदी के चिकित्सा-विज्ञान का लक्ष्य

उत्तरोत्तर स्वस्थ मनुष्यों को उन्नत रूप देने का होता जा रहा है। बीमारों का इलाज करना एक समतावादी परियोजना थी, क्योंकि उसके पीछे यह मान्यता थी कि शारीरिक और मानसिक तन्दुरुस्ती का एक मानक स्तर है जिसको हर कोई हासिल कर सकता है और जिसे हर किसी को हासिल होना चाहिए। अगर कोई व्यक्ति इस मानक स्तर के नीचे आ जाता था, तो इस समस्या को हल करना और उस व्यक्ति को 'हर किसी जैसा होने' में मदद करना डॉक्टरों का काम था। इसके विपरीत, स्वस्थ मनुष्यों को प्रोन्नत (अपग्रेड) करना एक अभिजात परियोजना है, क्योंकि यह हर किसी पर लागू किए जाने योग्य सार्वभौम स्तर के विचार को ख़ारिज करती है और कुछ थोड़े-से लोगों को बाक़ी दूसरों पर वरीयता देना चाहती है। लोग उत्कृष्ट स्मृतियाँ, औसत से ज़्यादा बुद्धिमत्ता और अव्वल दर्ज़े की यौनपरक क्षमताएँ चाहते हैं। अगर इस तरह की प्रोन्नति का कोई रूप इतना सस्ता और आम हो जाता है कि हर कोई उसका लाभ उठा सकता है, तो इसे सीधे-सीधे नई आधार-रेखा की तरह देखा जाने लगेगा, जिसको चिकित्सा का नया सोपान लाँघने की कोशिश करेगा।

नतीजतन 2070 तक ग़रीब लोग आज के मुक़ाबले तो बेहतर स्वास्थ्य-सेवाओं का लाभ उठा सकेंगे, लेकिन उनको अमीरों से अलग करने वाली खाई तब भी आज से कहीं ज़्यादा चौड़ी होगी। लोग आमतौर पर अपनी तुलना अपने बदक़िस्मत पूर्वजों की बजाय अपने से ज़्यादा सौभाग्यशाली समकालीनों से करते हैं। अगर आप डेट्रॉयट की झुग्गी बस्ती में रहने वाले किसी ग़रीब अमेरिकी से कहें कि आपकी पहुँच सौ साल पहले के आपके परदादाओं की तुलना में बेहतर स्वास्थ्य-सुविधाओं तक है, तो इसकी सम्भावना बहुत कम है कि इस सूचना से वह ख़ास प्रसन्न होगा। हक़ीक़त यह है कि इस तरह की बातें दम्भपूर्ण और कृपा दिखाने वाली प्रतीत होंगी। 'मैं अपनी तुलना उन्नीसवीं सदी के फैक्ट्री कामगारों या किसानों से क्यों करूँ?' वह मुँहतोड़ जवाब देगा। 'मैं उस तरह जीना चाहता हूँ, जिस तरह टेलिविज़न पर दिखाए जाने वाले अमीर लोग जीते हैं, या कम से कम उन लोगों की तरह, जो सम्पन्न उपनगरों में रहते हैं'। इसी तरह, अगर 2070 में आप निचले वर्ग के लोगों से कहेंगे कि उनको 2017 की तुलना में बेहतर स्वास्थ्य-सुविधाएँ प्राप्त हैं, तो उनके लिए यह बहुत ही झूठी तसल्ली लग सकती है, क्योंकि उस वक़्त वे अपनी तुलना उन प्रोन्नत अतिमानवों से कर रहे होंगे, जिनका दुनिया पर वर्चस्व होगा।

इसके अतिरिक्त, चिकित्सा-विज्ञान की तमाम नवीनतम उपलब्धियों के बावजूद हम इस बारे में निश्चित नहीं हो सकते कि 2070 में ग़रीबों को आज की तुलना में बेहतर स्वास्थ्य-सुविधाएँ मिल रही होंगी, क्योंकि राज्य और अभिजात वर्ग ग़रीबों को स्वास्थ्य-सुविधाएँ उपलब्ध कराने में अपनी दिलचस्पी खो चुके हो सकते हैं। बीसवीं सदी में चिकित्सा-विज्ञान ने जन-समुदाय को इसलिए लाभान्वित किया था, क्योंकि बीसवीं सदी

जन-समुदाय का युग था। बीसवीं सदी की सेनाओं को लाखों तन्दुरुस्त सैनिकों की ज़रूरत थी, और अर्थव्यवस्था को लाखों तन्दुरुस्त कामगारों की ज़रूरत थी। नतीजतन, राज्यों ने हर किसी की तन्दुरुस्ती और ताक़त को सुनिश्चित करने के उद्देश्य से सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाएँ स्थापित की थीं। हमारी महानतम चिकित्सा-वैज्ञानिक उपलब्धियों में सार्वजनिक स्वच्छता सुविधाओं का प्रावधान, सार्वजनिक टीकाकरण अभियान और व्यापक महामारियों का उन्मूलन जैसी चीज़ें शामिल थीं। 1914 में जापान के प्रभुवर्ग द्वारा ग़रीबों का टीकाकरण करने और अस्पतालों के निर्माण तथा मल-निकासी की प्रणालियाँ विकसित करने के पीछे एक निहित स्वार्थ था, क्योंकि अगर वे जापान को शक्तिशाली सेना और सुदृढ़ अर्थव्यवस्था से युक्त एक मज़बूत राष्ट्र बनाना चाहते थे, तो उनको लाखों तन्दुरुस्त सैनिकों और कामगारों की ज़रूरत थी।

लेकिन जन-समूह का युग बीत सकता है, और उसी के साथ सार्वजनिक चिकित्सा का युग भी समाप्त हो सकता है। जैसे ही इंसानी सैनिक और कामगार ऐल्गरिदमों के रास्ते से हट जाएँगे, वैसे ही कम से कम अभिजात वर्ग के कुछ लोग इस नतीजे पर पहुँच सकते हैं कि अनुपयोगी ग़रीबों के विशाल समुदाय को स्वास्थ्य का विकसित या मानक स्तर तक उपलब्ध कराने का कोई अर्थ नहीं है, और ज़्यादा अक़्लमन्दी इसमें है कि मुट्ठीभर अतिमानवों को मानक से परे जाकर प्रोन्नत किया जाए।

आज प्रौद्योगिक दृष्टि से विकसित जापान और दक्षिण कोरिया जैसे देशों में जन्म-दर में पहले से ही गिरावट आने लगी है, जहाँ कम से कम बच्चों - जिनसे ज़्यादा से ज़्यादा की उम्मीद की जाती है - के पालन-पोषण और शिक्षा के लिए विलक्षण उद्यम किए जा रहे हैं। ऐसे में हिन्दुस्तान, ब्राज़ील या नाइजीरिया जैसे विशाल विकासशील देश जापान के साथ मुक़ाबला करने की उम्मीद कैसे कर सकते हैं? ये मुल्क एक लम्बी ट्रेन से मिलते-जुलते हैं। इस ट्रेन की प्रथम श्रेणी में सवार अभिजात वर्ग दुनिया के ज़्यादातर विकसित देशों के समान स्वास्थ्य-सुविधाओं, शिक्षा और आय के स्तर का उपभोग करता है, लेकिन तीसरी श्रेणी के डिब्बों में ठसाठस भरे करोड़ों लोग अभी भी व्यापक बीमारियाँ, अज्ञानता और निर्धनता झेल रहे हैं। हिन्दुस्तानी, ब्राज़ीलियाई या नाइजीरियाई अभिजन आने वाली सदी में क्या करना चाहेंगे? वे करोड़ों ग़रीबों की समस्याओं के समाधान के लिए निवेश करेंगे, या कुछ लाख रईसों को प्रोन्नत करेंगे? उस बीसवीं सदी से भिन्न, जब ग़रीबों की समस्याओं के समाधान में अभिजात वर्ग का एक दाँव लगा हुआ था, क्योंकि वे सैन्य और आर्थिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हुआ करते थे, इक्कीसवीं सदी में सर्वाधिक प्रभावशाली (हालाँकि क्रूर) रणनीति अनुपयोगी तीसरी श्रेणी के डिब्बों को छोड़कर सिर्फ़ प्रथम श्रेणी के डिब्बों को तेज़ी-से आगे ले जाने की हो सकती है। जापान के साथ मुक़ाबला करने के लिए ब्राज़ील

को लाखों तन्दुरुस्त साधारण कामगारों की बजाय मुट्ठी भर प्रोन्नत अतिमानव पर्याप्त हो सकते हैं।

असाधारण शारीरिक, भावनात्मक और बौद्धिक क़ाबिलियतें रखने वाले अतिमानवों के सामने उदारवादी विश्वास किस तरह टिके रह पाएँगे? अगर इस तरह के अतिमानवों के अनुभव साधारण सेपियनों के अनुभवों से बुनियादी तौर पर भिन्न हुए, तब क्या होगा? क्या होगा अगर ये अतिमानव दीन-हीन सेपियनों के अनुभवों के बारे में लिखे गए उपन्यासों से ऊबेंगे, जबकि अतिमानवों के प्रेम-प्रसंगों से सम्बन्धित सोप ऑपेरा साधारण इंसानों की समझ से परे होंगे?

बीसवीं सदी की महान मानवीय परियोजनाओं - अकाल, महामारी और युद्ध पर विजय प्राप्त करना - का उद्देश्य निरपवाद रूप से हर किसी के लिए भरपूर स्वास्थ्य और शान्ति के सार्वभौम मानक को सुरक्षित करना था। इक्कीसवीं सदी की नई परियोजनाएँ - अमरता, परम सुख और दिव्यता हासिल करना - भी समूची मानव जाति का हित करने की उम्मीद रखती हैं। तथापि, चूँकि इन परियोजनाओं का उद्देश्य मानक को सुरक्षित रखने की बजाय उसको पीछे छोड़ देना है, इसलिए उनका नतीजा एक नए अतिमानव वर्ग की सृष्टि के रूप में सामने आ सकता है, जो अपनी उदारवादी जड़ों को त्याग देगा और सामान्य मनुष्यों के साथ उससे बेहतर व्यवहार नहीं करेगा, जितना उन्नीसवीं सदी के यूरोपियनों ने अफ़्रीकियों के साथ किया था।

अगर वैज्ञानिक खोजें और प्रौद्योगिक घटनाक्रम मानव जाति को अनुपयोगी मनुष्यों और प्रोन्नत अतिमानवों के एक छोटे-से अभिजात वर्ग में बाँट देता है, या प्रभुसत्ता पूरी तरह से मनुष्यों से छीनकर अतिशय बुद्धिमान ऐल्गरिदमों के हाथों में सौंप दी जाती है, तब उदारवाद ढह जाएगा। तब वे कौन-से मज़हब या विचारधाराएँ हो सकती हैं, जो इसके परिणामस्वरूप पैदा होने वाले शून्य को भरेंगी और हमारे देवतानुमा वंशजों की विकास-प्रक्रिया का मार्गदर्शन करेंगी?

10
चेतना का महासागर

नए मज़हबों के उभरने की सम्भावना अफ़गानिस्तान की गुफ़ाओं या मध्यपूर्व के मदरसों से नहीं है। इसकी बजाय ये अनुसन्धान प्रयोगशालाओं से उभरेंगे। जिस तरह समाजवाद ने भाप और बिजली की मार्फ़त मुक्ति का आश्वासन देकर दुनिया पर क़ब्ज़ा किया था, उसी तरह आने वाले दशकों में नए प्रौद्योगिक मज़हब ऐल्गरिदमों और जीनों की मार्फ़त मुक्ति का आश्वासन देकर दुनिया को जीत सकते हैं।

उग्रवादी इस्लाम और ईसाई कट्टरपन की तमाम चर्चाओं के बावजूद, मज़हबी परिप्रेक्ष्य में देखें तो, सबसे ज़्यादा दिलचस्प स्थल इस्लामिक स्टेट या बाइबिल बेल्ट (यहाँ लेखक का अभिप्राय सम्भवतः संयुक्त राज्य अमेरिका के उस दक्षिणी क्षेत्र और पश्चिमी कनाडा से है, जहाँ व्यापक तौर पर प्रोटेस्टेंट कट्टरपन्थ का प्रभाव है। - अनुवादक) नहीं है, बल्कि सिलिकॉन वैली है। यह वह जगह है, जहाँ पर उच्च-तकनीकी गुरु हमारे लिए उम्मीदों के वे नए मज़हब पका रहे हैं, जिनका ईश्वर से कोई लेना-देना नहीं है, और सारा सरोकार प्रौद्योगिकी से है। ये मज़हब हमारे लिए मृत्यु के बाद और स्वर्गीय सत्ताओं की मदद से नहीं, बल्कि यहीं इसी धरती पर और प्रौद्योगिकी की मदद से तमाम पुराने वरदानों - सुख, शान्ति, समृद्धि और यहाँ तक कि शाश्वत जीवन - का आश्वासन देते हैं।

इन नए तकनीकी-मज़हबों (टेक्नो-रिलीज़न्स) को दो मुख्य क़िस्मों में बाँटा जा सकता है: आँकड़ा मज़हब (डेटा रिलीजन) का तर्क है कि मनुष्य अपने ब्रह्माण्डीय उद्यम को पूरा कर चुके हैं और अब उनको सारी ज़िम्मेदारी सर्वथा नए क़िस्म की सत्ताओं को सौंप देनी चाहिए। इस आँकड़ा मज़हब के स्वप्नों और दुःस्वप्नों की चर्चा हम अगले अध्याय में करेंगे। यह अध्याय उस तकनीकी-मानववाद (टेक्नो-ह्यूमनिज़्म) के पन्थ पर केन्द्रित है, जो अभी

भी मनुष्यों को सृष्टि के शीर्ष के रूप में देखता है और अनेक पारम्परिक मानववादी मूल्यों को दृढ़ता के साथ थामे हुए है। तकनीकी-मानववाद इस बात को स्वीकार करता है कि जिस रूप में होमो सेपियन्स को हम जानते हैं, उस रूप में वह अपने ऐतिहासिक विकास की सारी मंज़िलें पूरी कर चुका है और अब वह भविष्य में प्रासंगिक नहीं रह जाएगा, लेकिन इससे वह इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि इसीलिए हमें *होमो डेयस* (Homo Deus=मानव देवता) - मनुष्य के एक अधिक उत्कृष्ट रूप - की रचना के लिए प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल करना चाहिए। होमो डेयस में कुछ अनिवार्य मानवीय लक्षण बरक़रार रहेंगे, लेकिन इसी के साथ उसमें कुछ प्रोन्नत शारीरिक और मानसिक क़ाबिलियतें होंगी, जो उसको अत्यन्त परिष्कृत अ-चेतन ऐल्गरिदमों के विपरीत भी बेहतर ढंग से काम करने में सक्षम बनाएँगी। चूँकि बुद्धिमत्ता चेतना से विलग हो रही है, और चूँकि अ-चेतन बुद्धिमत्ता अन्धाधुन्ध रफ़्तार से विकसित हो रही है, इसलिए अगर मनुष्य इस खेल में बने रहना चाहते हैं, तो उनको सक्रिय रूप से अपने मानस को प्रोन्नत करना अनिवार्य है।

सत्तर हज़ार साल पहले संज्ञानात्मक क्रान्ति ने सेपियनों के मानस को रूपान्तरित कर दिया था, और इस तरह महत्त्वहीन अफ़्रीकी वानरों को दुनिया पर हुकूमत करने वालों में बदल दिया था। सहसा एक विशाल अन्तरव्यक्तिनिष्ठ क्षेत्र इन प्रोन्नत सेपियनों के दिमाग़ों की पहुँच में आ गया, जिसने उनको देवताओं और कॉर्पोरेशनों की रचना करने में, नगर और साम्राज्य खड़े करने में, लेखन और पैसे का आविष्कार करने में, और अन्ततः अणु का विखण्डन करने और चन्द्रमा तक पहुँचने में सक्षम बना दिया। जहाँ तक हमारी जानकारी है, पृथ्वी को हिलाकर रख देने वाली यह क्रान्ति सेपियनों के डीएनए में थोड़े-से छोटे-मोटे परिवर्तनों और सेपियनों के मस्तिष्क के एक मामूली-से संशोधन के नतीजे में हुई थी। तकनीकी-मानववाद का कहना है कि अगर ऐसा है, तो मुमकिन है कि हमारे जीन-समूह में थोड़े-से बदलाव और हमारे मस्तिष्कों का एक और संशोधन एक दूसरी संज्ञानात्मक क्रान्ति के आगाज़ के लिए काफ़ी होंगे। प्रथम संज्ञानात्मक क्रान्ति के मानसिक नवीनीकरणों ने अन्तरव्यक्तिनिष्ठ क्षेत्र तक *होमो सेपियन्स* की पहुँच सम्भव बनाई और उनको इस ग्रह के हुक्मरानों में बदल दिया(दूसरी संज्ञानात्मक क्रान्ति अकल्पनीय नए क्षेत्रों तक *होमो डेयस* की पहुँच मुमकिन बना सकती है और उनको आकाशगंगा के स्वामियों में बदल दे सकती है।

यह विचार उस विकासपरक मानववाद के पुराने ख़्वाबों का एक नवीनीकृत रूपान्तर है, जिसने एक सदी पहले ही अतिमानवों की सृष्टि का आह्वान किया था। तथापि, जहाँ हिटलर और उसके जैसों ने चुनिन्दा प्रजनन और नस्लपरक सफ़ायों की मार्फ़त अतिमानवों की रचना करने की योजना बनाई थी, वहीं इक्कीसवीं सदी का तकनीकी-मानववाद,

जनेटिक इंजीनियरिंग, नैनोटेक्नॉलॉजी और मस्तिष्क तथा कम्प्यूटर के बीच आदान-प्रदान की मदद से, उस लक्ष्य तक अधिक शान्तिपूर्ण तरीक़े से पहुँचने की उम्मीद करता है।

मानस का अन्तराल

तकनीकी-मानववाद मनुष्य के दिमाग़ को उन्नत रूप देना चाहता है और अज्ञात अनुभवों तथा चेतना की अपरिचित अवस्थाओं तक हमारी पहुँच को मुमकिन बनाना चाहता है, हालाँकि मानस की पुनर्रचना एक अत्यन्त जटिल और ख़तरनाक उपक्रम है। जैसी कि हमने तीसरे अध्याय में चर्चा की थी, हम मानस को वास्तव में समझते नहीं हैं। हम नहीं जानते कि मानस प्रकट कैसे होते हैं, न ही यह जानते हैं कि उनका काम क्या है। हम प्रयोगों की मार्फ़त मानसिक अवस्थाओं को गढ़ना सीख रहे हैं, लेकिन इस तरह की जोड़-तोड़ के सम्पूर्ण निहितार्थों को हम शायद ही समझते हैं। इससे भी बदतर बात यह है कि चूँकि हम मानसिक अवस्थाओं के सम्पूर्ण विस्तार से अपरिचित हैं, इसलिए हम अपने लिए कौन-से मानसिक लक्ष्य तय करें, यह हम नहीं जानते।

हम उस छोटे-से अलग-थलग पड़े द्वीप के बाशिन्दों की तरह हैं, जिन्होंने अभी-अभी पहली नौका का आविष्कार किया है, और जो बिना किसी नक़्शे के, यहाँ तक कि बिना किसी गन्तव्य के, यात्रा पर निकलने वाले हैं। वाक़ई हम इससे भी बदतर हालत में हैं। हमारे इस कल्पित द्वीप के बाशिन्दे तो कम से कम इस बात के प्रति सजग हैं कि वे एक विशाल और रहस्यमय समुद्र में एक छोटी-सी जगह घेरे हुए हैं। दूसरी तरफ़ हम इस बात को समझ पाने में नाकामयाब हैं कि हम सम्भवतः अनजान मानसिक अवस्थाओं के एक असीम महासागर के भीतर चेतना के एक छोटे-से द्वीप पर रह रहे हैं।

जिस तरह प्रकाश और ध्वनि का विस्तार उससे कहीं बहुत ज़्यादा है, जितने को हम मनुष्य देख पाते हैं, उसी तरह मानसिक अवस्थाओं का विस्तार उससे कहीं बहुत ज़्यादा है, जितने को एक औसत मनुष्य अनुभव कर पाता है। हम प्रकाश को सिर्फ़ 400 और 700 के बीच की वेवलेंग्थ में ही देख पाते हैं। मनुष्य की दृष्टि के इस छोटे-से राज्य के ऊपर इन्फ़्रारेड, माइक्रोवेव्स और रेडियो तरंगों का अदृश्य, किन्तु विपुल विस्तार है, और उसके नीचे पराबैंगनी, एक्स-किरणों और गामा किरणों के अँधेरे क्षेत्रों का विपुल विस्तार है। इसी तरह, सम्भावित मानसिक अवस्थाओं का विस्तार अन्तहीन हो सकता है, लेकिन विज्ञान ने उसके सिर्फ़ दो बहुत छोटे-से हिस्सों - उप-मानकीय (सब-नॉर्मेटिव) और पश्चिमी-शिक्षित-औद्योगिक- अमीर-लोकतान्त्रिक - का अध्ययन किया है।

एक सदी से ज़्यादा समय से मनोवैज्ञानिक और जीवविज्ञानी उन लोगों पर विस्तृत अनुसन्धान करते रहे हैं, जो स्वलीनता (ऑटिज़्म) से लेकर खण्डितमनस्कता (सिज़ोफ़्रेनिया) जैसे विभिन्न मनोविकारों और मानसिक बीमारियों से पीड़ित हैं। नतीजतन,

आज हमारे पास उप-मानकीय मानसिक वर्णपट - यानी, मानवीय अस्तित्व को महसूस करने, सोचने और सम्प्रेषित करने की सामान्य से कम क्षमताओं वाला रूप - का एक विस्तृत हालाँकि, अपूर्ण नक़्शा मौजूद है। इसी के साथ-साथ वैज्ञानिकों ने उन लोगों की मानसिक अवस्थाओं के भी अध्ययन किए हैं, जिनको स्वस्थ और मानक समझा जाता है, हालाँकि मनुष्य के दिमाग़ और मानवीय अनुभव के ज़्यादातर अनुसन्धान पश्चिमी, शिक्षित, औद्योगीकृत, अमीर और लोकतान्त्रिक समाजों के लोगों पर किए गए हैं, जो मनुष्यता का प्रतिनिधि नमूना नहीं हैं। मनुष्य के दिमाग़ के अब तक के अध्ययन मानकर चलते रहे हैं कि *होमो सेपियन्स* होमर सिम्पसन (अमेरिकी ऐनीमेटेड कॉमेडी द सिम्पसन का मुख्य चरित्र - अनुवादक) है।

2010 में किए गए एक अनूठे और क्रान्तिकारी अध्ययन के तहत जोसेफ़ हेनरिक, स्टीवन जे. हीनी और आरा नोरेनज़ायन ने 2003 और 2007 के मध्य प्रकाशित मनोविज्ञान के छह विभिन्न उपक्षेत्रों से सम्बन्धित अग्रणी पत्रिकाओं का व्यवस्थित सर्वेक्षण किया था। उन्होंने पाया कि हालाँकि उनमें प्रकाशित लेख मनुष्य के दिमाग़ के बारे में बड़े-बड़े दावे करते थे, लेकिन उनमें से ज़्यादातर के निष्कर्ष पूरी तरह से पश्चिमी-शिक्षित-औद्योगिक-अमीर-लोकतान्त्रिक नमूनों पर आधारित थे। उदाहरण के लिए तर्कसंगत ढंग से सामाजिक मनोविज्ञान की सबसे महत्त्वपूर्ण पत्रिका *जर्नल ऑफ़ पर्सनेलिटी एंड सोशल साइकोलॉजी* में जिन लोगों के नमूने लिए गए थे, उनमें से 96 प्रतिशत पश्चिमी-शिक्षित-औद्योगिक-अमीर-लोकतान्त्रिक थे, और 68 प्रतिशत अमेरिकी थे। इसके अतिरिक्त 67 प्रतिशत अमेरिकी व्यक्ति और 80 प्रतिशत ग़ैर-अमेरिकी व्यक्ति मनोविज्ञान के छात्र थे! दूसरे शब्दों में, इस प्रतिष्ठित पत्रिका में प्रकाशित लेखों में लिए गए दो-तिहाई व्यक्तियों के नमूने पश्चिमी विश्वविद्यालयों के मनोविज्ञान के छात्रों के थे। हेनरिक, हीनी और नोरेनज़ायन ने किंचित मज़ाक़ के भाव से इशारा किया था कि इस पत्रिका को अपना नाम बदलकर *जर्नल ऑफ़ पर्सनालिटी एंड सोशल साइकोलॉजी ऑफ़ अमेरिकन साइकोलॉजी स्टुडेंट्स* कर लेना चाहिए।

← बढ़ती हुई फ्रिक्वेंसी (ν)

10^{24} 10^{22} 10^{20} 10^{18} 10^{16} 10^{14} 10^{12} 10^{10} 10^{8} 10^{6} 10^{4} 10^{2} 10^{0} ν (Hz)

Y rays | X rays | UV | IR | Microwave | FM | AM | Long radio waves

Radio waves

10^{-16} 10^{-14} 10^{-12} 10^{-10} 10^{-8} 10^{-6} 10^{-4} 10^{-2} 10^{0} 10^{2} 10^{4} 10^{6} 10^{8} λ (m)

बढ़ती हुई वेवलेंग्थ (λ) →

400 500 600 700

बढ़ती हुई वेवलेंग्थ (λ) छड में
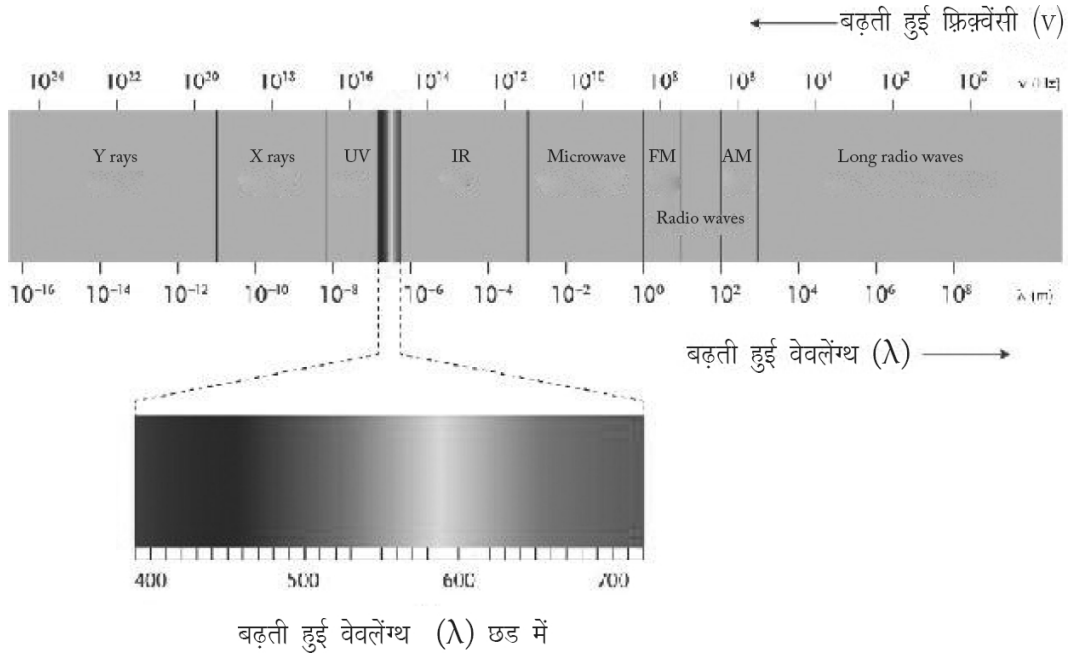
46. मनुष्य विद्युतचुम्बकीय विस्तार का मात्र एक बहुत सूक्ष्म हिस्सा ही देख सकते हैं। अपने समूचेपन में यह विस्तार दिखाई देने वाले प्रकाश की तुलना में 100 खरब गुना बड़ा है। क्या मानसिक वर्णपट भी इतना ही विस्तृत हो सकता है?

ज़्यादातर अध्ययनों में मनोविज्ञान के छात्र इसलिए मुख्य भूमिका निभाते हैं क्योंकि उनके प्रोफ़ेसर उनको प्रयोगों में हिस्सा लेने को बाध्य करते हैं। अगर मैं हार्वर्ड में मनोविज्ञान का प्रोफ़ेसर हूँ, तो मेरे लिए यह ज़्यादा आसान है कि मैं अपराध में डूबी बोस्टन की झुग्गियों के बाशिन्दों की बजाय अपने ही छात्रों पर प्रयोग करूँ - इसके लिए नामीबिया की यात्रा करना या कालाहारी रेगिस्तान जाकर शिकारी-संग्रहकर्ताओं की सूची तैयार करना तो बहुत दूर की बात है। भले ही इस बात की बहुत सम्भावना है कि बोस्टन के झुग्गीवासी और कालाहारी के शिकारी-संग्रहकर्ता ऐसी मानसिक अवस्थाओं को अनुभव करते हो सकते हैं, जिनको हम हार्वर्ड के मनोविज्ञान के छात्रों से लम्बी प्रश्नावली के जवाब उगलवाकर या एफ.एम.आर.आई. स्कैनरों में उनके सिर घुसाकर कभी नहीं जान पाएँगे।

अगर हम समूचे भूमण्डल की यात्रा कर एक-एक समुदाय का अध्ययन करें, तो भी हम सेपियनों के मानसिक विस्तार के एक सीमित हिस्से को ही समझ पाएँगे। आज सारे मनुष्य आधुनिकता के सम्पर्क में आ चुके हैं, और एक एकल विश्व ग्राम के सदस्य बन गए हैं, हालाँकि कालाहारी के भोजन-खोजी हार्वर्ड के मनोविज्ञान के छात्रों से कम आधुनिक हैं, लेकिन वे अब हमारे सुदूर अतीत के टाइम कैप्सूल नहीं हैं। उन पर भी ईसाई प्रचारकों, यूरोपीय व्यापारियों, अमीर इको-टूरिस्टों और जिज्ञासु अध्येताओं का प्रभाव पड़ चुका है

(चुटकुला है कि कालाहारी रेगिस्तान में शिकारी-संग्रहकर्ताओं के एक क़बीले में बीस शिकारी, बीस संग्रहकर्ता और पचास मानवविज्ञानी शामिल होते हैं)।

विश्व ग्राम के आविर्भाव के पहले यह ग्रह उन अलग-थलग पड़ी मानवीय संस्कृतियों का जमावड़ा हुआ करता था, जिन्होंने हो सकता है कि उन मानसिक अवस्थाओं को पोशित किया हो, जो अब लुप्त हो चुकी हों। विभिन्न सामाजिक-आर्थिक वास्तविकताओं और रोज़मर्रा दिनचर्या ने चेतना की विभिन्न अवस्थाओं को विकसित किया था। मैमथ का शिकार करने वाले पाषाण युग के शिकारियों, नवपाषाणयुगीन किसानों या कामकुरा योद्धाओं के मानस की थाह कौन ले सकता है? इसके अतिरिक्त, पूर्व-आधुनिक युग की बहुत-सी संस्कृतियाँ चेतना की उन उच्चतम अवस्थाओं में विश्वास करती थीं जिन तक लोग ध्यान, मादक पदार्थों या अनुष्ठानों की मार्फ़त अपनी पहुँच क़ायम कर सकते थे। ओझाओं, भिक्षुओं और संन्यासियों ने मानस के रहस्यमय इलाक़ों की व्यवस्थित ढंग से छानबीन की थी, और वे वहाँ से विस्मयकारी कहानियाँ लेकर लौटे थे। उन्होंने परम प्रशान्ति, चरम कुशाग्रता और अतुलनीय संवेदनशीलता की अज्ञात अवस्थाओं का बयान किया था। उन्होंने अनन्त तक मानस के विस्तार या शून्य में उसके विलय के क़िस्से बयान किए थे।

मानववादी क्रान्ति की वजह से आधुनिक पाश्चात्य संस्कृति ने इन उच्चतम मानसिक अवस्थाओं पर से अपने विश्वास और दिलचस्पी को खो दिया, और औसत मनुष्य के साधारण-नीरस अनुभवों का महिमामण्डन किया। इसीलिए आधुनिक पाश्चात्य संस्कृति की यह एक अनूठी विशेषता है कि उसमें असाधारण मानसिक अवस्थाओं को अनुभव करने की कोशिश करने वाले विशेषज्ञ वर्ग का अभाव है। उसका मानना है कि इस तरह की कोशिश करने वाला कोई भी व्यक्ति या तो मादक पदार्थों की लत का शिकार होता है या मानसिक रोगी होता है या नीम-हकीम होता है। नतीजतन, हालाँकि हमारे पास हार्वर्ड के मनोविज्ञान के छात्रों के मानसिक भूदृश्य का एक विस्तृत नक़्शा मौजूद है, तब भी हम मूल अमेरिकी ओझाओं, बौद्ध भिक्षुओं या सूफ़ी रहस्यवादियों के मानसिक भूदृश्यों के बारे में बहुत कम जानते हैं।

और यह तो महज़ सेपियनों के दिमाग़ की बात है। पचास हज़ार साल पहले हम इस ग्रह पर अपने निएंडरथल चचेरों के साथ रहा करते थे। उन्होंने अन्तरिक्ष यानों का प्रक्षेपण नहीं किया था, पिरामिड या साम्राज्य खड़े नहीं किए थे। उनकी मानसिक क़ाबिलियतें ज़ाहिर तौर पर बहुत अलग तरह की थीं और हमारी बहुत सारी प्रतिभाओं का उनमें अभाव था। तब भी उनके मस्तिष्क हम सेपियनों के मुक़ाबले बड़े थे। वे उन तमाम न्यूरॉनों का ठीक-ठीक क्या उपयोग करते थे? हमें इसकी क़तई कोई जानकारी नहीं है, लेकिन पूरी

सम्भावना है कि उनमें ऐसी बहुत-सी मानसिक अवस्थाएँ रही हों, जिनको किसी सेपियन ने कभी अनुभव न किया हो।

लेकिन अगर हम अब तक अस्तित्व में रही सारी मानव प्रजातियों को भी ध्यान में रखें, तो भी हम मानसिक क्षितिज के विस्तार की पूरी समझ के क़रीब नहीं पहुँच पाएँगे। दूसरे प्राणियों ने सम्भवत: ऐसा कुछ अनुभव किया हो, जिसकी कल्पना भी हम मनुष्य न कर सकते हों। उदाहरण के लिए, चमगादड़ दुनिया को प्रतिध्वनि-निर्धारण (इको-लोकेशन) की मार्फ़त अनुभव करते हैं। वे उच्च फ़्रिक्वेंसी की चीं-चीं का बहुत छिप्र प्रवाह छोड़ते हैं, जो इंसान की श्रवण-शक्ति के दायरे से सर्वथा परे होता है। इसके बाद वे दुनिया की तसवीर गढ़ने के लिए वापस लौटती प्रतिध्वनियों को पकड़ते और उनकी व्याख्या करते हैं। यह तसवीर इतनी विशद और सटीक होती है कि चमगादड़ पेड़ों और इमारतों के बीच से फुर्ती के साथ उड़ सकते हैं, पतंगों और मच्छरों का पीछा कर सकते हैं, और इस पूरे दौरान उल्लुओं तथा दूसरे हिंसक प्राणियों से बचकर निकल सकते हैं।

चमगादड़ प्रतिध्वनियों की दुनिया में रहते हैं। जिस तरह मनुष्यों की दुनिया में हर वस्तु का ख़ास आकार और रंग होता है, उसी तरह चमगादड़ों की दुनिया में हर वस्तु की एक प्रतिध्वनिपरक बनावट होती है। चमगादड़ पतंगों के नाज़ुक पंखों से टकराकर लौटती प्रतिध्वनियों के माध्यम से स्वादिष्ट पतंगों की प्रजाति और ज़हरीले पतंगों की प्रजाति के बीच, फ़र्क़ कर सकता है। पतंगों की कुछ खाद्य प्रजातियाँ अपनी प्रतिध्वनिपरक बनावट को ज़हरीली प्रजातियों की प्रतिध्वनिपरक बनावट की तरह विकसित कर अपना बचाव करने की कोशिश करती हैं। कुछ दूसरी प्रजातियों के पतंगों ने चमगादड़ के राडार की ध्वनि-तरंगों को दूसरी दिशा में मोड़ देने की इससे भी ज़्यादा कमाल की क़ाबिलियत विकसित कर ली है, ताकि वे चालबाज़ बम-वर्षकों की तरह अपनी मौजूदगी से चमगादड़ को अनजान रखते हुए उड़ते रह सकें। प्रतिध्वनि-निर्धारण की दुनिया ध्वनि और प्रकाश की हमारी परिचित दुनिया की तरह जटिल और प्रचण्ड है, लेकिन हम इसके प्रति पूरी तरह अनजान हैं।

मानस के दर्शन के बारे में लिखे गए एक सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण लेख का शीर्षक है 'ह्वाट इज़ इट लाइक टु बी अ बैट'। 1974 में लिखे गए इस लेख में दार्शनिक थॉमस नागेल इस ओर संकेत करते हैं कि सेपियनों का दिमाग़ किसी चमगादड़ की व्यक्तिनिष्ठ दुनिया की थाह नहीं ले सकता। हम चमगादड़ के शरीर, चमगादड़ की प्रतिध्वनि-निर्धारण प्रणाली और चमगादड़ के न्यूरॉनों के बारे में मनचाहे ऐल्गरिदमों का लेखन कर सकते हैं, लेकिन इससे यह पता नहीं चलेगा कि चमगादड़ होने की अनुभूति कैसी होती है। किसी पंख फड़फड़ाते पतंगे का प्रतिध्वनि के माध्यम से पता लगाने में कैसा महसूस होता है? क्या

यह उसको देखने से मिलती-जुलती अनुभूति है, या कोई नितान्त भिन्न ही तरह की चीज़ है?

किसी सेपियन के सामने प्रतिध्वनि के माध्यम से किसी तितली का पता लगाने की अनुभूति की व्याख्या करने की कोशिश सम्भवतः उतनी ही अर्थहीन है जितनी किसी अन्धे के सामने केरावाजियो के किसी चित्र को देखने की अनुभूति की व्याख्या करने की कोशिश होगी। सम्भव है कि चमगादड़ की भावनाएँ भी प्रतिध्वनि-निर्धारण की उनकी इन्द्रिय की केन्द्रीयता से गहरे प्रभावित हों। सेपियनों के लिए प्रेम लाल होता है, ईर्ष्या हरी होती है और अवसाद नीला होता है। कौन जानता है कि प्रतिध्वनि-निर्धारण एक मादा चमगादड़ की सन्तान के प्रति उसके प्रेम को, या एक नर चमगादड़ के प्रतिद्वन्द्वी के प्रति उसकी अनुभूतियों को कौन-सा रंग देता है?

बेशक, चमगादड़ विशेष प्राणी नहीं हैं। ऐसे असंख्य उदाहरण हो सकते हैं। जिस तरह सेपियन यह नहीं समझ सकते कि चमगादड़ होने का अनुभव कैसा होता है, उसी तरह की कठिनाई हमें यह समझने में होती है कि ह्वेल, शेर या पेलिकन होने का अनुभव कैसा होता है। निश्चय ही उसका रूप कुछ तो होता ही होगा, लेकिन हम नहीं जानते कि वह कैसा होता है। ह्वेल और मनुष्य, दोनों में मस्तिष्क के लिम्बिक सिस्टम नामक हिस्से में भावनाएँ होती हैं, लेकिन ह्वेल के लिम्बिक सिस्टम में वह समूचा अतिरिक्त हिस्सा शामिल होता है, जिसका मानवीय संरचना में अभाव है। हो सकता है वह हिस्सा ह्वेलों को उन अत्यन्त गहन और जटिल भावनाओं को अनुभव करने में सक्षम बनाता हो, जो हमारे लिए अनजानी हैं। हो सकता है ह्वेलों को ऐसे विस्मयकारी सांगीतिक अनुभव होते हों, जिनको बाख़ और मोत्सार्ट तक न पकड़ सके हों। ह्वेल एक-दूसरे की आवाज़ को सैकड़ों मील दूर से सुन सकती हैं, हर ह्वेल के पास विशिष्ट 'गीतों' का ऐसा संग्रह होता है, जो घण्टों जारी रह सकता है और जो पेचीदा ढाँचों का अनुसरण करता है। कभी-कभी ह्वेल एक ऐसा नया कामयाब (हिट) गीत रचती है, जिसको समूचे महासागर की दूसरी ह्वेलें अपना लेती हैं। वैज्ञानिक नियमित रूप से इन कामयाब गीतों को रिकॉर्ड करते हैं और कम्प्यूटरों की मदद से उनका विश्लेषण करते हैं, लेकिन क्या कोई मनुष्य इन सांगीतिक अनुभवों की थाह ले सकता है और एक ह्वेल बीथोवेन और एक ह्वेल जस्टिन वीबर के बीच के अन्तर को बता सकता है?
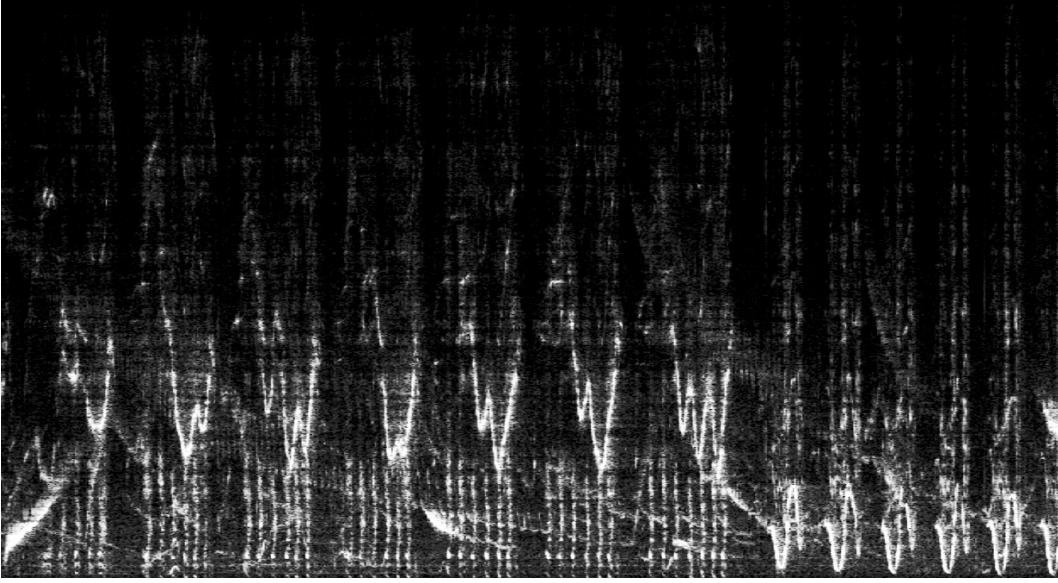
47. बॉहेड ह्वेल के गीत का स्पेक्ट्रोग्राम। ह्वेल ने इस गीत का अनुभव कैसे किया? *वोयेजर* रिकॉर्ड में बीथोवेन, बाख़ और चक बैरी के अतिरिक्त ह्वेल का एक गीत भी शामिल था। हम केवल उम्मीद कर सकते हैं कि यह अच्छा ही है।

इनमें से किसी भी चीज़ से हमें आश्चर्य नहीं होना चाहिए। सेपियन दुनिया पर हुकूमत इसलिए नहीं करते, क्योंकि दूसरे प्राणियों के मुक़ाबले उनकी भावनाओं में ज़्यादा गहराई है या उनके सांगीतिक अनुभव इन प्राणियों के सांगीतिक अनुभवों से ज़्यादा पेचीदा हैं। इसलिए हम ह्वेलों, चमगादड़ों, शेरों और पेलिकनों के मुक़ाबले कम से कम भावनात्मक और अनुभवपरक क्षेत्रों में कमतर हो सकते हैं।

मनुष्यों, चमगादड़ों, ह्वेलों और अन्य तमाम प्राणियों के मानसिक वर्णपट के परे, उससे भी ज़्यादा विशाल और अज्ञात महाद्वीप प्रतीक्षा कर रहे हो सकते हैं। पूरी सम्भावना है कि मानसिक अवस्थाओं की ऐसी अनन्त विविधता मौजूद हो, जिसको किसी सेपियन, चमगादड़ या डायनासॉर ने इस लोक की विकास-प्रक्रिया के 4 अरब वर्षों के दौरान इसलिए कभी अनुभव न किया हो, क्योंकि उनके पास इसके लिए अनिवार्य क्षमताएँ नहीं थीं, हालाँकि भविष्य में शक्तिशाली दवाएँ, जनेटिक इंजीनियरी, इलेक्ट्रॉनिक हेल्मट और मस्तिष्क तथा कम्प्यूटर के बीच सीधी अन्तर्क्रियाएँ इस स्थलों की ओर जाने वाली राहों को खोल सकती हैं। जिस तरह कोलम्बस और मैगेलॉन नए द्वीपों और अज्ञात महाद्वीपों की तलाश में क्षितिज के पार की यात्राओं पर निकल पड़े थे, उसी तरह एक दिन हम भी मानस की विपरीत दिशाओं की यात्रा पर निकल सकते हैं।
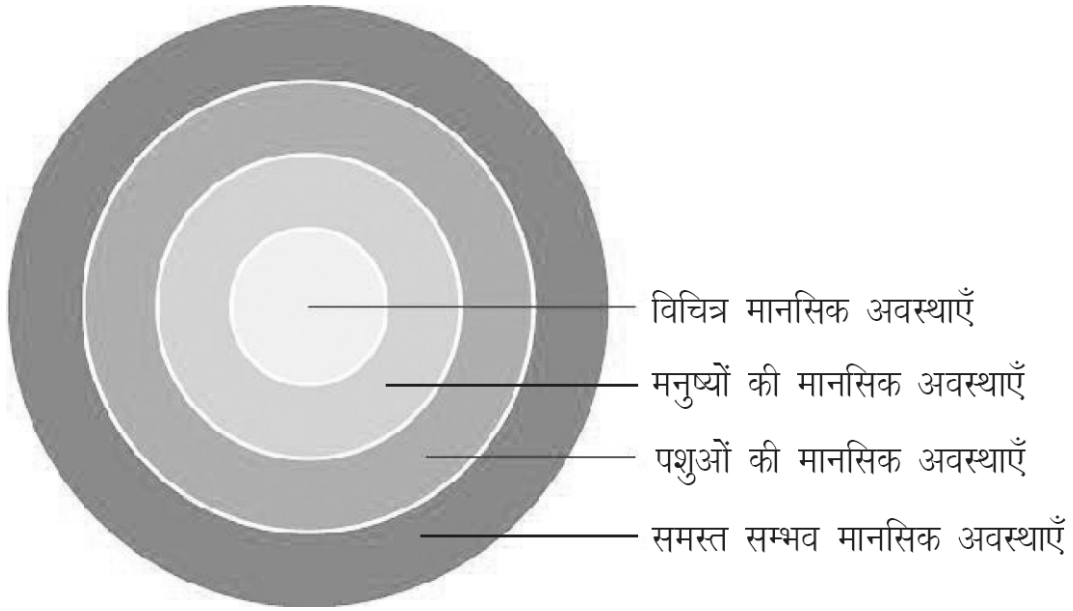
48. चेतना का वर्णपट

मुझे भय की गन्ध आ रही है

जब तक डॉक्टर, इंजीनियर और ग्राहक मानसिक रोगों को ठीक करने पर ध्यान केन्द्रित करते रहे और पाश्चात्य-शिक्षित-औद्योगीकृत-अमीर-लोकतान्त्रिक समाजों के जीवन का आनन्द लेते रहे, तब तक सामान्य से इतर मानसिक अवस्थाओं तथा पाश्चात्य-शिक्षित-औद्योगीकृत-अमीर-लोकतान्त्रिक दिमाग़ों का अध्ययन सम्भवतः हमारी ज़रूरतों के हिसाब से पर्याप्त था, हालाँकि, मानकपरक मनोविज्ञान पर अक्सर मानक-स्तर से किसी भी तरह के विचलन को ग़लत ढंग से बरतने का आरोप लगाया जाता रहा है, तब भी पिछली सदी में इसने लाखों लोगों की ज़िन्दगियों और मानसिक सन्तुलन की रक्षा करते हुए असंख्य लोगों को राहत पहुँचाई है।

लेकिन, तीसरी सहस्राब्दी की शुरुआत पर, जब उदार मानववाद तकनीकी-मानववाद को राह दे रहा है, और चिकित्सा-विज्ञान का ध्यान उत्तरोत्तर बीमारों का इलाज करने की बजाय स्वस्थ लोगों को प्रोन्नत करने पर केन्द्रित होता जा रहा है, हम एक पूरी तरह से भिन्न चुनौती का सामना कर रहे हैं। अब डॉक्टर, इंजीनियर और ग्राहक महज़ दिमाग़ी समस्याओं को नहीं सुलझाना चाहते - वे अब दिमाग़ को प्रोन्नत रूप देना चाहते हैं। हम चेतना की नई अवस्थाओं को गढ़ने की शुरुआत करने के लिए तकनीकी क़ाबिलियतें हासिल कर रहे हैं, हालाँकि हमारे पास इन सम्भावित रूप से नए इलाक़ों का कोई नक़्शा नहीं है। चूँकि हम मुख्यतः पाश्चात्य-शिक्षित-औद्योगीकृत-अमीर-लोकतान्त्रिक लोगों के

सामान्येतर मानसिक वर्णपट से ही परिचित हैं, इसलिए हमें यह तक नहीं मालूम है कि किन गन्तव्यों की ओर बढ़ा जाए।

इसलिए यह आश्चर्य की बात नहीं कि सकारात्मक मनोविज्ञान (पॉज़िटिव साइकोलॉजी) इस ज्ञानानुशासन का आधुनिकतम उपक्षेत्र बन गया है। 1990 के दशक के मार्टिन सेलिग्मान, एड डीनर और मीहाली चिकसेंटमीहाई जैसे अग्रणी विशेषज्ञों का तर्क था कि मनोविज्ञान को मानसिक बीमारियों का ही नहीं, बल्कि मानसिक क्षमताओं का अध्ययन भी करना चाहिए। ऐसा क्यों है कि हमारे पास बीमार दिमाग़ का तो आश्चर्यजनक ढंग से विस्तृत मानचित्र मौजूद है, लेकिन एक समृद्ध दिमाग़ का कोई वैज्ञानिक नक़्शा नहीं है? पिछले दो दशकों के दौरान सकारात्मक मनोविज्ञान ने मानक स्तर से ऊपर (सुपर-नार्मेटिव) मानसिक अवस्थाओं के अध्ययन की दिशा में पहले महत्त्वपूर्ण क़दम उठाए हैं, लेकिन अभी 2016 तक मानक स्तर से ऊपर के ये इलाक़े विज्ञान के लिए अज्ञात क्षेत्र ही बने हुए हैं।

इस तरह की परिस्थितियों में हम बिना किसी नक़्शे के आगे की ओर भाग सकते हैं, और उन मानसिक क्षमताओं को प्रोन्नत रूप देने पर ध्यान केन्द्रित कर सकते हैं, जिनकी ज़रूरत इस समय की आर्थिक और राजनैतिक व्यवस्थाओं को है, और इस बीच दूसरी मानसिक क्षमताओं की उपेक्षा करते रह सकते हैं या उनको अवनत रूप देते रह सकते हैं। बेशक, यह कोई नई चीज़ नहीं है। व्यवस्था हज़ारों साल से अपनी ज़रूरतों के मुताबिक़ हमारे दिमाग़ों को आकार देने और बदलने में लगी रही है। सेपियन मूलतः छोट-छोटे अन्तरंग समुदायों के सदस्यों के रूप में विकसित हुए थे, और उनकी मानसिक योग्यताएँ एक विशाल यन्त्र के पहिए के दाँतों की तरह जीवन जीने के लिए नहीं ढली थीं, लेकिन नगरों, राज्यों और साम्राज्यों के उदय के साथ व्यवस्था ने उन क्षमताओं को उपजाया, जो बड़े पैमाने के आपसी सहयोग के लिए आवश्यक थीं, वहीं दूसरी दक्षताओं और अभिरुचियों की अवहेलना की।

उदाहरण के लिए, आदिम मनुष्य सम्भवतः अपनी सूँघने की इन्द्रिय का व्यापक इस्तेमाल किया करते थे। शिकारी-संग्रहकर्ता लम्बी दूरी से प्राणियों की विभिन्न प्रजातियों, विभिन्न मनुष्यों और विभिन्न भावनाओं के बीच के भेद को सूँघ लेते हैं। उदाहरण के लिए, भय की गन्ध साहस की गन्ध से भिन्न होती है। अगर आप किसी ऐसे आदिम क़बीले के साथ बैठे हों, जो इस बात पर बहस कर रहा हो कि उसको अपने पड़ोसी क़बीले के साथ युद्ध शुरू करना चाहिए या नहीं, तो आप शब्दश: जनमत को सूँघ सकते हैं।

जब सेपियनों ने अपने को बड़े समूहों के रूप में संगठित कर लिया, तो नाकों ने अपना ज़्यादातर सामाजिक महत्त्व खो दिया, क्योंकि वे तभी उपयोगी होती हैं जब उनको व्यक्तियों की छोटी संख्या के साथ बरता जा रहा होता है। उदाहरण के लिए आप चीन के

प्रति अमेरिका के भय को नहीं सूँघ सकते। नतीजतन, मनुष्य की सूँघने की शक्तियाँ उपेक्षित हो गईं। दसियों हज़ार साल पहले मस्तिष्क के जो हिस्से सम्भवतः गन्ध से बरता करते थे, उनको पढ़ने, गणित के सवाल हल करने और अमूर्त तर्क करने जैसे ज़्यादा अनिवार्य उद्यमों में लगा दिया गया। व्यवस्था इस बात को प्राथमिकता देती है कि हमारे न्यूरॉन पड़ोसियों को सूँघने बजाय विभेदक समीकरणों (डिफ़रेंशियल इक़्वेशन्स) को हल करें।

यही हमारी दूसरी इन्द्रियों और अपनी अनुभूतियों पर ध्यान देने की अन्तर्निहित योग्यताओं के साथ हुआ। प्राचीन भोजन खोजी हमेशा सावधान और चौकन्ने रहा करते थे। मशरूमों की तलाश मे जंगल में भटकते हुए वे सावधानी के साथ हवा को सूँघते थे और पूरी तल्लीनता के साथ ज़मीन पर नज़र गढ़ाए रखते थे। जब उनको मशरूम मिल जाता था, तो वे उसको पूरी सावधानी बरतते हुए खाते थे, उसकी गन्ध की उस छोटी-से-छोटी बारीक़ी के प्रति सजग रहते हुए जो खाद्य मशरूम और उसके ज़हरीले चचेरे भाई के फ़र्क़ को बता सकती थी। आज के समृद्ध समाजों के लोगों को इस तरह के चौकन्नेपन की ज़रूरत नहीं होती। हम सुपरमार्केट में जाकर उन हज़ारों अलग-अलग व्यंजनों में से कोई भी व्यंजन चुनकर ख़रीद सकते हैं, जिनमें से सबका निरीक्षण स्वास्थ्य अधिकारियों द्वारा किया गया होता है, लेकिन हम कोई भी व्यंजन - इताल्वी पिज़्ज़ा या थाई नूडल्स - चुनें, पूरी सम्भावना इसी बात की होती है कि हम उसके स्वाद पर कोई ख़ास ध्यान दिए बग़ैर टीवी के सामने बैठकर उसको खा लेंगे (यही वजह है कि खाद्य पदार्थ तैयार करने वाले निरन्तर ऐसे उत्तेजक नए स्वाद ईजाद कर रहे हैं जो किसी तरह हमारी उदासीनता के परदे को भेद सकें)। इसी तरह, अच्छी परिवहन सेवाओं की बदौलत हम शहर के दूसरे छोर पर रहने वाले अपने दोस्त से आसानी-से मिल सकते हैं, लेकिन जब हम साथ होते हैं तो हम अपने इस दोस्त के प्रति एकाग्र ध्यान शायद ही दे पाते हैं क्योंकि उस दौरान हम निरन्तर अपने स्मार्टफ़ोन और अपने फ़ेसबुक अकाउंट पर नज़र रखते रहते हैं, क्योंकि हमें यक़ीन होता है कि अन्यत्र कहीं पर कुछ ज़्यादा दिलचस्प घटित हो रहा हो सकता है। आधुनिक मनुष्यता FOMO - फ़ियर ऑफ़ मिसिंग आउट (चूक जाने के भय) से पीड़ित है - और हालाँकि हमारे पास पहले के किसी भी समय के मुक़ाबले ज़्यादा विकल्प उपलब्ध हैं, हम जो भी कुछ चुनते हैं, उसके प्रति वास्तव में ध्यान की क़ाबिलियत खो चुके हैं।

सूँघने और ध्यान देने के अलावा हम ख़्वाब देखने की क़ाबिलियत भी खोते जा रहे हैं। बहुत-सी संस्कृतियों का विश्वास हुआ करता था कि लोग अपने ख़्वाबों में जो कुछ देखते और करते हैं, वह उससे किसी भी तरह कम महत्त्वपूर्ण नहीं होता जो हम जागते हुए देखते और करते हैं। इसीलिए लोगों ने सपना देखने, सपनों को याद रखने और सपने की दुनिया के अपने कृत्यों को नियन्त्रित करने (जिसे सुबोध स्वप्न-दर्शन - ल्यूसिड ड्रीमिंग - के नाम से

जाना जाता है) की अपनी क्षमताओं को सक्रिय रूप से विकसित किया था। सुबोध स्वप्न-दर्शन में दक्षता रखने वाले लोग स्वप्न की दुनिया में अपनी इच्छा से गतिशील हो सकते थे, और उनका दावा था कि वे अस्तित्व के उच्चतर स्तरों पर यात्रा कर सकते थे या दूसरी दुनियाओं के आगन्तुकों से मुलाक़ात कर सकते थे। इसके विपरीत, आधुनिक दुनिया स्वप्नों को श्रेष्ठतम रूप में अवचेतन सन्देश मानकर, और बदतर रूप में दिमाग़ी कचरा मानकर ख़ारिज़ कर देती है। नतीजतन, स्वप्न हमारी ज़िन्दगियों में बहुत छोटी-मोटी भूमिकाएँ अदा करते हैं, बहुत थोड़े-से लोग स्वप्न देखने की अपनी दक्षताओं को विकसित करते हैं, और बहुत-से लोग दावा करते हैं कि वे स्वप्न देखते ही नहीं हैं, या वे अपने किसी सपने को याद नहीं रख पाते।

सूँघने, ध्यान देने और सपना देखने की हमारी क्षमता में आई गिरावट क्या हमारे जीवन को कुछ ज़्यादा दरिद्र और निराशापूर्ण बनाती है? हो सकता है, लेकिन अगर उसने ऐसा किया भी हो, तो आर्थिक और राजनैतिक व्यवस्था के लिए यह वांछित ही था। आपका बॉस आपसे यही उम्मीद करता है कि आप फूलों को सूँघने या परियों के बारे में सपने देखने की बजाय लगातार अपने ईमेल देखते रहें। इन्हीं वजहों से इस बात की सम्भावना है कि मनुष्य के दिमाग़ का भविष्य का प्रोन्नत रूप राजनैतिक ज़रूरतों और बाज़ार की शक्तियों को प्रतिबिम्बित करेगा।

उदाहरण के लिए, संयुक्त राज्य अमेरिका की सेना के 'अटेंशन हेल्मट' का उद्देश्य स्पष्ट उद्यमों पर ध्यान केन्द्रित करने में और निर्णय लेने की प्रक्रिया की गति बढ़ाने में लोगों की मदद करना है, हालाँकि यह चीज़ सहानुभूति दर्शाने और सन्देहों तथा आन्तरिक द्वन्द्वों को सहने की उनकी क्षमता को कम कर सकती है। मानववादी मनोवैज्ञानिकों ने इस ओर संकेत किया है कि सन्ताप भोगते लोग अक्सर तत्काल समाधान नहीं चाहते - वे चाहते हैं कि कोई उनके डरों और आशंकाओं को ध्यान से सुने और उनके प्रति सहानुभूति जताए। मान लीजिए कि आप जहाँ काम करते हैं, वहाँ निरन्तर किसी संकट का सामना कर रहे हैं, क्योंकि आपकी नई बॉस आपके दृष्टिकोणों को स्वीकार नहीं करती, और आपसे हर काम अपने ढंग से ही कराते रहना चाहती है। एक किसी ख़ास दुखद दिन के बाद आप फ़ोन उठाते हैं और अपने दोस्त को फ़ोन करते हैं, लेकिन आपके उस दोस्त के पास आपके लिए न तो ज़्यादा वक़्त है, न ज़्यादा ऊर्जा है, इसलिए वह आपको बीच में ही रोक देता है, और आपकी समस्या सुलझाने की कोशिश करता है: 'ओके। मैं समझ गया। तुम्हारे पास वास्तव में यहाँ दो ही विकल्प हैं: या तो नौकरी छोड़ दो, या वहीं बने रहो और जैसा बॉस चाहती है, वैसा ही करो। और अगर मैं तुम्हारी जगह पर होता, तो मैंने तो नौकरी छोड़ दी होती'। इससे शायद ही कोई मदद मिलेगी। एक सच्चे दोस्त में धैर्य होगा, और वह समाधान पाने की जल्दी में नहीं होगा। वह आपकी तकलीफ़ को सुनेगा, और आपकी

परस्पर विरोधी भावनाओं और आपको कुतर रही बेचैनियों को सतह पर आने के लिए पूरा समय और गुंजाइश देगा।

अटेंशन हेल्मट कुछ-कुछ उस उतावले दोस्त की तरह काम करता है। बेशक कभी-कभी - मसलन लड़ाई के मैदान में - लोगों को फुर्ती से दृढ़ निर्णय लेने की ज़रूरत होती है, लेकिन जीवन इससे ज़्यादा कुछ है। अगर हम ज़्यादातर परिस्थितियों में अटेंशन हेल्मट का इस्तेमाल करने लगते हैं, तो हम भ्रमों, सन्देहों और अन्तर्विरोधों को सहने की अपनी क़ाबिलियत खो देंगे, उसी तरह जैसे हमने सूँघने, ख़्वाब देखने और ध्यान देने की अपनी क्षमता खो दी है। व्यवस्था हमें उसी दिशा की ओर धकेल सकती है, क्योंकि वह हमारे सन्देहों के लिए नहीं बल्कि हमारे द्वारा लिए गए निर्णयों के लिए हमें पुरस्कृत करती है, लेकिन दृढ़ निर्णयों और फुर्तीले समाधानों वाला जीवन सन्देहों और अन्तर्विरोधों से युक्त जीवन के मुक़ाबले ज़्यादा दरिद्र और उथला हो सकता है।

जब हम दिमाग़ों को गढ़ने की अपनी व्यावहारिक योग्यता को मानसिक क्षितिज के विस्तार के प्रति अपने अज्ञान के साथ और सरकारों, सेनाओं तथा कॉर्पोरेशनों के हितों के साथ मिला देते हैं, तो हम एक मुसीबत मोल ले लेते हैं। हम अपनी कायाओं और मस्तिष्कों को प्रोन्नत रूप देने में कामयाब हो सकते हैं, वहीं इस प्रक्रिया में अपना मानसिक सन्तुलन गँवा सकते हैं। सचमुच, प्रौद्योगिकीय मानववाद अन्ततः मनुष्यों को अवनत कर सकता है। व्यवस्था ऐसे अवनत मनुष्यों को वरीयता देगी तो इसलिए नहीं कि उनमें किसी तरह की अतिमानवीय दक्षताएँ होंगी, बल्कि इसलिए कि उनमें वास्तव में कुछ ऐसे व्यवधान डालने वाले इंसानी लक्षणों का अभाव होगा जो व्यवस्था में बाधा डालते हैं और उसकी गति को धीमा करते हैं। जैसा कि कोई भी किसान जानता है, रेवड़ की सबसे अक़्लमन्द बकरी ही सबसे ज़्यादा मुसीबतें खड़ी करती है, इसीलिए कृषि क्रान्ति में पशुओं की मानसिक क्षमताओं को अवनत करना शामिल था। प्रौद्योगिक मानववादी जिस दूसरी संज्ञानात्मक क्रान्ति का ख़्वाब देख रहे हैं, वह यही व्यवहार हमारे साथ कर सकती है, और इस तरह ऐसे मानव पुर्ज़े तैयार कर सकती है जो किसी भी समय के मुक़ाबले ज़्यादा कारगर तरीक़े से सूचनाओं का संचार और संसाधन कर सकें, लेकिन जो ध्यान देने, सपना देखने या सन्देह करने में अक्षम हों। लाखों सालों से हम प्रोन्नत चिम्पांज़ी हुआ करते थे। भविष्य में हम विशाल आकार की चींटियाँ बन जा सकते हैं।

कील जिस पर विश्व लटक रहा है

प्रौद्योगिक-मानववाद के सिर पर एक और भीषण ख़तरा मँडरा रहा है। तमाम मानववादी पन्थों की तरह प्रौद्योगिक-मानववाद भी मानवीय इच्छा का महिमामण्डन करता है, और उसको एक ऐसी कील की तरह देखता है, जिस पर विश्व लटक रहा है। प्रौद्योगिक-

मानववाद हमारी आकांक्षाओं से अपेक्षा करता है कि वे तय करें कि कौन-सी मानसिक योग्यताओं को विकसित किया जाए और इस तरह वे ही हमारे भावी मानस के आकार को तय करें, लेकिन तब क्या होगा जब प्रौद्योगिकीय विकास के लिए स्वयं इन आकांक्षाओं को नए सिरे से आकार देना और गढ़ना मुमकिन हो जाएगा?

मानववाद ने इस बात पर हमेशा ज़ोर दिया था कि आपकी प्रामाणिक इच्छा को पहचानना आसान काम नहीं है। जब हम अपनी आवाज़ सुनने की कोशिश करते हैं, तो हम अक्सर परस्पर टकराती आवाज़ों के शोर से भर उठते हैं। सचमुच, हम कभी-कभी वाक़ई अपनी प्रामाणिक आवाज़ को सुनना ही नहीं चाहते, क्योंकि वह अप्रिय रहस्यों को उजागर कर सकती है और असुविधाजनक आग्रह करने लग सकती है। बहुत सारे लोग अपनी बहुत गहरी थाह न लेने की भरपूर कोशिश करते हैं। कामयाबी की राह पर तेज़ी-से बढ़ता हुआ एक वकील किसी आन्तरिक आवाज़ को दबाकर उससे कुछ देर ख़ामोश रह कर बच्चे को जन्म देने को कह सकता है। किसी असन्तोषजनक वैवाहिक रिश्ते में फँसी कोई स्त्री उस रिश्ते से मिलने वाली सुरक्षा को गँवा देने से डरती है। अपराध-बोध से ग्रस्त एक सैनिक का उसके द्वारा किए गए अत्याचारों के दु:स्वप्न पीछा करते हैं। अपनी काम-क्षमता को लेकर अनिश्चित एक नौजवान 'मत पूछो, मत बताओ' की निजी नीति पर चलता है। मानववाद ऐसा नहीं मानता कि इनमें से किसी भी स्थिति का कोई मानक समाधान है, लेकिन मानववाद माँग करता है कि हम थोड़े साहस से काम लें, उस सूरत में भी अन्दरूनी सन्देषों को सुनें जबकि वे हमें डराते हों, अपनी प्रामाणिक आवाज़ को पहचानें और तमाम मुश्किलों के बावजूद उसके निर्देशों का पालन करें।

प्रौद्योगिकीय प्रगति की एक बिल्कुल अलग कार्यसूची है। यह हमारी आन्तरिक आवाज़ों को नहीं सुनना चाहती। यह उनको नियन्त्रित करना चाहती है। जैसे ही हम इन सारी आवाज़ों को उत्पन्न करने वाली जैवरासायनिक प्रणाली को समझ लेते हैं, हम बटनों के साथ खेल सकते हैं, जब चाहे आवाज़ को बढ़ा सकते हैं, जब चाहे उसको कम कर सकते हैं, और जीवन को बहुत कुछ आसान और आरामदेह बना सकते हैं। हम अन्यमनस्क वकील को रिटालिन दे देंगे, अपराध-बोध से ग्रस्त सैनिक को प्रोज़ैक दे देंगे और असन्तुष्ट पत्नी को सिप्रालैक्स दे देंगे। और ये तो महज़ शुरुआत है।

मानववादी अक्सर इस दृष्टिकोण से भयभीत हो जाते हैं, लेकिन बेहतर होगा कि हम फ़ैसला सुनाने में बहुत जल्दबाज़ी न बरतें। अपने दिल की आवाज़ सुनने की मानववादी सिफ़ारिश ने बहुत-से लोगों की ज़िन्दगियों को बर्बाद किया है, सही रसायनों की सही ख़ुराक ने लाखों लोगों की ख़ुशहाली और रिश्तों को बहुत बेहतर रूप दिया है। सचमुच ही अपने दिल की आवाज़ सुनने के लिए कुछ लोगों को यह अनिवार्य है कि पहले तो वे अन्दरूनी चीख़ों-पुकारों और आक्षेपों की आवाज़ को कम करें। आधुनिक मनोचिकित्सा-

विज्ञान के मुताबिक़, बहुत-सी 'आन्तरिक आवाज़ें' और 'प्रामाणिक कामनाएँ' जैवरासायनिक असन्तुलनों और स्नायुविक बीमारियों की उपज के अलावा और कुछ नहीं हैं। रोगात्मक अवसाद (क्लीनिकल डिप्रेशन) के शिकार लोग अक्सर अच्छी ख़ासी आजीविकाओं और भले-चंगे रिश्तों को इसलिए छोड़ देते हैं क्योंकि किसी जैवरासायनिक ख़राबी के चलते वे हर चीज़ को काले चष्में की मार्फ़त देखने लगते हैं। इस तरह की विनाशकारी आन्तरिक आवाज़ों पर कान देने की बजाय उनको ख़ामोश कर देना बेहतर होगा। जब सैली एडी ने अपने दिमाग़ में गूँजती आवाज़ों को ख़ामोश करने के लिए अटेंशन हेल्मट का इस्तेमाल किया था, तो वे न सिर्फ़ एक निशानेबाज़ बन गई थीं, बल्कि वे अपने बारे में कहीं ज़्यादा बेहतर महसूस करने लगी थीं।

व्यक्तिगत तौर पर, इन मुद्दों को लेकर हममें से हरेक का अलग दृष्टिकोण हो सकता है, लेकिन ऐतिहासिक दृष्टि से देखने पर यह बात साफ़ है कि कुछ बेहद प्रभावशाली घटित होने को है। पहला मानववादी धर्मादेश - ख़ुद की सुनो! - अब स्वतःसिद्ध नहीं रहा। जैसे ही हम अपनी आन्तरिक आवाज़ को कम-बढ़ करना सीखते जाते हैं, वैसे ही हम प्रामाणिकता में अपना विश्वास तजते जाते हैं, क्योंकि अब यह बात स्पष्ट नहीं रही कि स्विच पर किसका हाथ है। अपने सिर के अन्दर के परेशान करने वाले शोर को ख़ामोश करना एक अद्भुत विचार प्रतीत होता है, बशर्ते कि इससे मुझे अपने गहन प्रामाणिक स्वत्व की आवाज़ सुनने में मदद मिलती हो, लेकिन अगर कोई प्रामाणिक स्वत्व है ही नहीं, तो फिर मैं यह कैसे तय करूँ कि किस आवाज़ को ख़ामोश किया जाए और किसको बढ़ाया जाए?

चलिए, महज़ तर्क की ख़ातिर, हम कल्पना करते हैं कि कुछ दशकों के भीतर मस्तिष्क विज्ञानी हमें अनेक आन्तरिक आवाज़ों पर आसान और एकदम ठीक नियन्त्रण उपलब्ध कर देंगे। अब ज़रा किसी मज़हबी मोरमोन परिवार के एक समलैंगिक नौजवान की कल्पना करें, जो वर्षों अपनी समलैंगिकता को छिपाकर रखने के बाद, अन्ततः इतना पैसा इकट्ठा कर लेता है कि वह लैंगिक ऑपरेशन करा सके। वह 100,000 डॉलर जेब में रखकर जोसेफ़ स्मिथ (लेखक का संकेत यहाँ सम्भवतः उन्नीसवीं सदी के अमेरिकी मज़हबी नेता जोसेफ़ स्मिथ की ओर है, जिन्होंने मोरमोन पन्थ की स्थापना की थी - अनुवादक) की तरह विषमलैंगिक बनने के निश्चय के साथ क्लीनिक जाता है। क्लीनिक के दरवाज़े के सामने खड़े होकर वह मन ही मन उन शब्दों को दोहराता ह,ै जो वह डॉक्टर से कहने वाला है: 'डॉक्टर, ये रहे 100,000 डॉलर। प्लीज़, ऐसा कुछ करिए कि मुझे दोबारा कभी मर्दों की चाह न रहे'। इसके बाद वह घण्टी बजाता है, और दरवाज़ा एक सचमुच के जॉर्ज क्लूनी (यहाँ लेखक का इशारा सम्भवतः हॉलीवुड के प्रख्यात सुदर्शन और विमोहक अभिनेता जॉर्ज क्लूनी की ओर है -अनुवादक) द्वारा खोला जाता है। डॉक्टर की सुन्दरता

से अभिभूत होकर वह लड़का बुदबुदाता है, ‘डॉक्टर, ये रहे 100,000 डॉलर। ऐसा कुछ कर दीजिए कि मेरे मन में कभी विषमलैंगिक होने की चाह ही पैदा न हो’।

क्या इस नौजवान के प्रामाणिक स्वत्व ने उस मज़हबी मत-परिवर्तन (ब्रेनवॉशिंग) पर विजय पा ली थी, जिससे उसको गुज़रना पड़ा था? या एक पल के प्रलोभन की वजह से उसने ख़ुद के साथ धोखा किया था? या फिर सम्भवतः प्रामाणिक स्वत्व जैसी ऐसी कोई चीज़ होती ही नहीं है, जिसका हम अनुसरण कर सकें या जिसको धोखा दे सकें? अगर हम अपनी इच्छा को गढ़ने और बदलने की स्थिति में आ सकेंगे, तो हम उसको सारे अर्थ और प्रामाणिकता के स्रोत के रूप में देखना बन्द कर सकते हैं, क्योंकि तब हमारी इच्छा जो भी कहती हो, हम उसको हमेशा ही कुछ और कहने को बाध्य कर सकते हैं।

मानववाद के मुताबिक़, सिर्फ़ मानवीय आकांक्षाएँ ही जगत को अर्थ से रंजित करती हैं, लेकिन अगर हम अपनी आकांक्षाओं को चुन सकते हैं, तो हमारे इस चुनाव का मुमकिन आधार क्या होगा? मान लीजिए कि *रोमियो* और *जूलियट* नाटक की शुरुआत रोमियो द्वारा यह फ़ैसला करने की प्रक्रिया के साथ होती कि वह किसको प्रेम करे। और मान लीजिए कि इसका फ़ैसला कर लेने के बाद भी, रोमियो हमेशा अपनी राय बदलने और उसकी जगह एक भिन्न चुनाव करने की स्थिति में बना रहता। तब यह किस तरह का नाटक होता? बहरहाल, प्रौद्योगिकीय प्रगति हमारे सामने ठीक ऐसा ही नाटक प्रस्तुत करने की कोशिश में है। अगर हमारी आकांक्षाएँ हमें असुविधाजनक स्थिति में डाल देती हैं, तो प्रौद्योगिकी हमें उस स्थिति से उबारने का वादा करती है। जिस कील पर समूचा विश्व लटका हुआ है अगर उसको किसी मुश्किल जगह पर ठोंक दिया जाएगा, तो प्रौद्योगिकी उसको वहाँ से उखाड़कर किसी दूसरी जगह पर खोंस देगी, लेकिन वह जगह ठीक-ठीक कौन-सी होगी? अगर मैं वह कील ब्रह्माण्ड में कहीं पर भी ठोंक सकता हूँ, तो मुझे उसको कहाँ पर ठोंकना चाहिए, और सारी जगहों को छोड़कर वहीं पर क्यों ठोंकना चाहिए?

मानववादी ड्रामा उस वक़्त सामने आता है, जब लोग असुविधाजनक आकांक्षाओं से भरे होते हैं। उदाहरण के लिए, यह अत्यन्त असुविधाजनक स्थिति है अगर मोंटेग्यू परिवार के रोमियो को कैप्युलेट परिवार की जूलियट से इश्क़ हो जाता है, क्योंकि मोंटेग्यू और कैप्युलेट एक-दूसरे के घोर दुश्मन हैं। इस तरह के ड्रामों का प्रौद्योगिकीय हल यह है कि हमारे भीतर असुविधाजनक आकांक्षाएँ पैदा ही न हों। कल्पना कीजिए कि कितनी सारी पीड़ा और सन्ताप को टाला जा सका होता, अगर रोमियो और जूलियट ज़हर पीने की बजाय एक ऐसी गोली खा सके होते या वह हेल्मट पहन सके होते, जिसने उनके अभागे प्रेम को दूसरे लोगों की तरफ़ मोड़ दिया होता।

प्रौद्योगिक-मानववाद यहाँ एक असाध्य दुविधा का सामना कर रहा है। वह मनुष्य की इच्छा को संसार की सबसे महत्त्वपूर्ण चीज़ मानता है, इसलिए वह मानव जाति को ऐसी

प्रौद्योगिकियाँ विकसित करने को प्रेरित करता है, जो इच्छा को नियन्त्रित कर सकें और उनको नई शक्ल में ढाल सकें। आख़िरकार, संसार की सबसे महत्त्वपूर्ण चीज़ को नियन्त्रित करने की चाह ललचाने वाली तो है ही, लेकिन अगर हम ऐसा नियन्त्रण कभी हासिल कर भी लेते हैं, तो यह बात प्रौद्योगिक-मानववाद की समझ से परे होगी कि वह उसका क्या करे, क्योंकि तब पवित्र मनुष्य एक और गढ़े गए उत्पाद में बदल चुका होगा। जब तक हमारा यह विश्वास बना रहता है कि मनुष्य की इच्छा और मनुष्य का अनुभव प्रामाणिकता और अर्थ का परम स्रोत है, तब तक हम इस तरह की प्रौद्योगिकियों से कभी बरत ही नहीं सकते।

इसीलिए एक साहसिक प्रौद्योगिकीय मज़हब मानववादी नाभि-नाल को पूरी तरह से काटकर अलग कर देना चाहता है। वह एक ऐसी दुनिया का पूर्वानुमान करता है जो किन्हीं भी मनुष्यनुमा सत्ताओं की आकांक्षाओं और अनुभवों के इर्दगिर्द चक्कर नहीं लगाएगी। वह क्या चीज़ हो सकती है जो सारे अर्थ और प्रामाणिकता के स्रोत के रूप में आकांक्षाओं और अनुभवों को हटाकर उनकी जगह ले सकती है? अभी 2016 तक इसका एक ऐसा प्रत्याशी है, जो इतिहास के स्वागत-कक्ष में नौकरी के साक्षात्कार के इन्तज़ार में बैठा हुआ है। यह प्रत्याशी है सूचना। डेटावाद (डेटाइज़्म) वह सबसे दिलचस्प मज़हब है, जिसका उद्भव हो रहा है, जो न ईश्वर की उपासना करता है न मनुष्य की - वह डेटा का उपासक है।

11
डेटा मज़हब

डेटावाद घोषणा करता है कि यह विश्व डेटा-प्रवाह से मिलकर बना है, और किसी भी संघटना या सत्ता का मूल्य डेटा-प्रॉसेसिंग में उसके योगदान से निश्चत होता है। यह आपको केन्द्र से खिसकी हुई हाशिए की धारणा लग सकती है, लेकिन दरअसल इसने ज़्यादातर वैज्ञानिक व्यवस्था को जीत लिया है। डेटावाद का जन्म दो वैज्ञानिक ज्वारीय तरंगों के विस्फोटक संगम से हुआ था। चार्ल्स डार्विन द्वारा *ऑन द ओरिजिन ऑफ़ स्पिशीज़* के प्रकाशन के बाद के 150 वर्षों के दौरान जैविक विज्ञान प्राणियों को जैवरासायनिक ऐल्गरिदमों के रूप में देखना शुरू कर चुके हैं। इसी के साथ-साथ एलन ट्यूरिंग द्वारा ट्यूरिंग मशीन के विचार को रूप दिए जाने के आठ दशकों में कम्प्यूटर वैज्ञानिकों ने उत्तरोत्तर परिष्कृत रूप लेते ऐल्गरिदमों को गढ़ना सीख लिया है। डेटावाद इन दोनों को साथ रखते हुए इस ओर इशारा करता है कि जैवरासायनिक और इलेक्ट्रॉनिक ऐल्गरिदम, दोनों पर ठीक एक जैसे गणितीय नियम लागू होते हैं। इस तरह डेटावाद प्राणियों और मशीनों के बीच के अवरोध को ढहा देता है, और इलेक्ट्रॉनिक ऐल्गरिदमों से उम्मीद करता है कि अन्ततः वे जैवरासायनिक ऐल्गरिदमों की व्याख्या करें और उनसे आगे निकल जाएँ।

राजनेताओं, कारोबारियों और साधारण ग्राहकों के लिए डेटावाद मूलभूत प्रौद्योगिकियाँ और अपरिमित नई शक्तियाँ प्रदान करता है। वह अध्येताओं और बौद्धिकों के लिए वह वैज्ञानिक पवित्र प्याला (होली ग्रेल) उपलब्ध कराने का भी आश्वासन देता है, जो हमें सदियों से चकमा देता आ रहा है: वह अकेला अतिमहत्त्वपूर्ण सिद्धान्त जो संगीतशास्त्र से लेकर अर्थशास्त्र और जीवविज्ञान तक तमाम वैज्ञानिक अनुशासनों को एकीकृत करता है। डेटावाद के मुताबिक़ बीथोवेन की पाँचवीं सिम्फ़नी, शेयर बाज़ार का

उछाल और फ़्लू का वाइरस डेटा-प्रवाह के ऐसे तीन स्वरूप हैं, जिनका एक ही तरह की बुनियादी अवधारणाओं और औज़ारों का इस्तेमाल करते हुए विश्लेषण किया जा सकता है। ये विचार बेहद आकर्षक है। यह सारे वैज्ञानिकों को एक साझा भाषा प्रदान करता है, अकादेमिक दरारों को पाटता है और ज्ञान अनुशासनात्मक सरहदों के आर-पार बहुत आसानी के साथ अन्दृष्टियों का निर्यात करता है। संगीतशास्त्री, अर्थशास्त्री और कोशिका विज्ञानी अन्ततः एक-दूसरे को समझ सकते हैं।

इस प्रक्रिया में डेटावाद ज्ञानार्जन के पारम्परिक पिरामिड को उलटा कर देता है। अभी तक, डेटा को बौद्धिक गतिविधि की एक लम्बी शृंखला की एक कड़ी के रूप में देखा जाता रहा था। इंसानों से अपेक्षा की जाती थी कि वे डेटा का सूचना में, सूचना का ज्ञान में, और ज्ञान का प्रज्ञा में आसवन करें, लेकिन डेटावादी मानते हैं कि मनुष्य अब डेटा के अपरिमित प्रवाह से तालमेल बैठा पाने में असमर्थ हैं, इसलिए वे, ज्ञान का प्रज्ञा के रूप में आसवन करना तो दूर की बात है, डेटा का सूचना के रूप में आसवन नहीं कर सकते। इसलिए डेटा की प्रॉसेसिंग का काम इलेक्ट्रॉनिक ऐल्गरिदमों को सौंप दिया जाना चाहिए, जिनकी क्षमता मानव-मस्तिष्क से कहीं बढ़कर है। व्यावहारिक धरातल पर, इसका मतलब है कि डेटावादियों के मन में मानवीय ज्ञान और प्रज्ञा को लेकर सन्देह है, और वे महा डेटा (बिग डेटा) और कम्प्यूटर ऐल्गरिदमों पर विश्वास करना बेहतर समझते हैं।

डेटावाद अपने दो उद्गमपरक ज्ञान अनुशासनों से घिरा हुआ है: कम्प्यूटर विज्ञान और जीवविज्ञान। इन दोनों में जीवविज्ञान ज़्यादा महत्त्वपूर्ण है। यह डेटावाद का जीवविज्ञान के साथ गहरा जुड़ाव था, जिसने कम्प्यूटर विज्ञान की सीमित उपलब्धि को दुनिया को हिला कर रख देने वाली महाक्रान्ति में बदल दिया, जो जीवन के स्वरूप तक को भी पूरी तरह से बदल सकती है। हो सकता है कि आप इस विचार से सहमत न हों कि प्राणी ऐल्गरिदम हैं, और जिराफ़, टमाटर और मनुष्य डेटा को संसाधित करने की विभिन्न पद्धतियाँ भर हैं, लेकिन आपको यह मालूम होना चाहिए कि यह इस वक़्त का वैज्ञानिक धर्ममत है, और ये हमारी दुनिया को इस क़दर बदल रहा है कि वह पहचान से परे होती जा रही है।

आज सिर्फ़ स्वतन्त्र जीवों को ही डेटा-प्रॉसेसिंग प्रणालियों के रूप में नहीं देखा जा रहा है, बल्कि मधुमक्खियों के छत्तों, बैक्टीरिया कॉलोनियों, जंगलों और इंसानी नगरों जैसे समूचे समुदायों को भी इसी रूप में देखा जाता है। अर्थशास्त्री अर्थव्यवस्था को भी अब लगातार एक डेटा-प्रॉसेसिंग प्रणाली के रूप में देखने लगे हैं। जनसाधारण का मानना है कि अर्थव्यवस्था गेहूँ उपजाने वाले किसानों, वस्त्र निर्माण करने वाले कामगारों, और ब्रेड तथा जाँघिये ख़रीदने वाले ग्राहकों से मिलकर बनती है, लेकिन विशेषज्ञ अर्थव्यवस्था को आकांक्षाओं और क़ाबिलियतों के बारे में डेटा संग्रह करने, और इस डेटा को निर्णयों में बदलने वाली प्रक्रिया के रूप में देखते हैं।

इस दृष्टिकोण के मुताबिक़, मुक्त-बाज़ार-पूँजीवाद और राज्य-नियन्त्रित साम्यवाद प्रतिस्पर्धी विचारधाराएँ, नैतिक पन्थ या राजनैतिक संस्थाएँ नहीं हैं। वे मूलतः प्रतिस्पर्धी डेटा-प्रॉसेसिंग प्रणालियाँ हैं। पूँजीवाद विकेन्द्रित प्रॉसेसिंग का इस्तेमाल करता है, जबकि साम्यवाद केन्द्रीकृत प्रॉसेसिंग का इस्तेमाल करता है। पूँजीवाद सारे उत्पादों और उपभोक्ताओं को एक-दूसरे से जोड़कर और उनको मुक्त ढंग से सूचना का आदन-प्रदान करने तथा स्वतन्त्र स्तर पर निर्णय लेने की गुंजाइश देकर डेटा प्रॉसेस करता है। एक मुक्त बाज़ार में आप ब्रेड की क़ीमत का निर्धारण कैसे करते हैं? हर बेकरी मनचाही मात्र में ब्रेड का उत्पादन कर सकती है और उसकी मनचाही क़ीमत रख सकती है। ग्राहक भी यथासम्भव मात्र में ब्रेड ख़रीदने के लिए स्वतन्त्र हैं, या वे किसी प्रतिस्पर्धी के पास जा सकते हैं। एक बग़ैत (लम्बे आकार की फ़्रांसीसी ब्रेड) के लिए 1,000 डॉलर वसूल करना ग़ैरक़ानूनी नहीं है, लेकिन इसकी कोई सम्भावना नहीं है कि उसको उस क़ीमत पर कोई ख़रीदेगा।

एक ज़्यादा बड़े पैमाने पर देखें तो, अगर निवेशकों को ब्रेड की बढ़ती हुई माँग का पूर्वामान हो जाता है, तो वे ऐसी जैवप्रौद्योगिक फ़र्मों के शेयर ख़रीदेंगे जो गेहूँ की अधिक उपजाऊ नस्लों की जनेटिक इंजीनियरी करती हैं। पूँजी की आमद इन फ़र्मों को अपने अनुसन्धान की गति बढ़ाने में सक्षम बनाएगी, और इस तरह वे ज़्यादा तेज़ी के साथ अधिक गेहूँ उपलब्ध कराएँगी, और ब्रेड की कमी को टालेंगी। यहाँ तक कि अगर एक विशालकाय जैवप्रौद्योगिक फ़र्म कोई ग़लत सिद्धान्त अपनाती है और गतिरोध की शिकार हो जाती है, तो पूरी सम्भावना है कि उसके ज़्यादा कामयाब प्रतिस्पर्धी वांछित उपलब्धि हासिल कर लें। इस तरह मुक्त-बाज़ार पूँजीवाद डेटा-विश्लेषण और निर्णय लेने का काम बहुत-से स्वतन्त्र, लेकिन आपस में जुड़े प्रॉसेसरों के बीच बाँट देता है। जैसा कि अर्थशास्त्र के ऑस्ट्रियाई गुरु फ्रैड्रिक हावेक ने स्पष्ट किया था, 'एक ऐसी व्यवस्था में जिसमें प्रासंगिक तथ्यों का ज्ञान बिखेर दिया गया होता है, क़ीमतें विभिन्न लोगों के अलग-अलग कृत्यों के बीच सामंजस्य बैठाने का काम कर सकती हैं'।

इस दृष्टिकोण के अनुसार शेयर बाज़ार मानव जाति द्वारा अब तक रची गई डेटा-प्रॉसेसिंग प्रणालियों में सबसे द्रुत और सबसे ज़्यादा प्रभावशाली प्रणाली है। इसमें शामिल होने के लिए हर किसी का स्वागत है, अगर सीधे-सीधे नहीं तो बैंकों और पेंशन निधियों के माध्यम से। शेयर बाज़ार वैश्विक अर्थव्यवस्था को परिचालित करता है, और उस हर चीज़ को ध्यान में लेता है, जो समूचे ग्रह पर - और उससे परे - घटित होती है। क़ीमतें वैज्ञानिक प्रयोगों से, जापान के राजनैतिक घोटालों से, आइसलैंड के ज्वालामुखियों के विस्फोटों से और सूर्य की सतह पर घटित होने वाली अनियमित गतिविधियों तक से प्रभावित होती हैं। व्यवस्था सुचारु रूप से चलती रहे इसके लिए अधिकतम सम्भव सूचना का यथासम्भव

मुक्त ढंग से प्रवाहित होना ज़रूरी है। जब सारी प्रासंगिक सूचना तक समूची दुनिया के लाखों लोगों की पहुँच हो जाती है, तो वे तेल की सही क़ीमत का, हुंडाई के शेयरों की क़ीमत का और स्वीडी सरकार के बॉण्डों की क़ीमत का निर्धारण उनको ख़रीदते और बेचते हुए करते हैं। ऐसा आकलन किया गया है कि ज़्यादातर शेयरों की क़ीमतों पर *न्यू यॉर्क टाइम्स* की सुर्ख़ियों के प्रभाव को तय करने में शेयर बाज़ार को महज़ पन्द्रह मिनट के कारोबार की ज़रूरत होती है।

डेटा-प्रॉसेसिंग को विचारणीय मानना इस बात को भी स्पष्ट करता है कि पूँजीपति कमतर करों के पक्ष में क्यों होते हैं। भारी करारोपण का मतलब सारी उपलब्ध पूँजी का एक स्थान पर - राज्य की तिजोरियों में - जमा हो जाना, और नतीजतन एकमात्र प्रॉसेसर, यानी सरकार, द्वारा अधिक-से-अधिक निर्णयों का लिया जाना होता है। यह स्थिति एक बहुत ज़्यादा केन्द्रीकृत डेटा-प्रॉसेसिंग व्यवस्था पैदा कर देती है। चरम परिस्थितियों में, जब कर अत्यन्त बढ़े हुए होते हैं, तब लगभग सारी-की-सारी पूँजी सरकार के हाथों में चली जाती है, इसलिए सरकार अकेले ही प्रभावशाली निर्णय लेने की स्थिति में आ जाती है। वही ब्रेड की क़ीमत का, बेकरियों के स्थल का और अनुसन्धान-और-विकास के बजट का निर्धारण करने लगती है। एक मुक्त बाज़ार में अगर कोई एक प्रॉसेसर ग़लत निर्णय लेगा, तो दूसरे प्रॉसेसर तुरन्त उसकी ग़लती का लाभ उठा लेंगे, लेकिन, जब कोई एक प्रॉसेसर लगभग सारे-के-सारे निर्णय लेने लगता है, तब ग़लतियाँ विनाशकारी साबित हो सकती हैं।

यह चरम स्थिति, जिसमें किसी एक केन्द्रीय प्रॉसेसर द्वारा सारे डेटा प्रॉसेस किए जाते हैं और सारे निर्णय लिए जाते हैं, साम्यवाद के नाम से जानी जाती है। एक साम्यवादी अर्थव्यवस्था में लोग कथित रूप से अपनी योग्यताओं के अनुसार काम करते हैं और अपनी ज़रूरतों के मुताबिक़ हासिल करते हैं। दूसरे शब्दों में, सरकार आपका 100 प्रतिशत मुनाफ़ा हथिया लेती है, आपकी ज़रूरतों को तय करती है और फिर इन ज़रूरतों के मुताबिक़ आपूर्ति करती है। हालाँकि, इस योजना को इसके चरम रूप में कोई भी देश कभी क्रियान्वित नहीं कर सका, तब भी सोवियत संघ और उसके उपनिवेश इसके यथासम्भव क़रीब पहुँच गये थे। उनने विभाजित डेटा-प्रॉसेसिंग के नियम को तज दिया था और केन्द्रीकृत डेटा-प्रॉसेसिंग के मानक को अपना लिया था। समूचे सोवियत संघ की सारी सूचना मॉस्को के एक स्थल से प्रवाहित होती थी जहाँ सारे महत्त्वपूर्ण निर्णय लिये जाते थे। उत्पादक और उपभोक्ता सीधे-सीधे आपस में कोई लेन-देन नहीं कर सकते थे और उनको सरकार के आदेशों का पालन करना होता था।

49. 1963 में मॉस्को में सोवियत नेता: केन्द्रीकृत डेटा-प्रॉसेसिंग

उदाहरण के लिए, सोवियत आर्थिक मन्त्रलय यह फ़ैसला ले सकता था कि ब्रेड की क़ीमत सारी दूकानों पर ठीक दो रूबल और चार कोपेक होनी चाहिए, कि ओडेसा प्रान्त के किसी ख़ास कोल्खोज़ (सामूहिक फ़ॉर्म) को गेहूँ उपजाने की बजाय चूज़े पालना चाहिए, और मॉस्को की रेड अक्टूबर बेकरी को प्रतिदिन 30.5 लाख पावरोटियों का उत्पादन करना चाहिए और उससे ज़्यादा एक भी पावरोटी का उत्पादन नहीं करना चाहिए। इस बीच सोवियत विज्ञान मन्त्रलय ने तमाम जैवप्रौद्योगिक प्रयोगशालाओं को लेनिन एकेडिमी ऑफ़ एग्रीकल्चरल साइंस के मुखिया त्राफ़िम लिसेंकॉ के सिद्धान्तों को अपनाने के लिए मज़बूर कर दिया था। लिसेंकॉ ने अपने समय के प्रभावी जनेटिक सिद्धान्तों को ख़ारिज़ दिया था। उसका प्रबल आग्रह था कि अगर कोई जीव अपने जीवन-काल में कोई नया लक्षण विकसित कर लेता है, तो उसका यह गुण सीधे उसके वंशजों में स्थानान्तरिक हो सकता है। यह धारणा डार्विन के स्थापित सिद्धान्त के विरोध में जाती थी, लेकिन साम्यवादी षैक्षणिक सिद्धान्तों के साथ इसका अच्छी तरह मेल बैठता था। इसमें यह निहित था कि अगर आप गेहूँ के पौधों को ठण्डे मौसम को सहने योग्य बना लें, तो उनकी सन्तानें भी ठण्ड को प्रतिरोध देंगी। इस तरह लिसेंकॉ ने करोड़ों क्रान्ति-विरोधी गेहूँ

के पौघों को पुनर्षिक्षित करने साइबेरिया भेज दिया था - और सोवियत संघ को विवश होकर जल्दी ही संयुक्त राज्य अमेरिका से बड़ी तादाद में आटे का आयात करना पड़ा था।

50. शिकागो बोर्ड ऑफ़ ट्रेड के लोर पर मचा कोलाहल: वितरित डेटा-प्रॉसेसिंग

पूँजीवाद ने साम्यवाद को इसलिए परास्त नहीं किया था कि पूँजीवाद ज़्यादा नैतिक था, या वैयक्तिक स्वतन्त्रताएँ पवित्र होती हैं या इसलिए कि ईश्वर नास्तिक साम्यवादियों से नाराज़ था, बल्कि इसलिए पराजित किया था कि पूँजीवाद ने शीत युद्ध में विजय हासिल की थी क्योंकि वितरित डेटा प्रॉसेसिंग, कम से कम गतिशील प्रौद्योगिकीय परिवर्तन के दौरान, केन्द्रीकृत डेटा प्रॉसेसिंग के मुक़ाबले ज़्यादा कारगर होती है। कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय समिति बीसवीं सदी के अन्तिम वर्षों की तेज़ी-से बदलती दुनिया के साथ तालमेल नहीं बैठा सकी। जब सारे डेटा किसी गुप्त तहख़ाने में जमा हो जाते हैं, और सारे महत्त्वपूर्ण फ़ैसले पार्टी के बुड्ढे वफ़ादारों के समूह द्वारा लिए जाने लगते हैं, तो वे बड़ी तादाद में परमाणु बम तो बना सकते हैं, लेकिन ऐपल या विकीपीडिया को स्थापित नहीं कर सकते।

एक क़िस्सा है (सम्भवत एक असत्य किन्तु लोकप्रिय क़िस्सा, जैसे कि ज़्यादातर अच्छे क़िस्से होते हैं) कि जब मिखाइल गोर्बाचेव ने मृतप्राय सोवियत अर्थव्यवस्था में नए सिरे से प्राण फूँकने की कोशिश की, तो उन्होंने अपने एक मुख्य सहयोगी को यह पता लगाने लन्दन भेजा कि थैचर-नीति आखिर कुल मिलाकर क्या थी, और पूँजीवादी प्रणाली

किस तरह काम करती थी। मेज़बान अपने इस सोवियत मेहमान को शहर के, लन्दन शेयर बाज़ार के और लन्दन स्कूल ऑफ़ इकॉनॉमिक्स के भ्रमण पर ले गए, जहाँ उसने बैंक मैनेजरों, उद्यमियों और प्रोफ़ेसरों से लम्बी बातचीत की। कई लम्बे घण्टों की बातचीत के बाद वह सोवियत विशेषज्ञ बोल उठा: 'एक मिनट, प्लीज़। इन सब पेचीदा आर्थिक सिद्धान्तों को भूल जाइए। हम दिनभर से पूरे लन्दन में यहाँ-वहाँ भटक रहे हैं, और मुझे एक चीज़ समझ में नहीं आई। मॉस्को में ब्रेड आपूर्ति की प्रणाली पर हमारे सबसे तेज़ दिमाग़ लोग काम कर रहे हैं, और तब भी हर बेकरी और किराने की दुकान पर लम्बी-लम्बी लाइनें लगी रहती हैं। यहाँ लन्दन में लाखों लोग रहते हैं, और आज हम कई दुकानों और सुपरमार्केटों के सामने से होकर गुज़रे हैं तब भी मैंने ब्रेड ख़रीदने वालों की एक भी कतार नहीं देखी। कृपया मुझे लन्दन में ब्रेड आपूर्ति की व्यवस्था देखने वाले से मिलवाइए। मैं उसके रहस्य को समझना चाहता हूँ'। मेज़बानों ने अपना सिर खुजलाया, पल भर कुछ सोचा, और फिर बोले: 'लन्दन में ब्रेड आपूर्ति की व्यवस्था कोई नहीं देखता'।

पूँजीवादी कामयाबी का रहस्य यही है। लन्दन में किसी भी केन्द्रीय प्रॉसेसिंग इकाई का सारे डेटा पर एकाधिकार नहीं है। लाखों उपभोक्ताओं और उत्पादकों, बेकरों और उद्योगपतियों, किसानों और वैज्ञानिकों के बीच सूचना मुक्त प्रवाहित होती है। ये बाज़ार की शक्तियाँ हैं जो ब्रेड की क़ीमत, प्रतिदिन उत्पादित की जाने वाली ब्रेडों की संख्या और अनुसन्धान-और-विकास की प्राथमिकताएँ तय करती हैं। अगर बाज़ार की शक्तियाँ कोई बुरा निर्णय ले लेती हैं, तो वे ही तुरन्त उसको सुधारती हैं, या पूँजीपति ऐसा मानते हैं। फ़िलहाल हमारे जो उद्देश्य हैं, उनके सन्दर्भ में यह बात मायने नहीं रखती कि यह पूँजीवादी सिद्धान्त सही है या नहीं। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि यह सिद्धान्त अर्थव्यवस्था को डेटा प्रॉसेसिंग की पदावली में समझता है।

सारी सत्ता कहाँ गई?

राजनीति विज्ञानी भी लगातार मानवीय राजनैतिक संरचनाओं की व्याख्या डेटा-प्रॉसेसिंग प्रणालियों के रूप में करते हैं। जिस तरह पूँजीवाद और साम्यवाद, उसी तरह लोकतन्त्र और तानाशाहियाँ भी संक्षेप में सूचना का संग्रह और विश्लेषण करने वाली प्रक्रियाएँ हैं। तानाशाहियाँ केन्द्रीकृत प्रॉसेसिंग पद्धतियाँ अपनाती हैं, जबकि लोकतन्त्र वितरित प्रॉसेसिंग को पसन्द करते हैं। पिछले दशकों के दौरान लोकतन्त्र की स्थिति मज़बूत हुई है क्योंकि बीसवीं सदी की अनूठी परिस्थितियों के तहत वितरणपरक प्रॉसेसिंग ने ज़्यादा बेहतर ढंग से काम किया। वैकल्पिक परिस्थितियों के अधीन - उदाहरण के लिए उस तरह की परिस्थितियों के अधीन जो रोमन साम्राज्य में प्रभावी थीं - केन्द्रीकृत प्रॉसेसिंग बेहतर स्थिति में होती थी, यही वजह थी कि रोमन गणराज्य का पतन हुआ और सत्ता सीनेट और

लोकप्रिय विधानमण्डलों के हाथों से फिसलकर एक स्वेच्छाचारी सम्राट के हाथों में चली गई थी।

इसका मतलब है कि जैसे ही इक्कीसवीं सदी में डेटा-प्रॉसेसिंग की परिस्थितियों में बदलाव आएगा, वैसे ही लोकतन्त्र का क्षय हो सकता है और वह लोप तक शिकार हो सकता है। जैसे-जैसे डेटा की मात्र और गति, दोनों बढ़ते हैं, चुनाव, राजनैतिक दल और संसद जैसी सम्मानित संस्थाएँ पुरानी पड़ जा सकती हैं - इसलिए नहीं कि वे अनैतिक हैं, बल्कि इसलिए कि वे डेटा की पर्याप्त दक्षतापूर्वक प्रॉसेसिंग नहीं कर सकतीं। ये संस्थाएँ एक ऐसे युग में विकसित हुई थीं, जब राजनीति की रफ़्तार प्रौद्योगिकी से तेज़ हुआ करती थी। उन्नीसवीं और बीसवीं सदियों में औद्योगिक क्रान्ति का विस्तार इतनी पर्याप्त धीमी गति से हुआ था कि राजनेता और मतदाता उससे एक क़दम आगे बने रहे और उसकी कार्य-प्रणाली को नियन्त्रित कर सके और मनचाहे ढंग से दिशा दे सके। तब भी जहाँ राजनीति की लय में भाप के ज़माने से बहुत ज़्यादा बदलाव नहीं आया है, वहीं प्रौद्योगिकी पहले गियर से चौथे गियर पर पहुँच चुकी है। प्रौद्योगिक क्रान्तियों की रफ़्तार आज राजनैतिक प्रक्रियाओं को पीछे छोड़ चुकी है, जिसकी वजह से सांसद और मतदाता समान रूप से नियन्त्रण खोते जा रहे हैं।

इंटरनेट का उद्भव हमें आगे आने वाली चीज़ों का अहसास कराता है। साइबरस्पेस हमारे रोज़मर्रा जीवन के लिए, हमारी अर्थव्यवस्था के लिए और हमारी सुरक्षा के लिए अनिवार्य बन चुकी है। तब भी वैकल्पिक वेब डिज़ाइनों का चुनाव किसी लोकतान्त्रिक राजनैतिक प्रक्रिया के माध्यम से नहीं किया गया था, बावजूद इसके कि वे सम्प्रभुता, सरहदों, गोपनीयता और सुरक्षा जैसे पारम्परिक राजनैतिक मुद्दों से ताल्लुक़ रखती हैं। क्या आपने साइबरस्पेस के रूपाकार के बारे में कभी मतदान किया था? सार्वजनिक निगाहों और हितों से बहुत दूर बैठे वेब डिज़ाइनरों द्वारा लिए गए निर्णयों का मतलब है कि आज इंटरनेट एक ऐसा आज़ाद और क़ानून-रहित क्षेत्र है जो राज्य की सम्प्रभुता की बुनियाद को कमज़ोर बनाता है, सरहदों की उपेक्षा करता है, गोपनीयता को ख़त्म कर देता है और वैश्विक सुरक्षा के समक्ष सबसे भयानक जोखिम पैदा करता है। जहाँ एक दशक पहले यह राडार पर कहीं दिखाई नहीं देता था, वहीं आज बेहद डरे हुए और उत्तेजित अधिकारी सिर पर मँडराते साइबर 9/11 का पूर्वानुमान कर रहे हैं।

नतीजतन सरकारें और गैरसरकारी संगठन इंटरनेट को नए सिरे से गढ़ने को लेकर ज़ोरदार बहसें करते हैं, लेकिन किसी व्यवस्था में उसकी शुरुआत के समय हस्तक्षेप करना जितना आसान होता है, उसके वजूद में आ चुकने के बाद उसको बदलना उससे ज़्यादा कठिन होता है। इसके अलावा, जब तक भारीभरकम सरकारी नौकरशाही साइबर नियन्त्रण के बारे में अपना मन बना पाएगी, तब तक इंटनेट का आकार दस गुना हो चुका

होगा। सरकारी कछुआ प्रौद्योगिकीय ख़रगोश की बराबरी नहीं कर सकता। वह डेटा के वशीभूत है। हो सकता है एनएसए हमारे एक-एक शब्द पर ख़ुफ़िया निगाह रखती हो, लेकिन अमेरिकी विदेश नीति की बार-बार की नाकामयाबियों के आधार पर देखें, तो यही लगता है कि वाशिंगटन में कोई नहीं जानता कि सारे-के-सारे डेटा का क्या इस्तेमाल किया जाए। समूचे इतिहास में कभी किसी सरकार को इस बात की इतनी ज़्यादा जानकारी नहीं रही कि दुनिया में क्या हो रहा है - तब भी बहुत थोड़े-से साम्राज्य रहे होंगे, जिन्होंने इतना अनाड़ीपन बरता होगा, जितना समकालीन संयुक्त राज्य अमेरिका बरत रहा है। वह उस ताश के खिलाड़ी की तरह है, जो यह जानता है कि उसके प्रतिद्वन्द्वी के हाथ में कौन-से पत्ते हैं, लेकिन जो तब भी एक के बाद एक पारी हारता चला जाता है।

आने वाले दशकों में इस बात की पूरी सम्भावना है कि हमें इंटरनेट जैसी और भी क्रान्तियाँ देखने को मिलेंगी, जिनमें प्रौद्योगिकी राजनीति को पछाड़ देगी। आर्टिफ़िशल इंटेलिजेंस और जैवप्रौद्योगिकी हमारे समाजों और अर्थव्यवस्थाओं को - और हमारी कायाओं तथा दिमाग़ों को भी - उलट-पलटकर रख देंगी, लेकिन मौजूदा राजनैतिक राडार पर इसका कोई निशान नहीं है। आज के समय की लोकतान्त्रिक संरचनाएँ प्रासंगिक डेटा को पर्याप्त तेज़ी के साथ एकत्र और प्रॉसेस नहीं कर सकतीं, और ज़्यादातर मतदाता जीवविज्ञान और साइबरनेटिक्स की इतनी पर्याप्त समझ नहीं रखते कि वे कोई मुनासिब मत तैयार कर सकें। इसलिए पारम्परिक लोकतान्त्रिक राजनीति घटनाक्रम पर अपना नियन्त्रण खोती जा रही है, और हमारे सामने भविष्य की कोई सार्थक तसवीर पेश कर पाने में विफल होती जा रही है।

साधारण मतदाता महसूस करने लगे हैं कि लोकतान्त्रित प्रक्रिया अब उनको शक्ति प्रदान नहीं करती। हर तरफ़ दुनिया में बदलाव आ रहे हैं, और ये बदलाव किस तरह और क्यों हो रहे हैं, यह उनकी समझ में नहीं आ रहा है। सत्ता उनके हाथों से निकलती जा रही है, लेकिन वे इस बारे में अनिश्चित हैं कि वह किन हाथों में चली गई है। ब्रिटेन में मतदाता कल्पना करते हैं कि सत्ता यूरापीय संघ के हाथों में चली गई हो सकती है, इसलिए इसलिए उन्होंने ब्रेक़्सिट के पक्ष में मतदान किया। संयुक्त राज्य अमेरिका में मतदाता कल्पना करते हैं कि 'व्यवस्था' (द एस्टेब्लिषमेंट) ने सारी सत्ता पर एकाधिकार कर लिया है, इसलिए वे बर्नी सेंडर्स और डोनाल्ड ट्रम्प जैसे व्यवस्था-विरोधी प्रत्याशियों का समर्थन करते हैं। दुखद सच्चाई यह है कि कोई नहीं जानता कि सारी सत्ता कहाँ चली गई है। अगर ब्रिटेन यूरोपीय संघ से अलग हो जाता है, या वाइट हाउस पर ट्रम्प का क़ब्ज़ा हो जाता है, तो सत्ता निश्चय ही साधारण मतदाताओं के हाथों में वापस नहीं आ जाएगी।

इसका यह मतलब नहीं कि हम बीसवीं सदी की षैली की तानाशाहियों की ओर वापस मुड़ जाएँगे। सर्वसत्तावादी शासन-व्यवस्थाएँ भी प्रौद्योगिकीय विकास की गति और डेटा-

प्रवाह की तादाद और रफ़्तार से समान रूप से पराजित हो गई लगती हैं। बीसवीं सदी में तानाशाहों के पास भविष्य की महान कल्पनाएँ हुआ करती थीं। साम्यवादियों और फासिस्टों, दोनों ने ही पुरानी दुनिया को पूरी तरह नष्ट कर उसके स्थान पर एक नई दुनिया बनानी चाही थी, लेनिन, हिटलर या माओ के बारे में आप जो भी सोचते हों, लेकिन आप उन पर भविष्य की कल्पना के अभाव का आरोप नहीं लगा सकते। आज ऐसा लगता है कि नेताओं के पास उससे भी भव्य लक्ष्यों को पूरा करने के अवसर हैं। जहाँ साम्यवादियों और नाज़ियों ने एक नई दुनिया और एक नया मनुष्य गढ़ने की कोशिश में भाप के इंजनों और टाइपराइटरों की मदद ली थी, आज के भविष्यदृष्टा जैवप्रौद्योगिकी और सुपर-कम्प्यूटरों पर भरोसा कर सकते हैं।

साइंस-फिक्शन फ़िल्मों में हिटलर-नुमा क्रूर राजनेता इस तरह की नई प्रौद्योगिकियों पर तेज़ी के साथ झपट्टा मारते और उनको अहंकार के उन्माद से भरे इस या उस राजनैतिक आदर्श की सेवा में जोतते दिखाए जाते हैं, लेकिन इक्कीसवीं सदी के इन शुरुआती वर्षों में रूस, ईरान या उत्तर कोरिया जैसे सर्वसत्तावादी मुल्कों तक में सचमुच के राजनेता हॉलीवुड के अपने इन प्रतिरूपों से ज़रा भी मेल नहीं खाते। वे किसी आशाओं का संसार (ब्रेव न्यू वर्ल्ड) का षड्यन्त्र रचते नहीं दिखाई देते। किम जांग-यूएन और अली ख़ामेनेई अणु बमों और बालिस्टिक मिसाइलों से ज़्यादा आगे, यानी 1945 से आगे, नहीं जाते। पुतिन की महत्त्वाकांक्षा पुराने सोवियत खेमे को, या उससे भी पुराने ज़ारवादी साम्राज्य तक को, फिर खड़ा करने की प्रतीत होती है। इस बीच, संयुक्त राज्य अमेरिका के व्यामोह-पीड़ित रिपब्लिकनों ने बराक ओबामा पर अमेरिकी समाज की बुनियादों को नष्ट करने का षड्यन्त्र रच रहे क्रूर स्वेच्छाचारी होने का आरोप लगा दिया है, हालाँकि राष्ट्रपति के रूप में अपने आठ वर्ष के कार्यकाल में वे स्वास्थ्य-सेवा के क्षेत्र में बमुश्किल एक छोटा-सा सुधार पारित कर सके। नई दुनियाएँ और नए मनुष्य रचना उनकी कार्यसूची के परे था।

चूँकि प्रौद्योगिकी की रफ़्तार अब इतनी तेज़ है, और संसदें तथा तानाशाह समान रूप से उस डेटा से आक्रान्त हैं, जिसको वे पर्याप्त तेज़ी-से प्रॉसेस नहीं कर सकते, ठीक इसी वजह से आज के राजनेता एक सदी पहले के अपने पूर्वज राजनेताओं के मुक़ाबले बहुत छोटे पैमाने पर सोच रहे हैं। नतीजतन, इक्कीसवीं सदी के इन आरम्भिक वर्षों की राजनीति भविष्य सम्बन्धी भव्य कल्पनाओं से पूरी तरह वंचित है। सरकार महज़ प्रशासन बन कर रह गई है। वह देश का प्रबन्धन तो करती है, लेकिन अब उसका नेतृत्व नहीं करती। सरकार सुनिश्चित करती है कि अध्यापकों को समय पर पगार मिले और मल-निकासी की प्रणालियों में कोई रुकावट न आने पाए, लेकिन इस बारे में उसको कोई अनुमान नहीं है कि बीस साल बाद देश कहाँ होगा।

किसी हद तक यह एक बहुत अच्छी स्थिति है। बीसवीं सदी के कुछ वृहत राजनैतिक स्वप्न हमें जिस तरह आश्वित्ज़, हिरोशिमा और ग्रेट लीप फॉरवर्ड की ओर ले गए थे, उनको देखते हुए सम्भवतः हम ओछे दिमाग़ वाले नौकरशाहों के हाथों में बेहतर स्थिति में ही हैं। दिव्य प्रतीत होती प्रौद्योगिकी और अहंकारोन्मत्त राजनीति का मेल विनाशकारी हो सकता है। बहुत-से नव्य-उदारवादी अर्थशास्त्रियों और राजनीति विज्ञानियों का तर्क है कि सारे महत्त्वपूर्ण फ़ैसले मुक्त बाज़ार के हाथों में सौंप देना सबसे अच्छा है। इस तरह वे राजनेताओं को उनकी उस अकर्मण्यता और अज्ञानता के लिए एक अचूक बहाना उपलब्ध कराते हैं, जिनकी पुनर्व्याख्या गहन प्रज्ञा के रूप में की जाती है। राजनेताओं को यह मानना सुविधाजनक लगता है कि अगर वे दुनिया को नहीं समझते तो इसकी वजह यह है कि उन्हें उसको समझने की ज़रूरत नहीं है।

लेकिन दिव्य प्रतीत होती प्रौद्योगिकी के अदूरदर्शी राजनीति के साथ मिश्रण के भी अपने नकारात्मक पहलू हैं। भविष्य-दृष्टि का अभाव हमेशा वरदान नहीं होता, और सारी भविष्य-दृष्टियाँ अनिवार्यतः बुरी नहीं होतीं। बीसवीं सदी की मनहूस नाज़ी भविष्य-दृष्टि की घज्जियाँ ख़ुद-ब-ख़ुद नहीं बिखर गई थीं। उसको समाजवाद और उदारवाद की उतनी ही भव्य विश्वदृष्टियों ने पराजित किया था। अपने भविष्य को बाज़ार की शक्तियों के हाथों में सौंप देना ख़तरनाक है, क्योंकि ये शक्तियाँ वह करती हैं, जो बाज़ार के हित में है, वह नहीं जो मानव जाति या दुनिया के हित में है। बाज़ार का हाथ जितना विवेक-शून्य है उतना ही वह अदृश्य भी है, और अगर उसके ज़िम्मे पर छोड़ दिया गया तो भूमण्डल की ताप-वृद्धि या आर्टिफ़िशल इंटेलिजेंस की ख़तरनाक सम्भावनाओं के बारे में यह कुछ भी नहीं कर पाएगा।

कुछ लोग मानते हैं कि कोई-न-कोई व्यक्ति तो ही है, जो उत्तरदायी है। लोकतान्त्रिक राजनेता या निरंकुश आततायी नहीं, बल्कि उन अरबपतियों की छोटी-सी मण्डली जो गुपचुप ढंग से दुनिया को चलाते हैं, लेकिन हर चीज़ में षड्यन्त्र सूँघने की ऐसी प्रवृत्तियाँ कभी कारगर नहीं होतीं, क्योंकि वे व्यवस्था की पेचीदगी को कम करके आँकती हैं। परदे के पीछे बैठकर सिगार और स्कॉच पीते मुट्ठी भर अरबपति भूमण्डल पर घटित हो रही हर घटना के बारे में शायद ही कुछ समझ सकते हों, उसको नियन्त्रित कर पाना तो दूर की बात है। निर्दयी अरबपति और छोटे-छोटे स्वार्थी समूह आज की अराजक दुनिया में फलफूल रहे हैं, तो इसलिए नहीं कि उनको दूसरे लोगों से बेहतर ढंग से नक़्शा पढ़ना आता है, बल्कि इसलिए कि उनके लक्ष्य बहुत ओझे हैं। एक अराजक व्यवस्था में एकतरफ़ा नज़रिये के अपने फ़ायदे होते हैं, और अरबपतियों की ताक़त पूरी तरह से उनके लक्ष्यों के अनुपात में होती है। जब दुनिया के समृद्धतम उद्योगपति एक अरब डॉलर और कमाना चाहते हैं, तो इसके लिए वे आसानी-से व्यवस्था का दुरुपयोग कर सकते हैं। इसके विपरीत

अगर वे वैश्विक ग़ैरबराबरी को कम करने या भूमण्डलीय ताप को रोकने के इच्छुक भी हों, तो भी वे ऐसा नहीं कर पाएँगे, क्योंकि व्यवस्था बहुत ज़्यादा पेचीदा है।

लेकिन ऐसा बहुत कम ही होता है कि सत्ता का शून्य लम्बे तक बना रह सकता हो। अगर इक्कीसवीं सदी में पारम्परिक राजनैतिक संरचनाएँ सार्थक भविष्य-दृष्टियाँ उत्पन्न कर पाने के लिहाज़ से पर्याप्त तेज़ी के साथ डेटा प्रॉसेस करने की स्थिति में नहीं रह जातीं, तो उनकी जगह लेने के लिए नई और ज़्यादा दक्ष संरचनाएँ विकसित हो जाएँगी। ये नई संरचनाएँ पिछली लोकतान्त्रिक या सर्वसत्तादी संस्थाओं से बहुत भिन्न हो सकती हैं। सवाल सिर्फ़ यह है कि इन संरचनाओं को कौन खड़ा करेगा और कौन नियन्त्रित करेगा। अगर मानव जाति अब इसमें सक्षम नहीं रह गई है, तो हो सकता है वह यह काम किसी और को सौंप दे।

इतिहास का सार-संक्षेप

डेटावादी परिप्रेक्ष्य में हम समूची मानव प्रजातियों की व्याख्या एक एकल डेटा-प्रॉसेसिंग प्रणाली के रूप में कर सकते हैं, जिसमें अलग-अलग मनुष्य उसकी चिप्स के रूप में काम करते हैं। अगर ऐसा है, तो हम समग्र इतिहास को भी चार बुनियादी पद्धतियों के माध्यम से इस प्रणाली की दक्षता में वृद्धि करने वाली एक प्रक्रिया के रूप में समझ सकते हैं:

1. **प्रॉसेसरों की संख्या में वृद्धि।** 100,000 लोगों की आबादी वाले नगर में 1,000 आबादी वाले गाँव के मुक़ाबले ज़्यादा कम्प्यूटिंग शक्ति होती है।
2. **प्रॉसेसरों की विविधता में वृद्धि।** अलग-अलग प्रॉसेसर डेटा की गणना और विश्लेषण के लिए भिन्न तरीक़ों का इस्तेमाल कर सकते हैं। इसलिए एक व्यवस्था में कई क़िस्म के प्रॉसेसरों का इस्तेमाल उसकी गतिशीलता और सृजनात्मकता में वृद्धि कर सकता है। किसी किसान, पुरोहित और चिकित्सक के बीच का वार्तालाप ऐसे अनूठे विचारों को जन्म दे सकता है, जो तीन शिकारी-संग्रहकर्ताओं के बीच के वार्तालाप से कभी सामने न आए होते।
3. **प्रॉसेसरों के बीच के रिश्तों में वृद्धि।** अगर हम एक-दूसरे से कमज़ोर ढंग से जुड़े हुए हैं, तो प्रॉसेसरों की संख्या और विविधता में वृद्धि करने का कोई ख़ास मतलब नहीं है। दस नगरों को जोड़ने वाले व्यापारिक तन्त्र के परिणामस्वरूप दस अलग-थलग नगरों के मुक़ाबले बहुत अधिक आर्थिक, प्रौद्योगिक और सामाजिक नवाचार सम्भव हैं।
4. **मौजूदा रिश्तों के बीच क्रियाशीलता की स्वतन्त्रता में वृद्धि।** अगर डेटा उन्मुक्त ढंग से प्रवाहित नहीं होता, तो प्रॉसेसरों को आपस में जोड़ने से शायद ही कोई फ़ायदा होगा। दस शहरों के बीच सड़कें बना देना बहुत उपयोगी नहीं होगा अगर उन

सड़कों पर लुटेरों का आतंक हो, या अगर कोई आतंकग्रस्त स्वेच्छाचारी व्यापारियों और यात्रियों को उनकी मर्ज़ी के मुताबिक़ आवाजाही करने की गुंजाइश न दे।

ये चार पद्धतियाँ अक्सर एक दूसरे के विरोध में जाती हैं। प्रॉसेसरों की संख्या और विविधता जितनी ही ज़्यादा होती है, उनको उन्मुक्त ढंग से आपस में जोड़ना उतना ही मुश्किल होता है। इसके परिणामस्वरूप सेपियनों की डेटा-प्रॉसेसिंग प्रणाली चार मुख्य अवस्थाओं से होकर गुज़री है, जिनमें से प्रत्येक अवस्था की विशेषता उसके द्वारा एक अलग पद्धति पर ज़ोर देने के रूप में सामने आती है।

पहली अवस्था की शुरुआत संज्ञानात्मक क्रान्ति के साथ हुई थी, जिसकी वजह से यह मुमकिन हो सका कि बड़ी संख्या में सेपियन एक एकल डेटा-प्रॉसेसिंग तन्त्र से जुड़ सके। इसने सेपियनों को तमाम दूसरे मनुष्यों और अन्य प्राणियों पर निर्णायक बढ़त प्रदान की। जहाँ आप निएंडरथलों, चिम्पांज़ियों या हाथियों को एक निश्चित से ज़्यादा संख्या में एक ही तन्त्र से नहीं जोड़ सकते, वहीं इस मामले में सेपियनों की संख्या की कोई सीमा नहीं है।

डेटा-प्रॉसेसिंग के मामले में अपनी इस बढ़त का इस्तेमाल सेपियनों ने पूरी दुनिया को उलटकर रख देने में किया, हालाँकि जैसे-जैसे वे अलग-अलग मुल्कों और जलवायुओं में फैलते गए, वैसे-वैसे वे एक-दूसरे के साथ अपना सम्पर्क खोते गए और विभिन्न सांस्कृतिक रूपान्तरणों से गुज़रे। इसका परिणाम इंसानी संस्कृतियों की उस विपुल विविधता के रूप में सामने आया, जिनमें से हरेक की अपनी जीवन-शैली, आचार-पद्धतियाँ और विश्वदृष्टियाँ थीं। इस तरह इतिहास की पहली अवस्था ने संयोजकता की क़ीमत पर मानवीय प्रॉसेसरों संख्या और रूपाकारों को विकसित किया: 20,000 हज़ार साल पहले उससे ज़्यादा सेपियन थे, जितने 70,000 साल पहले हुआ करते थे, और यूरोप के सेपियन चीन के सेपियनों से भिन्न तरी़के से सूचना को प्रॉसेस किया करते थे, लेकिन, यूरोप और चीन के लोगों के बीच कोई सम्पर्क नहीं था, और तब यह बात नितान्त असम्भव प्रतीत हुई होती कि एक दिन सारे सेपियन एक अकेले डेटा-प्रॉसेसिंग तन्त्र का हिस्सा होंगे।

दूसरी अवस्था की शुरुआत कृषि क्रान्ति के साथ हुई और 5,000 साल पहले तक लेखन और पैसे के आविष्कार के समय तक जारी रही। कृषि ने जनसंख्यात्मक वृद्धि को इस क़दर गति दी कि इंसानी प्रॉसेसरों की संख्या बहुत तेज़ी-से बढ़ी। इसी के साथ-साथ कृषि ने बहुत बड़ी संख्या में लोगों को अन्तरंग निकटता में एकसाथ रहने में सक्षम बनाया, और इस तरह ऐसे धने समूहों को उत्पन्न किया, जिनमें प्रॉसेसरों की अपूर्व संख्या शामिल थी। इसके अतिरिक्त, कृषि ने विभिन्न समूहों को एक-दूसरे के साथ व्यापार और संवाद करने की नई प्रेरणाएँ और अवसर तैयार किए। तब भी, इस दूसरी अवस्था में अपकेन्द्रीय शक्तियाँ प्रभावी बनी रहीं। लेखन और पैसे के अभाव में मनुष्य नगरों, राज्यों या साम्राज्यों

की स्थापना नहीं कर सकते थे। मानव जाति अभी भी असंख्य छोटे-छोटे क़बीलों में बँटी हुई थी, जिनमें से हर क़बीले की अपनी जीवन-शैली, और विश्वदृष्टि थी। समूची मानव जाति को संगठित करने की तब कल्पना भी नहीं थी।

तीसरी अवस्था की शुरुआत लगभग 5,000 साल पहले लेखन और पैसे के आविष्कार के साथ हुई और वैज्ञानिक क्रान्ति की शुरुआत के समय तक जारी रही। लेखन और पैसे की बदौलत मानवीय सहकार के गुरुत्वाकर्षी क्षेत्र ने अन्ततः अपकेन्द्रीय शक्तियों को पराजित कर दिया। नगरों और राज्यों के निर्माण के लिए मनुष्यों के समूह आपस में जुड़े और एक दूसरे में धुल गए। विभिन्न नगरों और राज्यों के बीच के वाणिज्यिक सम्पर्क भी मज़बूत हुए। कम-से-कम ईसापूर्व पहली सहस्राब्दी के समय से - जब सिक्के, साम्राज्य और सार्वभौमिक मज़हब प्रकट हुए - मनुष्यों ने सचेतन ढंग से एक ऐसे एकल तन्त्र को गढ़ने का ख़्वाब देखना आरम्भ किया जो समूचे भूमण्डल को अपने में समेट सकता।

यह सपना वास्तविकता में तब्दील हुआ इतिहास की चौथी और अन्तिम अवस्था में, जिसकी शुरुआत 1492 के आस-पास हुई। आधुनिकता के शुरुआती दौर के खोजियों, विजेताओं और सौदागरों ने उन प्रथम महीन धागों को बुना था, जिन्होंने समूची दुनिया को घेर लिया था। परवर्ती आधुनिक काल में इन धागों को मज़बूत और मोटा बनाया गया, जिससे कोलम्बस के दिनों का मकड़ी का जाल इक्कीसवीं सदी के फौलाद और डामर से निर्मित जाल में बदल गया। इससे भी ज़्यादा महत्त्वपूर्ण यह है कि सूचना को उत्तरोत्तर इस भूमण्डलीय जाली में सर्वत्र मुक्त ढंग से प्रवाहित होने की गुंजाइश दी गई। जब कोलम्बस ने पहली बार अमेरिकी जाल को यूरेशियाई जाल से जोड़ा, तब हर साल डेटा के थोड़े से ही अंश, सांस्कृतिक पूर्वाग्रहों, सख़्त सेंसरशिप और राजनैतिक नियन्त्रण का शिकार होते हुए, महासागर के पार जा पाते थे, लेकिन जैसे-जैसे वर्ष गुज़रते गए, वैसे-वैसे मुक्त बाज़ार, वैज्ञानिक समुदाय, क़ानून के राज और लोकतन्त्र के प्रसार ने मिलकर इन अवरोधों को समाप्त कर दिया। हम अक्सर कल्पना करते हैं कि लोकतन्त्र और मुक्त बाज़ार की जीत इसलिए हुई, क्योंकि वे 'अच्छे' थे। सच्चाई यह है कि उनकी जीत इसलिए हुई, क्योंकि उन्होंने भूमण्डलीय डेटा-प्रॅसेसिंग को उन्नत किया।

इस तरह, पिछले 70,000 सालों में मानव जाति पहले बिखरी, फिर विभिन्न समूहों में विभाजित हुई, और अन्ततः एक बार फिर से मिलकर एक हो गई, लेकिन यह एकीकरण हमें वापस शुरुआत की ओर नहीं ले गया। जब भिन्न-भिन्न मानव समूह आज के विश्व ग्राम में एकरूप हो गए, तो इनमें से हर समूह अपने साथ उन विचारों, औज़ारों और आचार-पद्धतियों की एक विरासत लेकर आया, जिसको उसने अपने जीवन-काल में एकत्र और विकसित किया था। हमारे आधुनिक गोदाम मध्य पूर्व के गेहूँ, ऐंडियाई आलुओं, न्यू

गिनियाई शक्कर और इथियोपियाई कॉफ़ी से अँटे पड़े हैं। इसी तरह हमारी भाषा, मज़हब, संगीत और राजनीति समूचे ग्रह की विरासतों से परिपूर्ण हैं।

अगर मानव जाति वाक़ई एक एकल डेटा-प्रॉसेसिंग प्रणाली है, तो उसका हासिल (आउटपुट) क्या है? डेटावादी कहेंगे कि इसका हासिल होगा एक नई और इससे भी ज़्यादा कारगर डेटा-प्रॉसेसिंग प्रणाली की रचना, जिसका नाम है इंटरनेट-ऑफ़-ऑल-थिंग्स। जैसे ही यह मुहिम पूरी हो जाती है, *होमो सेपियन्स* का अस्तित्व समाप्त हो जाएगा।

सूचना आज़ाद होना चाहती है

पूँजीवाद की ही तरह डेटावाद की शुरुआत भी एक तटस्थ वैज्ञानिक सिद्धान्त के रूप में हुई थी, लेकिन अब यह एक ऐसे मज़हब में बदल रहा है, जो सही और ग़लत का फ़ैसला करने का दावा करता है। 'सूचना-प्रवाह' इस नए मज़हब का परम मूल्य है। अगर जीवन सूचना की लय है, और अगर हम सोचते हैं कि जीवन अच्छा है, तो इससे यह नतीजा निकलता है कि हमें विश्व में सूचना के प्रवाह को अधिक घनीभूत और व्यापक बनाना चाहिए। डेटावाद के मुताबिक़ मानवीय अनुभवों में कोई पवित्रता नहीं है और *होमो सेपियन्स* सृष्टि का शिखर या भविष्य के किसी मानव देवता का पूर्ववर्ती नहीं है। मनुष्य इस इंटरनेट-ऑफ़-ऑल-थिंग्स के महज़ औज़ार होंगे, जो अन्ततः पृथ्वी ग्रह से बाहर जाकर समूची आकाशगंगा तक और समूचे ब्रह्माण्ड तक फैल जा सकता है। यह ब्रह्माण्डीय डेटा-प्रॅसेसिंग प्रणाली ईश्वर जैसी होगी। यह सब कुछ होगी और हर चीज़ को नियन्त्रित करेगी, और इसमें विलीन हो जाना मनुष्य की नियति होगी।

यह अवधारणा कुछ परम्परिक मज़हबी भविष्य-दृष्टियों की याद दिलाने वाली है। जैसे कि हिन्दुओं का विश्वास है मनुष्य ब्रह्माण्ड की शाश्वत आत्मा में विलीन हो सकता है और होना चाहिए। ईसाइयों का विश्वास है कि मृत्यु के बाद सन्त ईश्वर की अनन्त महिमा में लय हो जाते हैं, जबकि पापात्माएँ ख़ुद को उसके वजूद से काट लेते हैं। दरअसल, सिलिकॉन वैली में बैठे डेटावादी भविष्य-दृष्टा सुविचारित ढंग से पारम्परिक मसीहाई भाषा का ही इस्तेमाल करते हैं। उदाहरण के लिए, रे कुर्जवेल की भविष्यवाणियों की पुस्तक का नाम है *द सिंग्यूलेरिटी इज़ नियर*, जो जॉन द बैप्टिस्ट की इस पुकार को प्रतिध्वनित करती है कि 'द किंगडॅम ऑफ़ हैवन इज़ नियर' ('स्वर्ग का राज्य क़रीब है') (मैथ्यू 3:2)।

जो लोग अभी भी हाड़-मांस के बने नश्वर मनुष्यों की उपासना करते हैं,उनको डेटावाद समझाता है कि वे एक पुरानी पड़ चुकी प्रौद्योगिकी से चिपके हुए हैं। *होमो सेपियन्स* एक गया बीता ऐल्गरिदम है। आख़िरकार, मनुष्य चूज़ों से किस मायने में बेहतर हैं? सिर्फ़ इस मामले में कि इंसानी सूचना बहुत जटिल बुनावट में प्रवाहित होती है। मनुष्य चूज़ों के

मुक़ाबले ज़्यादा डेटा को जज़्ब करता है, चूज़ों द्वारा इस्तेमाल किए जाने वाले ऐल्गरिदमों से बेहतर ऐल्गरिदमों का इस्तेमाल करते हुए उनको प्रॉसेस करता है। (रोज़मर्रा की भाषा में इसका मतलब है कि मुनष्यों में कथित रूप से ज़्यादा गहरी भावनाएँ और उत्कृष्ट बौद्धिक क़ाबिलियतें होती हैं। लेकिन याद रखें कि जीवविज्ञान के ताज़ा सिद्धान्त के अनुसार भावनाएँ और बुद्धिमत्ता महज़ ऐल्गरिदम हैं।) तब, अगर हम एक ऐसी डेटा-प्रॉसेसिंग प्रणाली रच लेते हैं, जो मनुष्यों से ज़्यादा डेटा जज़्ब कर सकेगा, और उसको ज़्यादा सक्षम तरीक़े से प्रॉसेस कर सकेगा, तब क्या वह प्रणाली मनुष्य से ठीक उसी तरह श्रेष्ठ नहीं होगी, जिस तरह मनुष्य चूज़ों से श्रेष्ठ हैं?

डेटावाद व्यर्थ भविष्यवाणियों तक सीमित नहीं है। प्रत्येक मज़हब की भाँति इसके व्यावहारिक मज़हबी निर्देश भी हैं। इनमें पहला और मुख्य निर्देश है कि एक डेटावादी को ज़्यादा-से-ज़्यादा माध्यमों से जुड़ते हुए, और ज़्यादा-से-ज़्यादा सूचना को उत्पन्न करते हुए तथा उसको पचाते हुए डेटा-प्रवाह की गति बढ़ानी चाहिए। दूसरे कामयाब मज़हबों की तरह डेटावाद धर्मप्रचारक (मिशनरी) भी है। इसका दूसरा धर्मादेश है कि हर चीज़ को प्रणाली से जोड़ो, उन विधर्मियों समेत जो जुड़ना नहीं चाहते (प्लग-इन नहीं होना चाहते)। और 'हर चीज़' का मतलब है महज़ मनुष्यों से ज़्यादा को। इसका मतलब है हर चीज़। हमारी कायाएँ तो निश्चय ही, लेकिन सड़कों पर दौड़ती कारें, रसोई घर के रेफ्रिजरेटर, दड़बों में बन्द चूज़े और जंगल के पेड़ - इन सबको इंटरनेट-ऑफ़-ऑल-थिंग्स से जुड़ा होना चाहिए। रेफ्रिजरेटर ड्राअर में रखे अण्डों पर निगरानी रखेगा, और जब नई खेप की ज़रूरत होगी तो वह चूज़ों के दड़बों को इसकी इत्तला देगा। कारें एक दूसरे से बात किया करेंगी, और जंगल के पेड़ मौसम और कार्बन डाइऑक्साइड के स्तरों की सूचना देंगे। हमें विश्व के किसी भी हिस्से को जीवन के विशाल जाल से काटकर नहीं रखना होगा। इसके विपरीत, डेटा के प्रवाह को अवरुद्ध करना सबसे बड़ा पाप होगा। लिहाज़ा डेटावाद सूचना की स्वतन्त्रता को सबसे बड़ी चीज़ मानता है।

बहुत कम ऐसा होता है कि लोग पूरी तरह से कोई नया मूल्य लेकर सामने आते हों। आख़िरी बार ऐसा अठारहवीं सदी में हुआ था, जब मानववादी क्रान्ति ने मानवीय स्वतन्त्रता, मानवीय समानता और मानवीय भाईचारे के उत्तेजक आदर्शों के उपदेश देने शुरू किए थे। 1789 से, अनेक युद्धों, क्रान्तियों और विप्लवों के बावजूद मनुष्य किसी नए मूल्य की कल्पना नहीं कर सके हैं। बाद का सारा टकराव और संघर्ष या तो तीन मानववादी मूल्यों के नाम पर, या ईश्वर के आदेश का पालन या राष्ट्र की सेवा जैसे उनसे भी पुराने मूल्यों के नाम पर किए गए। डेटावाद 1789 के बाद का वह पहला आन्दोलन है, जिसने सच्चे अर्थों में अनूठे मूल्य की सृष्टि की: सूचना की स्वतन्त्रता।

हमें सूचना की स्वतन्त्रता को अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता के पुराने उदारवादी मूल्य से भ्रमित नहीं करना चाहिए। अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता मनुष्यों को प्रदान की गई थी, और वे जो कुछ भी सोचना और कहना चाहते थे उसके अधिकार की रक्षा की गई थी, जिसमें उनको अपना मुँह बन्द रखने और अपने विचारों को अपने तक सीमित रखने का अधिकार शामिल था। इसके विपरीत सूचना की स्वतन्त्रता मनुष्य को प्रदान नहीं की गई है। यह सूचना को प्रदान की गई है। इसके अलावा, यह अनूठा मूल्य, डेटा पर स्वामित्व रखने और उसकी गति को प्रतिबन्धित करने के मनुष्य के अधिकार पर सूचना के अधिकार को उन्मुक्त ढंग से चक्कर काटने का विशेषाधिकार प्रदान कर, मनुष्यों की पारम्परिक अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता को सीमित कर सकता है।

11 जनवरी 2013 को डेटावाद को इसका पहला शहीद हाथ लगा था जब छब्बीस साल के एक अमेरिकी हैकर (दूसरों के कम्प्यूटरों की सूचना चुराने के उद्देश्य से उन कम्प्यूटरों में घुसपैठ करने वाला) आरों स्वार्ट्ज़ ने अपने अपार्टमेंट में आत्महत्या कर ली थी। स्वार्ट्ज़ असामान्य प्रतिभा का धनी था। चौदह साल की उम्र में उसने आरएसएस कम्प्यूटर भाषा (रिच साइट समरी प्रोटोकॉल) विकसित करने में मदद की थी। स्वार्ट्ज़ सूचना की स्वतन्त्रता में भी दृढ़ विश्वास रखता था। 2008 में उसने 'गुरिल्ला ओपन एक्सेस मैनिफ़ेस्टो' का प्रकाशन किया, जो सूचना के उन्मुक्त और असीमित प्रवाह की माँग करता था। स्वार्ट्ज़ ने कहा था कि 'हम सूचना को, वह जहाँ कहीं भी जमा है, वहाँ से उठाना चाहते हैं, उसकी कॉपियाँ तैयार करना चाहते हैं और उनमें दुनिया के साथ साझा करना चाहते हैं। जो भी चीज़ें स्वत्त्वाधिकार (कॉपीराइट) से मुक्त हैं, हम उनको प्राप्त कर अभिलेखागार में शामिल करना चाहते हैं। हम गुप्त सूचना-भण्डारों को ख़रीद कर उनको वेब पर डालना चाहते हैं। हम वैज्ञानिक पत्रिकाओं को डाउनलोड करना चाहते हैं और उनको फ़ाइलों में साझा करने वाले नेटवर्कों पर अपलोड करना चाहते हैं। हम गुरिल्ला ओपन एक्सेस के लिए लड़ना चाहते हैं'।

स्वार्ट्ज़ अपने वचन का पक्का था। वह जेएसटीओआर डिजिटल लाइब्रेरी से नाराज़ था क्योंकि वह अपने ग्राहकों से पैसे वसूल करती थी। जेएसटीओआर के पास लाखों वैज्ञानिक आलेख और अध्ययन हैं, और वह वैज्ञानिकों तथा पत्रिकाओं के सम्पादकों की अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता में विश्वास करती है, जिसमें उनके लेख पढ़ने के लिए फ़ीस वसूलने की स्वतन्त्रता शामिल है। जेएसटीओआर के मुताबिक़ अगर मैं अपने द्वारा गढ़े गए विचारों के लिए भुगतान प्राप्त करता हूँ, तो ऐसा करना मेरा अधिकार है। स्वार्ट्ज़ का सोचना इससे भिन्न था। उसका मानना था कि सूचना आज़ादी चाहती है, विचारों पर उनका स्वामित्व नहीं होता, जिन्होंने उनको गढ़ा होता है, और यह कि डेटा को दीवारों के पीछे बन्द कर, प्रवेश-शुल्क वसूल करना ग़लत है। उसने जेएसटीओआर तक पहुँच बनाने के

लिए एमआईटी के कम्प्यूटर नेटवर्क का इस्तेमाल किया, और सैकड़ों हज़ारों की तादाद में वैज्ञानिक लेख डाउनलोड कर लिए, जिनको उसका इरादा इंटरनेट पर डालने का था, ताकि उनको हर कोई बिना किसी रोक-टोक के पढ़ सकता।

स्वार्ट्ज़ को गिरफ़्तार कर लिया गया और उस पर मुक़दमा चलाया गया। जब उसको अहसास हो गया कि उसको दोषी क़रार दिया जा सकता है और जेल भेजा जा सकता है, तो उसने फाँसी लगा ली। हैकरों ने प्रतिक्रियाएँ करते हुए हस्ताक्षर अभियान चलाए और हमलों का रुख स्वार्ट्ज़ पर अत्याचार करने वाली अकादमिक और सरकारी संस्थाओं और सूचना की स्वतन्त्रता का अतिक्रमण करने वालों के ख़िलाफ़ मोड़ दिया गया। दबाव में आकर जेएसटीओआर ने इस त्रासदी में अपना हाथ होने को लेकर माफ़ी माँगी और आज यह डिजिटल लाइब्रेरी अगर अपने सारे-के-सारे डेटा तक नहीं तो उसके ज़्यादातर हिस्से तक बेरोक-टोक पहुँच बनाने की छूट देती है।

सन्देहवादियों को यक़ीन दिलाने के लिए डेटावादी प्रचारक सूचना की आज़ादी के अपरिमित फ़ायदों के बारे में निरन्तर बताते रहते हैं। जिस तरह पूँजीवादियों का यह विश्वास है कि सब कुछ आर्थिक उन्नति पर निर्भर करता है, उसी तरह डेटावादी मानते हैं कि सारी अच्छी चीज़ें - जिनमें आर्थिक उन्नति भी शामिल है - सूचना की स्वतन्त्रता पर निर्भर करती हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका का विकास सोवियत संघ से ज़्यादा तेज़ी-से क्यों हुआ था? क्योंकि संयुक्त राज्य अमेरिका में सूचना ज़्यादा उन्मुक्त ढंग से प्रवाहित हुई थी। अमेरिकी लोग ईरानियों या नाइजीरियाइयों से ज़्यादा तन्दुरुस्त, समृद्ध और सुखी क्यों हैं? सूचना की आज़ादी की बदौलत। इसलिए अगर हम एक बेहतर दुनिया रचना चाहते हैं, तो डेटा को आज़ाद करना ही इसकी कुंजी है।

हम पहले ही देख चुके हैं कि गूगल नई महामारियों का पता पारम्परिक स्वास्थ्य संगठनों की तुलना में ज़्यादा तेज़ी-से लगा सकता है, लेकिन तभी जब हम उसको अपने द्वारा उत्पन्न की जा रही सूचना तक मुक्त ढंग से पहुँच बनाने की छूट दें। इसी तरह मुक्त प्रवाहित डेटा, उदाहरण के लिए परिवहन व्यवस्था को तर्कसंगत रूप देकर, प्रदूषण और कचरे की मात्रा कम कर सकता है। 2010 में दुनिया में निजी कारों की संख्या 1 अरब से ज़्यादा थी, और यह संख्या उसके बाद से लगातार बढ़ती ही जा रही है। ये कारें ग्रह को प्रदूषित करती हैं और, मुख्यतः सड़कों को उत्तरोत्तर चौड़ा करने को मज़बूर करती हुई और ज़्यादा-से-ज़्यादा पार्किंग-स्थलों को अनिवार्य बनाती हुई, मूल्यवान संसाधनों को नष्ट करती हैं। लोग निजी परिवहन की सुविधा के इस क़दर अभ्यस्त हो गए हैं कि इसकी कोई सम्भावना नहीं कि वे बसों और ट्रेनों से काम चलाने को तैयार होंगे, लेकिन डेटावादियों का कहना है कि लोग वास्तव में जो चाहते हैं, वह निजी कार नहीं, बल्कि आवागमन की

सहूलियत है, और एक अच्छी डेटा-प्रॉसेसिंग प्रणाली यह सहूलियत अधिक सस्ते में और कारगर ढंग से उपलब्ध करा सकती है।

मेरे पास एक निजी कार है, लेकिन यह ज़्यादातर वक़्त पार्किंग में सुस्ताती रहती है। एक आम दिन, मैं अपनी कार में सुबह 8:04 पर बैठता हूँ और आधा घण्टा ड्राइव करने के बाद यूनिवर्सिटी पहुँच जाता हूँ जहाँ मैं दिनभर के लिए अपनी कार को पार्क कर देता हूँ। शाम 6:11 पर मैं वापस अपनी कार के पास पहुँचता हूँ, आधा घण्टा ड्राइव करने के बाद वापस घर पहुँच जाता हूँ, और काम ख़त्म। इस तरह मैं दिन भर में महज़ एक घण्टा अपनी कार का इस्तेमाल करता हूँ। तब फिर मुझे इसको बाक़ी तेईस घण्टे तक रखने की क्या ज़रूरत है? क्यों न कम्प्यूटर ऐल्गरिदम द्वारा संचालित स्मार्ट कार-पूल सिस्टम तैयार किया जाए? कम्प्यूटर को मालूम होगा कि मुझे 8:04 पर घर से निकलना होता है और वह ठीक उस वक़्त किसी सबसे क़रीब की स्वचालित कार को मुझे लेने भेज देगा। ठीक शाम 6:11 बजे, जैसे ही मैं यूनिवर्सिटी के फाटक से बाहर निकलूँगा, एक और सार्वजनिक कार मेरे पास आकर खड़ी हो जाएगी, और मुझे घर ले जाएगी। इस तरह 5 करोड़ सार्वजनिक कारें 1 अरब निजी कारों की जगह ले लेंगी, और हमें बहुत कम सड़कों, पुलों, सुरंगों और पार्किंग स्थलों की ज़रूरत भी रह जाएगी। ऐसा निश्चय ही तभी होगा जब मैं अपनी निजता त्याग दूँ और ऐल्गरिदमों को यह जानने की छूट दूँ कि मैं कहाँ पर हूँ और मुझे कहाँ जाना है।

दर्ज़ करें, अपलोड करें, साझा करें!

लेकिन हो सकता है आपको मनाने की ज़रूरत न हो, ख़ासतौर से अगर आप बीस साल से कम उम्र के हैं। लोग डेटा-प्रवाह का हिस्सा बनना ही चाहते हैं, भले ही इसके लिए उनको अपनी निजता, अपनी स्वायत्तता और अपनी वैयक्तिकता को ही क्यों न त्यागना पड़े। मानववादी कला वैयक्तिक प्रतिभा का महिमामण्डन करती है, इसलिए एक नैपकिन पर किए गए पिकासो के अर्थहीन रेखांकन साथबे की नीलामी में लाखों कमा लेते हैं। मानववादी विज्ञान वैयक्तिक शोधकर्ताओं का महिमामण्डन करता है, और हर शोधकर्ता साइंस या नेचर निबन्ध के शीर्ष पर अपना नाम अंकित किए जाने का ख़्वाब देखता है, लेकिन आज उत्तरोत्तर बढ़ती संख्या में कलात्मक और वैज्ञानिक सृजन 'हर किसी' के अनवरत सहयोग से किया जा रहा है। विकीपीडिया का लेखन कौन करता है? हम सब।

व्यक्ति एक भीमकाय व्यवस्था, जिसको वास्तव में कोई नहीं समझता, के भीतर एक छोटी-सी चिप बनता जा रहा है। हर दिन मैं ईमेल पढ़ते हुए, फ़ोन सुनते हुए और लेखों को पढ़ते हुए अनगिनत डेटा अंशों (बिट्स) को अपने भीतर सोखता हूँ(डेटा को प्रॉसेस करता हूँ, और नए डेटा अंशों को ईमेल करते हुए, फ़ोन करते हुए और लेख लिखते हुए वापस

संचारित करता हूँ। मैं वास्तव में नहीं जानता कि इस विशाल योजना के भीतर मेरी जगह और भूमिका कहाँ और क्या है, या कि डेटा के मेरे अंश करोड़ों दूसरे इंसानों और कम्प्यूटरों द्वारा उत्पन्न किए गए डेटा-अंशों के साथ किस तरह जुड़ते हैं। मेरे पास यह सब पता लगाने के लिए वक़्त नहीं है, क्योंकि मैं तमाम ईमेलों का जवाब देने में ही बहुत व्यस्त रहता हूँ। और जैसे-जैसे मैं, और भी ईमेलों के जवाब देते हुए, और भी फ़ोन करते हुए तथा और भी लेख लिखते हुए, ज़्यादा-से-ज़्यादा डेटा प्रॉसेस करता जाता हूँ, वैसे-वैसे मैं अपने आस-पास के लोगों को और भी ज़्यादा डेटा से भरता जाता हूँ।

डेटा का यह अथक प्रवाह उन नए आविष्कारों और व्यवधानों को प्रेरित करता है जिनकी न तो किसी ने योजना बनाई होती है, न जिनको कोई नियन्त्रित करता या समझता है। कोई नहीं समझ पाता कि भूमण्डलीय अर्थव्यवस्था किस तरह काम करती है, या भूमण्डल की राजनीति कौन-सी दिशा अख़्तियार कर रही है, लेकिन किसी को समझने की ज़रूरत नहीं होती। आपको सिर्फ़ इतना भर करने की ज़रूरत है कि आप तेज़ी-से ईमेलों का जवाब दें - और व्यवस्था को छूट दें कि वह उनको पढ़ सके। जिस तरह मुक्त-बाज़ार के पूँजीपति बाज़ार के अदृश्य हाथ में विश्वास करते हैं, उसी तरह डेटावादी डेटा-प्रवाह के अदृश्य हाथ में विश्वास करते हैं।

जैसे-जैसे भूमण्डलीय डेटा-प्रॉसेसिंग व्यवस्था सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान होती जाती है, वैसे-वैसे इस व्यवस्था से जुड़ाव सारे अर्थ का स्रोत बनता जाता है। मनुष्य डेटा-प्रवाह में लय हो जाना चाहते हैं क्योंकि जब आप डेटा-प्रवाह का हिस्सा बन जाते हैं तो आप अपने से ज़्यादा बड़ी किसी चीज़ का हिस्सा बन जाते हैं। पारम्परिक मज़हब आपको विश्वास दिलाते थे कि आपका हर शब्द और कृत्य किसी महान ब्रह्माण्डीय योजना का अंग है, और ईश्वर आप पर हर पल निगाह रखता है और आपके सारे विचारों और अनुभूतियों पर ध्यान देता है। आज डेटा-मज़हब कहता है कि आपका प्रत्येक शब्द और कृत्य एक महा डेटा-प्रवाह का हिस्सा है, कि ऐल्गरिदम आप पर निरन्तर निगाह रखे हुए हैं और आप जो भी करते और महसूस करते हैं, वह उस सब पर ध्यान देता है। बहुत-से लोगों को यह चीज़ बहुत अच्छी लगती है। सच्चे आस्थावानों के लिए डेटा-प्रवाह से कट जाना जीवन का अर्थ खो देने का जोखिम उठाना है। वह सब कुछ जो आप करते हैं या अनुभव करते हैं उसके बारे में अगर कोई कुछ नहीं जानता, और अगर वह सब सूचना के भूमण्डलीय आदान-प्रदान में कोई योगदान नहीं करता, तो फिर वह सब करने या अनुभव करने का क्या अर्थ है?

मानववाद मानता है कि अनुभव हमारे भीतर घटित होते हैं, और यह कि जो कुछ भी घटित होता है उसका अर्थ हमें अपने भीतर खोजना चाहिए, और इस तरह विश्व को अर्थ से रंजित करना चाहिए। डेटावादी मानते हैं कि अनुभवों को अगर दूसरों के साथ बाँटा नहीं

जाता, तो उनका कोई मूल्य नहीं है, और हमें अर्थ को अपने भीतर खोजने की कोई ज़रूरत नहीं है - दरअसल हम उसे खोज भी नहीं सकते। हमें सिर्फ़ अपने अनुभवों को दर्ज़ करने और महा डेटा-प्रवाह से उनको जोड़ने भर की ज़रूरत है, और ऐल्गरिदम उनका अर्थ खोज लेंगे और हमें बताएँगे कि हमें क्या करना है। बीस साल पहले जापानी पर्यटक सार्वभौमिक मज़ाक़ के पात्र हुआ करते थे, क्योंकि वे हमेशा अपने साथ कैमरे रखते थे और हर नज़ारे की तसवीर खींचते थे। आज यह काम हर कोई करता है। अगर आप हिन्दुस्तान जाते हैं और आपको हाथी दिख जाता है, तो आप हाथी को नहीं देखते और ख़ुद से यह नहीं पूछते कि 'मैं कैसा महसूस करता हूँ?' - आप अपना स्मार्टफ़ोन टटोलने, हाथी की तसवीर लेने, उसको फ़ेसबुक पर डालने और यह जानने कि आपको कितने लाइक्स मिले, हर दूसरे मिनट पर अपना अकाउंट देखने में बहुत व्यस्त रहते हैं। निजी डायरी लिखना - जो पिछली पीढ़ियों की एक आम मानववादी रवायत हुआ करती थी - आज के ज़माने के बहुत-से नौजवानों को निहायत ही अर्थहीन काम लगता है। ऐसा कुछ भी लिखा ही क्यों जाए जिसको दूसरा कोई पढ़ ही नहीं सकता? नया नीति-वाक्य यह है: 'अगर आप कुछ अनुभव करते हैं - उसको रिकॉर्ड करिए। अगर आप कुछ रिकॉर्ड करते हैं - उसको अपलोड करिए। अगर आप कुछ अपलोड करते हैं - उसमें दूसरों से साझा करिए।'

इस पूरी पुस्तक के दौरान हमने बार-बार यह सवाल उठाया है कि वह क्या है जो मनुष्यों को दूसरे प्राणियों से श्रेष्ठ बनाता है। डेटावाद के पास इसका एक नया और सीधा-सा जवाब है। मनुष्यों के अनुभव अपने आप में भेड़ियों या हाथियों के अनुभवों से श्रेष्ठ नहीं हैं। डेटा का एक अंश उतना ही अच्छा है, जितना दूसरा अंश है, लेकिन मनुष्य अपने अनुभवों के बारे में कविताएँ और ब्लॉग लिख सकते हैं और उनको ऑनलाइन पोस्ट कर सकते हैं, और इस तरह वे भूमण्डलीय डेटा-प्रॉसेसिंग प्रणाली को समृद्ध करते हैं। यही चीज़ उनके डेटा-अंशों को महत्त्वपूर्ण बनाती है। भेड़िये यह काम नहीं कर सकते। इसलिए भेड़ियों के सारे अनुभवों का - वे चाहे कितने ही गहरे और जटिल क्यों न हों - कोई मूल्य नहीं है। इसीलिए यह आश्चर्य की बात नहीं कि हम अपने अनुभवों को डेटा में बदलने में इतने व्यस्त रहते हैं। ये कोई फ़ैशन का सवाल नहीं है। ये जीवित बने रहने का सवाल है। हमें ख़ुद के सामने और व्यवस्था के सामने यह साबित करते रहना अनिवार्य है कि हम अभी भी मूल्यवान हैं। और मूल्य अनुभव करने में नहीं, बल्कि इन अनुभवों को मुक्त-प्रवाहित डेटा में बदलने में निहित है।

(वैसे, भेड़ियों - या कम-से-कम उनके कुत्ता चचेरों - का मसला निराशाजनक नहीं है। 'नो मोर वूफ़' नामक एक कम्पनी कुत्तों के अनुभवों को पढ़ने के लिए एक हेल्मट विकसित कर रही है। यह हेल्मट कुत्तों की मस्तिष्कीय तरंगों की निगरानी करता है, और

'मैं नाराज़ हूँ' जैसी सरल भावनाओं का इंसानी भाषा में अनुवाद करने के लिए कम्प्यूटर ऐल्गरिदमों का इस्तेमाल करता है। मुमकिन है कि जल्दी ही आपके कुत्ते का अपना फ़ेसबुक या ट्विटर अकाउंट हो - जिसके लाइक्स और अनुयायी शायद आपसे ज़्यादा हों।)

स्वयं को जानिए

डेटावाद न तो उदार है और न ही मानववादी है, हालाँकि, इस बात को रेखांकित किया जाना चाहिए कि डेटावाद मानववाद-विरोधी नहीं है। इसमें मानवीय अनुभवों के विरुद्ध होने जैसी कोई बात नहीं है। यह सिर्फ़ ऐसा सोचता भर नहीं है कि ये अनुभव तात्त्विक रूप से मूल्यवान हैं। जब हमने तीन मुख्य मानववादी पन्थों का सर्वेक्षण किया था, तब हमने पूछा था कि इनमें से कौन-सा अनुभव सबसे ज़्यादा मूल्यवान है: बीथोवेन की पाँचवीं सिम्फ़ॅनी को सुनना, चक बेरी को सुनना, नाटी लड़की के दीक्षा-गीत को सुनना या कामोन्माद से भरी मादा भेड़िया की पुकार को सुनना। डेटावाद तर्क देगा कि यह पूरी-की-पूरी कोशिश ही राह से भटकी हुई है, क्योंकि संगीत का मूल्यांकन उस डेटा के आधार पर किया जाना चाहिए, जिसको वह धारण करता है, न कि उस अनुभव के आधार पर, जिसको वह उत्पन्न करता है। उदाहरण के लिए, डेटावादी समझाएगा कि पाँचवीं सिम्फ़ॅनी में नाटी लड़की के दीक्षा गीत से ज़्यादा डेटा है, क्योंकि उसमें ज़्यादा स्वर-संघातों और ध्वनियों का इस्तेमाल है और वह बहुत सारी सांगीतिक शैलियों के साथ संवाद करता है। नतीजतन, पाँचवीं सिम्फ़ॅनी की व्याख्या करने के लिए आपको ज़्यादा कम्प्यूटेशनल शक्ति की ज़रूरत पड़ती है, और ऐसा करते हुए आप ज़्यादा ज्ञान हासिल करते हैं।

इस दृष्टिकोण के अनुसार संगीत गणितीय बुनावट है। गणित प्रत्येक संगीत रचना का, साथ ही किन्हीं भी दो रचनाओं के बीच के सम्बन्ध का विवरण दे सकता है। इसलिए आप हर सिम्फ़ॅनी, गीत और पुकार के ठीक-ठीक डेटा-मूल्य को माप सकते हैं, और निर्धारित कर सकते हैं कि उनमें से कौन सबसे ज़्यादा समृद्ध है। जो अनुभव वे मनुष्यों या भेड़ियों में पैदा करते हैं वे वाक़ई मायने नहीं रखते। ये सही है कि पिछले लगभग 70,000 सालों से मानवीय अनुभव विश्व के सबसे ज़्यादा कारगर डेटा-प्रॉसेसिंग ऐल्गरिदम रहे हैं, इसलिए उनका महिमामण्डन उचित ही किया गया है, लेकिन हम जल्दी ही उस मुक़ाम पर पहुँच सकते हैं, जब ये ऐल्गरिदम पीछे छोड़ दिये जाएँगे, और यहाँ तक कि वे बोझ तक बन सकते हैं।

सेपियन हज़ारों साल पहले अफ़्रीका के सवाना में विकसित हुए थे, और उनके ऐल्गरिदम इस तरह बने ही नहीं हैं कि वे इक्कीसवीं सदी के डेटा-प्रवाह को बरत सकें। हम मानवीय डेटा-प्रॉसेसिंग प्रणाली को उन्नत रूप देने की कोशिश कर सकते थे, लेकिन हो

सकता है यह काफ़ी न हो। इंटरनेट-ऑफ़-ऑल-थिंग्स जल्दी ही एक ऐसा विपुल और तेज़ रफ़्तार डेटा-प्रवाह उत्पन्न कर सकता है, जिसको प्रोन्नत मानवीय ऐल्गरिदम तक बरत पाने में सक्षम नहीं होंगे। जब कारों ने घोड़ा गाड़ियों की जगह ले ली थी, तो हमने घोड़ों को प्रोन्नत नहीं किया था - हमने उनको अलग कर दिया था। शायद *होमो सेपियन्स* के साथ भी ऐसा ही कुछ किए जाने का वक़्त आ गया है।

डेटावाद मानवता के प्रति दो टूक प्रयोजनमूलक रवैया अपनाता है, जिसके तहत वह मानवीय अनुभवों के मूल्य को उनकी डेटा-प्रॉसेसिंग कार्यप्रणाली के मुताबिक़ आँकता है। अगर हम एक ऐसा ऐल्गरिदम विकसित करते हैं, जो यही काम बेहतर ढंग से करता है, तो मानवीय अनुभव अपना मूल्य खो देंगे। इस तरह अगर हम सिर्फ़ टैक्सी ड्राइवरों और डॉक्टरों को ही नहीं, बल्कि वकीलों, कवियों और संगीतकारों को भी श्रेष्ठतर कम्प्यूटर प्रोग्रामों से विस्थापित कर सकते हैं, तब अगर इन प्रोग्रामों में कोई चेतना या कोई व्यक्तिनिष्ठ अनुभव नहीं हैं, तो हमें इसकी चिन्ता क्यों करनी चाहिए? अगर कोई मानववादी मानवीय अनुभव की पवित्रता के प्रति भक्ति-भाव दिखाने लगता है, तो डेटावादी इस तरह के भावुकतापूर्ण पाखण्ड को नकार देगा। 'जिस अनुभव की आप प्रशंसा कर रहे हैं, वह महज़ एक पुराना पड़ चुका जैवरासायनिक ऐल्गरिदम है। 70,000 साल पहले अफ़्रीकी सवाना में वह ऐल्गरिदम आधुनिकतम हुआ करता था। बीसवीं सदी तक में वह सेना के लिए और अर्थव्यवस्था के लिए केन्द्रीय महत्त्व रखता था, लेकिन जल्दी हमारे पास उससे बेहतर ऐल्गरिदम होंगे'।

हॉलीवुड की बहुत-सी फ़िल्मों के जलवायु सम्बन्धी दृश्यों में मनुष्यों का सामना एलियन आक्रमणकारी बेड़ों से होता है, ऐसे विद्रोही रोबोटों और सर्वज्ञ सुपर-कम्प्यूटरों से जो उनको मिटा देना चाहते हैं। मानव जाति मरणोन्मुख प्रतीत होती है, लेकिन एकदम आख़िरी लम्हों में, तमाम मुश्किलों से लड़ते हुए मानव जाति की जीत एक ऐसी चीज़ की बदौलत होती है, जिसको वे एलियन, रोबोट और सुपर-कम्प्यूटर न तो महसूस कर पाते हैं न उसकी थाह ले पाते हैं: प्रेम। फ़िल्म का नायक, जो अब तक सुपर-कम्प्यूटर द्वारा आसानी-से अँगुलियों पर नचाया जा रहा था और शैतानी रोबोट की गोलियों से छलनी बनाया जा रहा था, अपनी प्रेयसी से प्रेरणा पाकर सर्वथा अप्रत्याशित एक ऐसी चाल चलता है, जो हक्का-बक्का मैट्रिक्स पर भारी पड़ती है। डेटावाद इस तरह की स्थितियों को निहायत हास्यास्पद पाता है। 'कम ऑन,' वह हॉलीवुड के पटकथा लेखकों को झिड़कता है, 'बस आपको इतना ही सूझ पाता है? प्रेम? और वह भी कोई आदर्शवादी ब्रह्माण्डीय प्रेम नहीं, बल्कि दो स्तनधारियों के बीच का जिस्मानी आकर्षण? क्या आपको वाक़ई लगता है कि एक ऐसा सर्वज्ञ सुपर-कम्प्यूटर या एलियन जो समूची आकाशगंगा को जीतने की कोशिश में लगा हुआ है, वह हार्मोनल आक्रमण से हक्काबक्का रह जाएगा?'

मानवीय अनुभव को डेटा पैटर्नों की बराबरी पर रखते हुए डेटावाद प्रभुत्व और अर्थ के हमारे बुनियादी स्रोत को क्षीण कर देता है और एक भीषण मज़हबी क्रान्ति का ऐलान करता है, वैसी क्रान्ति जैसी अठारहवीं सदी के बाद से नहीं हुई है। लॉक, ह्यूम और वॉल्तेयर के ज़माने में मानववादी तर्क दिया करते थे कि 'ईश्वर मानव कल्पना की उपज है'। डेटावाद आज मानववादियों को उन्हीं की छड़ी से पीटता हुआ कहता है: 'हाँ, ईश्वर मानव कल्पना की ही उपज है, लेकिन स्वयं यह मानव कल्पना महज़ जैवरासायनिक ऐल्गरिदमों की उपज है'। अठारहवीं सदी में मानववादियों ने देव-केन्द्रिक विश्वदृष्टि की जगह मानव-केन्द्रिक विश्वदृष्टि को अपनाते हुए ईश्वर को एक तरफ़ धकेल दिया था।

डेटावादी क्रान्ति आने में अगर एक-दो सदियाँ नहीं, तो शायद कुछ दशक तो लगेंगे ही, लेकिन मानववादी क्रान्ति भी रातों-रात घटित नहीं हो गई थी। शुरू में मानववादियों ने ईश्वर में विश्वास करना जारी रखा था, जिसके पीछे उनका तर्क हुआ करता था कि मनुष्य इसलिए पवित्र हैं, क्योंकि उनकी रचना किसी अलौकिक उद्देश्य से ईश्वर द्वारा की गई थी। बहुत बाद में जाकर ही कुछ लोगों ने यह कहने का साहस किया था कि मनुष्य की पवित्रता स्वयं उसके द्वारा कमाई गई है, और ईश्वर का कहीं कोई अस्तित्व नहीं है। इसी तरह, आज ज़्यादातर डेटावादी दावा करते हैं कि इंटरनेट-ऑफ़-ऑल-थिंग्स इसलिए पवित्र है, क्योंकि इसकी रचना मनुष्यों द्वारा उनकी अपनी ज़रूरतों को पूरा करने के लिए की जा रही है, लेकिन अन्ततः इंटरनेट-ऑफ़-ऑल-थिंग्स अपनी दम पर पवित्र हो जाएगी।

मानव-केन्द्रिक विश्वदृष्टि से डेटा-केन्द्रिक विश्वदृष्टि की ओर प्रस्थान महज़ एक दार्शनिक क्रान्ति नहीं है। यह एक व्यावहारिक क्रान्ति होगी। यह मानववादी विचार कि 'मनुष्यों ने ईश्वर को ईजाद किया था' इसलिए महत्त्वपूर्ण था क्योंकि इसके दूरगामी व्यावहारिक निहितार्थ थे। इसी तरह, यह डेटावादी विचार कि 'प्राणी ऐल्गरिदम हैं' अपने दैनिक व्यावहारिक परिणामों के लिहाज़ से महत्त्वपूर्ण है। विचार दुनिया को तभी बदलते हैं, जब वे हमारे व्यवहार को बदल देते हैं।

प्राचीन बेबिलान में, जब लोग किसी मुश्किल धर्मसंकट में फँस जाते थे, तो वे रात के अँधेरे में स्थानीय देवालय के शीर्ष पर खड़े होकर आकाश का निरीक्षण करते थे। बेबिलान-वासियों का विश्वास था कि नक्षत्र उनकी नियति को नियन्त्रित करते हैं और उनके भविष्य का पूर्वानुमान करते हैं। नक्षत्रों को देखते हुए बेबिलान-वासी फ़ैसला किया करते थे कि उनको विवाह करना चाहिए या नहीं, खेत जोतना चाहिए या नहीं और युद्ध लड़ना चाहिए या नहीं। उनके दार्शनिक विश्वास बेहद व्यावहारिक प्रक्रियाओं में रूपान्तरित होते थे।

यहूदी धर्म या ईसाइयत जैसे बाइबिलपरक मज़हब एक अलग ही कहानी कहते थे: 'नक्षत्र झूठ बोलते हैं। जिस ईश्वर ने नक्षत्रों की रचना की है, उसने सारे सत्य को बाइबिल में

उजागर कर दिया है। इसलिए नक्षत्रों का निरीक्षण करना बन्द करो - उसकी जगह बाइबिल पढ़ो!' यह भी एक व्यावहारिक सलाह थी। जब लोगों को यह समझ में नहीं आता था कि वे किससे विवाह करें, कौन-सी आजीविका अपनाएँ या युद्ध शुरू करें या न करें, तो वे बाइबिल पढ़ते थे और उसके परामर्श का अनुसरण करते थे।

इसके बाद मानववादी एक अलग ही कहानी लेकर आए: 'मनुष्यों ने ईश्वर को ईजाद किया, बाइबिल लिखी और फिर हज़ारों तरह से उसकी व्याख्या की। इसलिए मनुष्य ही सारे सत्य का स्रोत हैं। आप एक प्रेरणादायी मानवीय रचना के रूप में बाइबिल पढ़ सकते हैं, लेकिन वास्तव में आपको इसकी कोई ज़रूरत नहीं है। अगर आप किसी दुविधा में हैं, तो अपने मन की बात सुनिए और अपनी अन्तरात्मा की आवाज़ का अनुसरण करिए। इसके बाद मानववाद ने इस बारे में विस्तार से व्यावहारिक निर्देश दिए कि अपने मन की बात को कैसे सुना जाना चाहिए, और इसके लिए उसने सूर्यास्त का नज़ारा देखने, गेटे को पढ़ने, निजी डायरी लिखने, अच्छे मित्र के साथ अपनी भावनाओं में साझा करने और लोकतान्त्रिक चुनाव कराने जैसी तकनीकों का परामर्श दिया।

सदियों तक वैज्ञानिक भी इन मानववादी मार्गदर्शनों को स्वीकार करते रहे। जब भौतिकीविद इस बारे में सोच-विचार करते थे कि वे विवाह करें या न करें, तो वे भी सूर्यास्त का नज़ारा देखते थे और अपने अन्तर्मन के साथ सम्पर्क स्थापित करते थे। जब रसायनशास्त्री इस बारे में सोच-विचार करते थे कि वे किसी समस्याग्रस्त नौकरी का प्रस्ताव स्वीकार करें या न करें, तो वे भी डायरियाँ लिखते थे और अपने किसी अच्छे दोस्त के साथ अपनी भावनाओं को साझा करते थे। जब जीवविज्ञानी इस बारे में बहस करते थे कि युद्ध छेड़ा जाए या नहीं या किसी शान्ति-सन्धि पर हस्ताक्षर किए जाएँ या नहीं, तो वे लोकतान्त्रिक चुनावों में मतदान करते थे। जब मस्तिष्क-विज्ञानी अपनी आश्चर्यजनक खोजों के बारे में पुस्तकें लिखते थे, तो वे अक्सर पुस्तक के पहले पन्ने पर गेटे का कोई प्रेरणादायी वाक्य उद्धरित करते थे। ये विज्ञान और मानववाद के बीच आधुनिक गठबन्धन का आधार हुआ करता था, जो आधुनिक जांग और आधुनिक जिन के बीच के - बुद्धि और भावना के बीच के, प्रयोगशाला और संग्रहालय के बीच के, क्रमबद्ध उत्पादन और सुपरमार्केट के बीच के - नाज़ुक सन्तुलन को बनाए रखता था।

वैज्ञानिकों ने मानवीय अनुभूतियों का महिमामण्डन ही नहीं किया था, बल्कि ऐसा करने का एक शानदार विकासपरक तर्क भी ढूँढ निकाला था। डार्विन के बाद जीवविज्ञानियों ने यह समझाना शुरू कर दिया था कि अनुभूतियाँ वे पेचीदा ऐल्गरिदम हैं, जिनको विकास प्रक्रिया ने इसलिए धारदार बना दिया है कि ताकि प्राणी सही निर्णय ले सकें। हमार प्रेम, हमारा भय और हमारे आवेग सिर्फ़ कविताएँ रचने के काम आ सकने लायक़ कोई धुँधली आध्यात्मिक संघटनाएँ नहीं हैं। इसकी बजाय वे लाखों वर्षों की

व्यावहारिक प्रज्ञा के मर्म को धारण किए हुए हैं। जब आप बाइबिल पढ़ते हैं, तो आप उन थोड़े-से पादरियों और रब्बियों का परामर्श हासिल कर रहे होते हैं, जो प्राचीन यरुशलम में रहा करते थे। इसके विपरीत, जब आप अपनी भावनाओं की बात सुनते हैं, तो आप उस ऐल्गरिदम का अनुसरण कर रहे होते हैं जिसको विकास-प्रक्रिया ने लाखों सालों के दौरान विकसित किया है, और जिसने प्राकृतिक वरण के कठोरतम गुणवत्ता-नियन्त्रण के परीक्षणों का सामना किया है। आपकी अनुभूतियाँ उन लाखों पूर्वजों की आवाज़ हैं, जिनमें से प्रत्येक प्रयत्नपूर्वक एक निर्मम वातावरण में जीवित बना रहा था और प्रजनन करता रहा था। बेशक आपकी अनुभूतियाँ अचूक नहीं हैं, लेकिन वे राह दिखाने वाले दूसरे ज़्यादातर स्रोतों से बेहतर हैं। लाखों लाख वर्षों तक अनुभूतियाँ दुनिया के श्रेष्ठतम ऐल्गरिदम हुआ करती थीं। इसीलिए कन्फ़्यूसियस के ज़माने में, मोहम्मद या स्तालिन के ज़माने में लोगों को कन्फ़्यूसियसवाद, इस्लाम या साम्यवाद की शिक्षाओं पर ग़ौर करने की बजाय अपनी अनुभूतियाँ पर ग़ौर करना चाहिए था।

लेकिन इक्कीसवीं सदी में अनुभूतियाँ दुनिया के श्रेष्ठ ऐल्गरिदम नहीं रह गई हैं। अब हम ऐसे उत्कृष्ट ऐल्गरिदम विकसित कर रहे हैं, जो अपूर्व कम्प्यूटिंग शक्ति और भीमकाय डेटा-भण्डार का उपयोग करते हैं। गूगल और फ़ेसबुक के ऐल्गरिदम सिर्फ़ इतना भर नहीं जानते कि आप ठीक कैसा महसूस करते हैं, वे आपके बारे में असंख्य दूसरी ऐसी चीज़ें भी जानते हैं, जिनका आपको अन्दाज़ा भी नहीं है। नतीजतन आपको अपनी अनुभूतियों पर कान देना बन्द कर देना चाहिए और उनकी बजाय इन बाहरी ऐल्गरिदमों की बातें सुननी चाहिए। जब ऐल्गरिदमों को पहले से ही न सिर्फ़ इस बात की जानकारी हो कि हर व्यक्ति किस तरह मतदान करने वाला है, बल्कि उन अन्तर्निहित स्नायुविक वजहों की भी जानकारी हो कि क्यों एक व्यक्ति डेमोक्रेट को वोट देगा, जबकि दूसरा व्यक्ति रिपब्लिकन को वोट देगा, तो फिर लोकतान्त्रिक चुनाव कराने का मतलब ही क्या रह जाता है? जहाँ मानववाद का आदेश था कि ‘अपनी अनुभूतियों की बात सुनिए!’ वहीं डेटावाद अब आदेश देता है कि ‘ऐल्गरिदमों की बात सुनिए! वे जानते हैं कि आप कैसा महसूस करते हैं’।

जब आप इस पर सोच-विचार करते हैं कि किससे विवाह करें, कौन-सी आजीविका के लिए कोशिश करें और युद्ध शुरू करें या न करें, तो डेटावाद आपसे कहता है कि किसी ऊँची पहाड़ी पर चढ़कर समुद्र की लहरों में अस्त होते सूरज का नज़ारा देखना समय की निहायत ही बर्बादी है। इसी तरह किसी संग्रहालय का भ्रमण करना, निजी डायरी लिखना या अपने दोस्त के साथ अपनी भावनाओं को साझा करना भी उतना ही निस्सार है। हाँ, सही निर्णय लेने के लिए आपको स्वयं को बेहतर तरीक़े से तो जानना ही चाहिए, लेकिन अगर आप इस इक्कीसवीं सदी में ख़ुद को जानना चाहते हैं, तो इसके लिए ऊँचे पहाड़ पर

चढ़ने, किसी संग्रहालय में जाने या डायरी लिखने से बेहतर तरीक़े मौजूद हैं। आपके लिए पेश हैं कुछ व्यावहारिक डेटावादी मार्गदर्शन:

'आप जानना चाहते हैं कि आप वाक़ई कौन हैं?' डेटावाद पूछता है। 'तो पहाड़ों और संग्रहालयों के बारे में भूल जाइए। क्या आपने अपना डीएनए सीक़्वन्स उस क्रम को ज्ञात करना, जिसमें न्यूक्लियोटाइड (रासायनिक द्रव्य) डीएनए से संयुक्त होते हैं, कराया है? नहीं?! आप किस चीज़ का इन्तज़ार कर रहे हैं? जाइए और आज ही इसे करा डालिए। और अपने दाद-दादी-नाना-नानी को भी राज़ी करिए कि वे भी अपने डीएनए सीक़्वन्स करा लें - उनका डेटा आपके लिए बहुत क़ीमती है। और आपने इन जैवसांख्यकीय उपकरणों के बारे में सुना है, जो चौबीसों घण्टे आपका रक्तचाप और आपकी दिल की धड़कनों को मापते रहते हैं? अच्छा है, तो जाइए और एक ऐसा उपकरण ख़रीद डालिए, उसको पहन लीजिए और उसको अपने स्मार्टफ़ोन से कनेक्ट कर लीजिए। और जब आप ख़रीदारी कर रहे हों, तो लगे हाथ एक मोबाइल कैमरा और माइक्रोफ़ोन भी ख़रीद लीजिए, उस सब कुछ को रिकॉर्ड करिए, जो आप करते हैं, और उसको ऑनलाइन कर दीजिए। और गूगल और फ़ेसबुक को छूट दीजिए कि वे आपके सारे ईमेल पढ़ सकें, आपके सारे वार्तालापों और सन्देषों पर निगरानी रख सकें, और अपने सारे लाइक्स और क्लिक्स का रिकॉर्ड रखिए। अगर आप यह सब करते हैं, तो इंटरनेट-ऑफ़-ऑल-थिंग्स के महान ऐल्गरिदम आपको बताएँगे कि आपको किससे विवाह करना चाहिए, कौन-सी आजीविका के लिए कोशिश करनी चाहिए, और युद्ध शुरू करना चाहिए या नहीं।

लेकिन ये सारे महान ऐल्गरिदम आते कहाँ से हैं? ये डेटावाद का रहस्य है। ठीक जिस तरह ईसाइयत के मुताबिक़ हम मनुष्य ईश्वर और उसकी योजना को नहीं समझ सकते, उसी तरह डेटावाद ऐलान करता है कि मानव मस्तिष्क नए विशारद ऐल्गरिदमों की थाह नहीं पा सकता। निश्चय ही, फ़िलहाल ऐल्गरिदमों का लेखन ज़्यादातर इंसानी हैकरों द्वारा किया जाता है, लेकिन वास्तविक महत्त्वपूर्ण ऐल्गरिदम - जैसे कि गूगल सर्च ऐल्गरिदम - विशाल समूहों द्वारा विकसित किए गए हैं। इन समूहों का हर सदस्य पहेली के महज़ एक हिस्से को समझता है, और ऐल्गरिदम को उसकी समग्रता में वास्तव में कोई नहीं समझता। इसके अलावा, यान्त्रिक शिक्षण (मशीन लर्निंग) और कृत्रिम स्नायुविक तन्त्रों (आर्टिफ़िशल न्यूरल नेटवर्क्स) के उदय के साथ ज़्यादा-से-ज़्यादा ऐल्गरिदम ख़ुद-ब-ख़ुद विकसित हो रहे हैं, अपनी गुणवत्ता में वृद्धि कर रहे हैं और अपनी ही ग़लतियों से सीख रहे हैं। वे इतनी विपुल मात्रा में डेटा का विश्लेषण करते हैं कि उनको कोई मनुष्य समेट ही नहीं सकता, और ऐसी क्रियाविधियों को पहचानना तथा ऐसी रणनीतियाँ अपनाना सीख रहे हैं, जो इंसानी दिमाग़ की पकड़ से परे हैं। बीज ऐल्गरिदम भले ही शुरू में मनुष्यों द्वारा विकसित किया जाता हो, लेकिन जैसे ही उसका विकास हो जाता है, वैसे ही वह अपने रास्ते पर

चलने लगता है, और वहाँ पहुँच जाता है, जहाँ उसके पहले कोई मनुष्य नहीं गया था - और जिसका अनुसरण कोई मनुष्य नहीं कर सकता।

डेटा-प्रवाह में एक तरंग

स्वाभाविक ही डेटावाद के अपने आलोचक और विधर्मी हैं। जैसा कि हमने अध्याय 3 में देखा, इसमें सन्देह है कि जीवन को डेटा-प्रवाह में सरलीकृत किया जा सकता है या नहीं। ख़ासतौर से, फ़िलहाल हम नहीं जानते कि डेटा-प्रवाह चेतना और व्यक्तिनिष्ठ अनुभवों को किस तरह और क्यों उत्पन्न कर सकेगा। हो सकता है आने वाले बीस वर्षों बाद हमारे पास इसकी कोई अच्छी व्याख्या हो, लेकिन यह भी मुमकिन है कि हमें पता चले कि प्राणी अन्ततः ऐल्गरिदम नहीं हैं।

यह बात भी उतनी ही सन्देहास्पद है कि निर्णय लेना ही जीवन का मर्म है। डेटावाद के प्रभाव में जैविक विज्ञान और सामाजिक विज्ञान, दोनों ही निर्णय-प्रक्रिया से आसक्त हो गए हैं, मानो जीवन इतना ही है, लेकिन क्या ऐसा है? अनुभूतियाँ, भावनाएँ और विचार निश्चय ही निर्णय-प्रक्रिया में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, लेकिन क्या उनका इतना ही अर्थ है? डेटावाद निर्णय-प्रक्रिया की उत्तरोत्तर बेहतर समझ हासिल कर रहा है, लेकिन यह भी मुमकिन है कि वह जीवन के बारे में टेढ़ा दृष्टिकोण अपना रहा हो।

डेटावादी धर्ममत का आलोचनात्मक परीक्षण इक्कीसवीं सदी की महज़ सबसे बड़ी वैज्ञानिक चुनौती ही साबित नहीं हो सकती, बल्कि वह अत्यन्त अनिवार्य राजनैतिक और आर्थिक मुहिम भी हो सकती है। जैविक विज्ञानों और सामाजिक विज्ञानों के अध्येताओं को ख़ुद से यह पूछना चाहिए कि जब हम जीवन को डेटा-प्रॉसेसिंग और निर्णय-प्रक्रिया के रूप में समझते हैं, तब हम क्या कुछ खो देते हैं। क्या इस विश्व में ऐसा कुछ भी हो सकता है, जिसको डेटा में संकुचित न किया जा सकता हो? मान लीजिए कि अ-चेतन ऐल्गरिदम सर्व ज्ञात डेटा-प्रॉसेसिंग उद्यमों में अन्ततः चेतना-सम्पन्न बुद्धि को पीछे छोड़ देते हैं - तो ऐसे में चेतना-सम्पन्न बुद्धि को श्रेष्ठतर अ-चेतन ऐल्गरिदमों से विस्थापित करने पर अगर कोई क्षति होती है, तो वह किस चीज़ की क्षति होगी?

निश्चय ही, अगर डेटावाद ग़लत भी है और प्राणी निरे ऐल्गरिदम नहीं हैं, तो ज़रूरी नहीं कि यह स्थिति डेटावाद को दुनिया को हथियाने से रोक सके। पहले भी ऐसे बहुत-से मज़हब रहे हैं जिन्होंने अपनी तथ्यात्मक चूकों के बावजूद ज़बरदस्त लोकप्रियता और शक्ति हासिल की है। अगर ईसाइयत और साम्यवाद ऐसा कर सके, तो डेटावाद क्यों नहीं कर सकता? डेटावाद की सम्भावनाएँ तो विशेष रूप से उज्ज्वल हैं, क्योंकि फ़िलहाल यह तमाम वैज्ञानिक अनुशासनों में फैल रहा है। एक संयुक्त वैज्ञानिक प्रतिमान आसानी-से एक अकाट्य मताग्रह बन जा सकता है। किसी वैज्ञानिक प्रतिमान का खण्डन करना बहुत

मुश्किल होता है, लेकिन अभी तक समूची वैज्ञानिक व्यवस्था द्वारा कोई एक प्रतिमान अपनाया नहीं गया है। इसलिए किसी एक ज्ञान अनुशासन के अध्येता हमेशा बाहर से विधर्मी दृष्टिकोणों का आयात कर सकते थे, लेकिन अगर संगीतशास्त्री से लेकर जीवविज्ञानी तक हर कोई एक ही डेटावादी प्रतिमान का उपयोग करता है, तो अन्तरज्ञान अनुशासनात्मक आवाजाही इस प्रतिमान को और भी मज़बूत बनाने का काम करेगी। नतीजतन, अगर यह प्रतिमान त्रुटिपूर्ण भी हुआ, तो भी इसके प्रति प्रतिरोध बरतना अत्यन्त मुश्किल होगा।

अगर डेटावाद दुनिया पर विजय पाने में सफल हो जाता है, तो हम मनुष्यों का क्या होगा? शुरू में, डेटावाद सम्भवतः स्वास्थ्य, सुख और सत्ता के मानववादी उपक्रमों को गति देगा। डेटावाद इन्हीं मानववादी महत्त्वाकांक्षाओं को पूरा करने के आश्वासन के साथ अपना प्रसार करता है। अमरता, अलौकिक सुख और सृष्टि की रचना करने की दैवीय शक्तियों को हासिल करने के लिए हमें मानव-मस्तिष्क की क्षमता से बहुत परे की डेटा की अपरिमित मात्र को प्रॉसेस करने की ज़रूरत है। इसलिए डेटावाद हमारे लिए यह काम करेगा, लेकिन जैसे ही एकबारगी सत्ता मनुष्यों के हाथों से निकलकर ऐल्गरिदमों के हाथों में आ जाएगी, वैसे ही ये मानववादी मुहिमें अप्रासंगिक हो सकती हैं। एक बार जैसे ही हम डेटा-केन्द्रिक विश्वदृष्टि के पक्ष में मानव-केन्द्रिक विश्वदृष्टि को त्याग देते हैं, वैसे ही मनुष्य का आरोग्य और सुख बहुत कम महत्त्वपूर्ण चीज़ें प्रतीत होने लग सकती हैं। जब डेटा-प्रॉसेसिंग के कहीं ज़्यादा श्रेष्ठ मॉडल पहले से ही उपलब्ध हों, तो डेटा-प्रॉसेसिंग की पुरानी पड़ चुकी मशीनों की परवाह क्यों की जाए? हम इंटरनेट-ऑफ़-ऑल-थिंग्स को इस उम्मीद से गढ़ने का उद्यम कर रहे हैं कि यह हमें स्वस्थ, सुखी और शक्तिशाली बना देगा, लेकिन जब इंटरनेट-ऑफ़-ऑल-थिंग्स काम करने लग जाएगा, तो मनुष्य इंजीनियरों से चिप्स में और फिर चिप्स से डेटा में सिकुड़कर रह सकते हैं, और अन्ततः हम डेटा के तेज़ प्रवाह में उसी तरह धुल सकते हैं, जिस तरह उफनती नदी में मिट्टी का एक ढेला गल जाता है।

इस तरह डेटावाद होमो सेपियन्स के साथ वैसा ही कुछ करने की धमकी पेश करता है जैसा *होमो सेपियन्स* ने तमाम दूसरे प्राणियों के साथ किया है। समूचे इतिहास के दौरान मनुष्यों ने भूमण्डलीय तन्त्र खड़े किए और हर चीज़ का मूल्यांकन उस तन्त्र के भीतर उसकी भूमिका के आधार पर किया। यह चीज़ हज़ारों सालों से मनुष्य के अहंकार और पूर्वाग्रहों को फुलाती आ रही है। चूँकि मनुष्यों ने इस तन्त्र में सबसे ज़्यादा महत्त्वपूर्ण भूमिकाएँ निभाईं, इसलिए इस तन्त्र की उपलब्धियों का श्रेय लेना, और स्वयं को सृष्टि के शिखर के रूप में देखना हमारे लिए आसान था। दूसरे सारे प्राणियों के जीवन और अनुभवों को कम करके आँका गया, क्योंकि उन्होंने बहुत कम महत्त्वपूर्ण भूमिकाएँ निभाईं, और जब कभी किसी प्राणी ने किसी भी तरह की भूमिका निभाना बन्द कर दिया,

तो वह विलुप्त हो गया, लेकिन जब हम मनुष्य इस तन्त्र में अपना उपयोगितापरक महत्त्व खो देंगे तो हम पाएँगे कि हम अन्ततः सृष्टि के शिखर नहीं हैं। जिस पैमाने को हमने स्वयं प्रतिष्ठापित किया था, वही पैमाना हमें उन मैमथों और चीन के उन नदी-डॉल्फिनों में शामिल होने के लिए अभिशप्त कर देगा, जो गुमानामी के अँधेरे में खो चुके हैं। मुड़कर देखने पर, मनुष्यता ब्रह्माण्डीय डेटा-प्रवाह में उठी एक छोटी-सी तरंग साबित होगी।

हम वास्तव में भविष्य का पूर्वानुमान नहीं कर सकते, क्योंकि प्रौद्योगिकी निश्चयात्मक नहीं है। एक ही प्रौद्योगिकी नितान्त अलग-अलग तरह के समाजों की रचना कर सकती है। उदाहरण के लिए, औद्योगिक क्रान्ति की प्रौद्योगिकी - रेलें, बिजली, रेडियो, टेलिफ़ोन - का इस्तेमाल साम्यवादी तानाशाही, फासीवादी शासन-तन्त्रों या उदारवादी लोकतन्त्रों की स्थापना के लिए किया जा सका। दक्षिण कोरिया और उत्तर कोरिया को ही लें: इनकी पहुँच ठीक एक ही तरह की प्रौद्योगिकी तक थी, लेकिन इन्होंने इस प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल अलग-अलग तरीक़े से करने का चुनाव किया।

आर्टिफ़िशल इंटेलिजेंस और जैवप्रौद्योगिकी का उदय निश्चय ही दुनिया की सूरत बदल देगा, लेकिन यह चीज़ एक भी निश्चयात्मक नतीजे का आदेश नहीं देती। जितने भी परिदृश्यों की रूपरेखा इस पुस्तक में प्रस्तुत की गई है, उनको सम्भावनाओं की तरह देखा जाना चाहिए, भविष्यवाणियों की तरह नहीं। अगर आपको इनमें कोई सम्भावना पसन्द नहीं आती, तो आपका उन तरीक़ों से सोचने और आचरण करने के लिए स्वागत है, जो इन विशेष सम्भावनाओं को मूर्त रूप लेने से रोक सकें।

हालाँकि, नए तरीक़ों से सोचना और आचरण करना आसान काम नहीं है, क्योंकि हमारे विचार और कर्म आमतौर से वर्तमान समय की विचारधाराओं और सामाजिक व्यवस्थाओं से बाधित होते हैं। यह पुस्तक वर्तमान काल के अनुकूलनों की पकड़ को ढीला करने और अपने भविष्य के बारे में ज़्यादा कल्पनाशील ढंग से सोचने में सक्षम बनाने के उद्देश्य से इस अनुकूलन की तहों में जाने की कोशिश करती है। किसी एक निश्चयात्मक परिदृश्य की भविष्यवाणी कर अपने ज्ञान के क्षितिजों को संकुल बनाने की बजाय इस पुस्तक का उद्देश्य इन क्षितिजों को और ज़्यादा विस्तार देना और हमें विकल्पों के एक अधिक व्यापक परिदृश्य के प्रति सजग बनाना है। जैसा कि मैंने बार-बार रेखांकित किया है, वास्तव में कोई नहीं जानता कि 2050 में रोज़गार की मण्डी, परिवार या पारिस्थितिकी की शक्ल कैसी होगी, या दुनिया पर किन मज़हबों, आर्थिक व्यवस्थाओं और राजनैतिक संरचनाओं का वर्चस्व होगा।

तब भी अपने ज्ञान के क्षितिजों का विस्तार हमें पहले से ज़्यादा सम्भ्रमित और निष्क्रिय बनाते हुए उलटी प्रतिक्रिया कर सकता है। इतने सारे परिदृश्यों और सम्भावनाओं

के साथ हमें किस परिदृश्य या सम्भावना की ओर ज़्यादा ध्यान देना चाहिए? दुनिया पहले की तुलना में बहुत तेज़ी-से बदल रही है, और हम डेटा की, विचारों की, आश्वासनों और ख़तरों की विपुल बाढ़ के शिकार हैं। मनुष्य मुक्त बाज़ार के, भीड़ की प्रज्ञा के और बाह्य ऐल्गरिदमों के पक्ष में अपनी प्रभुता को आंशिक तौर पर इसलिए त्यागते चले जा रहे हैं, क्योंकि हम डेटा की बाढ़ से निपट पाने में असमर्थ होते जा रहे हैं। अतीत में, सेंसरशिप सूचना के प्रवाह को अवरुद्ध कर दिया करती थी। इक्कीसवीं सदी में सेंसरशिप लोगों को अप्रासंगिक सूचना की बाढ़ में डुबाने का काम कर रही है। हम जानते ही नहीं हैं कि हम किस चीज़ की ओर ध्यान दें, और हम अक्सर अप्रासंगिक मसलों की छानबीन करने और उन पर बहस करने में अपना वक़्त गँवाते रहते हैं। प्राचीन युगों में शक्तिशाली होने का अर्थ डेटा की पहुँच में होना होता था। आज शक्तिशाली होने का अर्थ यह जानना है कि किस चीज़ की उपेक्षा की जाए। इसलिए हमारी इस अराजक दुनिया में जो कुछ भी हो रहा है, उसको ध्यान में रखते हुए हमें अपना ध्यान किस चीज़ पर एकाग्र करना चाहिए?

अगर हम महीनों के सन्दर्भ में सोचते होते, तो हमारे लिए शायद मध्य पूर्व की उथल-पुथल पर, यूरोप की शरणार्थी समस्या पर और चीनी अर्थव्यवस्था की मन्द होती रफ़्तार पर ध्यान देना बेहतर होता। अगर हम दशकों के सन्दर्भ में सोचते हैं, तो भूमण्डल के बढ़ते हुए ताप, बढ़ती हुई ग़ैरबराबरी और आजीविका के कारोबार में खलल, चिन्ता का विषय है, लेकिन अगर हम जीवन का वृहत् परिप्रेक्ष्य अपनाते हैं, तो दूसरी सारी समस्याएँ और घटनाक्रम तीन आपस में जुड़ी प्रक्रियाओं के सामने फीके पड़ जाते हैं:

1. विज्ञान एक ऐसे सर्वव्यापी मताग्रह की ओर बढ़ रहा है, जो कहता है कि प्राणी ऐल्गरिदम हैं और जीवन डेटा-प्रॉसेसिंग है।
2. बुद्धि चेतना से जुदा हो रही है।
3. अ-चेतन किन्तु अत्यन्त बुद्धिमान ऐल्गरिदम जल्दी ही हमको स्वयं हमसे बेहतर ढंग से समझने लग जाएँगे।

ये तीन प्रक्रियाएँ तीन केन्द्रीय महत्त्व के सवाल खड़े करती हैं, जो मुझे उम्मीद है कि इस पुस्तक को पढ़ने के बाद लम्बे समय तक आपके मन में बने रहेंगे:

1. क्या प्राणी वास्तव में महज़ ऐल्गरिदम हैं, और क्या जीवन वास्तव में महज़ डेटा-प्रॉसेसिंग है?
2. ज़्यादा मूल्यवान क्या है - बुद्धि या चेतना?
3. जब अ-चेतन, किन्तु अत्यन्त बुद्धिमान ऐल्गरिदम हमको स्वयं हमसे बेहतर ढंग से समझने लग जाएँगे, तब समाज, राजनीति और दैनिक जीवन की क्या स्थिति होगी?

आभार

मैं नीचे अंकित मनुष्यों, अन्य प्राणियों और संस्थाओं के प्रति अपना आभार व्यक्त करता हूँ:

अपने गुरु सत्यनारायण गोयनका (1924- 2013) के प्रति, जिन्होंने मुझे विपश्यना ध्यान की उस तकनीक की शिक्षा दी, जिसने मुझे वास्तविकता को उसके मूल रूप में देखने और मानस तथा जगत को बेहतर ढंग से समझने में मदद की। पिछले पन्द्रह वर्षों तक विपश्यना का अभ्यास करते हुए मैंने जो एकाग्रता, शान्ति और अन्तर्दृष्टि अर्जित की, उसके बिना मैं यह पुस्तक नहीं लिख पाता।

इज़रायल साइंस फ़ाउंडेशन के प्रति, जिसने इस शोध-योजना के लिए निधि जुटाने में मदद की (अनुदान क्रमांक 26/09)।

हिब्रू यूनिवर्सिटी के प्रति, और विशेष रूप से उसके इतिहास विभाग के प्रति, जो मेरा अकादमिक घर है और पिछले तमाम वर्षों के अपने उन छात्रों के प्रति, जिन्होंने अपने सवालों, अपने जवाबों और अपनी ख़ामोशियों के माध्यम से मुझे बहुत कुछ सिखाया।

अपने शोध सहायक इदान शेरर के प्रति, जिसके सामने मैंने जो कुछ भी रखा, चाहे वे चिम्पांज़ी हों, निएंडरथल हों या साइबोर्ग हों, उन सब विषयों का प्रबंधन उसने निष्ठापूर्वक किया। और मेरे अन्य सहायकों, रैम लिरान, इयाल मिलर और ओम्री शेफ़र रवीव के प्रति, जिन्होंने समय-समय पर मेरी मदद की।

ब्रिटेन के पेंगुइन रैन्डम हाउस की मेरी प्रकाशक मिखल शवीट के प्रति, उनके द्वारा उठाए गए जोख़िम के लिए, और कई वर्षों से निरन्तर जारी उनकी अटूट वचनबद्धता तथा सम्बल के लिए, पेंगुइन रैन्डम हाउस के एली स्टील, सुज़ैन डीन, बेथन जोन्स, मारिया गार्बट-लुसेरो और उनके अन्य सहकर्मियों के प्रति, उनकी सारी मदद के लिए।

डेविड मिल्नर के प्रति, जिन्होंने पाण्डुलिपि के सम्पादन का शानदार काम कर मुझे अनेक शर्मनाक ग़लतियों से बचाया, और मुझे याद दिलाया कि कुंजीपटल (कीबोर्ड) की सम्भवतः सबसे महत्त्वपूर्ण कुंजी 'delete' होती है।

रायट कम्युनिकेशन्स की प्रीना गेधर और लीजा क्रेसोवेटी के प्रति, बहुत कारगर ढंग से लोगों तक जानकारी पहुँचाने के लिए।

हार्पर कॉलिन्स, न्यू यॉर्क के मेरे प्रकाशक जॉनाथन जाओ, और वहाँ के मेरे पूर्व प्रकाशक क्लेयर वॉक्टेल के प्रति, उनके विश्वास, प्रोत्साहन और अन्तर्दृष्टि के लिए।

श्मुएल रोज़नर और एरान ज़्मोरा के प्रति, जिन्होंने सम्भावना देखी और मूल्यवान प्रतिक्रियाएँ और सुझाव दिए।

डेबोरा हैरिस के प्रति, अत्यन्त महत्त्वपूर्ण खोज से मदद करने के लिए।

एमोस एविसार, शिलो डि बेर, टिर्ज़ा आइज़ेनबर्ग, ल्यूक मैथ्यूज़, रैमी रोथोल्ज़ और ऑरेन शिर्की के प्रति, जिन्होंने पाण्डुलिपि को सावधानीपूर्वक पढ़ा और मेरी ग़लतियों को सुधारने तथा मुझे चीज़ों को दूसरे परिप्रेक्ष्यों में देखने में सक्षम बनाने के लिए अपना बहुत सारा समय और उद्यम लगाया।

यिगाल बोरोकोव्स्की के प्रति, जिन्होंने मुझे ईश्वर पर आसान ढंग से सोचने के लिए मना लिया।

योरम योवेल के प्रति, उनकी अंतर्दृष्टि के लिए और हमारे साथ इश्ताओल के वनों में टहलने के लिए।

ओरी काट्ज़ और जे पोमेरांज़ के प्रति, जिन्होंने पूँजीवादी व्यवस्था की बेहतर समझ हासिल करने में मेरी मदद की।

कार्मल वाइज़मैन, ख्वाखईन केलर और एन्तोआन मेज़िएर के प्रति, मस्तिष्क और मानस के बारे में उनके विचारों के लिए।

बेन्जामिन ज़ेड केदर के प्रति, विचारों के सृजन और उनको सींचते रहने के लिए।

डिएगो ओल्स्टाइन के प्रति, अनेक वर्षों की आत्मीय मैत्री और शान्त मार्गदर्शन के लिए।

एहुद आमिर, शुकी ब्रुक, मिरी वोर्ज़ेल, गाई ज़ास्लावाकी, मिखाल कोएन, योसी मौरे, आमिर सुमाकाइ-फिंक, सराइ अहारोनी और अदी एज़रा के प्रति, जिन्होंने पाण्डुलिपि के चुने हुए हिस्से पढ़े और अपने विचारों से अवगत कराया।

इलोना एरियल के प्रति, उत्साह के विपुल प्रवाह का झरना बनने और आश्रय देने वाली दृढ़ चट्टान की भूमिका निभाने के लिए।

मेरी सास और अकाउन्टेन्ट हाना यहाव के प्रति, उनके करामाती वित्तीय प्रबन्धन के लिए।

मेरी दादी फ़ैनी, मेरी माँ प्नीना, मेरी बहन लियात और इनात, और अपने परिवार के तमाम दूसरे सदस्यों और दोस्तों के प्रति, उनके सम्बल और साहचर्य के लिए।

चम्बा, पेंगो और चिली के प्रति, जिन्होंने इस पुस्तक के कुछ मुख्य विचारों और प्रतिपादनों के लिए एक श्वान-परिप्रेक्ष्य उपलब्ध कराया।

और मेरे जीवन-साथी तथा प्रबन्धक इत्ज़िक के प्रति, जो पहले से ही आज मेरे इंटरनेट-ऑफ़-ऑल-थिंग्स की भूमिका निभाते हैं।

फ़ोटो आभार

1. Computer artwork © KTSDESIGN/Science Photo Library.
2. *The Triumph of Death*, c.1562, Bruegel, Pieter the Elder © The Art Archive/Alamy Stock Photo.
3. © NIAID/CDC/Science Photo Library.
4. Moscow, 1968 © Sovfoto/UIG via Getty Images.
5. 'Death and dying' from 14th-century French manuscript: *Pilgrimage of the Human Life*, Bodleian Library, Oxford © Art Media/Print Collector / Getty Images.
6. © CHICUREL Arnaud/Getty Images.
7. © American Spirit/Shutterstock.com.
8. © Imagebank/Chris Brunskill/Getty Images/Bridgeman Images.
9. © H. Armstrong Roberts/ClassicStock/Getty Images.
10. © De Agostini Picture Library/G. Nimatallah/Bridgeman Images.
11. Illustration: pie chart of global biomass of large animals.
12. Detail from Michelangelo Buonarroti (1475-1564), the Sistine Chapel, Vatican City © Lessing Images.
13. © Balint Porneczi/Bloomberg via Getty Images.
14. Left: © Bergserg/Shutterstock.com. Right: © s_bukley/Shutterstock. com.
15. © Karl Mondon/ZUMA Press/Corbis.
16. Adapted from Weiss, J.M., Cierpial, M.A. & West, C.H., 'Selective breeding of rats for high and low motor activity in a swim test: toward a new animal model of depression', Pharmacology, Biochemistry and Behavior 61:49-66 (1998).
17. © 2004 TopFoto.
18. Film still taken from www.youtube.com/watch?v=wWIbCtz_Xwk © TVR.

19. © NOVOSTI/AFP/Getty Images.
20. Rudy Burckhardt, photographer. Jackson Pollock and Lee Krasner papers, c.1905-1984. Archives of American Art, Smithsonian Institution. © The Pollock-Krasner Foundation ARS, NY and DACS, London, 2016.
21. Left: © Richard Nowitz/Getty Images. Right: © Archive Photos/ Stringer/Getty Images.
22. Courtesy of the Sousa Mendes Foundation.
23. Courtesy of the Sousa Mendes Foundation.
24. © Antiqua Print Gallery/Alamy Stock Photo.
25. Woodcut from 'Passional Christi und Antichristi' by Philipp Melanchthon, published in 1521, Cranach, Lucas (1472-1553) (studio of) © Private Collection/Bridgeman Images.
26. Source: Emission Database for Global Atmospheric Research (EDGAR), European Commission.
27. © Bibliothéque nationale de France, RC-A-02764, *Grandes Chroniques de France de* Charles V, folio 12v.
28. Manuscript: *Registrum Gregorii*, c.983 © Archiv Gerstenberg/ullstein bild via Getty Images.
29. © Sadik Gulec/Shutterstock.com.
30. © CAMERIQUE/ClassicStock/Corbis.
31. © Jeff J Mitchell/Getty Images.
32. © Molly Landreth/Getty Images.
33. *The Thinker*, 1880-81 (bronze), Rodin, Auguste, Burrell Collection, Glasgow © Culture and Sport Glasgow (Museums)/Bridgeman Images.
34. © DeAgostini Picture Library/Scala, Florence.
35. © Bpk/Bayerische Staatsgemäldesammlungen.
36. Staatliche Kunstsammlungen, Neue Meister, Dresden, Germany © Lessing Images.
37. Tom Lea, *That 2,000 Yard Stare*, 1944. Oil on canvas, 36''x28''. LIFE Collection of Art WWII, U.S. Army Center of Military History, Ft. Belvoir, Virginia. © Courtesy of the Tom Lea Institute, El Paso, Texas.
38. © Bettmann/Corbis.

39 © VLADGRIN/Shutterstock.com.
.
40 *Virgin and Child*, Sassoferrato, Il (Giovanni Battista Salvi) (1609-85), Musee Bonnat,
. Bayonne, France © Bridgeman Images.
41 © Bettmann/Corbis.
.
42 © Jeremy Sutton-Hibbert/Getty Images.
.
43 Left: © Fototeca Gilardi/Getty Images. Right: © alxpin/Getty Images.
.
44 © Sony Pictures Television.
.
45 © STAN HONDA/AFP/Getty Images.
.
46 'EM spectrum'. Licensed under CC BY-SA 3.0 via Commons,
. https://commons.wikimedia.org/wiki/File:EM_spectrum.svg#/media/File:EM_spectrum.svg
.
47 © Cornell Bioacoustics Research Program at the Lab of Ornithology.
.
48 Illustration: the spectrum of conciousness.
.
49 © ITAR-TASS Photo Agency/Alamy Stock Photo.
.
50 © Jonathan Kirn/Getty Images.
.

अनुवादक के बारे में

मदन सोनी हिन्दी के लेखक हैं, जो मुख्यतः साहित्यालोचना के क्षेत्र में सक्रिय हैं। आलोचना पर केन्द्रित उनकी अनेक पुस्तकें प्रकाशित हैं तथा उन्होंने विश्व के कई शीर्षस्थ लेखकों और चिन्तकों की रचनाओं के अनुवाद किए हैं, जिनमें शेक्सपियर, लोर्का, नीत्शे, एडवर्ड बॉण्ड, मार्ग्रेट ड्यूरास, ज़ाक देरीदा, एडवर्ड सईद आदि शामिल हैं। उनके द्वारा अनुवादित उम्बर्तो एको का विश्वविख्यात उपन्यास *द नेम ऑफ़ द रोज़ (ख़ाली नाम गुलाब का)* ख़ासा चर्चित हुआ है। उनके अन्य अनुवादों में हरमन हेस्से का उपन्यास *सिद्धार्थ*, विश्व के प्रसिद्ध लेखकों की कहानियों का संचयन *चुग़लख़ोर दिल और अन्य कहानियाँ,* डैन ब्राउन का उपन्यास *द विंची कोड,* एस. हुसैन ज़ैदी की पुस्तकें *डोगरी टु दुबई (डोगरी से दुबई तक)* तथा *बायकला टु बैंकॉक (बायकला से बैंकॉक तक)* शामिल हैं।

भोपाल स्थित राष्ट्रीय कला-केन्द्र भारत भवन के मुख्य प्रशासनिक अधिकारी के पद से सेवानिवृत्त सोनी को अनेक सम्मान और पुरस्कार प्राप्त हुए हैं, जिनमें मानव संसाधन विकास मन्त्रालय, संस्कृति विभाग की वरिष्ठ अध्ययन-वृत्ति और रज़ा फ़ाउण्डेशन पुरस्कार शामिल हैं। वे नान्त (फ़्रांस) के उच्च अध्ययन संस्थान के फ़ैलो भी रहे हैं।